मनस्तत्त्व

यशदेव शल्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

समर्पण—

प्रो० भीखन लाल आत्रेय को

प्रकाशकीय

हिंदी में मनोविज्ञान संबंधी उच्चस्तर के ग्रंथों के अभाव को देखते हुए हिंदुस्तानी एकेडेमी ने इस विषय से संबंधित अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए हैं। प्रस्तुत ग्रंथ भी इसी अभाव की पूर्ति के लिए है। श्री यशदेव शल्य जी ने मन और उससे संबंधित समस्त प्रक्रियाओं का विवेचन अत्यन्त सरल ढंग से किया है। यद्यपि पुस्तक का विषय अत्यन्त जटिल है, किन्तु इस पुस्तक में योग्य लेखक ने उसको सरल और रोचक बना दिया है। मेरा विश्वास है कि हिंदी संसार तथा इस विषय में रुचि रखने वाले पाठक और विद्यार्थी प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत करेंगे और उसे अत्यन्त उपयोगी पावेंगे।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
उत्तर प्रदेश,
जनवरी १९५८

धीरेन्द्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

प्राक्कथन

इन पृष्ठों में मैंने 'मनस्तत्तव' की अपनी कल्पना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें सभी पहलुओं से 'मनस्तत्त्व' का विश्लेषण हो, ऐसी बात नहीं है, किन्तु मन के अस्तित्व का क्या अर्थ है और हमारी प्रवृत्तियों और प्रक्रियाओं का क्या रूप और आधार है, इस सम्बन्ध में एक रूपरेखा अवश्य बन सकी है। प्रथम पांच निबन्ध मुख्यत: शरीरविज्ञान और जीवविज्ञान से संबन्ध रखते हैं। इन निबंधों में या तो मनस्प्रक्रिया का विश्लेषण है अथवा हेरेडिटी (Heridity) के अर्थ का। शेष निबन्धों में मन की दार्शनिक व्याख्या है।

प्रथम निबन्धों में हमने शरीर वैज्ञानिक और जीववैज्ञानिक आधार पर मनस्प्रक्रिया की यांत्रिकता का प्रतिपादन किया है। हमारे विचार से दो निबंध विशेष महत्व के है। तृतीय निबन्ध में जेनेटिक्स की सहायता से विकासवाद की व्याख्या का प्रयास किया गया है। इस निबंध का महत्व और इस पुस्तक में सगति कुछ अस्पष्ट है, किन्तु मन की मेरी कल्पना में यह अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि मै अमोयबा और मनुष्य को मूलत: भिन्न नहीं समझता, जैसा कि प्रत्येक विकासवादी के लिए ठीक है, किन्तु इस विकास के कारण क्या हैं? दूसरे निबंध में हमने मनस्प्रक्रिया की व्याख्या की सहायता से विकासवाद में से 'मानसिक-प्रयास' की कल्पना को दूर करने का प्रयास किया है और तृतीय निबंध में विकास के कारण स्पष्ट करने का प्रयास है। तृतीय निबंध इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि चतुर्थ निबंध में हेरेडिटी (Heredity) के सम्बन्ध में जो कहा गया है उसके लिये यह निबंध आधार प्रस्तुत करता है। चतुर्थ निबंध हेरेडिटी और परिवेश के सम्बन्ध का विश्लेषण है और व्यक्तित्व-निर्माण मे उनके महत्व की व्याख्या है। यह निबन्ध प्रथम दो निबन्धों में प्रस्तुत तथ्यों का जेनेटिक्स की सहायता से समर्थन भी है। पाँचवें निबन्ध में प्रवृत्ति और विचारणा (Instinct and Intelligence) की व्याख्या है। ये पाँचों निबन्ध केवल मनस्प्रक्रिया की यान्त्रिकता, अथवा जो भी कुछ इसे नाम दिया जाए, को ही प्रमाणित नहीं करते प्रत्युत् मन को एक मेटर आफ डिगरी) भी मानते हैं। इनमें अमोयबा और मनुष्य को एक शृंखला की दो सापेक्ष कड़ियां स्वीकार किया गया है।

पिछले निबंधों में मन की 'अमानसिकता' अथवा भौतिकता के समर्थन में

कुछ और तर्क हैं। प्रथम पाँच निबंध केवल आधार प्रस्तुत करते हैं, उन्हें निर्णयात्मक नहीं कहा जा सकता। स्पष्टतः ही यहाँ बहुत से प्रश्न छोड़ दिए गये हैं या उनको पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया, किन्तु पुस्तक पहले ही काफी भारी हो चुकी थी और मेरे पास इतना समय और धैर्य नहीं था कि और लिख सकता, इसलिए उन प्रश्नों को अन्य पुस्तक के लिए छोड़ देना उययुक्त समझा गया।

यहाँ एक बात की ओर पाठकों का ध्यान मुझे और आकर्षित करना है:—वह है एक महत्वपूर्ण शब्द अथवा सिद्धान्त—'प्रक्रियात्मक-सम्बन्ध' अथवा प्रक्रिया का सिद्धान्त। यह सिद्धान्त मेरी मनस्प्रक्रियाओं की व्याख्या को समझने के लिए अपूर्व महत्व का है क्योंकि इसका स्रोत मेरी ही कल्पना है। इसी से इसके महत्व और अर्थ को समझने में भूल हो सकती है।

यह पुस्तक विश्व विद्यालयों के दर्शन के विद्यार्थियों के लिए भी उपयोग की हो सकती है। यद्यपि इसमें जीववैज्ञानिक अध्ययन कुछ अधिक है और दर्शन के विद्यार्थियों को जीवविज्ञान का ज्ञान इतना नहीं होता, किन्तु उन्हें यह जीवविज्ञान के कोर्स के लिए नहीं पढ़नी है, वे जीववैज्ञानिक तथ्यों की उलझन में पड़े बिना इसके अर्थ को सुविधा से समझ सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि जीवविज्ञान और शरीर विज्ञान मन की प्रकृति को समझने के लिए अवश्यक है तो कोई कारण नहीं कि विद्यार्थी इस सम्बन्ध में इतना भी जानने का प्रयास क्यों नहीं करें।

पुस्तक के चित्र श्री गुरबचन सिंह ने मेरे बनाए हैं, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

अखिल भारतीय दर्शन परिषद्
लाइन बाजार
फरीदकोट (पंजाब)

यशदेव शल्य

विषय-सूची

धन्यवाद-प्रकाश

१ पृ०२-७ ग्राफ मोर्गन टी० की "फिज़ियालोजीकल साइकालोजी" से उद्धृत ।

२ पृ० ४२ तथा ४८ के चित्र मोर्गन टी० की "फ़िजियालोजीकल साइकालोजी" से उद्धृत ।

३ पृ० ११३ तथा १२९ के चित्र "प्रिंसीपल्ज़ ऑफ जेनेटिक्स" ले० सिन्नट और डन से उद्धृत ।

४ पृ० १२८ का चित्र "मीनिंग ऑफ एवोल्यूशन" ले० सिम्पसन, जी० जी०, से उद्धृत ।

प्रथम ३ के लिए —

By permission of McGraw Hill Book Co., New York.

अन्तिम के लिए —By permission of Yale University Press.

प्रवेश

मन अथवा मनस्तत्त्व की प्रकृति का पर्यालोचन दर्शन के लिए आधार भूत है और यदि इसके सम्बन्ध में कुछ निर्णय किया जा सके तो दर्शन की कम से कम तीन चौथाई समस्याएं सुलझ जाती हैं। मनोविज्ञान में हम 'मन क्या है', इस प्रश्न को अनावश्यक समझ कर छोड़ सकते हैं और तब मन पर विचार कर सकते है। वहा यह सुविधा जनक है। वहाँ हम उन अवस्थाओं अथवा घटनाओं के सम्बन्ध मे, उनके किसी पहलू विशेष का अथवा समग्र का, अध्ययन कर सकते है। यह प्रविधि विज्ञानों के लिए सुविधा जनक है। किन्तु दर्शन मे पहले मूल प्रत्यय के ही लक्षणों का विवेचन करना होता है। कुछ मनोवैज्ञानिक केवल शरीर की यान्त्रिक प्रक्रियाओं को ही मानसिक अवस्थाएं मानते है और इच्छा, उद्देश्य, भावना अथवा सुख-दुःख जैसी किसी अवस्था को स्वीकार नही करते। पावलाव को प्रयोगशाला में इन शब्दों के प्रयोग पर जुर्माना किया जाता था।[१] दूसरी ओर फ्रायड है, वह सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष आदि को मौलिक गुण अथवा अवस्थाएं मानता है, जो एक बार अस्तित्व में आकर रहस्यमय ढंग से विद्यमान रहती है। किन्तु फ्रायड या पावलाव के लिए इन अवस्थाओ का प्रकृति तथा इनके स-सम्बन्धक (Correlators) के सम्बन्ध मे किसी विवाद में पड़ना आवश्यक नही है। उनके लिए महत्त्व इन अवस्थाओ के प्रक्रियात्मक सस्थान (Functional pattern) का है।

मनस्तत्त्व के दर्शन के लिए भी यह आवश्यक है कि वह इस प्रक्रियात्मक संस्थान को समझे और इसे दृष्टि मे रखकर आगे अन्वेषण के लिए अग्रसर हो। प्राचीन दार्शनिको के पास मनोवैज्ञानिकों द्वारा अन्वेषित प्रक्रियात्मक सस्थान सम्बन्धी प्रस्तुत सामग्री नही थी, अतः मन के सम्बन्ध में उनकी धारणाए बहुत कुछ उथली थी। आज जब कि मनोविज्ञान के क्षेत्र मे पर्याप्त प्रगति हो चुकी है, अभी तक एक आधारभूत प्रविधि (Method) और सार्वभौम सिद्धान्त की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। सम्भवतः जिस प्रकार दर्शन के लिए यह आवश्यक है कि वह तथ्यों से समर्थित हो, अन्यथा वह प्रकल्पना मात्र रह जाएगा, उसी प्रकार विज्ञान के लिए भी यह आवश्यक है कि वह एक समन्वित सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित हो, जिसमें तथ्यों के संकलन मे अभ्युप-

---

१ Pavlove's selected works, P. 395 (Moscow 1955).

गमों द्वारा एक समन्वित संस्थान का निर्माण हो सके और जो सम्पूर्ण विज्ञान के तथ्यो मे सगत हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक में हम मनोविज्ञान के एक ऐसे ही समन्वित दर्शन की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से प्रवृत्त नहीं हुए है, यह हमारी शक्ति से बहुत अधिक बड़ा कार्य है, किन्तु हमने मनोविज्ञान की एक विशेष प्रणाली द्वारा अपने ढंग से समस्या पर विचार किया है, और दूसरे खंड में मन को सम्पूर्ण विज्ञान को प्रसंग में समझने का प्रयास किया है। इन पृष्ठों में हम प्रथम खंड के तथ्यों का एक सम्पूर्ण दर्शन के साथ सम्बन्ध—सूत्र खोजने का प्रयास करेंगे।

प्रथम खंड में हमने जीव वैज्ञानिक आधारों पर मनोवैज्ञानिक तथ्यो की व्याख्या करने का प्रयास किया है। मन का जीव वैज्ञानिक अध्ययन उसके केवल एक पहलू विशेष से ही सम्बन्ध रखता है, किन्तु हमारा उद्देश्य मनोविज्ञान न होकर दर्शन है, अतः इस अध्ययन को हम एक आधारभूत समस्या के रूप में देखते है। इसके अतिरिक्त, जीव विज्ञान में भी हम किसी स्पैश्यलाइज्ड दृष्टिकोण से नही चिपटे है। जीव विज्ञान मे हमारी रुचि इस आधारभूत समस्या अथवा दर्शन को लेकर है कि क्या जीवन की उत्पत्ति और विकास जड़ पदार्थ की अपनी ही प्रकृति के कारण है अथवा यह किसी अन्य तत्व के पदार्थ के साथ सयोग के कारण है ? क्या मानव मन अन्य प्राणियों के मन के समान ही है अथवा उनसे भिन्न है ? क्या मन केवल मानव मन ही है और अन्य प्राणी केवल यंत्र है अथवा अन्य प्राणी भी मन युक्त है ? या फिरः मनुष्य भी एक यांत्रिक प्राणी है और मन केवल एक कल्पना है ? ये प्रश्न मनोविज्ञान और दर्शन दोनों के लिए महत्त्व पूर्ण है और इनका उत्तर मन के जीव वैज्ञानिक स्तर पर अध्ययन से ही मिल सकता है।

विकासवाद को सर्व प्रथम डारविन ने समीचीन रूप से प्रस्तुत किया था। उसने यद्यपि विकास-प्रक्रिया के आधार में किसी अति पादार्थिक तत्व की कल्पना नही की थी, किन्तु फिर भी वह विकास मे अन्य कारणो के साथ प्राणी के "प्रयास और इच्छा" आदि को भी एक कारण समझता था। जहाँ तक हम जानते है, आजकल डारविन के चुनावों के विचार से कोई सहमत नही है, विशेषत. सेक्सुअल सिलेक्शन तथा अर्जित प्रवृतियों की हेरेडिटी की कल्पना से। किन्तु कुछ जीव वैज्ञानिक और दार्शनिक विकास, (जैवी और सार्वभौम) के मूल मे किसी अति पादार्थिक तत्व, ईश्वर अथवा अन्य शक्ति के अभ्युपगम (Hypothesis) को स्वीकार करते हैं। इनमें भी अनेक संप्रदाय है। बर्गसा जब कि ऐसी किसी शक्ति की कल्पना करता है जिसे वह एलन्वाइटल कहता है, वह सोद्देश्यतावादी नहीं

हैं। दूसरे शब्दों में, एलनवाइटल किसी निहित उद्देश्य की चरितार्थता के लिए विकास शील नहीं है, वह केवल अपनी अदम्य "वासना" के द्वारा ही प्रेरित है, और प्राणियों के विविध रूप उसी सृजनात्मक प्रक्रिया के मार्ग में उत्पन्न होते हैं। एलनवाइटल की सृजनात्मकता किसी पूर्व प्रस्तुत उद्देश्य को स्वीकार कर समाप्त हो जाती है। दूसरी ओर अरविन्द है जो विकास के मूल में ईश्वर या ब्रह्म की आत्म चरितार्थता की सोद्देश्य प्रक्रिया को देखते हैं। उनके अनुसार, यदि निम्न से उच्चतर की उत्पत्ति होती है तो उच्चतर को पहले से ही निम्न में विद्यमान होना चाहिए यद्यपि उच्चतर निम्नतर में स्पष्ट रूप से विद्यमान न होकर केवल बीज रूप में (In Potential form) ही हो सकता है। अर्थात् उद्देश्यानुकर्षक शक्ति (Motive force), जो निम्नतर को ऊपर उठने को प्रेरित करती है, उच्चतर है और निम्नतर में विद्यमान है। उनके अनुसार, विकास त्रिरूप है (१) नवीन उच्चतर की उत्पत्ति (२) उच्चतर का निम्नतर मे अवतरण और उसका उच्चतर में रूपान्तरण तथा (३) निम्नतर का उच्चतर द्वारा अपने उपयोग के लिए संघटन। इस प्रकार वे उच्चतम को भी सदैव विद्यमान मानते है, यद्यपि गुप्त रूप में।

अरविन्द के अनुसार, सच्चिदानन्द अथवा सार्वभौम आत्मा ही पदार्थ का रूप ग्रहण करता है जो कि आत्मा के एकदम विपरीत प्रतीत होता है, और यह धीरे धीरे विभिन्न स्तरों मे से होकर आत्म स्वरूप, पूर्ण चैतन्य और आनन्द की ओर विकास करता है। स्पष्टतः अरविन्द की इस कल्पना के पीछे कोई तर्क नहीं है। सच्चिदानन्द स्वरूप ने, जो कि उच्चतम है, कैसे पदार्थ का, जो कि निम्नतम है, स्वरूप ग्रहण किया ? और इसमें उसका क्या उद्देश्य हो सकता है ? अरविन्द इसका उद्देश्य लीला बताते हैं। तब क्या चैतन्य और आनन्द, जो असीम और पूर्ण है, अपूर्णता के स्तर भी रखता है ? इसी प्रकार, जो चैतन्य है वह अचैतन्य कैसे हो सकता है ? यह सब स्पष्टतः अन्तर्विरोध पूर्ण है।

अरविन्द औपनिषदिक आनन्दवाद और वैष्णव लीलावाद के सौंदर्य से अभिभूत प्रतीत होते हैं। अन्यथा दर्शन में उनकी स्वतंत्र रुचि नहीं है। और इस ब्रह्मवाद को आधुनिक बनाने के उद्देश्यसे अथवा आधुनिक विज्ञानादि से उसकी रक्षा के लिए उन्होंने विकासवाद और साइकोएनेलेसिस इत्यादि का उपयोग किया और उन "निम्नतर" सिद्धान्तों में "उच्चतर" ब्रह्मवाद को मिलाकर उनका उदात्तीकरण कर दिया।

किन्तु कुछ दार्शनिक वास्तव में ही जीवन की विचित्रता से प्रभावित

होकर उसकी संगत व्याख्या खोजने के उद्देश्य से इसमें प्रवृत्त होते हैं और कुछ कल्पनाओं और अभ्युपगमो का सहारा लेते है ।जीवित पदार्थ अजीवित से बहुत अधिक भिन्न है, और जीवन इस पृथ्वी पर एक सर्वथा विलक्षण और भौतिक विज्ञान द्वारा अव्याख्येय गुण है । शायद जीवन पदार्थ मे रासायनिक क्रियाओं द्वारा नव्योत्क्रान्त (Emergent) गुण हो, किन्तु उसका ऊर्ध्वमुखीन विकास और फिर क्रमश: मन की उत्पत्ति आदि की व्याख्या रसायण शास्त्र नहीं कर सकता । एक तरह से जीवन और मन को पदार्थ का नव्योत्क्रान्त गुण कहना अधिक आभ्युपगमिक (Hypothetical) प्रतीत होता है। पदार्थ और जीवन तथा मन के बीच कुछ बडे, कम से कम प्रतीयमान, अन्तर है और उन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता। एलन्वाइटल इत्यादि कल्पनाएं इस विशेष स्थिति का साम्मुख्य करने के लिए ही है ।

बर्गसां का एलनवाइटल एक अन्ध–अविचारपूर्ण प्रक्रिया है, जो पदार्थ में प्रवेश कर उसे एक नवीन संभावनाओं और नवीन अनुभूतियो से युक्त कर देती है, किन्तु व्हाइटहैड का ओर्गेनिज्म का सिद्धान्त जब कि सर्वभौमिक विकास प्रक्रिया (Ultimate Principle) मे किसी निहित उद्देश्य को स्वीकार नही करता, वहाँ प्रत्येक वस्तु सत्त्व (Actuality) अपने व्यक्तिगत उद्देश्य की चरितार्थता चाहता है। व्यक्तिगत वस्तु सत्त्व की सृजन प्रक्रिया (The Process of concrecence) व्यक्तिगत संघटन (Unity) की ओर उद्दिष्ट है। वस्तु सत्त्व की सृजन प्रक्रिया के तीन मुख्य स्तर हैं। क्योंकि सम्पूर्ण प्रक्रिया अनुभूत्यात्मक है, अतः यह अनुभूति की चरितार्थता में पूर्ण होती है । क्योंकि व्यक्ति-प्रक्रिया सोद्देश्य है, यह अंतिम कारण (अथवा-उद्देश्य) की प्राप्ति में, जो कि इसे प्रेरित करता है, चरितार्थ होती हैं। यह अन्तिम कारण व्यक्तिगत उद्देश्य है । व्हाइटहैड की यह प्रक्रिया (Process) अथवा व्यक्तिगत उद्देश्य जीव विज्ञान तक सीमित नहीं है, प्रत्युत् सम्पूर्ण अस्तित्त्व से सम्बन्धित है। किन्तु जीव विज्ञान के सम्बन्ध में व्हाइटहैड ने जो कहा है वह हमारे लिए और भी अधिक महत्वपूर्ण है, वह कहता है–

(इस भौतिकवादी-रासायनिकतावादी) प्रविधि (Method) की शान्दार सफलता हम स्वीकार करते हैं। किन्तु आप किसी समस्या को उसके सुलझाव की प्रविधि से सीमित नहीं कर सकते। समस्या प्राणी के शरीर को समझना है । यह एक दम स्पष्ट है कि कुछ प्राणियों के कुछ व्यापार किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य की पूर्व कल्पना से निर्धारित होते हैं।

समस्या का यह सुलझाव नहीं है कि क्योंकि कुछ व्यवहारों की भौतिक रासायनिक नियमों द्वारा व्याख्या की जा सकती है अतः जो इस नियम के अन्तर्गत नहीं हो सकते, उनकी उपेक्षा की जाए। वास्तव में समस्या की विद्यमानता स्वीकार नहीं की गई, उसका एक दम निषेध किया गया है। अनेक वैज्ञानिकों ने अत्यन्त धैर्य से ऐसे प्रयोगों का आविष्कार किया है जिससे अपना यह विश्वास प्रमाणित किया जा सके कि प्राणी व्यवहार किसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर निर्धारित नहीं होते। उन्होंने अपना शेष समय शायद लेख लिख कर यह प्रमाणित करने में लगाया है कि मनुष्य दूसरे प्राणियों के समान ही है और इसलिए "उद्देश्य" उनके (लेखक के भी) व्यवहार की व्याख्या करने के लिए अप्रासंगिक है। वैज्ञानिक यह प्रमाणित करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर कि उनके व्यवहार निरुद्देश्य हैं, अध्ययन के मनोरंजक-विषय बन जाते हैं।

"अन्तिम कारण के बहिष्कार का दूसरा कारण यह भी है कि यह व्याख्या को हानिकार रूप से सरल कर देता है। यह ठीक है कि पूर्वानुगामी भौतिक घटनाओं में अनुक्रम खोजने में किया गया महान परिश्रम अन्तिम कारण के सरल सिद्धान्त से विनष्ट हो जाएगा। किन्तु केवल यह बात कि अन्तिम कारण की कल्पना घातक है, एक वास्तविक समस्या की उपेक्षा करने के लिए कोई उचित युक्ति नहीं है। यदि हमारे मस्तिष्क निर्बल भी हों तो भी समस्या तो समाप्त नहीं होती।" (Limitations of Science से उद्धृत)

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि अन्तिम कारणता और प्राणी-व्यवहार की सोद्देश्यता को एक ही अर्थ में नहीं समझना चाहिए। यहाँ हम व्हाइट हैड के प्रक्रिया (प्रॉसेस) के सिद्धान्त को प्रसंग में नहीं लाना चाहते, यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि प्राणी व्यवहार की सोद्देश्यता इससे प्रमाणित नहीं होती कि मेरा लिखने का व्यवहार सोद्देश्य है। यह कहा जा सकता है कि बन्दर के अधिकांश व्यवहार भी सोद्देश्य हो सकते हैं और कुत्ते के भी, किन्तु इसीलिए मच्छर का व्यवहार भी सोद्देश्य नहीं हो सकता। यह ठीक है कि हमारा प्रत्येक व्यवहार एक विशेष अभाव की अनुभूति से अनुप्राणित होता है और यह अपनी चरितार्थता एक विशेष स्थिति में पाता है, जिसे हम उस व्यवहार का उद्देश्य कहते हैं, किन्तु यह सोद्देश्य इस अर्थ में नहीं है कि उस व्यवहार में उस उद्देश्य का ज्ञान विद्यमान रहता है। अतः यदि हम उस व्यवहार को, जिसकी चरितार्थता एक विशेष स्थिति अथवा घटना में होती है, एक प्रक्रिया कहें, तब वह प्रक्रिया एक और अद्वितीय है और वह एक निश्चित

स्थिति—अन्तिम कारणता—अथवा उद्देश्यानुकर्षकशक्ति (Motive Force) द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रक्रिया को हमने वासनात्मक व्यवहार और आत्म-व्ययी क्रिया दो पहलुओं में, प्रथम निबन्ध में, विभाजित किया है। जैसा कि हमने वहाँ प्रमाणित किया है, यह आवश्यक नही है कि प्रक्रिया के प्रत्येक क्षण में उद्देश्य का बोध विद्यमान रहे। दूसरे, उस व्याख्या के अनुसार, अन्तिम कारण अथवा उद्देश्य को यहाँ निर्धारक नहीं कहा जा सकता, वह व्यवहार केवल अभावात्मक व्यवहार (Vacume Activity) है। किन्तु यदि उस अर्थ में प्रत्येक प्रक्रिया को सोद्देश्य कहा जाए तो हमें आपत्ति नहीं होगी। किन्तु सोद्देश्यता का यह सामान्य अर्थ नहीं है। मैक्डुगल प्राणियों को सामान्य अर्थ में ही सोद्देश्य बताता है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

पीछे हमने सोद्देश्यता के लिए उद्देश्यानुकर्षक शक्ति शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अभिप्राय है कि विकास अग्रानुसारी न हो कर अग्रानकर्षित है, क्योंकि सार्वभौम-सोद्देश्य प्रक्रिया का उद्देश्य पूर्व विद्यमान सार्वभौम तत्त्व होना चाहिए, जिसकी ओर विकास आकर्षित है। व्यष्टि क्रियाओं की सोद्देश्यता इससे भिन्न है; यहाँ उद्देश्य भविष्य में निहित न होकर केवल उसकी चरितार्थता भविष्य में निहित है। किन्तु सार्वभौम सोद्देश्यता में उद्देश्य अतीत में प्रविष्ट होकर उसे अपनी ओर आकर्षित करता है, जैसे अरविन्द के दर्शन में, क्योंकि सार्वभौम उद्देश्य की पूर्व कल्पना उसकी वास्तविक विद्यमानता के बिना नहीं हो सकती। किन्तु इसके लिए पुनः यह आवश्यक है कि उद्दिष्ट भविष्य और विकास शील अतीत तथा वर्तमान में कोई मौलिक भेद नहीं हो। मान लीजिए, मूल तत्व केवल एक मानसिक तत्व है। तब उसे अवश्य या तो 'इतना कम मानसिक' होना चाहिए कि वह पदार्थ के समान जड हो सके, अथवा उसे इतना अति मानसिक होना चाहिए कि मानसिकता की श्रेणियाँ केवल उसकी विकार मात्र हों। दूसरी कल्पना को हमने अतर्क सम्मत और असम्भव पाया है। जहाँ तक प्रथम कल्पना का सम्बन्ध है, इसकी सोद्देश्यता के साथ कोई संगति प्रतीत नहीं होती। व्हाइट हेड विकास के सार्वभौम नियम (Ultimate Principle) को सोद्देश्य नहीं मानता और व्यष्टि सत्त्वों को जिस प्रकार वह सोद्देश्य मानता है, उस से काल की वास्तविकता का खण्डन नहीं होता।

सोद्देश्यतावाद की एक अन्य प्रकार से भी कल्पना की जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि विकास का कोई अन्तिम उद्देश्य नहीं है, प्रत्युत् प्रतिपद एक नवीन उद्देश्य की उत्पत्ति होती है। सोद्देश्यतावाद का यह रूप हाल्डेन के इमर्जेंट से बहुत भिन्न नहीं है। हाल्डेन इस इमर्जेंट के सम्बन्ध में

कहता है—"मेरा विचार है कि विकास-परम्परा के साथ एक "इमर्जेंट" भी सयुक्त हो सकता है, जैसे मस्तिष्क के साथ मन है। रायेस (१९०१) ने इस प्रकार के "इमर्जेंट" का मन के रूप में एक मासल चित्र देने का प्रयास किया था और कहा था कि प्रजनन के साथ संयुक्त तीव्र वासनाएँ हमारे समान उस मन मे भी विद्यमान है। यदि ऐसी कल्पनाओं मे कुछ सत्यता है तो, मै सोचता हूँ, क्या ऐसा इमर्जेंट सभवत: मन के समान ही नही होना चाहिए ? विकास के साथ सयुक्त ऐसे एक अज्ञात तत्व मे मेरा सन्देह वास्तव में इसके सौन्दर्य के प्रति तथा उस असीम वैचित्र्य के प्रति, जो कि विश्व की अद्वितीय विशेषता है, मेरा अभिनन्दन है। इसने मुझे वैज्ञानिक अनुसन्धान के २५ वर्षो मे अत्यधिक प्रभावित किया है।"

इस उद्धरण मे यह स्पष्ट है कि इस कव्योचित कल्पना का कारण जीवन की अजीवित से विलक्षणता तथा इसके विकास की निरन्तर ऊर्ध्वोन्मुखता है, जैसा कि ज० डब्लू० एन० सुलिवान ने लिखा है—: ये आनयामत विभिन्नताएँ (Random Variations) और जीवन के लिए सघर्ष इस स्पष्ट तथ्य का, कि जीवन का विकास निरतर ऊर्ध्वोन्मुख हो रहा है, बिल्कुल भी समाधान नही करते।" * किन्तु हमारे विचार मे, यदि जीवित पदार्थ का नव्योत्क्रान्तगुण मान लिया जाए, जिसको हम उसके घटक तत्वों मे नही पाते, तो यह अयुक्ति सगत नही होगा। अन्यथा या तो हमे दो या अधिक तत्त्वो का अस्तित्व स्वीकार करना होगा अथवा जड़ पदार्थ का जीवन अथवा मन का निम्नस्तर रूप मानना होगा। हमारे विचार मे, कोइ भी तथ्य हमे ऐसा मानने को बाध्य नही करता। इसके अतिरिक्त, जीवन का अस्तित्व देश और काल की दृष्टि से अत्यल्प है, शेष सब 'अजीवित' पदार्थ है, अतः यह मानना अधिक उचित जान पड़ता है कि जीवन एक नव्योत्क्रान्त गुण है। यदि मूल तत्व, सवेदादि, मानसिक गुण है, जैसा कि इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय मे सकेत है, तो भी वह तत्व अत्यन्त निम्नस्तरीय मानसिक गुण स युक्त ही हो सकता है। उस अवस्था मे जीवन नव्योत्क्रान्त गुण नही कहा जाएगा, जीवित और अजीवित मे भेद केवल सघटनात्मक रह जाएगा। अब यदि जीवित की उत्पत्ति उसी तत्व से मान ली जाए जिससे अजीवित की है और इसमे किसी सहगामी इमर्जेंट, एलनवाइटल अथवा ऊर्ध्व मन की प्रकल्पनाएँ न कीजाएँ तो रासायनिक स्तर पर यह हमे उचित जान पड़ता है कि जीवित पदार्थ की यह प्रकृति है कि वह प्रजनन करता है और इस प्रजनन क्रिया में कुछ रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न होते रहते हैं। ये परिवर्तन आकस्मिक और नियमित दोनो ही

*Limitations of science. 1959, (Mentor Books)

प्रकार के हैं। नियमित परिवर्तन ऊर्ध्वोन्मुख रहा है, ऐसा हम पाते हैं, किन्तु जैसा कि हाल्डेन कहता है, यह अनिवार्य नियम नहीं है। जो असंख्य जातियाँ पृथ्वी से उठ गई है, उनमे विकास न ऊर्ध्वोन्मुख था और न लाभप्रद। संभव है, यह विकास आज विघटन की ओर हो। इस विषय में हमने विस्तार से दूसरे तथा तीसरे निबन्ध मे विचार किया है। हमने वहाँ यह प्रमाणित किया है कि जैवी विकास को इन सब कल्पनाओं के बिना ही ठीक तरह से समझा जा सकता है।

२

हमने पुस्तक के प्रथम खड में अधिकाशतः जीव विज्ञान के आधार पर कुछ समस्याओ पर विचार किया है। इसके दो कारण है, जिनमे एक के सम्बन्ध मे हमने अभी विचार किया है: जीव वैज्ञानिक विकास के सम्बन्ध में विविध कल्पनाओ का परिहार करना, और दूसरा कारण है हमारी यह धारणा कि मानव-मन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसे अन्य प्राणियों की परम्परा म एक कड़ी समझा जाए और इस प्रकार उसके मन को अन्य प्राणियो के मन के समान, यद्यपि अधिक विकसित, समझा जाए। इसे जेनेटिक साइकोलोजी अथवा विकासवादी मनोविज्ञान कहा जा सकता है।

मनुष्य का मन समाज तथा भाषा के कारण एक अत्यन्त उलझन पूर्ण व्यापार हो गया है। अत यदि केवल उसी को सम्मुख रखकर उस पर विचार किया जाए तो बहुत सम्भव है कि हम भूलकर जाए और कल्पनाओ मे उलझ जाएँ। किन्तु अन्य प्राणियो का अध्ययन करने मे, उनके मन की सरलता के कारण, यह बाधा नही है। इस पद्धति मे यद्यपि यह कठिनाई है कि जब कि मानव मन मनोवैज्ञानिक का अपना मन है और अतएव उसके अध्ययन मे मनोवैज्ञानिक अपने अनुभवो को सम्मुख रख सकता है, वहाँ अन्य प्राणियो के अध्ययन मे उसे अधिकाशतः उनके व्यवहार से उनके अनुभवों का अनुमान करना होता है। हम व्यवहार वादियो के साथ इस बात मे बिलकुल भी सहमत नही है कि मनोविज्ञान का विषय केवल प्राणी-व्यवहार है; अनुभव, यदि कोई ऐसी वस्तु होती भी हो तो, नही। हमारे विचार मे, मानसिक अनुभव को शारीरिक व्यापार का पर्याय नही कहा जा सकता। मेरे क्रोध का अनुभव मेरे मुँह के लाल होने और सम्बन्धित अंग संचालन आदि का पर्याय नहीं है, चाहे व्यवहारवादी मेरे इस व्यवहार को देखकर निरपवाद रूप से बता सकता हो कि अब मैं क्रुद्ध हूँ। किन्तु यदि व्यवहारवादी व्यवहार को केवल मानुसिक अनुभ व

का सहगामी मानता है और मेरे अनुभव को वास्तविक और अद्वितीय मानता है, तो मैं उसे अपने मन का अध्ययन करने का अधिकार देने में संकोच नहीं करूँगा, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मैं अपने पाठकों को इस पुस्तक द्वारा अपने विचारो तथा अनुभवो को समझने का अधिकार देता हूँ।

अन्य प्राणियों के व्यवहार द्वारा उनके अनुभवो को समझने मे निश्चय ही बड़ी कठिनाई है, क्योंकि उनके अनुभवों का क्षेत्र और विस्तार हमसे कुछ भिन्न है। किन्तु मनोवैज्ञानिक अध्ययन मे हमे उनके अनुभवो को अनुभव नही करना होता, केवल कुछ सामान्य अनुभवों की समता के आधार पर उनका निश्चय करना होता है। यदि मनोविज्ञान के लिए पूर्ण सहानुभूति आवश्यक होती तो शायद कवि सबसे अच्छे मनोवैज्ञानिक होते। किन्तु शायद कवि इस क्षेत्र मे सबसे अधिक अयोग्य होंगे। मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययन मे अपने अनुभव और व्यवहार दोनो के आधार पर दूसरों का निर्णय करता है। यदि चीटी खांड उठा ले जाती है और नमक नहीं उठाती तो मनोवैज्ञानिक यह जान लेता है कि चीटी खाड को पसन्द करती है और नमक को नही। उसे यहाँ यह जानने की आवश्यकता. नही है कि चीटी को खांड का कैसा स्वाद आता है। किन्तु अधिकाश समस्याएँ अधिक उलझन पूर्ण होती हैं और वहाँ मनोवैज्ञानिक को अपने अनुसार दूसरे प्राणियों का और दूसरे प्राणियो के अनुसार अपना अनुमान करना होता है। उदाहरणत:—चीटी अपने बिल को कैसे लौटती है, इस व्यवहार को लें। क्या वह जानती है कि उसका घर है और कि उसकी तत्कालीन दैशिक स्थिति से घर की दैशिक स्थिति का क्या सम्बन्ध है, जैसे हम जानते हैं? यदि वह कभी यह सापेक्ष सम्बन्ध भूल जाए तो क्या वह घर को खोजती है जैसे हम खोजते है और उसे उस समय यह ध्यान रहता है कि उसका घर कहीं है और कि उसे वहाँ पहुँचना चाहिए इत्यादि? अनेक प्राणी–मनोवैज्ञानिकों ने इन समस्याओं का अध्ययन करने का अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयत्न किया है, किन्तु इस सम्बन्ध में उनमें तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों मे भी, भयानक मतभेद है। जैसे मैक्डुगल सभी प्राणियों के प्राय: सभी व्यवहारों को सोद्देश्य, अर्थात सज्ञान मानता है, जब कि इसके एकदम विपरीत वाट्सन और पावलाव हैं, जो मनुष्य के प्रसग मे भी सोद्देश्यता आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहते। ये विभिन्नवाद अत्यन्त विकसित प्रणालियाँ हैं, जिनके बीच हमें यहाँ निर्णय करना है।

किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों को तो मानव-मनोविज्ञान को जैवी मनोविज्ञान के अनुसार समझने के विचार पर ही आपत्ति है। जैसे सी० डी० ब्राड अपने

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ "माइंड एंड इट्स प्लेस इन नेचर" में लिखते हैं--
"यदि हम विश्व के किसी महत्वपूर्ण पहलू के स्वभाव और ढाँचे (स्ट्रक्चर) का अध्ययन करना चाहते हैं तो यह अधिक उचित है कि हम उसे उसके सर्वाधिक विकसित तथा विशिष्ट रूप में ही देखें, बजाय इसके कि हम उसे उसके अविकसित आरंभिक स्तर पर देखें, जहाँ वह विश्व के अन्य पहलुओं से कठिनाई से पृथक् किया जा सकता है। यदि किसी की रुचि उसके विकास के अध्ययन में भी हो तो उसके विकसित रूप को जानना भी कम से कम उतना ही महत्वपूर्ण है जितना यह जानना कि वह किससे विकसित हुआ है। और फिर, यदि हम दूसरी ओर से आरंभ करते हैं, तो हमार दो भ्रन्तियो मे भटक जाने का भय है। (१) यह बहुत संभव है कि हम अन्तिम अवस्था की उलझनो और विशेषताओं की उपेक्षा कर दें, क्योंकि हम यह नही देख सकते कि ये पहली सरल अवस्थाओं से कैसे उत्पन्न हो सकती है। (२) दूसरा भय यह है कि हम यह देखते हुए कि इ का विकास 'अ' से हुआ है और 'उ' का 'इ' से, हम यह समझ सकते है कि उ अ का ही व्याज रूप है।"

यह आपत्ति वास्तव मे एक सीमा तक उचित है जब कि हम वाट्सन इत्यादि की व्याख्याओं को ध्यान में रखते है, किन्तु यह नही भूल जाया जाए कि हम वास्तव मे विकास परम्परा को देख रहे है, यह देख रहे है कि मनुष्य के मन का इतिहास क्या है, तब यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह इतिहास की कोई एक घटना नही है प्रत्युत् उन घटनाओं के आधार पर विकसित एक घटना है। किन्तु यदि हम किसी घटना का इतिहास नही जानते तो हम उसके सम्बन्ध में अच्छी तरह से नही समझ सकते, और मानव-मन के सम्बन्ध मे तो भयानक भूलें कर सकते है। चींटी और मनुष्य का मन एक ही नही है, किन्तु चींटी के मन से मनुष्य के मन का यदि हम सम्बन्ध नही जानते तो आत्मा-परमात्मा और अह, आत्म, अन्तर्मन और ऊर्ध्व मन आदि की कल्पनाओं मे भटक जाने की बहुत अधिक संभावनाएँ रहती है। उदाहरणतः ज्ञान को ही ले, प्राचीन दार्शनिको ने इसे प्रकाश, आत्मा का गुण आदि अनेक प्रकार से अभिहित किया था। किन्तु चींटी आदि की सहायता से हम इस सम्बन्ध मे अधिक ठीक जान सकते है। और इसी प्रकार, अपने अनुभव के विश्लेषण के आधार पर चींटी आदि को समझ सकते है। चींटी के अपने घर के ज्ञान की समस्या को ही ले। इसके लिए आवश्यक है कि हम पहले यह देखें कि हमें घर का ज्ञान कैसे होता है, जब हम घर लौटना चाहते हैं। सामान्यतः हमारा अपने घर का ज्ञान घर के रूप, आकार तथा दैशिक स्थिति आदि का ज्ञान है। किन्तु यदि हम गाड़ी में चढ़ कर दूसरे नगर में जाते है तो हमारा घर का ज्ञान उस

सम्पूर्ण प्रक्रिया का ज्ञान है जिसमें गाड़ी की यात्रा तथा उसके पश्चात् अपने नगर मे घर की दैशिक स्थिति इत्यादि सम्मिलित है। यदि हम बाहर हैं और घर की दैशिक स्थिति इत्यादि भूल जाते हैं; दूसरे शब्दों में, यदि चाक्षुष संवेदों का परस्पर तथा उनका काइनेस्थटिक सवेदो के साथ स-सम्बन्ध शिथिल हो जाता है, तो कहा जायगा कि हम घर का ज्ञान नही रखते। किन्तु एक अन्धा अपने घर को जानता है तो उसका घर का ज्ञान हमारे से बहुत भिन्न होता है। वह घर को पेशीय अभ्यास तथा स्पर्श संवेदों की स्मृति के आधार पर जानता है। हमारे घर के ज्ञान मे घर की सुख-दुःखादि की स्मृतियाँ भी विद्यमान रहती है। हम चींटी के मस्तिष्क के निर्माण को देखकर तथा उसके व्यवहारादि को देख कर यह अनुमान करते है कि संवेदों का उतना उलझनपूर्ण सम्मिश्र (कॉम्प्लेक्स) चीटी के मस्तिष्क मे सम्भव नहीं है, व्यवहार इसका समर्थन करता है। अतः चीटी यदि घर को ठीक लौट सकती है तो या तो पेशीय अभ्यास के द्वारा, अथवा जैसा कि हमने प्रवृत्ति निबन्ध में देखा है, घ्राण के द्वारा। यदि हमें कोई रास्ता प्रथम बार तय करना पड़ा है और उसके पश्चात् उस रास्ते के घरों आदि के रंग बदल दिये जाते है तो हम रास्ता भूल जाएँगे। बड़े नगरों मे हम सामान्यतः ही रास्ता भूल जाते है, दूसरे शब्दों में, हम रास्ता नही जान पाते, क्योकि हम रास्ता जानने के लिए अधिकांशतः चाक्षुष संवेदों पर निर्भर करते हैं और उनका न तो हम सम्बन्ध अच्छी तरह से स्थापित कर पाए होते है और न उनकी स्मृति* ही जम पाई होती है। चींटी के लिए घर का ज्ञान विशेष गन्धयुक्त रास्ते का ज्ञान है, दूसरे शब्दों में, चींटी के लिए घर का ज्ञान घ्राण-संवेदो का स-सम्बन्ध है। तो क्या वह उस रास्ते की दैशिक सापेक्ष स्थिति का ज्ञान भी रखती है? दैशिक स्थिति का ज्ञान चाक्षुष और काइनेस्थेटिक संवेदो अथवा केवल चाक्षुष सवेदों अथवा केवल काइनेस्थेटिक सवेदों अथवा काइनेस्थेटिक और स्पर्श संवेदों का स-सम्बन्ध है। अतः चीटी शायद घर की दैशिक स्थिति का ज्ञान घ्राण और काइनेस्थेटिक सवेदों के स-सम्बन्ध के रूप में रखती है। किन्तु यह ज्ञान शायद केवल पूर्व संवेदों के वास्तविक सवेदों के साथ सम्पर्क होने पर उत्पन्न परिचितता की अनुभूति के रूप में ही होता है, केवल पूर्व संवेदों के स-सम्बन्ध के प्रजागरण के रूप में नहीं। इस प्रकरण में कबूतर पर किये एक प्रयोग को बताना शायद मनोरंजक और उपयोगी होगा।

---

*जैसा कि हमने शरीर और मन निबन्ध में प्रतिपादित किया है, स्मृति भी उसी प्रकार सावेदनिक अभ्यास मात्र है जैसे पेशीय अभ्यास।

हमारे घर की ड्योढ़ी के एक आले में एक कबूतर दम्पति ने बच्चे देने के लिए घोंसला बनाना आरभ किया। घोंसले के लिए तिनके वे हमारे घर के सामने की एक छत से लाते थे, किन्तु वे बाहर जाने के लिए पहले पिछले दरवाज़े से हमारे आँगन मे आते और फिर ड्योढ़ी की छत के ऊपर बने चौबारे के ऊपर से होकर उस सामने की छत पर पहुँचते। इसी प्रकार वे लौटते भी थे। अब मैंने आँगन की ओर द्वार बन्द करके उन्हें बाहर के द्वार से जाने को बाध्य किया, जो कि सीधा रास्ता था। उधर का द्वार खुला होने पर भी वे इधर उधर उड़ते रहते थे। जब बाध्य होकर उस द्वार से बाहर जाते भी थे तो लौटते पुनः पिछले द्वार की ओर से ही थे। मैं वह द्वार बन्द रखता, किन्तु तब तक कबूतर बैठा प्रतीक्षा ही करता रहता। इस प्रकार अनेक बार किया गया किन्तु कबूतरों ने अपना रास्ता नही बदला, यद्यपि वह रास्ता लम्बा और उलटा था।

इसी युगल पर फिर एक और प्रयोग किया गया—जब इन्होंने अडे दिये तब मैंने उन अडो को उठाकर उनके स्थान पर कुक्कुट के अडे रख दिये। अडे पर्याप्त बड़े होने पर भी कबूतरों ने उन्हें नही पहिचाना। उसके पश्चात् मैंने उनका घोसला उठाकर उनके स्थान पर लम्बा सूखा घास गोल लपेट कर रख दिया, घोंसला जब कि मोटे तिनको द्वारा सुन्दर ढंग से बनाया गया था, मेरा रखा घास का घोंसला केवल गोल कर दिया गया था। इस घोंसले में भी कुक्कुट के अंडे ही रखे गये। किन्तु कबूतरों ने कुछ भी सन्देह प्रकट नही किया। फिर मैंने उनका अपना घोंसला उस घोंसले से एक फुट के अन्तर पर सामने के कोने में उनके अपने अंडो के साथ रख दिया। कबूतरों ने इसकी भी कोई परवाह नही की। तब मैंने दो दिन के लिए उनके घोंसले के पास (जो मेरा बनाया था)नीले रंग का एक बड़ा कागज रखा और फिर उसे दूसरे(उनके अपने बनाये हुए)घोसले के पास वहाँ से हटा कर रखा। किन्तु कबूतरो ने इस सबकी कोई परवाह नहीं की। इस सब के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि कबूतर की चाक्षुष स्मृति अच्छी नही है और कि ये अधिकतर काइनेस्थेटिक संवेदों पर अधिक निर्भर करते है। इसका अर्थ यह हुआ कि कबूतर का घर का ज्ञान हमारी अपेक्षा बहुत भिन्न और बहुत अल्प है।

पशुओं की यह स्थिति हम प्रायः अपने साथ तुलना करके और अपनी यह स्थिति पशुओं पर प्रयोग करके जानते है। किन्तु अपने आदर्शों, रुचियो, दृष्टि-कोण, संक्षेप में सम्पूर्ण उलझन-पूर्ण व्यक्तित्व को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम अन्य प्राणियों के सरल मानसिक

व्यापारों की प्रकृति को समझें। पुस्तक के चतुर्थ तथा पंचम निबन्ध में हमने इस ओर कुछ प्रयास किया है।

यह ठीक है कि मनुष्य मे मन ने कुछ आगे विकास किया है, उसके हाथों की अँगुलियों की उलझन पूर्ण व्यापार-सामर्थ्य के पीछे एक अत्यन्त उलझन पूर्ण भेजे का होना अनिवार्य है। और इस सबसे ऊपर है उसकी भाषा सम्बन्धी योग्यता। यद्यपि भाषा-ज्ञान के लिए हमारे भेजे का अधिक विकसित होना आवश्यक है, किन्तु समाज के कारण जिस प्रकार भाषा का और इस प्रकार अपार मानसिकता का विकास हुआ है, वह आश्चर्य-जनक है।

मनोविज्ञान (प्राणी मनोविज्ञान और मानव मनोविज्ञान दोनों) में एक संगत अभ्युपगम विकसित करने के लिए अनेक प्रविधियाँ प्रस्तुत की गई है और इनमें कोई भी अभी तक एक सार्वभौम सिद्धान्त होने की प्रतिष्ठा नही पा सकी। मनोवैज्ञानिको ने मानव तथा प्राणी-व्यवहार को एक सरल, प्रयोगात्मक तथा अस्खलनीय आधार पर रखने के लिए उकसाहट-प्रतिक्रिया (Stimulus-Responce) तथा निर्धारित प्रतिक्रिया(Conditioned Responce) इत्यादि सिद्धान्त प्रस्तुत किये है। व्यवहारवाद ने भी, जो कि इन दोनों विचारों को पूर्व पक्ष के रूप मे स्वीकार करता है, मनोविज्ञान के क्षेत्र पर शासन किया है।

जैसा कि हमने अगले पृष्ठों में देखा है. केवल उकसाहट-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त अत्यन्त सरल व्यापारों की व्याख्या भी नहीं कर सकता। कबूतरों के घोंसला बनाने के व्यापार को ही लें। यहाँ शायद विशेष तापमान तथा प्रकाशादि के विशेष शेड को उकसाहट कहा जा सकता है, किन्तु अनेक बार देखा गया है कि व्यक्ति विशेष घोसला समाप्त कर लेने पर भी घोसला बनाता रहता है। यहाँ स्पष्टतः आन्तरिक परिस्थिति उकसाहट से कहीं अधिक घोसला बनाने के व्यवहार की उत्तरदायी कही जा सकती है। इस आन्तरिक परिस्थिति को वाइटल फेक्टर कहा जाता है और इसका महत्व पावलाव ने भी स्वीकार किया है। हमने प्रथम निबन्ध में वासनात्मक व्यवहार तथा वासना-व्ययी प्रक्रिया को अनेक प्रकार के व्यवहारों की व्याख्या के लिए प्रस्तुत किया हैं। उसमे उकसाहट को दूसरे किनारे पर रखा गया है, जहाँ कि प्रतिक्रिया को होना चाहिए। उकसाहट यहाँ केवल अवरुद्ध वासना के, जो कि आत्मचरितार्थता के लिए विकल है, निकास का साधन बनती है। किन्तु प्रतिक्रियावाद म प्रतिक्रिया एकदम यांत्रिक और जड़ है, महत्व केवल उकसाहट का है, जो कि प्रतिक्रिया का निर्धारण करती है। इस प्रकरण में वाट्सन से एक उद्धरण देना उपयोगी हो सकता है। वह कहता है—"एक व्यवहारवादी का विश्वास है कि

यदि उत्पत्ति से पूर्व शिशु की प्रतिक्रियाओं की, जो कि शिशुओं में पर्याप्त समान होती हैं, एक सूची बनाई जा सके, और यदि परिवेश का निर्धारण किया जा सके, तो वह किसी भी शिशु का व्यक्तित्व किसी भी विशेष प्रकार से निर्धारित कर सकता है—एक चोर के रूप मे, एक निर्धन के रूप मे, धनी के रूप मे अथवा भिखारी के रूप मे। "एक सीमा तक यह दावा ठीक है, किन्तु केवल एक सीमा तक। किन्तु यह दावा किया जा सकता है कि रवीन्द्र या आईस्टीन का निर्माण केवल उकसाहट-प्रतिक्रिया के निर्धारणों द्वारा नही किया जा सकता है।

निर्धारित प्रतिक्रियावाद (Conditioned Reflex)ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्राविधिक सिद्धान्त (Methodological Principle) के रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन दी है। यह प्रविधि पावलाव ने आविष्कृत की थी, और इसे उसने प्राणी-व्यवहार में अत्यन्त गहराई से मूलित प्रमाणित किया था। सामान्य-रीफ्लेक्स एक उकसाहट तथा तज्जन्य प्रतिक्रिया मे सरल सम्बन्ध है। जब कुत्ते के मुँह में रोटी डाली जाती है तब उसके मुँह की ग्रंथियाँ स्लाइवा उत्पन्न करती है। दूसरी बार, रोटी देखने पर ही उसके मुँह में स्लाइवा आ जाता है।अब यदि उसे रोटी देते हुए कुछ दिन घंटी भी बजाई जाए, तब कुत्ते के लिए घंटी-ध्वनि तथा सरल रीफ्लेक्स मे स-सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा और भविष्य मे केवल घंटी-ध्वनि से ही कुत्ता उतनी ही मात्रा मे स्लाइवा उत्पन्न करेगा जितनी मात्रा में उसने रोटी देने पर किया होता। और अब यदि अनेक बार घंटी रोटी दिये बिना ही बजाई जाए तो धीरे-धीरे कुत्ता उस घटी के प्रति उदासीन हो जाएगा और सालिवा नही बनाएगा। प्रथम प्रतिक्रिया को पाँवलॉव सकारात्मक प्रतिक्रिया अथवा प्रोकसाहन (Exitation) कहता है और दूसरी को निरोध (Inhibition) अथवा नकारात्मक प्रतिक्रिया कहता है। निर्धारण अथवा कंडीशनिंग मे इनका बड़ा महत्त्व है। परिवेश के प्रति हमारी प्रतिक्रियाएँ इन दो प्रकारों की ही होती है और पाँवलाँव ने इनके शारीरिक कारणों की खोज की है। पावलाव के बाद इस क्षेत्र मे और भी पर्याप्त अनुसन्धान हुए है। पाँवलाँव ने किसी भी सन्देह से परे यह स्थापित कर दिया है कि ये (प्रोकसाहन और निरोध) शारीरिक प्रतिक्रियाएँ है, इन्हे ठीक मापा तोला जा सकता है और इनके सम्बन्ध में विपर्यय किया जा सकता है। प्रसिद्ध फ्रेंच मनोवैज्ञानिक पीअर जेनेट को एक पत्र में, जो कि उसकी 'पत्रिका' 'जर्नल डे साइकोलोजी' में प्रकाशनार्थ लिखा गया था, पॉवलाँव हमारे प्रत्यक्ष रूप से एक मानसिक व्यवहार की अपने प्रोकसाहन–निरोध (Exitation–Inhibition) सिद्धान्त के अन्तर्गत व्याख्या करता है, जिसे यहाँ उद्धृत करना

१. देखें हमारा निबन्ध-आत्म चरितार्थता और संस्कृति (कल्पनाअक्टूबर १६५६)

रोचक तथा उपयोगी होगा। वह लिखता है—"आपने अपने लेख (Emotions of the Persecution Delusion) के तीसरे भाग मे अधिकार (Possession) की अनुभूति की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इसका आधार भूत स्वरूप यह है कि रोगी अपनी कमियो को ऑब्जेक्टेवाईज़ (विषयगुणान्वित) करते है और उन्हें दूसरो पर आरोपित करते है। वे स्वतंत्र रहना चाहते है, किन्तु वे अनुभव करते है कि लोग उन्हें ऐसे दास समझते है, जिनका कार्य केवल दूसरो की आज्ञा पालन करना है। × × × स्वयं बताना और दूसरो द्वारा बताया जाना, यह एक युगल का निर्माण करते है और इन्हे आसानी से एक दूसरे से पृथक नही किया जा सकता। इसी प्रकार, अपमान करने तथा अपमानित होने की क्रियाएँ अपमान की सामान्य धारणा से बँधी हुई है। किन्तु इनकी अव्यवस्था से यह स्पष्ट है कि इन्हें घपलाया जा सकता है। इसकी शरीर वैज्ञानिक व्याख्या निम्न होगी। मान लीजिए, मीट्रोनोम का एक विशेष स्वरानुक्रम (Frequency) भोजन-सम्बन्धी (Alimentry) एक निर्धारित सकारात्मक उकसाहट का कार्य करता है, क्योकि इसके साथ भोजन प्रस्तुत किया जाता है। अतः यह स्वरानुक्रम भोजन के बिना भी भोजन-सम्बन्धी सकारात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। मीट्रोनोम का एक अन्य स्वरानुक्रम नकारात्मक उकसाहट का कार्य करता है, क्योकि यह भोजन द्वारा प्रति पुष्टीकृत नही किया गया होता, और इसलिए नकारात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है—जब इस स्वरानुक्रम का प्रयोग किया जाता है तब परीक्ष्य पशु इससे दूर हटता है। मीट्रोनोम का यह स्वरानुक्रम एक शरीर वैज्ञानिक युगल बनाता है, जिसके घटक विरोधी होने पर भी परस्पर सम्बन्धित है और इसीलिए परस्परानुपोषक है, अर्थात एक स्वरानुक्रम दूसरे के व्यापार को उकसाता और प्रतिपुष्ट करता है। यह एक बिल्कुल ठीक शरीर-वैज्ञानिक तथ्य है। यदि एक सकारात्मक स्वरानुक्रम ऐसे कोष पर व्यापारित होता है जो किसी कारण से निर्बल है (अथवा हिप्नोटिक अवस्था मे है) तब यह स्वरानुक्रम, अधिकतम के सिद्धान्त (Law of Maximum) के अनुसार, जो कि पुनः शरीर-वैज्ञानिक स्तर पर प्रतिष्ठित है, कोष को निरुद्ध कर देता है। यह निरोध रेसीप्रोकल इडक्शन (परस्पर कोष क्रिया प्रसार) के सिद्धान्तानुसार, युगल के दूसरे सम्बद्ध कोष मे निरोध के बजाय सकारात्मक उकसाहट उत्पन्न करता है। इसीलिए दूसरे से सम्बद्ध उकसाहट निरोध के बजाय प्रोकसाहन उत्पन्न करती है[1]।

इस प्रकार पावलाव ने प्रमाणित किया है कि किस प्रकार ऐसे मानसिक रोगों में पूर्णतः शरीर वैज्ञानिक कारण ही होते है। उसने प्रोकसाहन-निरोध

1. Pavlov-Selected works (Mocow).

विपर्यय के सम्बन्ध में कुत्तों पर असंख्य प्रयोग किए है, जो उसे इस सम्बन्ध मे कुछ निश्चयात्मक रूप से कुछ कहने के योग्य बनाते है ।

यहां पावलाव से एक अन्य उद्धरण देने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते, जिसके अनुसार वह सकारात्मक या नकारात्मक प्रक्रिया को शरीर मे मापनीय रूप से संचरण करते प्रदर्शित करता है । "यह स्पष्ट है कि त्वचा के प्रत्येक बिन्दु के लिए भेजे में जो प्रतिनिधित्व है । जब हम कन्धे पर त्वचा के एक बिन्दु को उकसा कर भेजे के सम्बद्ध बिन्दु पर एक स्नायविक प्रक्रिया प्रजागरित करते है, तो यह प्रक्रिया उसी स्थान पर केंद्रित नहीं रहती, प्रत्युत् यह गति करती है । पहले यह भेजे मे ही गति करती है, और तब यह उकसाये गये स्थान की ओर प्रसरण करती है और वहा केंद्रित हो जाती है । स्वभावतः प्रत्येक गति अपने प्रसार मे कुछ समय लेती है । जब मैंने मस्तिष्क मे कन्धे के सम्बद्ध त्वचा बिन्दु पर एक निरोध प्रक्रिया को मूलित कर जघा पर एक दूसरे बिन्दु को तुरन्त उकसाने का प्रयास किया तब तक निरोध प्रक्रिया का वहाँ तक प्रसार नही हुआ था । प्रक्रिया के वहा पहुचने मे २० मिनट लगते है, इसीलिए जंघा बीस मिनट में, उससे पूर्व नही, पूर्णतः निरोधाभिभूत हो जाती है । केन्द्रीकरण में ४० मिनट लगते है । इसलिए कन्धे पर शून्य उकसाहट के समाप्त होने के एक मिनट पश्चात् हम दूसरे बिन्दु (जघा) पर रीफ्लेक्स को पूर्ण पाते है, किन्तु मूल स्थान (कन्धे पर) रीफ्लेक्स पाच, दस या पन्द्रह मिनट पश्चात् भी विद्यमान नही होता ।"*

पावलाव के इन दो उद्धरणो से यह एक दम स्पष्ट है कि कंडीशंड रीफ्लेक्स) निर्धारित प्रतिक्रिया) को उसने सपूर्ण मानसिक क्षेत्र पर लागू करने का प्रयास किया है और तथा कथित मानसिकता के शारीरिकता मात्र से अधिक न होने मे उसे पूर्ण विश्वास है । पावलाव ने अन्तर्दृष्टि (Insight), चिन्तन तथा भावना और कल्पना जैसी धारणाओं का अत्यन्त जोरदार भाषा में खंडन किया है । यदि यह स्वीकार किया जाय कि प्रत्येक मानसिक घटना के लिए किसी उकसाहट की अनिवार्य आवश्यकता है, तब निर्धारितता एक अपरिहार्य तथ्य है क्योंकि प्रत्येक उकसाहट, यदि वह सरल रीफ्लेक्स नही है तो, वह केवल निर्धारिता द्वारा ही उस घटना को प्रेरित कर सकती है । किन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि निर्धारिता एक सीमित क्षेत्र में ही सफल व्याख्या है, अन्य उलझन पूर्ण तथा संश्लिष्ट मानसिक व्यापारों में इसे घटित नहीं किया

1Pavlove's Selected works, p. 408

जा सकता। जैसे सुलिवान के अनुसार, भाषा के क्षेत्र में निर्धारितता बच्चे के शब्द सीखने की प्रक्रिया पर पूर्णत लागू होती है, किन्तु वाक्यों के निर्माण में मानसिक व्यापार की व्याख्या केवल निर्धारिता द्वारा नही की जा सकती। किन्तु वास्तव में हम कभी भी एक-एक शब्द नही सीखते, हम सदैव वाक्यों द्वारा भाषा सीखते है। उदाहरणत. पानी शब्द हम सदैव, यह पानी है, पानी ठंडा है, मुझे पानी दो, इस प्रकार सीखते हैं और निर्धारितता इसी प्रकार घटित होती है। इसके अतिरिक्त शब्दों का स-सम्बन्ध भी बहुत महत्वपूर्ण है।

सम्भवतः निर्धारितता को घटित करने में सब से अधिक कठिनाई नवीन परिस्थितियों में प्रक्रिया के विश्लेषण में तथा नवीन कल्पना अथवा नवीन विचार के विश्लेषण में है। नवीन परिस्थिति का अभिप्राय है, जिसमें वस्तुओ के अथवा संवेदों के सम्बन्ध उन सब सम्बन्धों से भिन्न हों जो व्यक्ति के जीवन में पहले घटित हुए हों। किन्तु ये नवीन सम्बन्ध पूर्णतः नवीन नहीं होते, पहले विद्यमान सम्बन्धों के असख्य संस्थानों की कुछेक कड़ियाँ अनुपस्थित होती हैं और उनके स्थान पर नवीन कड़ियाँ होती हैं, जिनका शेष कड़ियों से सम्बन्ध नहीं बैठता। तब प्राणी एक अनवस्था अथवा शून्यता का अनुभव करता है और सम्बन्ध 'बैठाने का प्रयास' करता है। यहाँ 'बैठाने का प्रयास' का प्रयोग भ्रान्तिजनक हो सकता है, यदि इसमें निहित एक चैतन्य नियन्ता-मन की गन्ध का परिहार नहीं किया जाता। यहाँ कोट्लर के प्रसिद्ध बन्दर का उदाहरण देखना उपयोगी हो सकता है जो, उसके अनुसार, फलो के उसकी पहुँच से अधिक ऊँचा टँगे होने पर, पास पड़े हुए बक्सो का तथा दो छड़ियों का, जो एक दूसरी में फँसाई जा सकती है, फल उतारने में उपयोग करता है। अब बन्दर के लिए यह एक नवीन परिस्थिति है। वह पहले उछल-कूद करता है, फिर पास पड़े हुए बक्सों को एक दूसरे के ऊपर रखता है, उसके पश्चात् वह उन पर चढ़ कर एक छड़ी का उपयोग करता है। किन्तु तब भी फल तक वह नही पहुँच पाता और थक कर बैठ जाता है। इसके पश्चात् वह उठता है और एकदम एक छड़ी में दूसरी छड़ी लगाकर फल उतार लेता है।

यहाँ बन्दर का सम्पूर्ण व्यवहार एक अत्यन्त उलझन पूर्ण विकसित मस्तिष्क का परिचय देता है। किन्तु इस व्यवहार को हम निर्धारण से स्वतन्त्र नही कह सकते, और अन्तर्दृष्टि जैसे रहस्यमय शब्दों के प्रयोग से इस व्यवहार की व्याख्या में हमें कोई सहायता नही मिलती। स्वयं पावलाव ने भी कोट्लर के

इस प्रयोग की व्याख्या की है और साथ स्वय भी एक बन्दर पर प्रयोग करके उसकी तुलना की है। उसके अनुसार, बन्दर का यह व्यवहार सर्वथा नवीन नहीं है, उसे जंगल मे भी ऐसी परिस्थितियो का साम्मुख्य करना पड़ता है और वहाँ वह पत्थरादि रखकर ऊँचे स्थान से फलादि उतारता है। उसके अनुसार, कोट्टलर का बन्दर इन बक्सों को आकार के क्रम से नही रखता, प्रत्युत् जो भी बक्स हाथ मे आजाए उसे ही रख देता है। इस प्रकार, यदि ये एक दूसरे पर ठीक नही टिके और गिर पड़े तो वह दोबारा भी उन्हें ठीक क्रम से नहीं रखेगा, केवल उन्हे किसी प्रकार दूसरे पर ठहराने का प्रयास करेगा। इस प्रकार, बन्दर के लिए यह स्थिति सर्वथा नवीन नही है। जहाँ तक दो छड़ियाँ एक दूसरे मे मिलाने का सम्बन्ध है, वह भी नवीन स्थिति नही है। सम्भवतः बन्दर एक छड़ी से फल न उतार सकने पर दो छड़ियों से काम लेना चाहेगा; पहले वह दोनों छड़ियों को दोनों हाथों में पकड़ कर भी प्रयास कर सकता है, और फिर वह दोनो को एक दूसरे के ऊपर रखने का प्रयास भी कर सकता है। उस अवस्था मे अकस्मात भी एक छडी मे दूसरी छड़ी डाली जा सकती है। थक-कर बैठ जाने और तब उठकर दो छड़ियाँ मिलाने मे किसी प्रकार की अन्तर्दृष्टि की संभावना व्यर्थ है। बन्दर सोचने के लिए बैठा हो, यह ग़लत है। वास्तव मे थक कर सब स-सम्बन्ध अव्यवस्थित हो जाते है और प्राणी अव्यवस्थित व्यवहार करने लगता है। बन्दर के लिए भी यही सत्य है, और बैठने के पश्चात् उसके स-सम्बन्ध व्यवस्थित हो जाते है।

यहाँ नवीन परिस्थिति में पुराने स-सम्बन्धो के प्रयोग को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना उपयोगी होगा। एक बन्दर को इसी प्रकार की सहायता से फल उतारने दिया गया और वहाँ एक दूसरा बन्दर भी रखा गया, जो यह सब देखता रहा। उसके पश्चात् उसे एक कमरे मे बन्द कर दिया गया और बाहर से कुडी लगा दी गई। इसमें कुछ ऐसा प्रबन्ध भी किया गया कि बन्दर हाथ डालकर बाहर से कुंडी खोलने का प्रयास करे। बन्दर ने दरवाजा खोलने का बहुत प्रयास किया किन्तु असफल रहा। तब उसने वहाँ पड़े बक्स को भी नीचे रखा यद्यपि यहाँ उसकी आवश्यक्ता नही थी। यह उसने केवल पहले बन्दर को इस प्रकार सफलता लाभ करते देखने के कारण किया था। उसके लिए बक्स नीचे रखने और सफलता प्राप्त करने में एक स-सम्बन्ध स्थापित हो गया था। (पाँवलाँव) इससे यह प्रमाणित होता है कि किस प्रकार हमारे मस्तिष्कि में स-सम्बन्ध स्थापित होते है। हम भी अनेक बार इसी प्रकार व्यवहार करते हैं। किन्तु यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। फल उतारने मे एक व्यवहार की सफलता एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है, अर्थात् फल उतारना रूप सफलता

जिस प्रक्रिया से मिली है वह इस सफलता के साथ एक सम्पूर्ण संस्थान बनाती है। इस संस्थान (Pattern) के स-सम्बन्धों का लगभग इसी प्रकार किसी परिस्थिति में उपयोग होना स्वाभाविक है, जैसे यदि फल के बजाय रोटी ऊँची पडी हो और बक्सों के बजाय पीपे हों। यद्यपि यहां भी कुछ साधारणी-करण होता है, किन्तु फल उतारने रूप सफलता का सफलता मात्र की संभावना का पर्याय हो जाना साधारणी-करण की सीमा है। साधारणी-करण और विश्लेषण दोनों के लिए पर्याप्त विकसित मस्तिष्क की आवश्यकता है। भाषा साधारणी-करण और विश्लेषण को बहुत सम्मुन्नत कर देती है, किन्तु यह उसका आधार नहीं है, क्योंकि स्वयं भाषा का आधार हमारा साधारणी-करण का स्वभाव है। स्पष्टत: इसकी व्याख्या के लिए अन्तर्दृष्टि की कल्पना आवश्यक नही है, जिसके लिए और भी भयानक कल्पनाओं में उलझना पड़े।

प्रत्येक स-संबन्ध के लिए हमारे मस्तिष्क में तत्संबन्धी मोटर सिस्टम का होना आवश्यक है। जैसे कुत्ते के पर्याप्त बुद्धिमान होने के बावजूद वह इस प्रकार बक्सों आदि को एक दूसरे से ऊपर रखकर कुछ करने का प्रयास नहीं करेगा, न उसे ऐसा सूझेगा ही। बन्दर के अधिक योग्य हाथ, जिसकी अंगुलियाँ पृथक् पृथक् और बडी हैं, अपना प्रतिनिधि मोटर-सिस्टम मस्तिष्क में रखती हैं। अतः न केवल वह हाथ से अधिक कार्य ही कर सकता है, वह तत्संबन्धी नवीन स-संबन्ध भी रख सकता है।

किन्तु हम वाट्सन के साथ इस बात में सहमत नहीं हैं कि यदि वह प्रारंभ से उकसाहटों का नियंत्रण करसके, वह किसी भी प्रकार के मनुष्य का निर्माण कर सकता है। जैसा कि हमने प्रथम तथा चतुर्थ निबन्धों में देखा है, उकसाहट एकदम मिट्टी पर व्यापारित नहीं होती और न स-संबन्ध जड कडियों में होता है, उकसाहटों को एक सजीव (Vital) और "विशिष्ट" पदार्थ पर क्रियाशील होना होता है। उकसाहटों का नियंत्रण बहुत अधिक प्रभावशाली होता है, किन्तु यह प्रभाव केवल सापेक्ष है। इस प्रकार हम सरल उकसाहट-रीफ्लेक्स और कंडीशनिंग के सिद्धान्त को मनोविज्ञान का आधार भूत और सार्वभौम सिद्धान्त स्वीकार नहीं करते। स्वयं पावलाव ने निर्धारित रीफ्लेक्स को इतना सरल उकसाहट-प्रतिक्रिया व्यापार नहीं माना था। कम से कम अपने अनुसन्धान के पिछले दिनों में वह सजीव अंश(Vital Factor)को भी महत्वपूर्ण मानने लगा था। उसने स्नायविक क्रिया प्रसार(Irradiation), प्रशस्तीकरण तथा निरोध (Facilitation and Inhibition)इत्यादि सजीव प्रक्रियाओं का महत्व पूर्णतः स्वीकार किया था।

यहाँ वाट्सोनियन व्यवहारवाद के संबन्ध में थोड़ा और विचार करना हम आवश्यक समझते हैं। व्यवहारवादी केवल प्राणी के व्यवहार को ही मनोविज्ञान का एकमात्र विषय मानते हैं। उनका कथन है कि किसी दूसरे प्राणी के सम्बन्ध में हम इससे अधिक नही जान सकते, और एक वैज्ञानिक होने के नाते प्रत्यक्ष से आगे जाने का हमे अधिकार नही ह। सामान्यत: मानवेतर प्राणियों के मनोविज्ञान का अध्ययन हम केवल उनके व्यवहार के अध्ययन द्वारा ही कर सकते हैं। मनुष्य के मन के ज्ञान का साधन भी हमारे पास केवल उसका व्यवहार ही है। जहाँ तक अपने मन का सम्बन्ध है, वहाँ भी हमें अनुभव आदि को कल्पना करने का अधिकार नहीं है, शरीर के भीतर होने वाले भौतिक परिवर्तनों द्वारा हम अपने व्यवहार के ज्ञान को प्रत्यक्ष बाह्य व्यवहार के ज्ञान के साथ मिलाकर पूरा करते हैं। किन्तु यदि मुझे कोई कहे कि मेरा अपन पुत्र के प्रति स्नेह उसे देखने पर मेरे मुँह पर आने वाली चमक तथा उसे उठाकर चूमने आदि व्यवहार का समवाय मात्र है, तो मैं कभी भी यह स्वीकार नहीं करूँगा। यदि कोई मेरी सूई चुभने की पीड़ा को मेरे एकदम हाथ उठाकर चीख मारने का पर्याय कहे तो मैं उस मनोवैज्ञानिक को सन्देह की दृष्टि से देखे बिना नही रह सकता। अब यदि मेरा अनुभव मेरे व्यवहार का पर्याय नहीं है तो स्वभावत: यही बात मनुष्य तथा अन्य प्राणियों पर भी लागू होती है। किन्तु कोई भी व्यक्ति अन्य के अनुभवों को उसके व्यवहार के अतिरिक्त नहीं जान सकता, यह सत्य है । किन्तु यदि एक व्यक्ति कुछ सोच रहा है और हम उसके व्यवहार से यह बता सकें कि वह सोच रहा है, तो भी हम यह नही बता सकते कि वह क्या सोच रहा है । ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए व्यवहारवादियों को हमारे शरीर के अन्त: प्रदेशों के व्यवहार अथवा क्रियाओं को भी अपने क्षेत्र में रखना पड़ा, यद्यपि हम उन क्रियाओं को नहीं देख सकते। जैसे, 'विचारना केवल धीरे धीरे शब्दोच्चारण करना है और जब हम स्पष्टत: उच्चारण नहीं कर रहे होते तब भी हमारे कंठ का अन्त: प्रदेश(Sphynax) हल्की उच्चारण क्रियाएं कर रहा होता है। जब कोई क्रुद्ध होता है, तब यदि हमारी आँखें उसे नहीं भी देख पातीं तब भी उसके रक्त-भांडों में आन्दोलन थात मस्तिष्क में हल्की मोलीक्यूलर प्रक्रियाएं होती है।'

हम इससे इन्कार नहीं करते किन्तु इस व्याख्या को एक सिद्धान्त के रूप में अथवा पूर्ण विश्लेषण के रूप में हम स्वीकार नहीं कर सकते। इसे हम केवल एक प्रविधि के रूप में स्वीकार कर सकते है—व्याख्या की प्रविधि (Method of Explanation) के रूप मे नही, अनुसंधान की प्रविधि के रूप में।

व्यवहारवाद एक पूर्ण व्याख्या की प्रविधि के रूप में शायद सबसे अधिक अशक्त है, क्योंकि यह जिस पूर्व धारणा को लेकर चला है उसी के अनुसार यह स्वयं खंडित हो जाता है। व्यवहारवाद केवल प्रत्यक्ष को विज्ञान का आधार स्वीकार करता है और अभ्युपगमों को उसके लिए अवैध समझता है। किन्तु जैसा कि हमने ऊपर अभी देखा है, इसे अनेक तथ्यो की व्याख्या के लिए अभ्युपगमेन अन्तः शारीरिक क्रियाओं को भी व्यवहार के अन्तर्गत रखना पड़ा है। किन्तु स्पष्टतः हम उस मस्तिष्क में, जो सोच भी रहा हो, कोई तत्सम्बन्धी क्रिया नहीं देख सकते। किन्तु यदि अन्तः शारीरिक क्रियाओं सम्बन्धी इन विचारों को मान भी लिया जाए तो भी वास्तविकता के साथ इन्हें संगत नहीं किया जा सकता। जब मैं लाल रङ्ग देखता हूँ, तब व्यवहारवादी के अनुसार मेरे मस्तिष्क में कुछ मोलीक्यूलर प्रक्रियाएँ होती हैं, किन्तु मै वे प्रक्रियाएँ देखे या कल्पित किये बिना भी लाल रंग देखता हूँ, और यदि व्यवहारवादी किसी प्रकार से मेरे मस्तिष्क की मोलीक्यूलर गतियों को सम्यक् प्रकारेण देख भी सके तब भी वह मेरे संवेद को नही देख सकता। अधिक से अधिक वह यह कह सकता है कि जब ऐसी-ऐसी मोलोक्यूलर गति मेरे मस्तिष्क में होती है तब मुझमें लाल रग का संवेद घटित होता है, जिसे कि वह मेरे मुंह से निकले शब्दों से जानता है। यह एक अत्यन्त उपहास्पद स्थिति है। व्यवहारवादी यदि यह दावा करता है कि मोलीक्यूलर गति और संवेद एक ही बात है, तब उससे तर्क करने का कोई लाभ नहीं हो सकता। किन्तु व्यवहारवाद की असंगति तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब हम ज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध में विचार करते हैं। जो भी मैं देखता हूं वह वास्तव में मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली घटना है। व्यवहारवादी भी यह स्वीकार करता है, क्योंकि वह उसके लिए मेरे मस्तिष्क मे होने वाली मोलोक्यूलर प्रक्रियाओं को देखता है; किन्तु वास्तव में, तथा कथित मोलीक्यूलर प्रक्रियाएँ, जिन्हें वह मेरे मस्तिष्क में होते देखता है, उसके अपने मस्तिष्क में घटित होने वाले संवेद हैं। इस प्रकार, व्यवहार-वादी जब किसी अन्य के व्यवहार को देखने की बात करता है तब वास्तव मे वह अपने मस्तिष्क मे घटित होने वाले संवेदो को जानता है। दूसरो के सम्बन्ध में हम केवल दो प्रकार के ज्ञान का दावा ही कर सकते हैं—सहानुभूतिक ज्ञान तथा आनुमानिक ज्ञान। सहानुभूतिक ज्ञान के सम्बन्ध में काफी मतभेद को गुंजाइश है और यहाँ हम उसके सम्बन्ध मे कुछ नही कहना चाहते। हमने इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में इसकी प्रामाणिकता के विरुद्ध अपना मत दिया है। किन्तु इडिंगटन के अनुसार, सहानुभूतिक ज्ञान आनुमानिक ज्ञान से अधि प्रामाणिक है। उसने इसे स्मृति-ज्ञान के समान बताया है। उसके अनुसार, यदि

मुझे अपने सुदूर शैशव की कुछ घटनाएँ बताई जाएँ, तब मुझे वे उतनी ही पराई प्रतीत होंगी जितनी किसी अन्य के जीवन की घटनाएँ। यह ठीक है, किन्तु यदि मुझे प्रत्यक्षतः उनका स्मरण नहीं होता तो वे मेरे लिए केवल शब्द हैं और यदि मैं उनका स्मरण कर पाता हूँ तो वे पूर्णतः सहानुभूतिक ज्ञान से भिन्न हैं, चाहे वे कितनी भी धुंधली प्रतीत क्यों न हों। इस सम्बन्ध में हमने शरीर और मन निबन्ध में विस्तार पूर्वक विचार किया है। यदि हम स्मृति-ज्ञान का विश्लेषण रसल की स्मृति-कारणता (Mnemic Causation) के अनुसार भी करें तब भी स्मृति ज्ञान और सहानुभूतिक ज्ञान में कोई समता नहीं है।

इसका अर्थ यह नही कि हम सहानुभूतिक ज्ञान का निषेध करते है, किन्तु हम यह कहना चाहते है कि वह प्रत्यक्षज्ञान से भिन्न रूप में हमें नहीं होता, अतः उसके लिए एक अन्य नाम रखने की आवश्यकता नही है। जब वह प्रत्यक्ष न होकर केवल शब्दादि के द्वारा हमे प्राप्त होता है तब वह अनुमेय ज्ञान के अन्तर्गत हो सकता है। इस प्रकार व्यवहारवाद एक भ्रान्त धारणा पर आधारित है।

(३)

मनोविज्ञान पर यह दोष लगाया जाता है कि वह एक अविभाज्य, सावयव रूप से संघटित (Organic unity) मन का विश्लेषण कर उस विश्लिष्ट को ही वास्तविक समझ लेता है। स्वयं मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इस विश्लेषणवाद के विरुद्ध विद्रोह हुआ है। जेस्टेल्ट-मनोविज्ञान तथा मैक्डूगल को प्रवृत्ति-मनोविज्ञान (Instinct Psychology) का इस प्रसंग में नाम लिया जा सकता है। मैक्डूगल अपनी पुस्तक "An Out Line of Psychology" में इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए लिखता है—"किन्तु कुछ लोग (और मुझे आशा है कि यह पुस्तक उनकी संख्या में वृद्धि करेगी) इच्छाओं के भीषण ऊहापोह का, अथवा किसी आन्तरिक नैतिक संघर्ष का, किसी तीव्र वेदना का, किसी कलुषित आकांक्षा का, सहानुभूति की किसी गम्भीर अनुभूति का, भीषण क्रोध अथवा भयपूर्ण आवेग का स्मरण कर (शरीर वैज्ञानिक मनोविज्ञान के प्रतिपादनों कौशल्य) स्वीकार करने में झिझकेंगे, वे अपने आप से पूछेंगे, क्या ऐसे सिद्धान्त में कुछ आधार भूत गलती ही नहीं जो यह कहता है कि इन अनुभूतियों का इस संसार में कोई अस्तित्व नहीं है ? क्या इस विचार में कोई बड़ा

छिद्र नहीं रह गया है, अथवा यह भ्रान्त आधार (Premise) पर ही तो आधारित नही है कि इसके परिणाम इतने थाये निकलते है, जो परिणाम कि सब युगों के सब नैतिक नेताओ के उपदेशों के विरोधी है, और जो मनुष्य को एक अत्यन्त क्षुद्र जीव से अथवा टेस्ट ट्यूब मे पड़े स्फटिक से अधिक सृजन-शक्ति सम्पन्न अथवा आत्म निर्धारण में स्वतंत्र नहीं मानते; जो कि बाइबल को, शेक्सपीयर, बीथोवन अथवा न्यूटन के शब्दो को परमाणुओ का सँकलन मात्र मानते हैं ?" इत्यादि...

किन्तु हमारे विचार में, यह समझना कठिन नही है कि इस प्रकार सब वस्तुओं को ज्यों का त्यों, केवल उनके सौन्दर्य के आधार पर स्वीकार करना सम्भव नही है, कम से कम वैज्ञानिक अनुसन्धान और दार्शनिक विश्लेषण इस प्रकार नहीं चल सकते। एक दार्शनिक के लिए, जिसे विभिन्न दृश्यों और प्रदत्तों (Data) का मूल्याकन और समन्वय करना है, यह पद्धति और भी असम्भव है। यह कहा जा सकता है कि यह पद्धति ही भ्रान्त है, किन्तु जब कि आप उस पद्धति को स्वीकार करते है तो उसमें एक सुविधापेक्षी (Arbitrary) सीमा निर्धारित नहीं कर सकते। कोई कवि को अतर्क सम्मत नहीं कहता, जब वह अपनी अनुभूतियों को सच्ची कहता है, कोई धार्मिक व्यक्ति के अनुभवो को नहीं झुठलाता, यदि वह कहता है कि वैसा वह सचमुच ही अनुभव करता है, किन्तु एक वैज्ञानिक या दार्शनिक भी पूर्णतः न्याय पर है यदि वह इन अनुभूतियों का विश्लेषण और वर्गीकरण करता है। हम सुन्दर रूप देखते है, अब यदि भूत वैज्ञानिक हमे बताता है कि वास्तव मे यह केवल परमाणुओं का एक समवाय मात्र है और किरणें केवल ईथर मे विशेष मापानुक्रम मे लहर प्रसार मात्र है, तो वह कोई गलती नहीं कर रहा है, यद्यपि वह 'प्रसाद' को नही झुठलाता जब वह किरण से पूछता है कि वह इस प्रकार क्यों बिखरी है और वह किसके अनुराग में रँगी है? एक मनोवैज्ञानिक के लिए शेक्सपीयर कुछ सवेदों, अभ्यासों और स-सम्बन्धों आदि का संकलन ही हो सकता है। शेक्सपीयर की विशेषता शेक्सपीयर होने मे है, किन्तु शेक्सपीयर क्या है? यदि मैक्डुगल का ही विचार माना जाए तो, कम से कम वह एक शरीर है जिसमें भय, प्यार, सदासद् की अनुभूतियाँ तथा तर्क, विचार और कल्पनाएँ इत्यादि है। इतना कहने मे भी आप विश्लेषण और वर्गीकरण करते है, क्योंकि अन्यथा, उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति मे उसके सम्पूर्ण नही तो, कम से कम, व्यक्तित्व के बड़े भाग का समावेश होता है। यदि उसकी एक उक्ति को अमुक प्रवृत्ति, प्रशिक्षण, अभ्यास, कंडीशनिंग इत्यादि में विश्लेषित किया जा सकता है, जैसा कि मैक्डुगल करेगा ही, तो कोई कारण नही कि आगे विश्लेषण को आपत्ति

जनक क्यों समझा जाए। इस विश्लेषण में हम इस बात का निषेध नहीं करते कि शेक्सपीयर और न्यूटन सामान्य मर्त्य से भिन्न हैं, उनमें कुछ विशष प्रतिभा है; अथवा ईसा को वास्तव मे ही एक स्वर्गीय अनुभूति हुई थी; किन्तु हम निश्चित रूप से यह स्वीकार नहीं करते कि उनका सामान्य मर्त्य के स्वर पर विश्लेषण नही किया जा सकता।

वास्तव मे विश्लेषण मे कुछ कठिनाइयाँ है; कभी-कभी विश्लेषण के पश्चात् यह जानना काफी कठिन हो जाता है कि परिणाम वास्तविक हैं या कि हमारा ही आविष्कार है। प्रस्तुत प्रसंग मे भी, सवेद आदि विश्लेषण के परिणाम वास्तविक है, याकि हमारे आविष्कार है? दूसरी कठिनाई यह है कि हम विश्लेषण मे विश्लेष्य को समाप्त ही तो नही कर देते? प्रथम के उदाहरण रूप मे हम (Spectrum) को प्रस्तुत कर सकते है: इसके रंग, जो कि हमारे विश्लेषण के परिणाम है, वे पहले से ही विद्यमान थे अथवा हम अपने यंत्र मे किरणों के विभेद द्वारा उनका आविष्कार करते है? * दूसरा उदाहरण एक सुन्दर चित्र हो सकता है, क्या इसका विश्लेषण सभव है? यदि हम इसका नाक कुछ छोटा कर दे तो यह सुन्दर नहीं रहेगा, यदि इसके नाक मे की एक रेखा थोड़ी सी और झुका दें तो यह और अधिक सुन्दर हो जाएगा; तो क्या यह कहा जा सकता है कि रेखाओं का यह गाणितिक अनुपात चित्र का सौन्दर्य है, और कि इस चित्र में रेखाओं का अनुपात बदलने से सौन्दर्य भी बदला और कम-अधिक किया जा सकता है? प्रस्तुत प्रसंग में, एक अनुभूति अथवा प्रतिभास (Intuition) अथवा एक विचार क्या विश्लेश्य है? क्या उन्हें केवल हमारे विश्लेषण के परिणाम कहा जा सकता है?

यहाँ प्रथम प्रश्न (आविष्कार संबधी) अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसका उत्तर उतना ही कठिन है। भूत विज्ञान में श्वेत किरणो को विस्खलित कर हरितादि किरणें प्राप्त की जाती है। भूत वैज्ञानिको ने जब यह देखा कि "प्राकृतिक श्वेत प्रकाश पर्याप्त अनिश्चित विस्खलन है, जिसमे नियमितता हमारी परीक्षण की स्पेक्ट्रोस्कोपिक प्रणाली द्वारा उत्पादित है, तो उन्हे यह आशका होने लगी कि क्या हम अपने प्रयोगों द्वारा परीक्ष्य मे इतना अधिक हस्तक्षेपतो नही कर रहे है कि हम जो खोजना चाहते है उसे विनष्ट ही कर देते है?" और "क्या स्पेक्टरोस्कोप विशेष नियमितता (Periodicity) की केवल छँटनी करता है अथवा उसे श्वेत प्रकाश पर आरोपित करता है, यह केवल

---

*. A. S. Eddington. The Philosophy of Physical Science, Chap. "Discovery or Manufacture?"

अभिव्यक्ति का एक ढग है ।"* इडिंग्टन कहना चाहता है कि यह मात्र मानसिक आरोपण है । भूतविज्ञान में आज विश्लेषण को हमारे मन की प्रकृति का अनिवार्य परिणाम (A Priori Principle) मान लिया गया है और विश्लेषण के परिणाम इलेक्ट्रन, प्रोटन अथवा किरण-लहर आदि को इस मानसीकरण (Idealization) की विशेष प्रविधि का अनिवार्य परिणाम। तब क्या मनोविज्ञान में भी हम विश्लेषण को अनिवार्य, विषयीनिष्ठ तथा(A Priori) और उसके परिमाणों को आविष्कार तथा एब्स्ट्रेक्शन स्वीकार कर भूतवैज्ञानिक प्रविधि के अनुसार चल सकते है ?

एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी भूत वैज्ञानिक विश्लेषण के समान ही विश्लेष्य मे हस्तक्षेप करता है, और अनेक मनोवैज्ञानिकों को यह आपत्ति है कि इस प्रकार जिसका हम अनुसन्धान करना चाहते है उसे नष्ट देते है। और इसी प्रकार, यह कहना कठिन है कि हमारा मानसिक स्पेक्ट्रो-स्कोप छंटनी करता है अथवा आरोपण करता है। किन्तु मनोविज्ञान भूत विज्ञान से भिन्न है। जब कि भूत विज्ञान अपने ज्ञान को स्ट्रक्चरल (अवैषयिक) मान कर चलता है, मनोविज्ञान मे ज्ञान प्रत्यक्ष है। भूत विज्ञान जिस प्रकार परमाणु आदि को प्रत्यय (कॉसेप्चुअल यूनिट्स) मानता है, मनोविज्ञान विश्लेषण के परिणामों को सूपक्रिया (छंटनी) का अवशेष मानता है। क्योंकि भूत विज्ञान जिस ज्ञान मीमांसात्मक प्रविधि (Epistemological Method) से इन परिणामों पर पहुँचता है उसका परिणाम स्वयं वे मानसिक इकाइयाँ है जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की परिणाम हो सकती है। किन्तु भूत विज्ञान मे सवेद उसके प्रतीक है जिसे 'जानने' का विचार ही अन्तर्विरोध पूर्ण है, भूत विज्ञान में जो हम जानते है: वह स्ट्रक्चर है जिसकी इकाइयाँ सवेद है। अतः भौतिक ज्ञान संवेदों के ग्रुप स्ट्रक्चर का ज्ञान है, जब कि मानसिक ज्ञान अपरोक्ष रूप से उन सवेदो का ही ज्ञान है। किन्तु ग्रुप-स्ट्रक्चर भूत विज्ञान की विशेष विश्लेषण पद्धति का ही पर्याय है, अन्यथा इस ग्रुप स्ट्रक्चर के अन्तिम साक्षी संवेद ही है। किन्तु क्या संवेद भी किसी विश्लेषण की उपज (End-product) है अथवा केवल विश्लेषण के अवशिष्ट हैं ? विश्लेषण तथा अपसारण क्रिया में आधार भूत अन्तर है : विश्लेषण एक सम्पूर्ण का खंडों में विभाजन है और खंड विश्लेषण की प्रविधि विशेष का अंग अथवा उपज हैं, जब कि अपसारण क्रिया का परिणाम वह अवशिष्ट है जो आधार भूत है, जहाँ पहुँच कर अपसारण क्रिया समाप्त हो जाती है। संवेद ऐसे ही अवशिष्ट है।

*वहीं।

जैसा कि हमने अपने अन्तिम निबन्ध मे देखा है, ये सवेद हमारे भौतिक और मानसिक ज्ञान के प्रस्थान बिन्दु है । अत: संवेद को न हम एबस्ट्रेक्शन कह सकते है और न आविष्कार ही । इसका अनिवार्य अर्थ यह नही है कि हम संवेदों से बाहर भौतिक अस्तित्व का निषेध करते हैं, किन्तु उस अस्तित्व को संवेद न कहना भी अन्तर्विरोध पूर्ण है ।

किन्तु भूत विज्ञान मे जब कि हम सवेदों को प्रस्थान बिन्दु (Starting point) कहते है, मनोविज्ञान में इन्हें हम अपसारण का अवशिष्ट कहते है । यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपसारित को हम कम महत्व पूर्ण और निषेध्य नही कह सकते, केवल उसकी सापेक्ष सारता का निर्धारण करते है । इस प्रकार हम आवेग, अनुभूति, सोद्देश्यता इत्यादि को अवास्तविक नहीं कह सकते, किन्तु इसकी वास्तविकता केवल सवेदो के प्रसग से ही हो सकती है ।

जहाँ तक मन की कल्पना का सम्बन्ध है, इस सिद्धान्त के अनुसार उसके लिए कोई स्थान नही हो सकता । जो लोग मन का अस्तित्व स्वीकार करते भी है, वे भी उसे हमारे ज्ञान का विषय नही कह सकते । मैक्डुगल, जिसने मनोविज्ञान को साधारण विश्वासों के आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया है, मन के लिए कहता है—"अब यदि हम इस आधुनिक प्रणाली (शरीर वज्ञानिक) का अनुसरण नहीं करना चाहते, तो हमे पुरानी प्रणाली की ओर लौटना चाहिए और उस पर दृढ़ रहकर मन की कल्पना को स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि पुराना मनोविज्ञान मन को एक ऐसा अस्तित्व स्वीकार करता है जो दो प्रकार से अपने स्वभाव, शक्तियों तथा क्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है : (१) व्यक्तिगत अनुभव का प्रकार तथा (२) शारीरिक क्रिया का प्रकार × × × इस प्रकार व्यक्ति का मन अनुभवों तथा व्यवहार मे अपनी अभिव्यक्ति करता है ।"

यहाँ मन को एक आधारभूत अस्तित्व के रूप में स्वीकार किया गया है, अनुभवादि जिसके स्फुलिंग हैं। किन्तु क्या मन को हम अनुभवादि से पृथक् भी जानते है ? मैक्डुगल यह नहीं कहता, तब मन के अभ्युपगम की क्या आवश्यकता है ?

तब मन क्या है ? स्पष्टत: मन मानसिक घटनाओं का समवाय है, क्योकि हमने एक मन की कल्पना का निषेध कर दिया ह । तब मानसिक घटनाएं क्या हैं ? जैसा कि हमारे पिछले विश्लेषण से स्पष्ट है, मानसिक घटनाएं वे घटनाएं हैं जो एक शरीर के प्रसंग से संवेद्य तथा निर्धारित प्रतिक्रिया युक्त है। निर्धारित प्रतिक्रिया उनके कारण–नियम की पर्याय है ।

यहां संवेद अथवा अनुभव मानसिक घटनाओं का मूलगुण है, जब कि भौतिक घटना एक स्ट्रक्चरल यूनिट है। शरीर रासायनिक पदार्थ है, किन्तु इससे कुछ कठिनाई उत्पन्न नही होनी चाहिए, क्योकि अन्ततः रसायण विज्ञान भूत विज्ञान में विश्लेषित किया जा सकता है। किन्तु मन को भूत विज्ञन में विश्लेषित नही किया जा सकता, किन्तु जल को भी उनके घटक खंडों में विश्लेषित नही किया जा सकता। किन्तु इसी प्रकार, यह भी कहा जा सकता है कि भूत विज्ञान मन से नव्योत्क्रान्त है। हम इन दोनो में निर्णय नही कर सकते। किन्तु जैसा कि अन्तिम निबन्ध मे प्रतिपादित किया गया है, मन और पदार्थ एक ही घटना के दो पहलू हो सकते है, हम इसे भौतिक कहे या मानसिक।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि इस अधार पर हम शरीर वैज्ञानिक मनोविज्ञान का किस प्रकार समर्थन करते है। जैसा कि हमनें इस पुस्तक के अंतिम निबन्ध में प्रतिपादित किया है, हम अपने सम्वेदों से बाहर अस्तित्त्व का निषेध नही करते और उस सवेद को, जो घटित होता है, कारण श्रंखला मे एक कड़ी मानते हैं। अतः हम यह स्वीकार करते है कि जब संवेद घटित होता है तब अन्य घटनाए भी घटित होती हैं, यद्यपि ये घटनाएं संवेद नहीं होतीं। इन घटनाओं का हम स्ट्रक्चरल ज्ञान रखते हैं। हम यह नहीं कहते कि संवेद इस श्रृंखला की अन्य कड़ियों से मूलतः भिन्न है, वह केवल प्रसंग से भिन्न है। एक शरीर मे होने वाली सब घटनाएं समान ह, किन्तु कुछ विशेष घटनाएं ही मानसिक हो पाती है जो संवेद्य होती हैं, किन्तु शेष सब घटनाए मानसिक होने की संभावना से युक्त रहती हैं

१---प्रक्रिया के स्रोत

विभिन्न प्राणियो मे हम प्रक्रियाओ की असख्य विभिन्नताए देखते है। जो जातियाँ शरीर वैज्ञानिक स्तर पर एक दूसरे से जितना ही अधिक दूर होती है उनकी भिन्नता का नाप भी उतना ही अधिक होता है---जैसे इसका भी कोई निश्चित परिमाण होता हो। यद्यपि यह बात कुछ विचित्र सी जान पडती है किन्तु यदि हम शारीरिक-प्रकृति और प्रक्रिया के निश्चित कारण-कार्य सबध को जान सके तो इसमे कोई भी आश्चर्य की बात नही रह जाएगी। यह एक सामान्य सी बात है कि मनुष्य और चीटी दो भिन्न जातियाँ है और इन दोनो मे 'असख्य युगों' का अन्तर है, जिसका नाप उनके शरीर निर्माण की भिन्नता के आधार पर ही हो सकता है; इसके विपरीत मनुष्य और बन्दर मे बहुत कम अन्तर है और इससे भी कम अन्तर मनुष्य और शिपेजी मे है। ये अन्तर अनेक बाह्य और आन्तरिक स्तरो पर हो सकते है :--- मनुष्य ओर शिंपेजी मे हाथ की बनावट का अन्तर और टागो की आनुपातिक लंबाई तथा बनावट का अन्तर अन्य आन्तरिक तथा गभीर अन्तरो की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है, और ये अन्तर भी निश्चित रूप से उनकी प्रक्रिया के स्तर को निश्चित करते है। किन्तु ये 'स्पष्ट' अन्तर महत्वपूर्ण होने पर भी 'प्रच्छन्न' अन्तरो की अपेक्षा कही कम महत्वपूर्ण और सुदूरगामी है क्योकि ये अग केवल प्राणी की उस अन्त प्रेरणा को क्रियान्वित करते है, जो अन्त प्रेरणा प्राणी के सुदूर भीतरी भागो के रासायनिक और स्नायविक प्रबन्धो मे रासायनिक और भौतिक स्तर पर जन्म लेती है। इस प्रकार हम अपने अंगो की उपमा इंजन से दे सकते है जो अपने भीतर के वाष्प या बिजली की लहरो से उत्पन्न शक्ति-सचयों को क्रियान्वित करते है। जैसा कि हम दूसरे निबन्ध मे विस्तार से देखेगे, प्रक्रियाओं मे अन्तर के अन्य भी अनेक कारण हो सकते है, जैसे यदि इजन को रेल पर न चल कर पृथ्वी पर चलना पडे, अथवा कार को समतल सड़क पर न चलकर पथरीली सम-विषम भूमि पर चलना पडे तो एक ही जैसी दो कारों या गाडियो में अपने आप मे कोई अन्तर न होने पर भी उनके शक्ति-संचयों के क्रियान्वित होने मे अन्तर होगा। इसे सामान्यत प्रक्रियात्मक अन्तर भी कह सकते है। यह अन्तर स्पष्टतः ही वासना प्रेरित प्राणी और परिवेश के संपर्क से उत्पन्न प्रक्रिया-गत अन्तर है। किन्तु एक ही जाति का एक ही परिवेश होने पर दो भिन्न प्रक्रियाएं दो भिन्न वासनाओं का क्रिया-व्यापार होंगी, जो कि दो भिन्न

हार्मन रस-स्रावक कोषो तथा उनके रसो के विषय मे विशेष ज्ञातव्य
तथा उनके प्रक्रिया पर प्रभाव का सिहावलोकन

ग्रथियाँ	हार्मन	हार्मन का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
पृष्ट-पिच्यूइटरी (Interior Pituitary)	थाइरोट्रोपिक	थाइराइड कोष-रसो के स्राव को उत्तेजित करता है ।	रक्त मे थाइरोइड कोष-रसो की कमी होने पर यह प्रवाहित होता है ।
	ऐड्रेनोकोर्टिको-ट्रोपिक	ऐड्रेनल कोर्टैक्स के रस-स्रावन को उत्तेजित करता है ।	इस रस के बिना ऐड्रेनल-कोष बहुत निर्बल और रस-प्रवाहित करने मे असमर्थ हो जाता है, किन्तु सर्वथा नि शेष नहीं होता ।
	ल्यूटोजेनिक हार्मन अथवा प्रोलैक्टिन	मैम्मरी कोषो से दूध के स्राव को उत्तेजित करता है ।	इस रस का स्राव शिशु दर्शन से अथवा वात्सल्य की अधिक उत्तेजना से बहुत अधिक बढ जाता है ।
	ल्यूटीनाइजिग हार्मन	यह रस अडकोष तथा ओवरी की आन्तरिक ग्रंथियो के विकास तथा परिपाक मे सहायक होता है, इन कोषों के रसो के स्राव का कारण बनता है । यही रज कण या ओवा के परिपाक तथा	इससे विशेषत. नर के गोनाड्ज प्रभावित होते है ।

	गर्भाशय मे उसके प्रवेश का कारण होता है। यह मादा मे कॉर्पुल्यूटम् या (स्तन पायियो मे प्रोजेस्टेरोन को उत्तेजित करने वाले एक अचिरस्थायी कोषविशेष) के निर्माण का तथा नर मे ऐड्रोजन के स्राव का कारण होता है।	
फ़ोल्लिकल स्टिमुलेटिग हार्मन	गोनाड्ज को उत्तेजित करनेवाला रस, यह ओवरी मे एक विशेष अग फोल्लिकल को भी उत्तेजित करता है और वीर्य प्रवाहित करने वाली नलियो को भी पुष्ट करता है।	फ. स. ह. से व्यापारित ओवरी मे ऐस्ट्रोजन का प्रवाह तीव्र हो जाता है। दोनों ही लिगो मे ल. ह. और फ. स. ह. विशेष क्रिया व्यापारो को व्यापारित करने के लिए अनिवार्य है।
(ग्रोथ) अथवा अभिवृद्धि	हड्डियो को शक्ति और वृद्धि प्रदान करता है तथा प्रोटीन के सग्रह के लिए आवश्यक है।	बचपन मे इसका अधिक स्राव व्यक्ति को असन्तुलित रूप से जिन्न के समान लबा-चौडा बना देता है, और बड़ी आयु मे इसकी अधिकता मुख और हाथ की हड्डियो को बहुत बढ़ा देती है।
डायाबेटोजेनिक	यह प्रोटीन और फैट्स को कार्बोहाइड्रेट मे बदल देता है, तथा कार्बोहाइड्रेट के व्यय को रोकता है।	इसका अधिक स्राव रक्त म खाँड (Sugar) की मात्रा को बढा देता है, और कभी इस मात्रा को आवश्यकता से कम कर देता है।

ग्रथियाँ	हार्मन	हार्मन का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
अग्रपिच्यूइटरी	ऐंटीड्यूरेटिक	गुदा द्वारा शरीर के पानी को नष्ट होने से रोकता है।	इसकी कमी या अनुपस्थिति प्यास और यूराइन की अधिकता मे परिणत होती है।
अग्रिम पिच्यूइटरी	पिट्रेसिन	यह रक्त के दबाव को, रक्त व रक्त बर्तन की पेशियो के सकोचन के द्वारा बढ़ाता है।	
मध्य पिच्यूइटरी	इंटर मेडिन	त्वचा के नीचे की ग्रथियो के मेम्ब्रेन (बाह्य पर्दा) मे के काले धब्बो के विस्तार को उकसाता है और मछली तथा मेढक इत्यादि प्राणियो मे काले रग का कारण होता है।	इस हार्मन का स्राव यात्रिक प्रक्रिया (Reflex action) से भी व्यापारित हो जाता है, जैसा कि हम विस्तार मे तीसरे निवध मे देखेगे।

	सेकंड फेक्टर (हार्मन)	थाइराइड और ऐड्रेनल ग्रथियो के अपसारण के बाद यह प्राणी मे प्रारम्भिक रासायनिक क्रियाओं को प्रेरित करता है।	इजेक्शन से इसका प्रभाव देखा गया है।
थाइराइड	थाइरोक्साइन तथा अन्य रस	कार्बोहाइड्रेट को खपाते है, हृदय की धडकन को नियमित रखते है तथा अगो के विकास और आकृति के परिवर्तन मे कारण होते है।	ये हार्मन अपने स्राव के लिए पृष्ठ-पिच्यूइटरी के रस स्राव पर निर्भर करते है। इनका स्राव अर्ध-जलचारी जन्तुओ-मेढक इत्यादि मे विशेष रूप से आकृति-परिवर्तन में कारण होता है। इस हार्मन की कमी किन्ही अज्ञात कारणो से मनुष्य मे मानसिक और शारीरिक निर्बलता उत्पन्न कर देती है।
पाराथाइराइड	पाराथोर्मोन	रक्त मे केल्शियम और फास्फोरस के अनुपात को ठीक रखता है।	यह पिच्यूइटरी के अपसारण से प्रभावित नही होता। इसकी कमी रक्त मे केल्शियम की कमी और फास्फोरस की अधिकता मे परिणत होती है।

ग्रंथियाँ	हार्मन	हार्मज का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
ऐड्रेनल कोर्टैक्स	कोर्टिकोस्टेरन, हाइड्रोक्साइ-कोर्टिकोस्टेरन	ये कार्बोहाइड्रेड के रासायनिक क्रिया व्यापार मे सहायक होते है।	इनकी कमी से भोजन और पानी का ग्रहण कम हो जाता है, शरीर का तापमान बहुत कम हो जाता है, नाडी की कपन-गति कम हो जाती है, गुर्दा मे नमक की कमी हो जाती है तथा मसल्ज निर्बल पड जाते है।
मध्य एड्रेनल	एड्रेनलिन	लिवर (Liver) अधिक शूगर निर्माण करने लगता है। रक्त का दबाव बढ जाता है और हृदय की गति तीव्र हो जाती है।	
मादा की कामोत्तेजक रस-ग्रंथियाँ अथवा गोनाड्ज	एस्ट्रोजन	यह मादा मे कामोत्तेजना उत्पन्न करता है। इसी से मादा की सभोग-सबधी क्रियाए निर्धारित होती है।	यह रस स्त्रियो मे यौवनोदय के समय को निश्चित करता है। इसकी पर्याप्त मात्रा नर को देने पर उसमे यौवनोदय में देर हो जाती है।

	प्रोजस्टेरोन	यह गर्भ को शिशु के धारण और पालन-पोषण (भोजन के द्वारा) के योग्य बनाता है।	
	प्लासेटा	यह अडकोष और ओवरी के रस प्रवाह को उत्तेजित करता है।	इसे 'पृष्ठ-पिच्यूइटरी-हार्मन के समान' भी कहा जाता है क्योंकि इसका वही कार्य है जो ल्यूटिनाइजिग हार्मन का होना है।
नर के गोनाड्ज	टेस्टोस्टेरोन, एड्रोस्टेरोन, हाइड्रोएंड्रोस्टेरोन	प्राथमिक और उद्दिष्ट मैथुन प्रक्रियाओ को प्रेरित करते है।	इन्हे एड्रोजन भी कहते है। इनमे टेस्टोस्टेरोन सब से अधिक प्रभावशाली होता है। यह टेस्टिस के अन्तरभाग मे स्थित ग्रथियो से प्रवाहित होता है।

Physiological Psychology से उद्धृत।

रासायनिक-भौतिक स्थितियो की परिणाम होती है, इसलिए उन दो वासनाओ की तृप्ति का आनन्द भी सर्वथा भिन्न-भि न्न होगा जो उन दो भिन्न वासनाओ की धकेल (Push) की मात्रा और प्रकृति के अनुसार निर्धारित होगा—जैसे मैथुन वासना और वात्सल्य दो सर्वथा भिन्न, अन्त-शारीरिक रासायनिक स्थितियो की परिणाम है और इसी से इनकी सन्तुष्टि का आनन्द भी सर्वथा भिन्न-भिन्न रूप मे ही होता है। प्राणी की इच्छा-अनिच्छा, वासना-वितृष्णा तथा सशक्तता-अशक्तता इत्यादि मुख्यत इन्ही पर निर्भर है। इससे जीवन मे मन की स्थिति को समझने के लिए इन अन्त शारीरिक रासायनिक द्रव्यो का तथा उन स्नायु-ततुओ का ज्ञान आवश्यक है जो इन प्रक्रियाओ के स्रोत है। इस निबध मे हम केवल इन्ही को देखेगे जब कि दूसरे निबध मे इनसे प्रेरित प्रक्रियाओ के परिवेश से सबध तथा उनकी सार्थकता को समझने का प्रयास करेगे।

वासना-प्रेरक रासायनिक रसो को हार्मन, विटेमन तथा ऐंजाइम[1] कहते है। ये यद्यपि तीनो ही महत्त्वपूर्ण है किन्तु मुख्य और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हार्मन ही है। ऐंजइाम्ज के प्रभाव को हम चतुर्थ निबध मे देखेगे।

हार्मन वे विशेष जीवन-रस है जो विभिन्न कोषो के ग्रथियो मे बनते है, जैसा कि चित्र १ और हार्मन चार्ट मे देखा जा सकता है। इनका शरीर की उन भीतरी रासायनिक प्रक्रियाओ मे भी पर्याप्त महत्त्व है जो भोजन इत्यादि के परमाणुओ को तोड़ने और उन्हे विभिन्न भागो मे बाँटने से सबध रखती है, किन्तु हमारे इस निबध के प्रकरण से इसका कोई संबध नही है। हमारे लिए इनकी केवल उस प्रकृति का ही महत्व है जो प्राणी की प्रक्रिया को स्फूर्तित करती है। प्राणी हार्मन तथा ऐंजाइम्ज का निर्माण अपने शरीर के भीतर ही करता है जबकि विटेमन भोजन के रूप मे बाहर से प्राप्त करता है। किन्तु ऐंजाइम्ज और हार्मज मे भी बडा अन्तर है, जहाँ हार्मन ऐंजाइम्ज के समान ही ग्रथियो मे उत्पन्न होने पर भी अपने प्रभाव मे ग्रथियो तक सीमित नही रहते वहाँ एजाइम्ज की क्रिया ग्रथियो तक ही सीमित रहती है—जिन ग्रथियो मे वे उत्पन्न होते है। इसके अतिरिक्त ऐंजाइम्ज का सबध (सभवत) सीधा जेन्ज (Gens) से है जबकि हार्म एजाइम्ज से निर्मित होते है (१)।

बहुत से हार्मज शरीर मे भोजन इत्यादि के समीकरण तथा शरीर की अन्य रासायनिक क्रियाओ के संचालन का भी कार्य करते है और अपनी इन क्रियाओ से ये प्राणी के स्वभाव इत्यादि को भी प्रभावित करते है, किन्तु हमे यहाँ

[1] Hormone, Vitamin and Enzimes

उन हार्मज् पर ही विचार करना है जो सीधे और गभीर रूप से प्राणी के स्वभाव तथा प्रक्रियाओ इत्यादि का निर्धारण कर सकते हैं । कुछ हार्मन तो प्राणी के अगो तथा आकृति तक को बहुत अधिक प्रभावित कर सकते हैं । जैसे गोनाडल (सेक्स) हार्मन, एड्रेनल हार्मन इत्यादि । ये हार्मन न केवल कर्मेन्द्रियो को ही प्रभावित करते है और प्राणी को तदीय प्रक्रियाओ मे सशक्त या अशक्त बनाते है प्रत्युत उसकी आकृति, वासनाओ तथा भूख प्यास तक को बदल डालते है ।

नर की काम-उत्पादक ग्रथि(टेस्टिस)तदीय रसो को शरीर के अन्त मार्गो मे प्रवाहित कर देती है जिससे कि सभी प्रकार की प्राथमिक और उद्दिष्ट (Secondary) काम-चेष्टाये तथा तदीय अग इत्यादि निर्मित होते है। मनुष्यो मे सामान्यत नर मे चौदह से सोलह वर्ष की आयु मे शरीर मे टेस्टिस-ग्रथि के रसो से निर्धारित परिवर्तन होते देखे जा सकते है—इन रसो से ही उसके अग पकते है, मुख पर श्मश्रु फूटने लगती है और वह 'युवक' होने लगता है । अन्य प्राणियो मे तो परिवर्तन और भी गभीर होते है, जिन्हे विकासवाद के प्राचीन समर्थक सेक्सुअल-सिलेक्शन कहते थे । इन परिवर्तनो मे मुख्य, कुछ पक्षियो के पखो मे विशेष प्रकार के काटे से या सीगो की उत्त्पत्ति (चोट करने के लिए), मुकुट का आविर्भाव तथा पंजो का काठिन्य इत्यादि है। यदि अपरिपक्वावस्था या कैशोर्य मे ये ग्रथिया शरीर से निकाल ली जाए तो जो जननेन्द्रिया शेष रहती है (जैसे वीर्य भांड इत्यादि, मूत्रेन्द्रिय नही) वे बहुत छोटी हो जाती है; इसी प्रकार उद्दिष्ट (secondary) मैथुन प्रक्रियाओ (सभोग त्यादि) के भी नर अयोग्य हो जाता है, कठ मे नरत्व सुलभ परिवर्तन नही होते, इसी प्रकार शेष शरीर मे भी पुसत्व-जन्य अन्य परिवर्त्तन नही होते ।

पशुओ मे मनुष्य से अधिक परिवर्त्तन का कारण संभवत. यही हो सकता ह कि उनमे कामोत्पादक रस—गोनाडल हार्मन्ज—अधिक प्रभावशाली होते है । कुक्कुट मे इस ग्रथि का अपसारण मुकुट और पखो इत्यादि की वृद्धि को रोक देता है, इसी प्रकार हरिण मे उनके शृंगो की उत्त्पत्ति नही हो पाती । जिन जातियो मे दोनो लिगो में ही सीग होते है—जैसे गाय मे, उनके नर मे इस ग्रथि का अपसारण उसके सीगो की आकृति बदल देता है; जैसे कि हम बैलो और साड़ो के सीगों की बनावट मे अन्तर देखकर सहज ही अनुमान कर सकते है । बैलो के सीग बहुत कुछ गाय के साथ मिलते-जुलते होते है ।

इसी प्रकार अन्य ग्रथियो के रस भी शरीर पर और प्राणी के व्यवहार पर गभीर प्रभाव डालते है । इनमे से अनेक रस केवल दूसरी ग्रंथियों के स्राव को

प्रेरित भर करने के लिए है । वास्तव मे ये सभी ग्रथिया एक-दूसरे के स्राव पर बहुत कुछ निर्भर करती है और एक दूसरे के कार्य को अत्यधिक प्रभावित करती है। इस प्रकार के रसो मे पिच्यूइटरी रस सबसे अधिक प्रमुख है । यह अनेक रसो को प्रवाहित करती है, जिन्हे ट्रापिक हार्मन (Tropic Hormons) कहते है । ये रस शरीर की अन्य ग्रथियो के रस-प्रवाह को प्रेरित या निरुद्ध करते है, इसी से इस ग्रंथि को अधिष्ठाता ग्रथि भी कहा जा सकता है । किन्तु इन ग्रथियो के स्राव-निरोध केवल पिच्यूइटरी पर ही आश्रित नही है, और भी अनेक रासायनिक प्रक्रियाये शरीर मे होती है जो इन्हे प्रेरित या निरुद्ध करती है। अनेक ग्रथियो के अनेक स्राव तो स्नायु-केन्द्र अथवा मस्तिष्क केन्द्रो से आती हुई लहर (Impulse) से ही निर्धारित होते है । इसलिए ग्रथियो के रसो का क्रिया-व्यापार उनके पारस्परिक सबध, स्नायु-केन्द्र की स्थिति और उसके सबध तथा अन्य अनेक रासायनिक प्रक्रियाओ की सापेक्षता मे निर्धारित होता है।

यद्यपि ग्रथि-रसो की प्रकृति और शरीर की सामान्य रासायनिक प्रक्रिया मे उनका स्थान और प्राणी के व्यवहार या केन्द्रीय-स्नायु ततु तथा ज्ञानेन्द्रियो पर उनका प्रभाव, समझना अत्यन्त कठिन है, तो भी इन ग्रथियो के अपसारण से, या इनके रसो के इजेक्शन से उत्पन्न होने वाले अन्तरो से इनका कुछ सामान्यज्ञान (Workable knowledge) हो ही जाता है। किन्तु ये प्रयोग एक सीमा तक ही इस सम्बन्ध मे कुछ बता सकते है । जैसे, किसी ग्रथि के अपसारण से शरीर मे कुछ अन्तर उत्पन्न होगा जो उसके शरीर पर सीधे प्रभाव का परिणाम होगा, किन्तु इससे अन्य ग्रथियो की सापेक्ष स्थिति पर भी अन्तर पड़ सकता है और इस प्रकार वह परोक्ष रूप से भी शरीर मे कितने ही परिवर्तनो का जन्मदाता हो सकता है। इसलिए वैज्ञानिक के लिए यह निर्णय देना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि उसके प्रयोग से उत्पन्न प्रभाव सीधा अपसारित ग्रथि का प्रभाव है या किसी अन्य सबद्ध ग्रथि के द्वारा अपसारित ग्रथि का परोक्ष प्रभाव है । यही समस्या इन रसो के इजेक्शन मे भी उत्पन्न होती है। सभव है किसी ग्रथि-रस का इजेक्शन, जो प्रयोगकर्त्ता वैज्ञानिक करता है, प्रतीयमान प्रभाव को सीधे ही जन्म दे रहा हो और यह भी उतना ही सम्भव है कि उसने किसी अन्य ग्रथि के रस को स्रवित होने मे सहायता दी हो और प्रतीयमान प्रभाव उसी का हो। इसलिए इस प्रकार के प्रयोगो के महत्व-पूर्ण होने पर भी भूल की सभावना बनी ही रहती है।

सभवत. हार्मज़ के निर्माण में, जो कि विशेष ग्रथियो के कोषों से होता है, जीवन के आधारभूत पदार्थ, जेज़ (Genes) ही कारण होते है, जैसे वे

एजाइम्ज के निर्माण मे होते है, किन्तु जेन्ज् और हार्मज का सीधा सबध न हो कर सभवत ऐजाइम्ज् के द्वारा ही है, इसलिए यदि कोई विशेष जेन गौण रह जाय या जेज और हार्मज् के बीच की कडी —किसी ऐंजाइम को समाप्त कर दिया जाए तो तत्सबधो हार्मन भी बन्द हो जायगा। इस प्रकार हार्मज के स्राव की मात्रा पर भी उत्तराधिकार का सबध किसी-न-किसी प्रकार से सभावित है ही, और यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। हार्मज और एजाइम्ज् दोनों को ही रोकने वाले कुछ अन्य रासायनिक एजेट भी हमारे शरीर मे रहते है जिन्हे हार्मन-निरोधक कहा जाता है। किन्तु इस सबध में वैज्ञानिक अभी तक निश्चित नही है कि ये हार्मन-निरोधक कैसे कार्य करते है और इनकी रासायनिक प्रकृति क्या है, तो भी इतना तो ज्ञात हो सका ही है कि ये या तो उन ग्रथियो को ही पगु कर देते है जो हार्मज को उत्पन्न करती है, अथवा उन एंजाइम्ज को रोक देते है जो हार्मज के कारण होते है, इसी प्रकार ये हार्मज की रक्त इत्यादि मे रासायनिक क्रिया को भी प्रभावित करते है,—उदाहरणार्थ, एक रासायनिक द्रव्य-विशेष, एल्लोक्सन (Alloxan) इसुलिन ग्रथि के रसो को निरुद्ध कर देता है। यदि यह रस पर्याप्त हो जाए तब तो यह इसुलिन-ग्रथि के सेलो तक को नष्ट कर डालता है। इसी प्रकार थाइराइड ग्रथि के हार्मज् का भी निरोध किया जाता है—सलफागुआनेडाइन (Sulfaguanadine) तथा अन्य भी सल्फा के विभिन्न रस इस ग्रथि के रसो को निरुद्ध करते है। कुछ हार्मन भी ऐसे होते है जो दूसरे के प्रभाव को क्रियान्वित होने से रोकते है—पिच्यूइटरी ग्रथि एक विशेष हार्मन, थाइराइट्रोपिक (Thyroitropic) को प्रवाहित करती है जो थाइराइड के स्राव को रोकता है। इसी प्रकार एस्ट्रोडियल (Estrodiol) टेस्टोस्टेरोन (Testesterone) के स्राव और प्रभाव को रोकता है यद्यपि ये दोनो हार्मज गोनाड्ज् से ही प्रवाहित होते है और रासायनिक प्रकृति मे बहुत कुछ समान भी है। सभवतः इसका कारण यह हो सकता है कि ये दोनो रस प्रायः समान होने से एक ही रासायनिक प्रक्रिया के लिए स्पर्धा करते है।

विभिन्न ग्रथियों के इन रासायनिक द्रव्यो को देखने के पश्चात् अब हम प्राणी के व्यवहारों पर इनके प्रभाव को भी सक्षेप मे देखेंगे क्योंकि इन दोनो के पारस्परिक संबध को समझना अत्यन्त कठिन होने पर भी अत्यन्त उपयोगी है। यद्यपि प्राणी की प्रक्रियाओं का निर्णय करने मे ये एकमात्र निर्णायक तत्व नही है, प्राणी के मस्तिष्क तंतुवाय तथा 'प्रदेशों' का प्रबध, केन्द्रीय तथा अन्य स्नायविक प्रबंध (Central Nervous System and Motor Nervous System) तथा विटामिन और एंज़ाइम भी बहुत अधिक निर्णायक

होते हैं, किन्तु प्रक्रिया की वाहक स्नायुओं मे प्रेरणा का उत्तरदायित्व बहुत कुछ हार्मज पर ही होता है। इसलिए यद्यपि हम प्रक्रिया के अन्य एजेटो को भी प्राणी-व्यवहार का अध्ययन करते हुए देखेंगे, किन्तु मुख्यत यहाँ हमारे अध्ययन के विषय हार्मज ही होगे। स्नायुततुवाय के प्रक्रिया पर नियत्रण को हम अगले अध्याय में विस्तार से देखेंगे जब कि मस्तिष्क प्रबध के आश्चर्यजनक यत्र को निबध के अन्त मे सक्षिप्त चर्चा करते हुए देखने का प्रयास करेंगे। वास्तव मे कोई भी एक पहलू प्राणी-व्यवहार के स्रोतो का निर्णय नही कर सकता, यह तो शरीर की पूर्ण समष्टि ही है जो अपने उलझनपूर्ण वैविध्य मे इसका निर्णय करती है।

× × ×

हम प्रवृत्ति और विचारण (Instinct and Intellect) तथा समझदारी (Intelligence) मे निहित अन्तर को आगे पृथक् निबध मे देखेंगे। इसलिए यहाँ हमे एक कामचलाऊ अभ्युपगम (Workable Hypothesis) के रूप मे यह मान लेना चाहिए कि मनुष्येतर प्राणियो के व्यवहार अथवा प्रवृत्तियाँ सामान्यत अचिंतित, अविचारित अथवा प्रवृत्यात्मक (Instinctive) होते है, और ज्यो-ज्यो हम अधिक अविकसित प्राणियो को ओर बढते जाएँ, त्यो-त्यो हम उनमे प्रवृत्यात्मकता अधिक पायेगे। इसी प्रकार मनुष्य के भी व्यवहार, जो पशु-सुलभ है, सामान्यत प्रवृत्यात्मक कहे जा सकते है, यद्यपि उनमे समझदारी और विचारणा का कुछ रंग भी मिला रहेगा ही। यदि हम यह कहें कि विशुद्ध रूप से शरीर-वैज्ञानिक प्रक्रिया प्रवृत्ति है और उससे भिन्न प्रक्रिया समझदारी या कुछ और, तो यह स्पष्ट न होने पर भी बहुत कुछ ठीक अवश्य होगा। अस्तु, अब हम इस विवाद को पाँचवे निबध के लिए छोड कर आगे बढते है।

इस निबध मे हमें प्रवृत्तियो और प्राणी की प्रक्रिया के स्रोतो (Stimulus conditions) का अध्ययन करना है जो अत्यन्त कठिन कार्य है; किन्तु जिसे समझना अगले सब निबधो के तर्को की न्याय्यता को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। न तो मै ही और न कोई अन्य ही आज इस स्थिति में है कि इस संबंध मे कोई अन्तिम बात कह सके, इसलिए यहाँ जो भी कुछ कहा जाएगा वह केवल एक संभावना ही हो सकती है। इसी प्रकार विभिन्न जातियों में प्रतीयमान रूप से एक ही व्यवहार के लिए कोई ऐसा सामान्य आधार अथवा कारण नहीं बताया जा सकता जो सार्वभौम हो। सभव है कुछ जातियाँ उनकी अपवाद भी हों। जैसे, अनेक प्राणी दो या दो से अधिक रग बदल सकते है, इसी प्रकार, बहुत से प्राणियों के रग ठीक अपनी परि-

वृत्ति के अनुसार होते है। सभव है किसी या किन्ही जातियो मे यह मानसिक प्रयास और चुनाव का परिणाम भी हो, और यह भी सभव है कि यह केवल शरीर की यान्त्रिक, भौतिक और रासायनिक स्थितियो का ही परिणाम हो। इनमे से चाहे हम किसी को भी सिद्धान्त रूप में स्वीकार क्यो न कर ले किन्तु संभवत· उसे सार्वभौम नही कहा जा सकेगा--क्योकि सदैव ही अपवादो की सभावना तो रहेगी ही। इसी प्रकार, प्राणी का कोई व्यवहार बाह्य-उकसाइट (External stimuli) का परिणाम भी कहा जा सकता है और अन्तर-उकसाइट (Internal stimuli) का भी, यहाँ केवल पहली या दूसरी और कम या अधिक सभाव्य ही है, सार्वभौम नियम नही। रंग-परिवर्तन अथवा अपनी प्राकृतिक परिवृत्ति के समान रंग होना प्राणी के लिए लाभदायक हो सकता है, और यह प्राणी के सेल्ज की स्वत.-जात रासायनिक प्रक्रिया का परिणाम भी हो सकता है और प्राणी का मानसिक प्रयास भी हो सकता है। इन दोनों मे किसी के कम या अधिक सभव होने की सभावना हो सकती है, किन्तु यह सर्वजनीन ही हो, ऐसी कोई शर्त नही है, जैसा कि हम अगले दो निबधो मे विस्तार से देखेगे। किन्तु यह अधिक संभाव्य प्रतीत होता है कि प्राणी किन्ही अन्त शारीरिक कारणो से प्रेरित होकर ही व्यापारित होता हो, उसका मानसिक प्रयास उस 'अन्त.प्रेरणा' से कुछ संबध न रखकर केवल उस अन्त.प्रेरणा या वासना के क्रियान्वित होने से ही सबध रखता हो, और इस प्रकार मानसिक प्रयास स्वय एक यान्त्रिक प्रक्रिया का ही परिणाम हो। बाह्य परिवृत्ति के साथ उसके दो सबध हो सकते है। एक तो यह कि परिवृत्ति उसके अन्त·शरीर की रासायनिक और भौतिक परिस्थितियो को प्रभावित कर सकती है और दूसरे उसकी अन्त-र्वासना के विकास अथवा व्यय के विषय (Object or image) के रूप मे साधन हो सकती है। किन्तु परिवृत्ति (Object) किसी मानसिक कारण के रूप मे किसी वासना की उत्पत्ति का कारण भी हो सकती है, यह सभव प्रतीत नही होता। परिवृत्ति यदि किसी रूप मे कारण होती भी हो तो केवल तभी यदि वह अन्त.परिस्थितियो मे किसी रासायनिक विस्फोट की सभावना का लाभ उठा सके, वह स्वय आन्तरिक परिस्थितियों का सृजन नही कर सकती।

(यहाँ सम्भवत: हम अपनी बात कहने मे बहुत आगे बढ़ गये है, एक-तरफा हो गये है, क्योंकि भय-क्रोध इत्यादि की उत्पत्ति मे बाह्य परिवृत्ति (Object or image) 'कारण' भी हो सकती है। इस सबध मे हम अगले निबध मे, जहाँ स्नायुतन्तुवाय पर विचार किया जायगा, कुछ कहेगे।

यहाँ हम केवल 'वासनाओं' (Appetites) के लिए ही कह रहे है, और इसके लिए यही सत्य है।)

इसलिए प्रक्रिया के स्रोत प्राणी के अन्त शरीर मे ही निहित माने जा सकते है। जहाँ तक उसकी वासना-व्ययी प्रक्रिया(Consummatory act) अथवा अन्तर्वासना की तृप्ति के लिए परिवृत्ति से सपर्क, जैसे भूख की वासना होने पर भोज्य-पदार्थ से सपर्क) का सबध है, उसे किसी भी प्रकार से विचारित अथवा किसी भी प्रकार से अपने लाभ की चेतना से स्वीकृत नही कहा जा सकता। इसी प्रकार यह केवल सयोग है कि प्राणी के शरीर का निर्माण, उसके अगो का गठन इत्यादि उसके लाभ के लिए हो, जैसा कि हम दूसरे और विशेषत. तीसरे निबध मे देखेगे।

अनेक वैज्ञानिक प्राणियो की प्रक्रिया और यहाँ तक की शारीरिक विकास तक को मानसिक चुनाव-जन्य मानते है। उनके विचार मे एक सजीव प्रक्रिया (Vital act) उनके शक्ति-स्रोतो को उनके लाभ में परिवर्तित कर दे सकती है। इस मत के वैज्ञानिकों के प्रतिनिधि के रूप मे E. S. Russell को उद्धृत किया जा सकता है। वह कहता है कि "इन (सजीव) प्रक्रियाओ को विशुद्ध भौतिक रासायनिक प्रक्रियाएँ कहना और सदैव इनकी एक ऐसी ही व्याख्या खोजना तथा इन्हे निरुद्देश्य समझना एक अत्यन्त उलझनपूर्ण और भ्रामक व्योरे (Detail) मे भटकना है, तथा इन प्रक्रियाओं की जीव-वैज्ञानिक (Biological) सार्थकता को और प्राणी के आत्म-निर्भर, आत्म-जननात्मक तथा विकासशील जीवन के साथ उसके संबंध को भूल जाना ह।" रसल सभवतः इस सजीव प्रक्रिया की सोद्देश्यता का समर्थन करने मे बहुत दूर तक जाता है। प्राणी-व्यवहार की इस प्रकार व्याख्या करने वालों की सख्या सौभाग्यवश, आज बहुत कम है, किन्तु इनका समन्वय करने वाले आज भी बहुत काफी है, और विकास तक की व्याख्या करते हुए वे किसी न किसी प्रकार के प्रयास और सोद्देश्यता तक को स्वीकार कर लेते हैं, जैसे, सेक्सुअल सिलेक्सन, एडेप्टेशन और आत्मरक्षा इत्यादि को। सेक्सुअल सिलेक्शन अथवा एडेप्टेशन इत्यादि भी यद्यपि आज बहुत कम समर्थित हैं तो भी एडेप्टेशन इत्यादि को सेक्सुअल सिलेक्शन से काफी अधिक मान्यता प्राप्त है। प्रवृत्ति का अध्ययन करने वाले समन्वयवादी वास्तव में कभी-कभी अन्तर्वासना को घपला भी देते है, वे रासायनिक-भौतिक अन्तर्वासनाओं को मानसिक अन्तर्वासनाओ से पृथक करना भूल जाते है।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम एडेप्टेशन या आत्म-रक्षा की प्रवृति को बिल्कुल

स्वीकार ही नही करते, हम स्पष्ट रूप से देखते और जानते है कि प्रत्येक प्राणी अपकारक परिवृत्ति से बचता है और सुखद-परिवृत्ति मे रहना पसंद करता है, किन्तु यह केवल एक प्रतिक्रिया है और उतनी ही मानसिक या यान्त्रिक है जितनी लज्जा से लाल हो उठने की प्रक्रिया। इसके अतिरिक्त सबसे बडी बात यह है कि दुख या दुखद अनुभूति का परिणाम चाहे प्राणी के अस्तित्त्व-रक्षा (Adaptability) के स्तर को उन्नत कर देता हो, किन्तु न तो इस अनुभूति (Reflex) का उद्देश्य ही यह होता है और न कारण ही जैसा कि हम दूसरे निबध मे देखेगे। किन्तु यह हमे इस निबध मे ही देखना है, और यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्राय सभी प्रकार की क्रियाओ के लिए प्राणी के शरीर मे तदनुकूल योग्यता (Capacity) होनी अत्यन्त आवश्यक है और वही योग्यता (Capacity) प्राणी के परिवृत्ति के साथ सपर्क होने पर अथवा आवश्यकता होने पर, व्यवहार-विशेष मे अभि-व्यक्त होती है। इस प्रकार, जिस प्राणी के दो टागे है, वह कभी भी चार टॉगो वाले प्राणी के समान व्यवहार नही कर सकता, चाहे अन्तर्वासना और बाह्य परिवृत्ति सर्वथा एक सी ही क्यो न हो, और क्यों कि वह उस प्रकार व्यवहार नही कर सकता इसलिए उसके तदर्थ प्रयास का, उसकी अकाक्षा का भी प्रश्न उत्पन्न नही होता। मनुष्य मे मानसिक 'प्रयास' का कारण उसका दैशिक और कालिक विषयो मे सबंध-सूत्र (Relations) खोजना या स्थापित कर सकना है, जो कि पशु मे नही होता। यह केवल विचारणा (Intellect) की ही विशेषता है, प्रवृत्ति की नही, जैसा कि हम पॉचवे निबंध मे देखेगे।

विकसित प्राणी (बन्दर, शिपेंजी इत्यादि) सीखने की योग्यता अपेक्षाकृत अधिक रखते है और उनकी क्रियाएँ यांत्रिक होने पर भी उस प्रकार जन्मजात नही होती जिस प्रकार कम विकसित (मछली इत्यादि) प्राणियो की होती है, जैसे बिल्ली और चूहे का प्रक्रियात्मक सबध इस प्रकार भी बन सकता है कि वह चूहे को खाने के बजाय उससे डरे या प्यार करे। यह बिल्ली की शिक्षा पर या अनुभव पर आधारित है, जो अनुभव न तो प्रवृत्यात्मक है, न विचारणात्मक और न समझदारीपूर्ण—यह प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया अथवा प्रक्रियात्मक प्रवृत्ति पर आधृत है। इसे पाव्लोव (Pavlov) के शब्दो मे निर्धारित प्रभाव (Conditioned effect) भी कहा जा सकता है (यद्यपि प्रक्रिया और निर्धारित प्रभाव मे बहुत अधिक अन्तर है) और सब से बड़ी बात जो यहाँ समझने की है और जिसके लिए हमने आगे दो निबंध और लिखे है, वह यह है कि चूहा बिल्ली

के अहेर की वासना का कारण नही है, यह केवल बिल्ली की भौतिक रासायनिक अन्त परिस्थिति तथा परिवृत्ति के साथ उसका प्रक्रियात्मक संबंध ही है जो उसे अपनी तृप्ति के लिए उकसाती, बाध्य करती और एक विशेष विषय के साथ अपने विकास का सबध जोड़ती है। विषय के साथ प्रक्रियात्मक सबंध मे सयोग (Chance) और सुविधा को ही कारण समझा जा सकता है, यद्यपि अपनी शारीरिक प्रकृति भी कुछ कारण हो सकती है—जैसे स्वाद बेस्वाद मे। किन्तु यह स्वाद सबधी निर्धारण वस्तु-विशेष पर निर्भर न होकर वस्तु के विशेष गुण और अपनी शारीरिक परिस्थिति की विशेष स्थिति पर निर्भर करता है। यह केवल सयोग ही है कि बिल्ली भूख मे किसी विषय के सपर्क मे आए और वह विषय उसकी उस वासना का ठीक उत्तर (Response) दे और इस प्रकार उसका प्रक्रिया-केन्द्रीकरण उससे सबद्ध हो जाए। मिसपिट (एक वैज्ञानिक) की बिल्ली यदि चूहे को स्नेह करती है और यदि महादेवी (हिन्दी की कवियित्री) की बिल्ली केवल मद्रासी पापड़ खाती है तो इसका कारण प्रक्रिया-केन्द्रीकरण को ही कहा जायगा।

यद्यपि इस प्रकार प्राणी बहुत कुछ 'स्वतन्त्र' हो जाते है और अपने व्यवहार मे अपेक्षाकृत अधिक 'अवसरवादिता' (Adaptability) लाने मे कुछ समर्थ हो जाते है, किन्तु उनकी यह अवसरवादिता उन्हे अपनी वासना को नियमित करने और परिवृत्ति के यात्रिक प्रभाव (Reflex Action) को रोकने मे भी समर्थ नही करती। इसे हम विशेष विस्तार से अगले निबध मे देखेंगे। यहाँ तो. हमे अब केवल यही देखना है कि ये भौतिक-रासायनिक परिस्थितियाँ किस प्रकार प्राणी के व्यवहार या प्रकृति को निर्धारित करती है और उनकी कारण है।

प्राणी-व्यवहार और शरीर-विज्ञान का स्वतत्र अध्ययन बहुत देर से होता है, किन्तु इन्हें बहुत देर तक एक-दूसरे पर घटित नही किया गया। प्राणी-व्यवहार का अध्ययन केवल व्यवहार के सामान्य वर्णन और कभी-कभी कल्पित कारणों के आरोपण तक सीमित रहा है और शरीर-विज्ञान का अध्ययन केवल शरीर की वृद्धि तथा तत्सबन्धी शारीरिक स्थिति के ज्ञान को ही महत्त्व देता रहा है। किन्तु पिछले कुछ वर्षो मे इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है और व्यवहार को सामान्यत. शरीर-वैज्ञानिक स्तर पर प्राय: सभी प्रकार से देखा जा रहा है। इससे यह प्रमाणित हो गया है कि प्राणी-व्यवहार के मुख्य स्रोत अन्त.शारीरिक ही है, जिनमें हार्मज़

का सबसे अधिक महत्त्व है। वैसे तो प्राय सभी प्रक्रियाओं मे हार्मज् का किसी न किसी प्रकार से हाथ रहता ही है, किन्तु मैथुन तथा मातृत्व इत्यादि मे तो ये पूर्ण रूप से ही अधिष्ठाता हैं। अन्य प्रक्रियाओ, जैसे घोसला बनाना, प्रवास करना तथा रग बदलना इत्यादि मे भी यद्यपि ये बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होते है किन्तु यहाँ या तो यह सबध नकारात्मक है अथवा परोक्ष, किन्तु यह प्राय. निश्चित ही है कि इनमे भी यही अद्वितीय महत्त्व की नियामक शक्ति है।

इन द्रव्यो को प्रवाहित करने वाली ग्रथियाँ कुछ तो ऐसी है जो एक विशेष समय पर और विशेष परिवृत्ति मे ही स्रवित होती है और शेष समय बन्द रहती है और इस प्रकार प्राणी की प्रक्रियाओं का एक चक्र बाँध देती है और दूसरी ग्रथियाँ या तो इन ग्रथियों की प्रेरणा से ही रस स्राव करती हैं अथवा परिवृत्ति के प्रकाश और तापमान इत्यादि से नियमित होती है। किन्तु प्राणी व्यवहार मे ये रस एकमात्र कारण नही है, सांवेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) और अन्य आन्तरिक परिवर्त्तन, जो मुख्यत: इन रसो से ही सबन्ध रखते है, कभी-कभी एक साथ ही केन्द्रीय स्नायु-ततुवाय (Central Nervous System) को उकसाते है जो कि प्रवृत्यात्मक व्यवहार के लिए उत्तरदायी होता है, और कभी-कभी अकेली सावेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) भी स्नायु ततुवाय को उकसाने के लिए पर्याप्त रहती है। सांवेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) की प्रकृति को हम अगले निबन्ध मे विस्तार से देखेगे। यहाँ हमारे लिए केवल इतना समझ लेना ही काफी है कि हार्मज के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रक्रिया-स्रोत भी शरीर में विद्यमान है जो प्राणी को प्रेरित करते है।

हार्मज्ञ—प्रक्रिया के स्रोत

मातृत्व—जैसा कि हार्मज की सूची मे देखा जा सकता है, पिच्यूइटरी ग्रथि के अन्तर्भाग से प्रवाहित होने वाले रसों मे एक प्रोलैक्टिन रस भी है जो छाती की मैम्मरी ग्रंथियो में दुग्ध-स्राव को प्रेरित करता है, तथा प्राणी मे मातृत्व-स्नेह को जन्म देता है। 'हार्मन-युग' से पूर्व इस सम्बन्ध मे पर्याप्त विवाद रहा है कि मातृ-स्नेह का स्रोत क्या है। फ्रायड इत्यादि ने मातृत्व स्नेह को काम-तृप्ति का ही एक प्रवंचना-मूलक पहलू बताया था जब कि धार्मिक और पवित्रतावादी क्षेत्र इसका तीव्र विरोध करते थे। किन्तु संभवत:, सभी समयो मे, यदि कोई दार्शनिक की 'ऊँची-दृष्टि' से नही सोचता तो, यह

अनुभव किया जाता रहा होगा कि इन दो वासनाओं की, तथा इनकी तृप्ति की अनुभूति सर्वथा भिन्न रूप की ही होती है। कहा जा सकता है कि, इनमे कही भी कोई समता नही। फ्रायड ने सभवत अपनी यह बात इसलिए भी कही होगी, क्योंकि मातृ-स्नेह की तीव्रता स्त्री को काम-वासना की तीव्रता से रहित करती है, और सभवत उसने समझा कि यह केवल एक ही वासना के दो पहलू भर हैं जो एक दूसरे को स्थानान्तरित करते है। इसके अतिरिक्त उसने अनेक ऐसी रोगी लडकियाँ भी देखी जो विवाह न चाहकर केवल पुत्र चाहती थी। वे पुरुष से डरती भी थी। उसने इसका कारण भी वही समझा जो वह पुरुष से डरने वाली अन्य रोगी स्त्रियो के केस मे समझता था। यद्यपि हम उसके उलझनपूर्ण मानसिक स्थिति के रोगियो के बारे मे कुछ भी कहने मे अपने आपको अयोग्य पाते है, किन्तु आज हम यह अवश्य निश्चित रूप से जानते है कि प्रोलैक्टिन न केवल मैम्मरी ग्रथियो में दुग्ध-स्राव को ही प्रेरित करता तथा मातृ-स्नेह का कारण होता है, प्रत्युत् गोनाड्ज के रस-स्राव को रोक कर काम-वासना को क्षीण करने का कारण भी होता है।

यह बात प्रयोग-सिद्ध है कि हार्मज का शरीर मे अनुपात मातृत्व-वासना की उत्पत्ति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रोलैक्टिन की कमी या अधिकता इसमे सबसे अधिक महत्व रखती हैं। नर कबूतरो में इस रस का इजेक्शन उनमें मातृत्व-स्नेह को उत्पन्न कर सकता है। वे अपने शिशुओं से न केवल मादा कबूतर (माता) के समान स्नेह ही करने लगते है प्रत्युत उनके लिए मादा के समान धान्यकणो से दूध भी बनाते है। पक्षियों की उन जातियों मे, जो बच्चो से विशेष-स्नेह नही करती, इस रस का इजेक्शन विशेष स्नेह उत्पन्न कर देता है। पालतू मुर्गे इस रस के इंजेक्शन से बच्चो से मादा के समान ही स्नेह करने लगते है, उसी के समान वे उन्हे चोगे के लिए साथ ले जाते है, बच्चों के भय-क्रंदन सुनने पर उसी प्रकार आक्रमणशील हो उठते है और उसी प्रकार उनकी रक्षा करते है। किन्तु कितनी भी प्रोलैक्टि-रस की मात्रा उन्हे अडों पर बैठने के लिए तैयार नही करती। इसी प्रकार चहों में भी। नर चूहो और अक्षत मादाओ मे यद्यपि मातृ-स्नेह के कुछ आसार इस रस के बिना भी पाए जा सकते है, किन्तु इस रस का इंजेक्शन उनमें इस प्रवृत्ति की तीव्रता को बहुत अधिक बढ़ा देता है। वे छोटे बच्चों को देर-देर तक चाटते रहते हैं, उन्हे खिलाते है और दुलराते है। यह प्रक्रिया उनमें और भी तीव्र की जा सकती है यदि उनमे प्रोलैक्टिन के साथ कुछ अन्य हार्मज भी, जो कि गर्भिणी मादा में पाए जाते है, इजेक्ट कर दिये जाएं तो। ये

हार्मन गोनाडोट्रोपिक (Gonadotropic) हार्मन कहे जाते है जिन्हे प्रोलैक्टिन के इंजेक्शन से कुछ पूर्व देने पर प्रभाव की तीव्रता बहुत अधिक बढ़ जाती है ।

ये हार्मन मातृत्व-स्नेह के एकमात्र उत्पादक हार्मन नही है । अन्य भी कुछ हार्मन इसकी उत्पत्ति में सहायक हो सकते है, यद्यपि उनका प्रभाव इस ओर बहुत कम होता है । प्रोजेस्टेरोन (Projesterone) और डेसोक्साईकोर्टिकोस्टेरोन (Disoxycorticosteron) इसी प्रकार के हार्मन है । रिडुल के अनुसार, जो हार्मन मातृत्व-स्नेह को उत्पन्न करते है, वे आंशिक रूप से इसलिए भी अपने प्रभाव को इस रूप मे क्रियान्वित करते है क्योंकि वे मैथुन-वासनाजनक हार्मज को रोकते है । इसका प्रमाण यह भी है कि ओवरी (ovary) या टेस्टिस का अपसारण नर और मादा चूहों मे मातृत्व स्नेह को बढ़ा देता है जब कि प्रोजेस्टेरोन और फोल्लिकल प्रेरक हार्मन की अधिक मात्रा इसे घटा देती है । इसी प्रकार पिच्यूइटरी-ग्रथि का अपसारण भी नर या मादा चूहों मे मातृत्व-स्नेह का कारण हो सकता है, जो कि आश्चर्य की बात है, किन्तु इसका कारण स्पष्ट है; पिच्यूइटरी ग्रंथि के अपसारण से गोनाड्ज का स्राव भी रुक जाता है और इस प्रकार इसका परोक्ष रूप से यह प्रभाव पड़ता है ।

जो भी हो, इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि मातृत्व-स्नेह के उत्पादन मे केवल प्रोलैक्टिन ही विशेष रूप से प्रभावशाली होता है । संभवतः इसका मुख्य कार्य गोनाड्ज् के स्राव को रोकना भी है यद्यपि मैम्मरी ग्रंथियो के रस-स्राव का कारण होने से यह मातृत्व स्नेह का अपरोक्ष कारण भी है । प्रोलैक्टिन संभवतः गर्भधारण के समय से ही प्रवाहित होने लगता है और तभी से गोनाड्ज इत्यादि के रस-प्रवाह को रोकना भी प्रारभ कर देता है । किन्तु संभवत., जैसा कि मैम्मरी ग्रंथियों को प्रभावित करने से भी स्पष्ट है, इसका एतत्संबंधी व्यवहार पर सीधा प्रभाव भी पड़ता ही होगा ।

अभी विज्ञान संभवतः यह बताने में असमर्थ है कि मातृ-स्नेह के प्रेरक हार्मन तथा अन्य प्रेरक परिस्थितियाँ (Stimulating factors) स्नायु-तंतुवायको किस प्रकार प्रभावित करती है, यद्यपि इन अनुभूतियों को क्रियान्वित करने वाले तंतुवाय के विषय मे कुछ अनुमान किया जा सकता है । बीच (Beach) के अनुसार (Cortex) के किसी भी भाग का २० प्रतिशत के लगभग काट देने से चूहे मे घोंसला बनाने, बच्चों को दुलराने, उनका

पालन करने तथा रक्षा करने की प्रक्रियाएँ गंभीरता से प्रभावित होती है, और समाप्त तक हो जाती है। चूहे के इन्ही केन्द्रों पर गभीर घाव करने से यद्यपि वे इन प्रक्रियाओ को निभा तो लेते है किन्तु ठीक तरह से नही। यहाँ तक कि उनके बच्चे ठीक पालन-पोषण के अभाव मे मर तक जाते है। वे वास्तव मे घातक परिस्थितियों मे अपने आप को उपयुक्त बनाने मे तथा अपने बच्चों की रक्षा करने मे असमर्थ रहते है। अपसारित कौर्टेक्स वाले चूहे अपने नवजात शिशुओ को साफ तक नही कर पाते, और यदि उनको घोंसले से बाहर रख दिया जाय तो भीतर उठा कर भी नहीं ले जाते।

केन्द्रीय स्नायु तंतुवाय एक और प्रकार से भी प्राणी की प्रक्रिया मे निर्णायक होता है, जिसमें इसका कार्य केवल विनियम केन्द्र (Exchange Centre) का ही नहीं होता। टिंबर्जन के अनुसार ऐसी प्रक्रियाओ मे न तो हार्मंज़ को ही कारण कहा जा सकता है और न आन्तरिक उकसाहट (Internal Stimuli) को ही, उसके अनुसार, पालतू कुत्ते कभी-कभी बिना किसी आन्तरिक कारण (भूख इत्यादि) और बाह्य उकसाहट (शिकार का विषय) के ऐसे ही दौडना प्रारम्भ कर देते है, जैसे शिकार के पीछे दौड़ रहे हों, और शिकार के व्यवहार को पूर्णतः प्रकट करते है। इसमें हम जानते है कि उनके पेट के भरे होने से उनके उदर की सकोच क्रिया (Contraction) को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता, .किन्तु अहेर-सबंधी दौड़ की आत्मव्ययी प्रक्रिया (Consumatory act) जन्य थकान बताती है कि यह प्रक्रिया क्रमश. घनीभूत होते हुए आन्तरिक कारणों की ही परिणाम हो सकती है, जो केन्द्रित होने के लिए समय चाहते हैं। उसके अनुसार, इस प्रकार की प्रक्रियाओं का उत्तरदायित्व केन्द्रीय स्नायुततुवाय पर ही है जो स्वय ही इन प्रक्रियाओं को जन्म देते है।

उक्त उद्धरण में यह कहना पर्याप्त कठिन है कि संतुष्ट कुत्ते की शिकार के लिए दौड़ एकान्त रूप से स्नायविक ततुवाय से ही प्रेरित है, क्योकि उदर पूर्ण होने पर तज्जन्य-शक्तिस्रोतों की उष्णता, जो कि भोजन पचने की रासायनिक और मसलसंबंधी प्रक्रिया से उत्पन्न होती हैं, भी इस प्रकार की दौड़ का कारण हो सकती है, जो अपने व्यय के लिए प्राणी को आत्मव्ययी प्रक्रिया मे नियोजित कर सकती है। उस समय कुत्ते का उद्देश्य शिकार करना न होकर संभवतः आत्म-व्यय मात्र हो सकता है, जिसका प्रमाण यह भी है कि वह आगे किसी लक्ष के न होने पर भी अनेक बार तेजी से दौड़ने लगता है और आश्चर्यजनक रूप से स्वामी से दूर और स्वामी की ओर दौड़ मे अपने आप को थकाने लगता है। इसका अर्थ यह नहीं

है कि हम केन्द्रीय स्नायु तंतुवायजन्य प्रक्रिया से इन्कार कर रहे है। हम केवल यही कहना चाहते है कि इस उदाहरण मे यह कहना, संभवतः इसी प्रकार अन्य प्रक्रियाओं मे भी, काफी कठिन हो सकता है। शायद हमारे पेट के मसल्ज् की और शायद अन्य मसल्ज की लय-बद्ध क्रियाएँ शक्ति-संचय के रूप में केन्द्रीय स्नायु-तंतुवाय में तथा रक्त भांडों मे सगृहीत होती रहती है। किन्तु इनके लिए हमारे पास कोई प्रमाण नही है। इस प्रकार इस केन्द्रीय तंतुवाय के लिए हम अभी तक केवल यही निश्चित रूप से जानते है कि यह हार्मज की, उदर की दीवारों की तथा अन्य ऐंज़ाइम्ज् और विटामिंज इत्यादि के क्रिया-व्यापारजन्य-शक्ति-सचय की उकसाहट या वासना को क्रियान्वित करने वाला केन्द्र है। वास्तव में अभी इस ओर काफी कार्य की आवश्यकता है।

घोंसला—जैसा कि हम अगले निबंध में विस्तार से देखेंगे, किसी भी प्रक्रिया का स्रोत किसी प्रकार का उद्देश्य नही है, यह केवल शरीर के अन्तः स्रोतो की अथवा बाह्य विषय की यंत्र-क्रिया-केन्द्रो (Reflexive System) पर भौतिक क्रिया है जो किसी आत्मव्ययी की अथवा प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया (Reaction Response) को जन्म देती है। इस प्रकार घोसला बनाना भी पक्षी के किसी निहित उद्देश्य के कारण नही होता, प्रत्युत् उसकी आन्तरिक और बाह्य तापमान सबधी परिस्थितियों का ही परिणाम होता है। इसी प्रकार घोसला बनाने की प्रक्रिया यद्यपि मैथुन और मातृत्व-वासना के साथ संबद्ध है, किन्तु ये संबध मानसिक न होकर शरीर-वैज्ञानिक ही है, ऐसा मेरा व्यक्तिगत विचार है। एक विशेष शरीर-वैज्ञानिक परिस्थिति उत्पन्न होने पर, जो अप्राकृतिक रूप से भी उत्पन्न की जा सकती है, पक्षी घोंसला बनाना प्रारम्भ कर देता है, जैसा कि हम पीछे प्रोलैक्टिन हार्मन के इंजेक्शन से मातृत्व-स्नेह और तज्जन्य व्यवहार की उत्पत्ति के उदाहरणों मे भी देख आए है। किन्तु यहाँ आश्चर्य की बात यह है कि विशेष जाति का व्यक्ति, जो कि अपनी जाति की मादाओ के एक विशेष व्यवहार से अपरिचित है, जैसे नर-कुक्कुट मादा-कुक्कुट, के तदीय व्यवहारों से, हार्मन के इंजेक्शन किये जाने पर उसी प्रकार व्यवहार करेगा जैसे उसके अन्य सजातीय करते है। एक जाति के सभी व्यक्ति उसी प्रकार घोंसला बनाएं, यह उनकी शिक्षा के कारण हो सकता है, किन्तु जो व्यक्ति उस शिक्षा से सर्वथा अनभिज्ञ है, वह भी उसी प्रकार यदि व्यवहार करे तो इसका केवल यही अर्थ हो सकता है कि वह जाति-विशेष उस प्रकार के व्यवहारों को क्रियान्वित करने के लिए भी एक

विशेष शारीरिक यत्र रखती है जो एक ही समान प्रेरित होता है और एक ही समान क्रियान्वित होता है । जैसा कि हम आगे प्रवास की प्रवृत्ति पर विचार करते हुए देखेंगे, यह समता और अधिक आश्चर्यजनक रूप से व्यापक और मनोरजक होती है ।

अस्तु, घोसला बनाने की प्रवृत्ति अन्य प्रवृत्तियो के समान ही एक स्वतत्र प्रवृत्ति है, इसीलिए यह मातृत्व और मैथुन से सर्वथा स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप मे भी आ सकती है । इसलिए हम इस प्रक्रिया की उत्पत्ति के भी उन विशेष कारणों का अवलोकन करेंगे, जो उसके प्रेरक है । इसके लिए सौभाग्यवश ऐसे प्रमाण उपलब्ध है जो प्रयोगाश्रित है और जिनमे कल्पना और अतएव मत-भेद की कम सभावना है । इसमे तापमान, हार्मन और शरीर की विशेष तापमान को आवश्यकताएँ इत्यादि अनेक कारण हो सकते है जिन्हे हम अब देखेंगे ।

रजस्राव और गर्भधारण.—घोंसला बनाने की प्रवृत्ति का रजस्राव और गर्भधारण के समय की तापमान की आवश्यकता से बहुत बड़ा सम्बन्ध है, जो कि घोंसले की उष्णता-सरक्षण की योग्यता पर आश्रित है । रजस्राव के दिनो मे प्राणी की रासायनिक प्रक्रियाओ का स्तर बहुत ऊँचा होता है और उसके शरोर मे बड़ी उष्णता होती है । वह उस उष्णता से शक्ति-सचय के व्यय के लिए तीव्रता से भागती-दौड़ती है । इससे रज-स्राव के दिनों में घोंसला बनाने की प्रवृत्ति प्रायः बिल्कुल ही नही होती । इसके विपरीत गर्भधारण के बाद, शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओ का स्तर बहुत घट जाता है और शरीर की उष्णता समाप्त हो जाती है । इसलिए इन दिनों मादाएं विशेष रूप से गर्म तापमान और विश्राम चाहती है । इसी से ये दिन घोंसला बनाने तथा उसमे विश्राम करने मे बीतते है । यह प्रायः सभी जानते है कि गर्भधारण के पश्चात् रज-स्राव बंद हो जाता है और उष्णता-उत्पादक हार्मन भी बन्द हो जाते है और शरीर के शक्ति-स्रोत गर्भस्थ शिशु के पालन-पोषण मे ही व्यय हो जाते है । यह अवस्था गर्भधारण के अन्तिम दिनो में और भी गम्भीर हो जाती है और शिशु-जन्म के कुछ दिन बाद तक रहती है । उसके बाद घोंसला समाप्त कर दिया जाता है । कुछ जातियों में, विशेषत स्तनपायियो की—पुन रज-स्राव शिशु-जन्म के एकदम बाद ही फिर प्रारम्भ हो जाता है और उष्णता बहुत अधिक मात्रा मे बढ जाती है, किन्तु थोड़े दिनों के बाद ही यह लम्बे समय के लिए बद हो जाता है । यदि इस उष्णता के काल मे उसे कोई नर प्राप्त हो सके और गर्भाधान हो जाये, तो पुनः वही चक्र उसी समय प्रारम्भ हो जाता है ।

तापमान—जैसा कि हम ऊपर भी कह आए है, घोसला बनाने का कारण उष्णता-संरक्षण ही है । यदि रज-स्राव के दिनों मे मादा (या नर जो भी जाति-विशेष मे घोंसला बनाने का कार्य करता हो) को ऐसे तापमान मे रखा जाय जिसमें इसकी उष्णता-संरक्षण की आवश्यकता पूरी हो जाय, तो वह घोसला बनाने मे बहुत कम ही रुचि लेगा और उसके निर्माण मे बहुत कम सामग्री का प्रयोग करेगा । यह प्रयोग चूहो पर सफलता से किया गया है । यदि उन्हे कमरे के सामान्य तापमान मे रखा जाय तो भी वे घोसला बनाने मे बहुत कम कागज और अन्य सामान का प्रयोग करते है और उनका वह घोसला बड़ा ढीला-ढाला होता है । किन्तु कम तापमान मे उनकी घोसला बनाने की प्रक्रिया बहुत अधिक बढ जाती है और वे घोसला बनाने मे कई-सौ फुट कागज का प्रयोग करते है । ये कागज बहुत व्यवस्थित और बहुत कसकर घोसले मे प्रयुक्त किये जाते है । (morgon) इससे सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि घोसला बनाने की प्रक्रिया सीधे शरीर के अन्त. स्रोतो और परिवृत्ति के तापमान की सापेक्षता से बधी है । यदि गर्भधारण के दिनो मे पक्षियो मे उनकी उष्णता-सरक्षण की आवश्यकता को पूर्ण करने वाले विटामिन और हार्मन इंजेक्ट कर दिये जाएँ तो भी वे उसी प्रकार घोसला बनाने में कम रुचि लेगे, जैसे बाहरी तापमान के ऊँचा करने पर वे कम रुचि लेते है । उनके शरीर की आवश्यकता चाहे जैसे भी पूर्ण हो, उनकी प्रक्रिया का स्तर घट जाएगा ।

किन्तु सभवत यह भी कारण सार्वभौम नही है, नर थ्रीस्पाईडस्टिक्कलबैक उष्णता-संरक्षण की आवश्यकता के कारण शायद घोसला नही बनाता क्योकि उसमे रज-स्राव नही होता और न गोनाड्ज का स्राव उन दिनो बद होता है । इसके अतिरिक्त, वह मादा के अंडे देने से और मादा के साथ मैथुन से भी पहले ही घोंसला बनाता है, उस समय उसके शरीर का रासायनिक क्रिया-व्यापार भी अधिक तीव्र होने से उसके शरीर की उष्णता बहुत अधिक होती है । संभवत उसकी घोंसला बनाने की प्रक्रिया का सबन्ध उसके गोनाडल हार्मज से है, उष्णता-सरक्षण से नही । किन्तु यह भी पूरे निश्चय से नही कहा जा सकता, क्योकि घोसला बनाने के पश्चात् यदि उसके अंडे उठा लिए जाए तो वह पहिले को तोड़कर पुन घोंसला बनाता है और मादा की प्रतीक्षा करता है । इसलिए घोंसला बनाने की प्रक्रिया का कारण केवल गोनाड्ज के स्राव को भी नही कहा जा सकता । अन्य क्या कारण हो सकता है, यह कहना कठिन है । हम केवल उसकी प्रक्रिया का वर्णन-मात्र कर सकते है ।

नर थ्रीस्पाईडस्टिक्कलबैक मैथुन ऋतु प्रारभ होने पर घोसला बनाता है और उसके पश्चात् उसके वाहृच क्षेत्र (इसकी सीमा प्राय: निश्चित होती है) मे खडा उसकी रक्षा करता है। यदि कोई नर, अन्य प्राणी, अपनी ही जाति की अपक्व आयु की मादा अथवा भुक्त मादा उस क्षेत्र मे प्रवेश करते है तो वह उन पर आक्रमण करता है। यदि कोई योग्य मादा आती है तो वह उसके सम्मुख वक्रनृत्य (Zigzag dance) करता है और उसकी ओर से स्वीकृति का संकेत पाकर वह उसे अपनी थूथनी से घोसले की ओर धकेलता है, यहाँ वह अडे देती है, और दूसरी ओर से निकल जाती है, नही तो नर उसे आक्रमण से भगा देता है। तब वह बाहर आकर एक विशेष प्रकार से पख मार कर अडो के समीप से पानी की लहर फेंकता है जिससे उन्हे वायु मिलती है, यह उनके पकने के लिए आवश्यक होती है। यदि वे अडे खराब हो जाएं तो नर उस घोंसले को तोड़ डालता है और नया घोसला बना कर उसी प्रकार पुन मादा की प्रतीक्षा करता है।

इस विवरण से सामान्यत: यही प्रतीत होता है कि स्टिक्कलबैक केवल अंडों के लिए ही घोसला बनाता है और उसकी यह प्रक्रिया सोद्देश्य है, किन्तु जब हम देखते है कि बच्चे उत्पन्न हो जाने पर वह उन्हें खा तक जाता ह यदि वे बच कर भाग न जाऐ तो, तब यह कल्पना केवल कवि-कल्पना ही कही जा सकती है। सभवत ऐसी किसी मधुर-कल्पना के लिए प्रकृति मे कोई स्थान नही है। इसका कारण सभवत: हार्मन-रसोदय तथा प्रक्रिया केन्द्री-करण को ही कहा जा सकता है। यहाँ प्रक्रिया केन्द्रीकरण स्टिक्कलबक के संम्पूर्ण बाह्य व्यवहार की सार्थकता की व्याख्या करने के लिए प्रयुक्त किया गया है—नरों पर आक्रमण, मादा को अंडे देने के बाद धकेल देना, अँडे खराब होने पर दूसरा घोसला बनाना, इत्यादि, सभी कुछ। इस का प्रमाण यह भी है कि थ्रीस्पाईड की आक्रमण-प्रवृत्ति को उकसाने के लिए किसी भी वस्तु का लाल रंग का होना ही पर्याप्त है फिर चाहे उसकी आकृति कैसी भी हो जब कि ठीक आकृति की मूर्ति भी रंग लाल न होने पर उसे आक्रमण के लिए आकर्षित नही कर सकती। इस प्रकार की बाह्य उकसाहट-जन्य क्रियाओं की व्याख्या सभवत: हमारे 'प्रक्रिया-केन्द्रीकरण' से ही ठीक हो सकती है-जैसा कि हम अगले निबंध में विस्तार से देखेंगे। यहाँ हमारे लिए केवल इस बात का ही अधिक महत्त्व है कि यह प्रक्रिया केन्द्रीकरण अपने अस्तित्व के लिए हार्मज़ पर किस प्रकार और कितना अधिक आधारित है। थ्रीस्पाईंडस्टिक्कल-बैक के इस मैथुन-संबंधी व्यापार में वही एकमात्र कारण है, इसका प्रमाण यह भी है कि गोनाड्ज़ के प्रस्रवण की ऋतु में ही उसकी ये क्रियाएँ प्रारम्भ

होती है और तभी पृष्ठ पिच्यूइटरी से स्राव के कारण शरीर के पृष्ठ रंग निर्माण के कारणभूत मेलानोफोर्ज के पृष्ठ भूमि मे चले जाने से उनका रग भी लाल होता है जो कि उनके लिए अपने प्रतिस्पर्धी की भी पहिचान है। नर प्रतिस्पर्धियो का द्वद्व किस प्रकार हार्मज् से निर्धारित होता है, यह हम आगे मैथुन-हार्मज का अध्ययन करते हुए देखेंगे।

घोंसला और हार्मज्ञ—इस प्रकार हम घोंसला बनाने मे भी हार्मज के प्रभाव को समझ सकते है। चाहे ये कारण पक्षियों, स्तनपायियो और मछलियों में सदैव एक से न भी हो।

पीछे हम रजस्राव और गर्भ धारण कालों मे घोसला बनाने की प्रक्रिया की स्तर-भिन्नता के विषय मे देख आए है, यद्यपि यह भी स्तर-भिन्नता हार्मज् से सम्बन्ध रखती है, तो भी इस महत्त्व पूर्ण शरीर वैज्ञानिक पहलू का
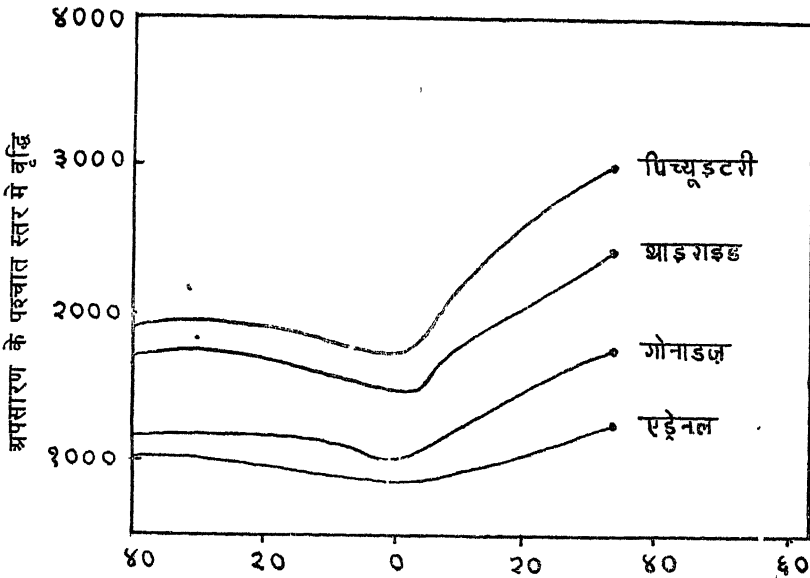
अपसारण से पूर्व और पश्चात् दिनों मे समय
(ग्रंथियों के अपसारण का प्रभाव)

पृथक् से अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में रज-स्राव और गर्भ धारण की प्रक्रिया के स्तर के समान ही अन्य हार्मज् का भी सम्बन्ध अधिकतर तापमान के स्तर के साथ ही है। पिच्यूइटरी ग्रंथि, के अपसारण के पश्चात् घोंसला बनाने की प्रक्रिया का स्तर दो-सौ प्रतिशत तक बढ़ जाता है। इसी प्रकार

एड्रेनल ग्रंथि का अपसारण २४ प्रतिशत तक प्रक्रिया को बढा देता है, थाइराइड सौ प्रतिशत तक तथा गोनाड्ज़ ५० प्रतिशत तक प्रक्रिया के स्तर को बढा देते है । पिच्यूइटरी ग्रंथि का अपसारण यद्यपि सब से अधिक प्रभाव छोड़ता है तो भी इसका प्रभाव सीधा प्रक्रिया पर न होकर अन्य ग्रथियो पर होता है, जो कि प्रक्रिया पर प्रभाव डालते है और शरीर के तापमान को घटा देते है । इसका प्रमाण यह भी है कि पिच्यूइटरी अपसारण के कई दिन बाद तक भी प्राणी के शारीरिक तापमान पर कोई प्रभाव एकदम से लक्षित नही होता जैसा कि हम पीछे भी देख आए है । पिच्यूइटरी के हार्मन थाइराइड, एड्रेनल और ओवरी या टेस्टिस इत्यादि सभी ग्रथियो के रस-स्राव के स्तर को प्रभावित करते है । वास्तव मे केवल एक ग्रथि के प्रभाव को ही यदि नापा जाए तो थाइराइड शायद इस प्रभाव मे सब से अधिक महत्त्वपूर्ण होगा । इसके अपसारण से किन्ही विशेष कारणो से, जिन्हे हम नही जानते, प्राणी का शरीर दुर्बल और मन अशक्त हो जाता है ।

स्नायविक प्रबंध—घोसला बनाने की प्रक्रिया मे यद्यपि हार्मज़ का बहुत अधिक महत्त्व है, किन्तु जैसा कि हम ऊपर भी देख आए है, तदीय आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाने पर भी प्राणी घोसला बनाते ही है, फिर चाहे उसमे कम रुचि ही क्यो न ले । इसी प्रकार अनेक बार घोंसला तैयार हो जाने पर भी घोंसला-निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है, जैसे अभी तृप्ति ही न हुई हो। बिना शिक्षा के भी अपनी जाति के अन्य व्यक्तियों के समान ही टिपिकल घोसला बनाना इत्यादि भी यही प्रमाणित करते है कि इसमें स्नायविक प्रबध एक महत्त्वपूर्ण कारण है, चाहे आज हम निश्चित रूप से यह न भी जानते हों कि ऐसा किस प्रकार होता है । तो भी, तापमान के सापेक्ष-स्तर मे अन्तर का प्रभाव-ग्रहण स्नायुओ द्वारा ही होने से भी घोंसला बनाने मे हम उनके महत्त्वपूर्ण भाग को समझ सकते है । यदि किसी प्रकार से स्नायुओं मे तापमान के स्तर को ठीक रखा जा सके तो हार्मन इत्यादि के अपसारण का कोई भी प्रभाव प्रक्रिया पर नही होगा । बाह्य तापमान की कमी या अधिकता से प्रक्रिया के स्तर मे निम्नता या उच्चता भी इसके प्रमाण है । इसके अतिरिक्त स्नायविक प्रबंध मे कुछ निश्चित केन्द्र भी है जो कि शरीर के तापमान का नियत्रण करते हैं । इनमे से दो हाइपोथालामस (मस्तिष्क का अन्तर्मध्य) मे है—एक गर्म तापमान के लिए और दूसरा ठडे के लिए । इनमें अगला ठडे के लिए है और पिछला गर्म के लिए । तापमान में परिवर्तनो के ज्ञान के लिए एक पृथक् केन्द्र मस्तिष्क के गोलार्ध (Cerebral Hemisphere) के पृष्ठ

भाग मे है। क्योंकि हाइपोथालामस के अग्रभाग के अपसारण से शरीर के तापमान का नियत्रण नही हो सकेगा, अथवा कहे कि सर्दी का नियत्रण नही हो सकेगा, इससे प्राणी मे घोंसला बनाने की क्रिया की तीव्रता बहुत अधिक बढ जायगी जबकि इसके विपरीत प्रदेश के अपसारण से अत्यधिक घट जायगी, अथवा समाप्त हो जाएगी।

तापमान-नियत्रण के अतिरिक्त भी स्नायविक प्रबध का घोसला बनाने में, जैसा कि अन्य सब प्रक्रियाओं में भी, बहुत अधिक महत्त्व है। इसी प्रकार प्रक्रिया को क्रियान्वित करनेवाला धमनि-यंत्र (Motor nervous system) भी इस मे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योकि इनके बिना कोई भी प्रक्रिया क्रियान्वित नहीं हो सकती। सभवत: इनका इससे कुछ अधिक महत्त्व भी है,। घोसला किस प्रकार का बने, यह सभवत: मस्तिष्क-प्रबध के अतिरिक्त केन्द्रीय और व्यापारित करने वाले स्नायुततुवाय पर भी निर्भर करता है, यद्यपि इसके लिए हम कोई विशेष प्रमाण नही दे सकते।

एकान्तवास—प्रवास और घोंसला-निर्माण के समान ही शीत मे एकान्तवास भी सामान्यत: तापमान से ही संबंध रखता है। शीत-ऋतु मे यह व्यवहार उष्ण रक्त जाति के स्तनपायियों में देखा जा सकता है। इन दिनों भोजन की उपलब्धि बहुत कम होती है और रासायनिक क्रिया-व्यापार का स्तर शरीर मे बहुत नीचा हो जाता है। इसलिए प्राणी प्रक्रिया-सचालन में असमर्थ हो जाता है। स्वभावत: ही इससे वह क्षीणतम शेष शक्ति के अपव्यय से बचता है। इस विपत्ति-पूर्ण काल यापन के लिए वह ऐसा स्थान खोजता है जिसमें सर्दी और शत्रुओ से आत्म-रक्षा कर सके। यहाँ वह शीत के दिन गम्भीर मूर्छा की विस्मृति में बिताता है। जब सर्दी की ऋतु समाप्त हो जाती है और भोजन की उपलब्धि की सभावनाएँ भी बढ जाती है, तब एकान्तवास की मूर्छा समाप्त हो जाती है और प्राणी जीवन की सामान्य प्रक्रियाओं को क्रियान्वित करने के लिए बाहर आता है।

तापमान और हार्मोन संबंधी परिवर्त्तन—तापमान में परिवर्त्तन सभवत: इस एकान्तवास का सबसे प्रमुख कारण है, इसीसे ग्रथियों के क्रिया-व्यापार मे भी अन्तर पड़ता है, किन्तु शरीर पर प्रभाव के लिए दोनों की ही सापेक्ष-स्थिति उत्तरदायी होती है। ग्रंथियों में आर्तव-परिवर्तन को हम यदि इस व्यवहार का प्रत्यक्ष कारण कह सकते है तो तापमान को परोक्ष। एकान्त में प्रवास करने वाले प्राणी सामान्यत· उष्ण-रक्त होते है, जो कि अपने शारीरिक तापमान को अपनी परिवृत्ति से ऊंचा रखते है।

किन्तु शीत-ऋतु मे ये अपने शरीर के इस तापमान को ठीक नही रख पाते, जैसे शीत-रक्त प्राणी रखते है। इसका एक मात्र कारण यही है कि ये अपने शरीर के रासायनिक क्रिया-व्यापार को ठीक नही रख सकते, जिसका कुछ उत्तरदायित्व भोजन-प्राप्ति की कमी पर भी है। किन्तु इसका प्रमुख कारण शायद यह है कि ये प्राणी इस ऋतु मे अपने उष्णता-सरक्षण के आन्तरिक साधनो को ठीक नही रख पाते। यदि इन्हें सर्दियो में सामान्य कमरे के तापमान मे भी रखा जाय, जो कि बाहर के तापमान से कुछ उच्च होता है, तो भी उनकी पिच्यूइटरी, थाइराइड और एड्रेनल ग्रंथियों का रस-प्रवाह बुरी तरह से क्षीण हो जाता है (Woodward)। किन्तु ग्रथियो के रस-प्रवाह में ये परिवर्त्तन केवल तापमान से ही संबध नहीं रखते क्योंकि यदि इन प्राणियों को गर्मी की ऋतु में, जब कि इनका ग्रथि-रस-प्रवाह अपने पूर्ण वेग पर होता है, शीत तापमान मे भी रखा जाय तब भी इनकी ग्रंथियों के स्राव मे प्रायः कोई कमी नही आती और वे एकान्तवास में नही जाते, फिर चाहे सर्दी कितनी भी क्यो न हो। सच तो यह है कि इनका ग्रंथि-स्राव सर्दियो मे बहुत अधिक बढ जाता है।

प्रवास—ऊपर वर्णित सभी प्रवृत्तियो से अधिक आश्चर्यजनक और आकर्षक प्रवृत्ति प्रवास की है। यह प्रवृत्ति सामान्यतः पक्षियो और मछलियों मे ही पाई जाती है, स्तनपायियो, रीढ़धारियो और कृमियों मे शायद ही किसी जाति मे इस प्रवृत्ति को पाया जा सके। यह प्रवृत्ति अभी बहुत अधिक अध्ययन की अपेक्षा रखती है। इसके कारणभूत शरीर वैज्ञानिक प्रबधो और संस्थानों को बता सकना अभी तक उतना निर्विवाद नहीं हो सका है जितना होना चाहिए। वास्तव मे इसके कुछ एक पहलू तो अत्यन्त रहस्यमय और मनोरजक है। सामान्य मनुष्य के लिए यह 'ईश्वर की महिमा है,' या फिर 'यह उनका स्वभाव ही है', किन्तु एक वैज्ञानिक या विचारक को इसका कोई प्रयोगाश्रित और कारण-कार्य-सम्मत-संगत उत्तर देना होगा। इससे उसे उन सब तथ्यों का विवेचन करना होगा जो किसी प्रक्रिया के आधार मे कार्यशील होते है। उससे पूछा जा सकता है कि कोई प्रवृत्ति क्यों क्रियान्वित होती है? उसकी प्रेरणा क्या है? पक्षी जिस ओर को प्रवास करते है, वह क्यों?—इत्यादि।

प्रवासी पक्षी—पक्षियों का प्रवास एक प्रसिद्ध बात है। भारत में भी, जैसे अन्य देशों में, पक्षी सर्दियों में उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवास करते है। कोयल बसन्त ऋतु मे उत्तरी मैदानों में प्रवास करती है। हस शीत ऋतु में

हिमालय से उतरते देखे जाते है । कालीदास के मेघदूत मे भी ऐसे प्रवासशील पक्षियो का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है । किन्तु कालीदास का यक्ष उस वर्णन से मेघ को ललचाना चाहता था जिससे वह उस एकान्त और सुदीर्घ पथ को पार कर उसकी प्रेयसी तक सदेश ले जाने मे हिचकचाए नही। किन्तु हम वह कार्य करने को नही बैठे है, हमें इस प्रकाश में एक निश्चित कारण-कार्य-संबंध की शृंखला खोजनी हैं, और निश्चित रूप से यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हम आज इस कारण-कार्य-सबंध को कुछ दूर तक जानते है और आगे प्रयोग कर रहे है। हम चाहे उस सौन्दर्य की अनुभूति न भी कर सके जिसकी महाकवि ने की थी, किन्तु हम आज कम सौभाग्यशाली नही हैं, क्योकि हम आरोपित कल्पना के बजाय उस यथार्थ को जानते है जिसका पक्षियों के जीवन-मृत्यु के कटु सघर्ष से संबंध है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि प्रवास की ऋतु मे गोनाड्ज (Gonads) में बड़ा परिवर्तन होता है। सम्भवत. यह परिवर्तन परोक्षरूप से पिच्यूइटरी ग्रंथि पर प्रकाश के प्रभाव से प्रवाहित होने वाले रसों के द्वारा होता है। यद्यपि इसके अन्य कारण, जैसे तापमान में अन्तर और आर्तव-चक्र भी होने ही चाहियें। किन्तु प्रकाश इसमे प्रमुख कारण प्रतीत होता है । एक प्रयोग मे दो पहाड़ी पक्षी एक जैसे ही तापमान, एक जैसे ही भोजन पर पिंजरो मे रक्खे गये । किन्तु एक पक्षी के सामने प्रकाश के उचित प्रबध से उसी प्रकार दिन छोटे किये गये जैसे पतझड़ मे क्रमशः होते है, जब कि दूसरे के सम्मुख बढ़ते हुए दिनो का क्रम उपस्थित किया गया, जैसे वसत मे होता है । प्रयोग के अन्त मे देखा गया कि प्रथम वर्ग के गोनाड्ज़ मे बिल्कुल ही कोई अन्तर नही आया था जब कि दूसरे वर्ग के गोनाड्ज़ मे बहुत अन्तर पड गया था। इसके अतिरिक्त पहले वर्ग के पक्षियों मे किसी ने भी प्रवास की उत्कंठा प्रकट नहीं की जबकि दूसरे झट तीव्रता से उड़ गए। क्योकि पहाड़ी पक्षी वसन्त मे उत्तर की ओर प्रवास करते है, इससे हम सहज ही अनुमान कर सकते है कि गोनाड्ज़ उनकी रासायनिक क्रिया (Metabolism) को बहुत बढ़ा देते है और इससे उनके शरीर की उष्णता बहुत बढ जाती है । ऐसी अवस्था मे वे शीतल परिवृत्ति की खोज करते है । यद्यपि यह एकदम निर्विवाद नही है कि प्रकाश के समय मे परिवर्तन और हार्मन के तीव्रस्राव इसके एकमात्र कारण है, किन्तु यह एकदम निश्चित है कि ये प्रमुखतम कारणो मे से है।

किन्तु कुछ ऐसे भी पक्षी है जिनमें प्रकाश तथा गोनाड्ज़ के परिवर्तन प्रवास से कोई संबंध नही रखते, प्रवास इन परिवर्तनों के बिना भी होता है (Morgan)। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि न तो गोड्ज़ इत्यादि

प्रवास के एकमात्र कारण ही और न सार्वभौमिक कारण ही, किन्तु इसका अर्थ यह नही कि इनके प्रवास मे कोई हार्मन कारण नही है। यद्यपि बीच (Beach) के अनुसार, कुछ पक्षी गोनाड्ज अपसारित कर दिये जाने पर भी प्रवास करते ही है किन्तु कुछ वैज्ञानिको का विचार है कि इनके प्रवास मे पिच्यूइटरी ग्रथि के स्राव कारण हो सकते है, जिनके स्राव का उद्गम ऋतुचक्र ही है। यह हम जानते ही है कि पिच्यूइटरी के स्राव थाइराइड और गोनाड्ज़ के प्रवाह को भी प्रेरित करते है। किन्तु, सम्भवत. इस कल्पना का कोई विशेष आधार नही है। तो भी अन्य किसी अधिक पुष्ट और सर्व-सम्मत कारण के आभाव मे हम इसे काम-चलाऊ कल्पना (Warkable Hypothesis) के रूप मे स्वीकार करके चल सकते है। ऐसा करने का औचित्य यह है कि अन्य सभी जातियो मे हम पिच्यूइटरी को ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस प्रक्रिया का कारण पाते है। इससे यह माना जा सकता है कि इस प्रक्रिया को महत्वपूर्ण कारण पिच्यूइटरी ग्रथि ही है। यह ग्रंथि, जैसा कि हम पीछे भी कह आए है, शरीर में की अधिकांश ग्रंथियो के रस-स्राव का या तो नियंत्रण करती है या कम से कम उनके स्राव मे महत्व-पूर्ण तथा आवश्यक है। जैसा कि हम आगे भी देखेंगे, सालमेंडर (Salmendor) मछली मे भी पिच्यूइटरी ग्रथि ही प्रवास की कारण है। यदि पक्षियो या मछलियों मे छोटी आयु मे भी परिपक्व पिच्यूइटरियो को लगा दिया जाय तो ये व्यक्ति बड़ी आयु के व्यक्तियों के समान ही व्यवहार करने लगते है।

पक्षियों के प्रवास का सबसे अधिक आकर्षक और उलझनपूर्ण पहलू है उनके प्रवास की दिशा का एक निश्चित और अन्त:प्रेरणा मे निहित होना। यह एकदम आश्चर्य की बात है कि कैसे नवजात शिशु भी, बंदी-जीवन मे युवा होने पर बिना किसी शिक्षा के और सहायता के ठीक दिशा की ओर ही प्रवास करते है। इसी प्रकार प्रवास-काल मे उत्पन्न बच्चे भी स्वत: ही, और अकेले ही कही छोड़े जाने पर भी, अपने ठीक घर की ओर लौट चलते है और वही पहुॅच जाते है जहॉ उनके अभिभावक और जनक पहुँचे होते है। सभव है पक्षियो की प्रवास-यात्रा और लौटने की यात्रा में उनका पीछा करने पर कुछ ज्ञात हो सके, किन्तु न तो यह सहज ही है और न शायद बहुत उप-कारक ही, जैसा कि वायुयान से पीछा करने के कुछ प्रयासो से प्रमाणित हो चुका है। यह प्राय: निश्चित ही है कि पक्षी बिना किसी पूर्व शिक्षा या नेतृत्व के भी अपने निश्चित जातीय पथ का अनुसरण कर सकते है चाहे उन्हे सजातीयों के लौट जाने के काफी समय पश्चात् भी क्यो न छोड़ा जाय और चाहे किसी एकदम अनजाने स्थान पर ही क्यों न छोड़ा जाय। एक बार अमे-

रिका मे कुछ नवजात शिशु पिजरों में रोक लिए गये जबकि शेष प्रवास कर गए। सबके चले जाने के एक मास पश्चात् भी उन्हे जब छोडा गया, उनमें से आधे से अधिक पक्षी ठीक उसी रास्ते से, उसी स्थान पर पहुँच गये जहाँ उनके अन्य सजातीय पहुँचे थे। दूसरे भी अनेक प्रयोग पक्षियो की उस जन्म-सिद्ध 'प्रतिभा' को प्रमाणित करते है, क्योकि प्रवास का यह पथ हजारो मील लबा तक भी हो सकता है। किन्तु प्रश्न किया जा सकता है कि शेष क्यो ठीक दिशा की ओर नही जा सके जबकि आधे से अधिक ठीक दिशा की ओर लौट सके ? इस के अनेक कारण हो सकते है किन्तु उनका तब तक अनुमान करना कठिन है जब तक हम यह नही जान लेते कि उन पक्षियो को कैसे छोडा गया। तो भी हम समझते हैं कि किसी प्रकार से भी उनके भटकने का कारण केवल सयोग (Chance) ही है, क्योकि सभव है कि वे ठीक दिशा मे उड़ते हुए अचानक भटक गए हो और किसी अन्य वायु की लहर मे पड़ गए हो; यह भी सभव है कि प्रारभ से ही उन्हे ठीक लहर न मिली हो! इसमे सूर्य की दिशा और नदी-पर्वत इत्यादि की स्थिति का कोई हाथ नही है, क्योकि उन्हो ने पहले कभी इस रास्ते को तो देखा ही नही। जिन पक्षियो ने रास्ता देखा होता है, वे किसी अनजाने स्थान पर छोडे जाने पर कभी तो अपने ठीक रास्ते पर आ जाते हैं और कभी भटक भी जाते हैं, किन्तु अनभिज्ञ पक्षियो के लिए ऐसी कोई बात नही है। इसका कोई कारण सर्वसम्मत नही है और सभवत: मनुष्य के लिए यह सदैव कठिन रहेगा कि इसके ठीक कारण को खोज सके और उस संबध मे निश्चित प्रमाण दे सके। किन्तु हम कुछ अनुमान तो कर सकते ही है। मेरे विचार मे ५० प्रतिशत या इससे कुछ कम या अधिक पक्षियो के ठीक स्थान पर पहुँच जाने से यह सिद्धाततः प्रमाणित हो जाता है कि शेष भी ठीक उसी प्रकार ठीक स्थान पर पहुँच सकते थे जैसे उनके अन्य साथी, और इससे यह निश्चित है कि पक्षियों का ठीक दिशा की ओर लौटना सकारण और स्वाभाविक ही है और कुछ के न लौट सकने का कुछ अज्ञात कारण है। इस कारण को हम मछलियों की प्रवास-प्रवृत्ति के अध्ययन से समझने मे शायद अधिक सफल हो सकेंगे।

साल्मोन मछली नदी के शीतल पानी में उत्पन्न होती है और अपने शैशव का प्रथम वर्ष वही बिताती है। दूसरे वर्ष मे वह सागर के गभीर जलो की ओर प्रयाण करती है और दो वर्ष इसी प्रवास मे बिताती है। इसके पश्चात् वह पुनः नदी में प्रवेश करती है और प्राय. उन्हीं जलो मे लौट आती है जिनमे उसने आयु का प्रथम वर्ष बिताया था। यहाँ वह अब गर्भ-धारण करती है, बच्चे देती है और मर जाती है। यद्यपि यह आवश्यक नही है कि सभी

मछलियाँ अपने इस प्रवास में बिल्कुल निश्चित और नियमित हों। कभी-कभी कोई मछली या मछलियाँ भटक भी जाती हैं और आयु का एक वर्ष इधर या उधर अधिक बिताती हैं, किन्तु ऐसा केवल अपवादात्मक रूप से ही होता है।

नदी से सागर की ओर प्रवास का कारण मछली की आँखों में परिवर्तन है। शैशव मे सालमोन की आँखें त्वचा मे गहरी गई होती है और उन पर एक विशेष झिल्ली-सी पड़ी रहती है। किन्तु धीरे-धीरे यह झिल्ली समाप्त हो जाती है। तह हट जाने पर उसकी आँखे चुँधियाने लगती है और वह इससे बचने के लिए गहरे जलों में 'प्रच्छाय निवास' खोजती है। इन जलों में जब उसकी आयु बडी हो जाती है और उसकी ग्रंथियाँ पक जाती है, तब इनके रस-प्रवाह से उसके शरीर का रासायनिक क्रिया-व्यापार बहुत तीव्र हो उठता है और शक्ति-स्रोत खुल जाते है। इससे उसमें शीतल जल से घर्षण की वासना जागती है और शक्ति-स्रोतों से धमनियो मे गुदगुदी होने के कारण उसमे दौड़ने-भागने की भी इच्छा उत्पन्न है। तब वह नदी में प्रवेश करती है और उस के शीतल जलों के तीव्र प्रवाह के विरुद्ध तैरना प्रारंभ करती है। इस प्रकार वह सहज ही अपने जन्म-स्थान पर लौट आती है।

यह सब विवरण बहुत सीधा-सा है, किन्तु पक्षियों के प्रवास को समझने मे उलझन का कारण उनका आकाश से सम्बन्ध है। हम अभी तक वायु की लहरो से उतने परिचित नही हो सके है और न हमारे पास अभी इतने विकसित साधन हैं कि पक्षियों के साथ उनके प्रवास की पूरी यात्रा कर सकें। किन्तु जितना वैज्ञानिकों को आज इस बारे मे पता है, उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि मछलियों और पक्षियो के प्रवास के कारण एक-से ही है। मछली अपरिचित और भिन्न लहरों मे पड़ कर उसी प्रकार भटक जाती है जैसे पक्षी, किन्तु उसका यह भटक जाना उसके प्रवास के कारणों का अपवाद नही है। इस प्रकार पक्षियों के प्रवास की यह क्रिया एक दम यान्त्रिक और कारण-कार्य-सबंध में बंधी है।

कमोत्तेजना, मैथुन-प्रक्रिया और लिंग-निर्धारण

मैथुन-प्रक्रिया प्राय. कुछ अपवादों को छोड़ कर, सभी प्राणियों में समान रूप से पाई जाती है। इस प्रक्रिया के क्रियान्वित होने के लिए दो भिन्न प्रकृति के व्यक्तियों—नर और मादा का होना आवश्यक है। किन्तु नर और मादा उस प्रक्रिया के केवल दो पहलू भर हैं, जो प्राणी की धमनियों और ग्रथियों में रासायनिक परिवर्तन जन्य शक्ति-स्रोतों के खुलने के रूप में जन्म लेती है। इससे इन रासायनिक क्रिया-व्यपारों को ही मैथुन-प्रक्रिया का

प्राथमिक और एकमात्र कारण कहा जा सकता है। किन्तु यह केवल विकास स्तर पर निम्न श्रेणी की जातियो के लिए ही कहा जा सकता है। विकास स्तर पर उच्च श्रेणियो में क्रमशः 'मनोवैज्ञानिक' कारण भी महत्वपूर्ण होते जाते है। मनुष्य मे मनोवैज्ञानिक कारण अन्य किसी भी प्राणी से बहुत अधिक महत्वपूर्ण होते है, किन्तु सभवत: उन्हे शरीर वैज्ञानिक कारणों से कदापि अधिक महत्वपूर्ण नही कहा जा सकता। इसके दो प्रमाण दिये जा सकते है-- प्रथम तो यह कि यदि मनुष्य की कामोत्तेजक ग्रंथियाँ अपसारित कर दी जाएं तो उनमें कामोत्तेजना प्रायः समाप्त हो जाएगी और यदि तत्सबंधी धमनि-यत्र भी अपसारित कर दिये जाँय तब तो यह पूर्णतः ही समाप्त हो जायगी। दूसरा प्रमाण लिंग परिवर्त्तन-जन्य मानसिक परिवर्त्तन हो सकता है। यदि नर को मादा मे और मादा को नर में बदल दिया जाय तो उनकी मानसिक अनुभूतियाँ और आकांक्षाएँ तथा व्यवहार भी तदनुसार बिल्कुल बदल जाएँगे। इतना ही नही, मनुष्य भी प्रत्येक हार्मन, विटामिन और ऐंजा-इम इत्यादि से अपनी मानसिक योग्ययता-अयोग्यताओ मे उसी प्रकार प्रभा-वित होता है जैसे पशु। इसमे अन्तर केवल इतना ही है कि निम्न श्रेणी के पशुओं मे हार्मन अधिक प्रधान होते है और मनुष्य में केन्द्रीय ततुवाय और मस्तिष्क-तंतुवाय इत्यादि भी पर्याप्त महत्व रखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य की प्रत्येक प्रक्रिया मे उसकी 'मानसिकता' भी अनुस्यूत रहती है, जिसमें उसकी सामाजिक परिवृत्ति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है, और यह भी ठीक है कि मनुष्य का यह मानसिक सस्थान अपनी इच्छानुसार भी कुछ शारीरिक परिस्थितियाँ उपस्थित कर सकता है, किन्तु यह सामान्यतः शारीरिक प्रवृत्तियो को उकसाने की ओर ही अधिक सत्य है, उन्हें संयमित करने की और उतना नही। तभी ब्रह्मचर्य इत्यादि को इतना कठिन कार्य समझा जाता है।

वास्तव मे यह बात उत्तेजना से अधिक उसकी व्ययजनित सन्तुष्टि के लिए और भी अधिक सत्य है। यद्यपि एक बार उत्तेजना के अस्तित्व में आ जाने पर उसकी तृप्ति के लिए पहले शारीरिक तृप्ति--स्पर्श और व्यय--जन्य सन्तुष्टि का हो लेना भी अनिवार्य है, किन्तु यह सन्तुष्टि केवल मान-सिक स्तर पर भी रह सकती है यद्यपि वह सन्तुष्टि **वास्तविक** नही होती। यदि कोई व्यक्ति किन्हीं सामाजिक कारणों से अपनी प्रेयसी को प्राप्त नही कर पाता, और यदि उसका 'सांस्कृतिक स्तर' कुछ ऊँचा है तो उसकी सन्तुष्टि अपनी प्रेयसी की मधु-स्मृति से भी एक सीमा तक हो जायगी, तो भी कामवासना और तदीय तृप्ति की परिभाषा केवल शरीर वैज्ञानिक स्तर पर ही की जा सकती है, मनोवैज्ञानिक स्तर पर नहीं।

मनुष्य मे प्यार की अनेक श्रेणियाँ है, जो पशु से कुछ अधिक है, जैसे माता-पिता, बहन-भाई और प्रेयसी इत्यादि से प्यार। सामान्यत· प्रेयसी से प्यार और माता-बहन इत्यादि से प्यार मे अन्तर किया जा सकता है और उनमे सीमा-रेखाएँ, जो बिल्कुल स्पष्ट है, लगाई जा सकती है। किन्तु इन सीमा-रेखाओ को न केवल मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्पष्ट ही नही किया जा सकता, प्रत्युत् देखा तक नही जा सकता। इन्हें केवल सन्तुष्टि की शरीर-वैज्ञानिक परिभाषा से ही स्पष्ट किया जा सकता है। नैतिकता के अधिक बोझ के कारण अनेक भावुक युवक और युवतियाँ आपस मे प्यार करते हुए भी भाई-बहन का सबध स्थापित कर लेते है, और सभी प्रकार से एक-दूसरे की आकाक्षा करते हुए भी केवल मैथुनकी लैगिक प्रक्रिया (सभोग) सबधी कल्पना से घबराते है। मै ऐसे कुछ व्यक्तियों को निकट से जानता हूँ और उनकी व्यथाओ को सुनता रहा हूँ, उनके दिवा और रात्रि-स्वप्नों का विश्लेषण भी, जहाँ तक मै कर सका हूँ, किया है। वे अपनी 'बहन' के विरह मे उसकी नयनो के सौन्दर्य पर कविता लिखते है, चादनी रातो मे नदी के किनारे हाथ मे हाथ डालकर प्यार की कथाएँ कहना-सुनना चाहते है, नौका में एक-दूसरे के सम्मुख बैठकर चप्पू की छप-छप ध्वनि मे अपने प्राणो की वेदना को डुबा देना चाहते है। वे चाहते है कि वे अपनी 'बहन' की प्यारी कजरारी आँखे चूम ले, उसकी मधु-स्मिति का पान करले, इत्यादि। उन्हें कितना भी कहा जाय, वे कभी भी यह स्वीकार नही करते कि वे उसे बहन के अतिरिक्त भी कुछ समझते है, यह भ्रान्ति केवल मानसिक घपला ही उत्पन्न करती है, किन्तु ऐसे किसी भी घपले को सन्तुष्टि की शरीर-वैज्ञानिक व्याख्या से दूर किया जा सकता है। इस परिभाषा को हम इन शब्दो मे रख सकते है—प्रेयसी के दर्शन-स्पर्शन या स्मरण से शरीर मे जो वासना-स्रोत खुल जाते है, और उसके पश्चात् किसी भी प्रकार के सम्पर्क से, चाहे वह संपर्क आंखो और स्मृति का ही क्यो न हो, जो उस वासना का व्यय होता है उसमे शरीर के वे हार्मन और धमनियों के वे केन्द्र व्यापारित होते है जो विशुद्ध रूप से मैथुन प्रक्रिया के लिए बने है—जैसे नर-चूहे को मादा-चूहे के चुम्बन मे जो आनन्द आता है, वह इसी प्रकार के व्यय का आनन्द है, और इस आनन्द मे उस व्यय से सर्वथा भिन्न शरीर-वैज्ञानिक व्यय होता है जो मादा-चूहे मे मातृत्व-वासना के पश्चात् पुत्रों को दूध पिलाने या प्यार करने से होता है। सामान्यतः चुम्बन या दर्शन वासना-व्यय के साधन न होकर वासनोद्रेक के साधन होते है, वासना-व्यय केवल संभोग का अनुसरण करता है, मनुष्य के लिए भी यही सत्य है, किन्तु मनुष्य में 'प्रवंचक-तृप्ति' (Decep-

tive satisfaction) का भी पर्याप्त महत्व है जो विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसे समझने के लिये हमें वासनोद्रेक (Appetitive push अथवा Tumescence) और आत्म-व्ययी प्रक्रिया (Consumatory act or Detumescence) की प्रवृत्ति को अच्छी प्रकार से समझ लेना चाहिए। यद्यपि अगले निबध मे इसकी विस्तृत व्याख्या की गई है, फिर भी यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि वासना की धकेल उन हार्मंज् के रासायनिक क्रिया व्यापार का परिणाम है जो भाफ के समान शक्ति-सचय के रूप मे प्रयुक्त होते है और प्रक्रिया के रूप मे व्यय होकर प्राणी को सन्तुष्टि प्रदान करते है।

अस्तु, हमारे लिए यहाँ इस बात का अधिक महत्व नही है कि मनुष्य में प्यार की कितनी श्रेणियाँ हो सकती है, हमें तो यहाँ उन तथ्यों को देखना है जो इस वासना के उत्कर्ष या उद्रेक के कारण और स्रोत है। यह तो सभी जानते ही है कि मैथुन-व्यापार की क्रिया प्रत्येक प्राणी में कुछ विशेष ढंग और अनुक्रम से होती है, किन्तु यह केवल उस वस्तु का खोल है जिसे वासना और व्ययजन्य-सन्तुष्टि कहा जा सकता है, और शायद तज्जन्य सुख और आनन्द की अनुभूति सभी मे समान रूप से और समान ही होती होगी। संभव है नर और मादा की सन्तुष्टि मे कुछ अन्तर हो, किन्तु अन्तर यह मौलिक तो कभी भी नहीं हो सकता।

नर और मादा को मैथुन प्रक्रिया के दो पूरक कहा जा सकता है। ये पूरक यद्यपि ऐसे दो विरोधी तत्व--ऋण और धन--समझे जाते है जो एक दूसरे से मौलिक भिन्नता रखते है, किन्तु वास्तव मे यह भिन्नता उतनी मौलिक नही है, जितनी समझी जाती है। ऋण-धन पदार्थों मे जो आकर्षण शक्ति सापेक्षता मे होती है, वही यद्यपि नर-मादा मे भी पाई जाती है, किन्तु नर को मादा मे और मादा को नर में परिवर्तित किया जा सकता है और परिवर्तित होने की यह क्रिया अत्यन्त सरल और सीधी है। नर-मादा के इस अन्तर के कारण जर्म सेल और उनमे निहित जेन होते है जिनको सुविधा के लिए x और y जर्म कहा जाता है। स्तनपायियों में प्राय: नर में जब कि x और y जेन होते है, मादा में x x जेन होते है। इसके विपरीत पक्षियों मे नर मे x x और मादा में x y जर्म होते है (विशेष तीसरे और चौथे निबंधों में)। मैथुन के पश्चात् स्तनपायियो में यदि मादा के अडे मे नर का y स्पर्म (शुक्र) प्रविष्ट होकर गर्भाधान करे तो परिणाम नर पुत्र होगा और यदि x शुक्र प्रवेश करे तो मादा होगा। पक्षियों में इसके विपरीत निर्णय मादा के हाथ में रहता है। कृमियों की कुछ जातियों में और

भी अधिक आश्चर्यजनक रूप से सूक्ष्म विभाजन रेखा पायी जाती है, उदाहरणार्थ मधुमक्खी के अडे मे क्रोमोसोम संख्या $x=2N$ होती है जब कि शुक्र मे क्रोमोसोम सख्या $x=1n$ होती है। यदि मादा शुक्र के वपन के बिना ही बच्चा दे दे तो विभाजन (Reduction Division) के द्वारा क्रोमोसोम सख्या $x=1n$ रह जाने से बच्चा नर होगा और यदि शुक्र वपन से बच्चा दे तो विभाजन के बाद क्रोमोसोम संख्या $x=2n$ होगी और बच्चा मादा होगा। मधुमक्खियों में $x=8$ होता है। मादा मे क्रोमोसोम संख्या $2x=16$ होती है तो नर मे यह सख्या $1x=8$ होती है।

इस प्रकार बीज-वपन के एकदम साथ ही भावी शिशु के लिंग का निर्णय हो जाता है किन्तु गर्भ में बच्चा बनने के काफी देर बाद तक भी उसमे किसी लिंग के चिन्ह प्रकट नही हुए होते। किसी भी प्राणी का लिग-निर्णय उसके गोनाड्ज़ के निर्णय पर निर्भर करता है, क्योंकि ये ही लैगिक इद्रियों को बनाने में कारणभूत तत्व है। अनेक बार तो केवल वाह्य अग-निर्माण से कुछ निर्णय कर लेना काफी भ्रामक भी हो सकता है, क्योकि हो सकता है कि तब तक उसकी गोनाड्ज ग्रथि ने अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति ही न की हो। कभी-कभी किसी में दोनों ही ग्रथियाँ भी हो सकती है जब कि उसका वाह्य अंग-निर्माण केवल एक ही ओर का होता है।

मनुष्य मे गर्भधारण के लगभग ६ या ७ सप्ताह पश्चात् बच्चे मे कुछ ऐसे कोषों के प्रारभिक चिन्ह बनने लगते है जो बाद मे टेस्टिस या ओवरी में परिणत होते है। किन्तु क्योंकि अभी तक ये सेल या भावी ग्रथियाँ लैगिक भिन्नता से स्पष्ट होती है इसलिए तब भी लिंग के विषय में कुछ नही कहा जा सकता। वास्तव मे इसके बाद की अवस्था मे भी काफी देर तक बच्चा दोनों लिंगों के प्रारभिक चिन्ह और नालियाँ इत्यादि रखता है। पश्चात्, यदि उसका झुकाव नरत्व की ओर होता है तो उसकी आन्तरिक नालियाँ और वाह्य इन्द्रियाँ उसी ओर विकास करने लगती हैं और दूसरी ओर के अग अविकसित ही रह जाते है, और यदि मादा की ओर तो नरत्व के पोषक अग अविकसित रह जाते है।

प्रश्न किया जा सकता है कि जब बच्चे में पहले किसी भी लिंग की ओर कोई झुकाव नही होता और वह बहुत देर तक दोनों के ठीक बीच में होता है तो क्यों वह एक ओर न जाकर दूसरी ओर जाता है ? इसका उत्तर इतना कठिन नही है। हम पहले ही जैसा कि कह आये हैं, नर या मादा मे सदैव जर्म x y और x x या x x और x y तथा $1x=1n$ और $2x=$

2n होते है और जर्मज का यह भेद ही लिंग-भिन्नता का कारण है। यद्यपि इन जर्मज् मे तो कोई भी अंग और कोई भी ग्रथि नही होती, किन्तु प्रतीकात्मक रूप से कहा जा सकता है कि, ये सब बीज रूप मे उसमे निहित रहते है। पश्चात, जब यह बीज आत्मोद्‌घाटन करता है तो प्राणी के शरीर का निर्माण होता है। जैसा कि हम चतुर्थ निबध मे देखेगे, जर्म के भीतर क्रोमोसोम्ज में रहने वाले जेन ही हमारे शरीर के रासायनिक क्रिया-व्यापारों, जैसे एज़ाइम, सहायक ऐंजाइम तथा हार्मन इत्यादि—के आधार और सूत्रधार होते है। इससे ग्रथियो मे से स्रवित होने वाले हार्मज् के द्वारा ये जेन प्राणी के लिग निर्णय मे कारण बनते है। यद्यपि स्नायु-तन्तु-वाय का भी इस में कम महत्त्व नही है, किन्तु ये स्नायु और तन्तु (Tissues) किस ओर विकास करेंगे, यह संभवत ग्रथियों पर ही निर्भर करता है। इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते है, यदि किसी व्यक्ति मे से टेस्टिस ग्रथि को समाप्त कर दिया जाय तो उसमे मादापन के चिन्ह प्रकट होने लगेगे, वास्तव मे स्तनपायियो (नर x y, मादा x x) में मादापन केवल नरत्व की अनुपस्थिति ही है जब कि पक्षियो मे (नर x x और मादा x y) इसके सर्वथा विपरीत नरत्व मादापन की अनुपस्थिति है। वहाँ यदि मादा से ओवरी ग्रथि अपसारित कर दी जाय तो उसमे नरत्व के चिन्ह, तीव्र नख, कठोर पख और मुकुट इत्यादि प्रकट होने लगतेहै। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पक्षियो मे मुकुट इत्यादि नर-ग्रंथि-रसों के परिणाम न होकर मादा ग्रंथियो की अनुपस्थिति के परिणाम है। पोल्ट्री फार्मो (Poultry Farms) मे प्रायः ही लिँग-परिवर्त्तन के केस होते रहते है। जब किसी कारण से मादा की ओवरी ग्रथि अयोग्य हो जाती है तो उसमे नरत्व के चिन्ह प्रकट हो जाते है, किन्तु वह पूर्णतः नर तभी बन सकती है यदि उसमे टैस्टिस भी विकसित हो जाएँ। अनेक बार ऐसा होता है कि कुछ व्यक्तियो मे टेस्टिस और ओवरी दोनो ही पर्याप्त विकास कर लेते है किन्तु एक कुछ गौण पडी रहती है, यदि बाद में प्रधान ग्रंथि किसी कारण से गौण हो जाये तो वह दूसरे लिंग मे प्रविष्ट हो जाती है। किसी-किसी में दोनो ही ग्रथियाँ काफी प्रभावशाली रहती है, उस अवस्था मे व्यक्ति न पूरी तरह से नर होता है और न मादा। सभव है इसका कारण यह भी हो कि पहले x या y जेन मे से एक प्रधान रहे और बाद में दूसरा।

किन्तु लिंग-परिवर्त्तन के लिए केवल इतना ही काफी नही है कि ग्रंथि-रसों को ही बदल दिया जाए, इसके लिए व्यक्ति के शरीर में उनकी प्रेरणा

को क्रियान्वित करने की योग्यता भी होनी चाहिए। यद्यपि इनमे दोनो का ही बहुत महत्व है, किन्तु क्योकि प्रत्येक व्यक्ति मे दूसरी योग्यता होती ही है (अर्थात वह नर और मादा दोनो के समान क्रिया-व्यापार कर सकता है) इसलिए पहिली योग्यता (ग्रथि-रसो की) मे ही परिवर्त्तन आवश्यक है। फिर ये ग्रथि-रस भी उस योग्यता को प्राप्त करने मे बहुत सहायक होते है। किन्तु शरीर के भीतर कुछ और भी योग्यताएँ होनी आवश्यक है जो कि कभी कभी हार्मंज से नही आ पाती, जैसे अनेक स्त्रियो मे भग और गर्भ का ठीक विकास नही हो पाता, इसी प्रकार अनेक पुरुषो मे लिग पूरा विकसित नही हो पाता, यद्यपि लिग और भग के विकास मे हार्मन बहुत प्रभावशाली तत्व है किन्तु सभवत. गर्भ का विकास होना उनसे सभव नही होगा।

इससे स्पष्ट है कि हार्मज्काम-वासना और वासना की प्रकृति मे कितने महत्वपूर्ण कारण हो सकते है। इसके संबध मे अन्य ज्ञातव्य बातों को भी हम संक्षेप मे यहाँ देखेंगे।

यह प्राय. सर्वसम्मत ही है कि ओवरी के अपसारण के पश्चात् प्रायः सभी प्रकार के प्राणी मैथुन-प्रक्रिया के अयोग्य हो जाते हैं। यदि ओवरी का अपसारण शैशव मे ही कर दिया जाए तब तो तदीय वासना और आचरण तक का विलय हो जाता है, किन्तु यदि यौवन मे भी इस ग्रथि का अपसारण कर दिया जाय तो भी बहुत शीघ्र ही प्राणी में ये वासनाएँ समाप्त हो जाती है, किन्तु आकृति मे विशेष परिवर्तन लक्षित नही होते। और यदि यह अपसारण रज-स्राव के दिनो मे किया जाय तो काफी दिन इसके प्रभाव को क्रियान्वित होने में लग सकते हैं, क्योंकि उन दिनो ओवरी-रस पर्याप्त मात्रा में रक्त में विद्यमान रहते है। मनुष्य जाति मे स्त्री पर ओवरी के अपसारण का प्रभाव इतनी गंभीरता और शीघ्रता से लक्षित नही किया जाता, तो भी वहाँ धीरे-धीरे मैथुन-वासना समाप्त होती जाती है। सभवतः मनुष्य मे हार्मज् या तो कम प्रभावशाली होते है अथवा गोनाड्ज् के अतिरिक्त अन्य हार्मज् का भी इसमें हाथ रहता है। यह भी सभव है कि गोनाड्ज् का अपसारण पूर्ण रूप से न होता हो। इसलिए पिच्यूइटरी को अपसारित कर देखना चाहिए कि मनुष्य की यह वासना कितनी और किस प्रकार प्रभावित होती है। संभवतः हार्मज् के अतिरिक्त, मनुष्य में उसके स्नायु-तंतुवाय का भी महत्वपूर्ण भाग रहता है।

नर में टेस्टिस के अपसारण का प्रभाव मादा में ओवरी के अपसारण से कुछ भिन्न रूप में होता है। यदि नर में टेस्टिस का अपसारण किशोरा-

वस्था से पूर्व ही कर दिया जाए तो उसमें इस वासना और प्रक्रिया का विकास ठीक तरह से नही हो पाता, किन्तु यदि यह अपसारण कैशोर्य के पश्चात् किया जाए तो मादा से भिन्न नर मे मैथुन-योग्यता समाप्त होने मे और भी अधिक दिन लग जाते है। उदाहरणार्थ, चूहो में अपसारण के पश्चात् ३३ प्रतिशत चूहे एक मास के पश्चात् असमर्थ हुए, ४५ प्रतिशत दो महीनों पश्चात् असमर्थ हुए और शेष को चार मास तक लग गए (Stone)। इस असमर्थता में पहले वीर्य-स्खलन की शक्ति का ह्रास हुआ और पीछे मैथुन-प्रक्रिया का। अधिक विकसित प्राणियों में हार्मज का नर की मैथुन योग्यता पर प्रभाव और भी कम होता है। कुत्तो में टेस्टिस का अपसारण जब कि कुछ को शीघ्र असमर्थ कर देता है, शेष दो-अढाई वर्ष तक अपनी मैथुन योग्यता को बचाए रख सकते है (Beach)। शिम्पेजी मे तो हार्मज का यह प्रभाव और भी कम देखा जाता है। वे तो कैशोर्य से पूर्व भी अपसारित ग्रथि होने पर यौवन में उसी उत्तेजना से मादा से मैथुन की उत्सुकता प्रकट करते है। मनुष्य मे यद्यपि इसका निश्चय नही किया जा सका है, किन्तु संभवत· उसमे भी शिपेंजी के ही समान हार्मज् का मैथुन प्रक्रिया पर प्रभाव होगा (Beach)। इस प्रकार विकास-पथ मे हार्मज का प्रभाव क्रमशः कम होता जाता है।

जैसा कि हम पीछे भी अनेक स्थलों पर कह आए है, पिच्यूइटरी ग्रथि के अपसारण का भी प्रभाव मैथुन योग्यता पर बहुत गभीर होता है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि इसका नर पर भी वैसा ही गभीर प्रभाव होता है जैसा मादा पर। दोनो ही मे मैथुन-प्रक्रिया अपसारण के शीघ्र पश्चात् समाप्त हो जाती है। इसका अर्थ यह नही कि पिच्यूइटरी इस प्रक्रिया में प्रत्यक्षत· प्रभावशाली है, जैसा कि हम जानते है इसके हार्मन दूसरी ग्रथियों के हार्मज को व्यापारित करते है। सभव है कि एंड्रेनल ग्रंथि के हार्मन या ऐड्रोजन टेस्टिस के अपसारण के पश्चात् विकसित प्राणियो मे मैथुन प्रक्रिया और वासना को बचाए रखते हों, किन्तु पिच्यूइटरी के अपसारण से वे भी स्रवित नही होते। मादा मे ओवरी अपसारण और पिच्यूइटरी अपसारण का प्रभाव सामान्यत. एक-सा ही होता है, किन्तु विकसित प्राणियो मे ओवरी का प्रभाव उतना गभीर नही होता जितना पिच्यूइटरी का होता है। सभवत: ओवरी और टेस्टिस के अपसारण के पश्चात् भी विकसित प्राणियो मे मैथुन-वासना और प्रक्रिया का ऐड्रोजन इत्यादि रसों से जारी रहना इस बात का सूचक है कि इनकी धमनियों की योग्यता कम सशक्त

रासायनिक द्रव्यो से भी लाभ उठा सकती है। पिच्यूइटरी के अपसारण का गंभीर प्रभाव यही सूचित करता है।

ग्रंथि-अपसारण के इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि हार्मज का मैथुन-व्यापार पर कितना गभीर प्रभाव हो सकता है। किन्तु इससे अधिक आकर्षक अध्ययन हार्मज या ग्रथियो का नर से मादा और मादा से नर मे बदलना है। इसके लिए हमने पीछे भी कुछ थोडा-सा लिखा था, किन्तु इसका और अधिक अध्ययन हार्मज के प्रभाव को समझने के लिए आवश्यक है।

यह तो सहज ही समझा जा सकता है कि ओवरी या टेस्टिस के अपसारण के प्रभाव को तदीय रसों के इजेक्शन से कम किया जा सकता है; फिर चाहे वह नर पर प्रयोग किया जाय या मादा पर। उसके प्रभाव मे कोई अन्तर नही पड़ता। यदि पिच्यूइटरी या गोनाड्ज को कैशोर्य से पूर्व भी अपसारित किया हो तो भी इन रसों के इंजेक्शन उन व्यक्तियो मे वासनोद्रेक उत्पन्न कर सकते है। अपसारित नर मे इन रसों के इंजेक्शन से क्रमश· मैथुन की सामर्थ्य पहले और स्खल की बाद में लौटती है, जो कि अपसारण से उत्पन्न होने वाले प्रभाव से ठीक उलटा है। दुर्भाग्यवश नर मनुष्य मे इस प्रकार के प्रभाव समान परिणाम नही लाते (Beach)। मोर्गन के अनुसार जैसे अपसारण का परिणाम नर मे समान नही होता, वैसे ही इजेक्शन का प्रभाव भी समान नहीं होता। उसके अनुसार इसका कारण मनोवैज्ञानिक है। किन्तु हमारे विचार मे यह ठीक नही है। हमने पीछे भी कहा था कि टेस्टिस-अपसारण के पश्चात् नर में मैथुन-योग्यता का बने रहना बताता है कि उसकी उस योग्यता मे संभव है अन्य रस भी उत्तरदायी हों, और फिर हमने पिच्यूइटरी के अपसारण से समान रूप से सभी के असमर्थ होने की सूचना देते हुए बताया था कि संभव है नर मे ऐंड्रोजन भी मैथुन योग्यता में निर्णायक होता हो। इसलिए इसमें मनोवैज्ञानिक कारणो को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। यदि पिच्यूइटरी का अपसारण मनुष्य मे वही प्रभाव डालता है जो ओवरी का अपसारण चूहे में, तो टेस्टिस या ओवरी का उतना गंभीर प्रभाव न होने पर भी इसका कारण मानसिकता को संभवतः नही कहा जा सकता।

अपसारित ओवरी और अपसारित टेस्टिस मादाओ और नरो में एस्ट्रोजन हार्मन का प्रभाव समान ही होता है। मादा मे एस्ट्रोजन के इंजेक्शन से रज-स्राव और मैथुन-वासना की शक्ति लौट आती है। किन्तु रज-स्राव और वासना के चक्र की नियमितता, जो अनपसारित व्यक्तियो मे पाई जाती है, वह इनमे नही होती।

एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन का सम्मिलित इंजेक्शन और भी गभीर प्रभाव डालता है। मादा सूअर (Female Guinia Pig) मे ऐस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन के आनुक्रमिक इंजेक्शन उत्तेजना की तीव्रता और रज-स्राव को, तथा तज्जन्य अन्य शारीरिक प्रभावो को भी लौटा लाते है। किन्तु विभिन्न जातियों पर इनके प्रभाव भी विभिन्न होते हैं। शशक, खरहा इत्यादि (Rabbits) मे तथा बदरो मे प्रोजेस्टेरोन का इजेक्शन उत्तेजना को प्राय. बिल्कुल ही समाप्त कर डालता है। विभिन्न हार्मज़ के इंजेक्शन प्राणियो में ऋतु न होने पर भी अथवा यौवनोदय से पूर्व भी कामोत्तेजना उत्पन्न कर सकते है।

अनेक जातियों मे, जो विशेष ऋतु में ही उत्तेजना मे आती है, यह उत्तेजना गोनाड्ज के इजेक्शन से, तथा अन्य उपायो से भी, ऋतु के बिना ही उत्पन्न की जा सकती है (Beach)। जैसा कि हम पीछे भी देख आए है, प्रकाश के समय को बढा देने से पिच्यूइटरी ग्रंथि से रस-स्राव होने लगता है, यह भी हम जानते है कि यह ग्रथि गोनाड्ज, थाइराइड तथा ऐड्रेनल इत्यादि ग्रंथियों के स्राव की कारण है। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि प्रकाश के समय का बढ़ा देना मात्र ही कामोत्तजना को बढ़ाने में कितना बड़ा कारण हो सकता है। दूसरा ढंग गोनाडल रसो का इंजेक्शन हो सकता है। आयु ढलने पर निम्न स्तर के प्राणियों मे हार्मज पुनः कामोत्तेजना और यौवन के चिन्ह लौटा सकते है। यह उत्तेजना मनुष्य तक में लौटाई जा सकती है, किन्तु बाद मे संभवत. इसका परिणाम घातक थकन और व्यय होता है। एक फ्रेंच डाक्टर ने एक बार कुत्ते के गोनाड्ज को नमकीन पानी में मिलाकर अपने आप मे इंजेक्शन किया और इससे उस पर जादू का सा प्रभाव हुआ। इस पर उसने अपने को पुन. युवक हो उठने की पत्रों मे घोषणा कर दी, किन्तु एक मास के पश्चात् ही वह बुरी तरह से निर्बल हो गया। उसने इसके जो कारण दिये है, उनकी चर्चा हम यहाँ नहीं करेंगे, क्योंकि वे पर्याप्त प्रामाणिक नहीं हैं, किन्तु यह प्रयोग अपने आप मे एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग अवश्य है। मनुष्य में मनोवैज्ञानिक कारणों को भी कुछ महत्त्व दिया जा सकता है, ऐसे बहुत से व्यक्ति हो सकते है जो पर्याप्त हार्मज् और शक्ति होने पर भी इस ओर से पर्याप्त उदासीन रहें। यद्यपि उनके उस मानसिक विकास मे भी उनकी शरीर-वैज्ञानिक-परिस्थितियो का बहुत अधिक महत्त्व है, और संभवतः इस प्रकार की उदासीनता या अनुरक्ति बहुत कुछ व्यक्ति के ग्रंथि-रसों के अनुपात पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार के व्यक्तित्त्व निर्माणमें सभी रस-स्रावक ग्रंथियाँ उत्तरदायी होती हैं। संभवतः मनुष्य का भी,

जैसा कि अन्य प्राणियों का चरित्र दो आंतरिक कारणों से निर्धारित होता है—प्रथम, उसके क्रोमोसोम्ज के उत्तराधिकार के रूप में, और दूसरा इन रस-स्रावक ग्रथियों से। पिछले २२ वर्ष से व्यक्तित्त्व पर इन रसों के प्रभाव का अध्ययन बहुत आगे बढ सका है। यद्यपि इस ओर अभी बहुत कम निश्चित परिणाम प्राप्त हो सके है तो भी कुछ अनुमान तो किये जा सकते ही है। उदाहरणार्थ, कीट्स में थाइराइड-ऐड्रेनल रस प्रधान थे, शेली में थाइराइड और पिच्यूइटरी प्रधान थे और एकदम शान्त और विचारशील वुडरो विल्सन मे पिच्यूइटरीग्रंथि (K. Walker)। सामान्यत कवि और गायक, अथवा अन्य कलाकार भावुक होते है और उनमें अधिक कामुकता होती है। इसका श्रेय अधिक एड्रेनल और गोनाड्ज को ही दिया जा सकता है। इसी प्रकार वैज्ञानिक, दार्शनिक और व्यापारी इत्यादि कम भावुक और स्थित-प्रज्ञ होते हैं, इससे उनमे सहज ही इन ग्रथियों का प्रभाव अपेक्षाकृत गौण होना चाहिए। यद्यपि इनमे आगे और भी सूक्ष्म-भेद होने अनिवार्य है, किन्तु वह सब हम यहाँ नही देखेंगे। हमारे लिए यहाँ केवल इतना ही प्राकर्णिक है कि ये ग्रथियाँ और विशेषत: कामोत्तेजक ग्रथियाँ कैसे कार्य करती है और प्राणी के व्यहार को प्रभावित करती हैं। इसके लिए (Beach) की पुस्तक "हार्मज और बिहेवियर" से एक रेखा-चित्र देना उपयोगी रहेगा—
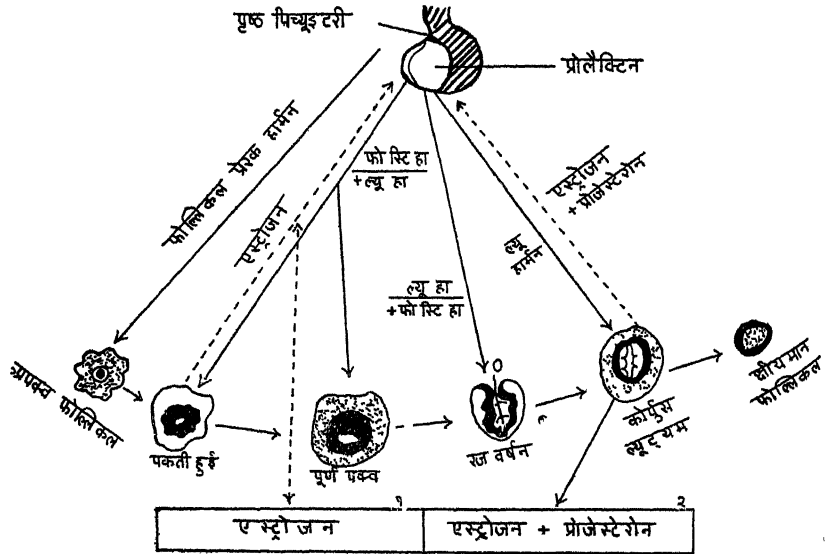
गर्भ	बाह्य दीवार में परिवर्तन	शिशु-ग्रहण के लिए प्रस्तुत	मासिक धर्म का प्रारम्भ
रज	फोल्लिकल मे	ट्यूब में गर्भ मे	वपित होने पर गर्भ-धारण
अरीढधारियों में कामनोदय	शून्य	उच्चतम स्तर पर	शून्य
मानव से निम्न रीढधारियो में	बहुत कम	उच्चतम स्तर पर	निम्नतम स्तर पर

ये हार्मन विभिन्न प्राणियों में विभिन्न प्रकार की मैथुन-प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं। इन्हें मुख्यत. प्राथमिक और उद्दिष्ट (Secondary) दो भागों मे बाँटा जा सकता है। प्रायः सभी प्राणी अन्तिम या उद्दिष्ट मैथुन-प्रक्रिया (संभोग) से पूर्व प्राथमिक (चुम्बन, कंडूयन, इत्यादि) क्रियाएँ करते है। पक्षियों में प्रायः कूजन और चंचुमेलन-नृत्य प्राथमिक क्रियाएँ कही जा सकती हैं। कुछ जातियों मे तो इन प्राथमिक क्रियाओ के लिए विशेष अंग ही बने हुए हैं, जैसे कस्तूरी मृग की नाभि की कस्तूरी अपनी प्रेयसी को आकर्षित करने के काम आती है। कुछ कृमियो में भी इसी प्रकार सुगंधित अंग मैथुन-ऋतु में उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ कृमि विशेष प्रकार की आवाज़ करते है जो संभवतः उनका मैथुन-गीत होता है, कुछ अन्य ऐसे यंत्रों का प्रयोग करते हैं जिससे अपनी प्रेयसी को आकर्षित कर सके, उनकी प्रेयसियाँ बिना उन टिपिकल गीत-ध्वनियों के नर के समीप नही जातीं। इसके अतिरिक्त गायन, नृत्य और कंडूयन-चुंबन इत्यादि की क्रियाएँ अन्य भी प्रायः सभी प्रकार के प्राणियो में बहुत अधिक विकसित है। थ्रीस्पाईंडस्टिक्कल-बैक अपनी प्रेयसी के आगे नृत्य करता है और उसे अपने घोंसले की ओर मादा के भग पर अपनी थोंथनी के चुम्बन-घर्षण से धकेलता है। हरिण प्रेयसी के भग के समीप बड़ी मधुरता और मादकता से कडूयन करते है। हाथी एक दूसरे के सूंड में लपेट कर अपनी नथुनी एक दूसरे के मुँह में डालते हैं। साँप और सँपनी एक दूसरे से रस्सी के समान लिपट जाते है और नर मादा के मुँह को अपने मुँह में ले लेता है। पुंस्कोकिल के गीतों की मधुरता और तीव्रता को तो सभी जानते ही हैं, वह बड़ी विकलता और अधीरता से अपनी प्रेयसी के लिए धरा से व्योम तक स्पन्दित गीतों का वितान छा देता है। इसी प्रकार वुडपैक्कर (Woodpecker) अपनी प्रेयसी के लिए मृदंग की सी एक विशेष ध्वनि

करता है । ग्रासहोप्पर वायलिन के समान एक यत्र से मधुर सगीत उत्पन्न करता है और उसकी प्रेयसी मधुर गीतो मे उसका उत्तर देती है । ये सब प्रक्रियाएँ है जो एक तीव्र वासना की बाह्य अभिव्यक्तियाँ-मात्र है । ये अपनी इच्छा से स्वीकृत नही है प्रत्युत अन्तर्वासना की बाध्यता की परिणाम है । इस को हम काफी विस्तार से पीछे देख ही आए है ।

विशेष भूख

ऊपर अध्ययन किए गए विशेष व्यवहारो के समान ही भूख और प्यास का अध्ययन भी मनस्प्रक्रिया के स्रोतो को समझने के लिए आवश्यक है । भूख के विषय मे यह तो प्राय. निर्विवाद सिद्ध ही है कि इसकी उत्पत्ति मे मानसिक प्रयासों (Psychological desires) या मानसिक प्रवृत्तियो को (जिनका निर्धारण परिवृत्ति से हुआ समझा जाता है), कुछ भी लेना देना नही है, अथवा इसमे उनका न के बराबर ही हस्तक्षेप होता है, इसकी उत्पत्ति मे तो हमारे शरीर मे के परिवर्त्तन ही उत्तरदायी है । इस लिए यहाँ हम इसके विषय मे कुछ कहना आवश्यक नही समझते । हमारे लिए यहाँ केवल उसी प्रक्रिया का विशेष महत्व है जो प्रत्यक्षत. मानसिक प्रतीत होती है । भूख मे भी प्रतीयमान मानसिक पहलू विद्यमान है—जिसे वस्तु-विशेष की भूख, किसी भोजन का समय-समय पर स्वाद या बे-स्वाद लगना इत्यादि मे देखा जा सकता है । किन्तु इससे पहले कि हम इसके शरीर वैज्ञानिक कारणों को देखें, हम भूख के कारणभूत हार्मज का सक्षिप्त-सा विवरण देगे ।

प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि भखे व्यक्ति का रक्त सन्तुष्ट व्यक्ति के रक्त से रासायनिक प्रकृति में भिन्न होता है—इसमें कुछ रासायनिक द्रव्यों का अभाव और कुछ की अधिकता होती है । यद्यपि अभी तक यह निश्चित रूप से ज्ञात नही हो सका है कि यह भिन्नता क्या है, किन्तु कुछ भिन्नता है, इसमें कोई संदेह नही । इसका प्रमाण यह है कि यदि भूखे व्यक्ति का रक्त सन्तुष्ट व्यक्ति मे इजेक्ट कर दिया जाए तो वह पुनः खाने के लिए व्याकुल हो उठेगा, उसे भूख लग आएगी । इसी प्रकार भूखे व्यक्ति में सन्तुष्ट व्यक्ति का रक्त-संचार उसके पेट की सिकुड़न को कम कर देगा (Beach) । इससे स्पष्ट है कि भूख में और सन्तुष्टि में रक्त की कुछ भिन्न रासायनिक स्थितियाँ होती है । हाइड्रोक्लोरिक एसिड भोजन पचाने मे बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेता है, सभव है और भी कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ हों जो कि पेट की किसी ग्रंथिसे स्रवित होते हों और इस प्रकार अज्ञात हार्मन हों। एक

प्रयोग में कुत्ते के पेट का एक भाग काटा गया और रक्त को ठीक सचार के साथ त्वचा मे शरीर के अन्य किसी भाग मे सी दिया गया। वह भाग सामान्य पेट के समान ही सिकुड़ता था और एक विशेष रस को प्रवाहित करता था, जिससे भोजन पचने मे सहायता मिलती थी—ऐसा अनुमान है। सभवत: भूख के कई अन्य भी रासायनिक कारण हो सकते है, जिनमे रक्त मे इन रसों के मेल से ही नही, भोजन के अभाव से भी रासायनिक परिवर्तन की सभावना एक कारण हो सकती है।

ये रस और अन्य रासायनिक कारण ही शायद विशेष भूख और भोजन मे किसी वस्तु के पसन्द-नापसन्द के कारण होते हैं। ये न केवल यही निर्धारित करते है कि व्यक्ति विशेष कब और कितना भोजन ग्रहण करे प्रत्युत् यह भी कि वह क्या चाहे। सामान्यत यदि एक व्यक्ति एक विशेष भोजन अपने रासायनिक परिवर्तनो के कारण अथवा अपने सामान्य भोजन मे उसकी अनुपस्थिति के कारण चाहता है तो हम कहेगे कि उसने अपनी एक विशेष भूख विकसित कर ली है। यह भूख केवल पेट पोशियो की के सकोच से ही सबध नही रखती, क्योकि अनेक बार व्यक्ति पेट भर लेने पर भी और अधिक खाना चाहता है। इसलिए अनिवार्य रूप से कुछ दूसरे भी रासायनिक और स्नायविक कारण होगे जो विशेष भूख का निर्धारण करते होंगे। मेरे विचार मे यदि किसी विशेष भूख से भूखे एक व्यक्ति का रक्त दूसरे सन्तुष्ट व्यक्ति मे डाला जाय तो शायद उसे भी वही विशेष भूख लग आएगी। मान लीजिए, एक चूहे ने एक महीने मे कभी नमक ग्रहण नही किया जब कि दूसरा उपयुक्त मात्रा मे नमक ग्रहण करता रहा है, और उसके बाद नमक के भूखे चूहे का रक्त यदि सन्तुष्ट मे इजेक्ट कर दिया जाय तो सभवत· वह चूहा भी नमक चाहने लगेगा।

यदि किसी व्यक्ति के आगे उसकी जाति के समान सभी प्रकार के भोजन रख दिये जाएँ तो वह ठीक चुनाव करने मे, यदि वह मनुष्य नहीं है तो, काफी से अधिक सफल रहेगा और बड़े सन्तुलित रूप से अपनी आवश्यकता के अनुसार चुनाव कर लेगा, और हम देखेगे कि किन्ही भी दो व्यक्तियों का चुनाव ठीक एक-सा-ही नही होगा। इस प्रकार के चुनाव मे मनुष्य के असमर्थ रहने का कारण उसकी मानसिक अभिरुचियो का विकास है। उसमें मनोवैज्ञानिक कारण उसकी प्राकृतिक रुचि को घपला देते है। किन्तु यदि बहुत छोटे बच्चों के सम्मुख सभी आवश्यक भोजन प्रस्तुत किये जाये तो वे चुनाव मे बहुत काफी सफल रहेंगे। किसी दिन तो वे मक्खन और अडे या बिस्कुट इत्यादि पसद करेगे और किसी दिन मक्खन को या अंडों को चखना भी नहीं

चाहेंगे। यदि उन्हें काफी दिन अपर्याप्त मीठा दिया जाए तो वे उसे प्राप्त करने पर उस की बहुत अधिक मात्रा ग्रहण करेंगे, इसी प्रकार मक्खन इत्यादि के लिए भी। इस प्रकार कभी एक वस्तु को अधिक खाते हुए और कभी दूसरी को, वे अपने आवश्यक भोजन का अनुपात ठीक रखेंगे। इसी प्रकार अन्य प्राणिओं में भी देखा जा सकता है। यदि चूहे को विभिन्न पदार्थ एक साथ दिये जॉय और ये पदार्थ भिन्न-भिन्न तश्तरियो मे रखे गए हो तो वे अपनी आवश्यकता के अनुसार ठीक मात्रा में इनमे से अपना भोजन ले लेगे। यदि किसी व्यक्ति को कोई पदार्थ किसी दूसरे रूप मे दे दिया गया हो, फिर चाहे वह इंजेक्शन से ही उसके शरीर मे क्यों न पहुँचाया गया हो, तो भी वह उसे अपने भोजन में ग्रहण नही करेगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति का हिसाब रखा जाए तो सामान्यत. सभी ने एक-सा-ही प्रत्येक पदार्थ को ग्रहण किया होगा। यह बात दूसरी है कि एक, किसी विशेष दिन नमक अधिक ग्रहण करता है तो दूसरा, उस दिन उसकी कम मात्रा भी ग्रहण कर सकता है, इस लिए कई दिनो का परिणाम जानना आवश्यक हैं।

किन्तु यह मामला इतना सीधा नहीं है जितना प्रतीत होता है, उसमे आदत का भी बहुत महत्त्व है। उदाहरणार्थ, यदि चूहो को निरतर मीठे पर ही रखा जाए और वे इसके प्रयोग के अभ्यस्त हो जाएँ तो दूध का पनीर की आवश्यकता होने पर भी, और उसके प्रस्तुत किये जाने पर भी वे उसे ग्रहण नहीं करते। बहुत धीरे-धीरे वे उसका प्रयोग आरम्भ करते हैं (young)। सामान्य नियम का यह विरोधाभास इतना उलझन-पूर्ण नहीं है। यद्यपि प्राणी उसी भोजन का प्रयोग अधिक करता है जिसकी उसे आवश्यकता हो, किन्तु विशेष कारणों से आवश्यकता आदत भी बन सकती है और यह आदत उसके स्नायुतंतुवाय में अपना स्थान निश्चित कर लेती है। इसके अतिरिक्त उसका उस भोजन और उस परिवृत्ति से कुछ सापेक्ष संबंध भी स्थिर हो जाता है। यदि चूहे को पुरानी परिवृत्ति में ही रखा जाय जिसमें उसे खाँड मिलती रही है और वहाँ उसे पनीर दिया जाय तो वह उसकी आवश्यकता होने पर भी बहुत कम मात्रा मे और झिझक के साथ ग्रहण करेगा, किन्तु यदि उसकी परिवृत्ति बदल दी जाय तो वह खांड के बजाय पनीर को ही ग्रहण करेगा जो उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है। इसी प्रकार और इसी रूप मे विटामिन और हार्मन इत्यादि भी भोजन में, विशेष भूख में, बहुत महत्त्व रखते है। विशेष हार्मंज़ के प्रवाह के साथ जो शरीर मे रासायनिक परिवर्तन होते है उनसे शरीर की भोजन-संबंधी आवश्यकताओं में भी अन्तर पड़ता है। मनुष्य मे हम इसका एक अप्रत्यक्ष

प्रमाण पा सकते है। प्राय: ही अधिक प्रशान्त, विचारशील और कम भावुक व्यक्ति हल्का नमक, मिर्च इत्यादि अपने भोजन में पसंद करेंगे जबकि इनसे विपरीत स्वभाव के व्यक्ति अधिक मीठा या अधिक नमकीन भोजन चाहेगे। स्त्रियाँ प्राय. अधिक चटपटी वस्तुएँ खाना पसद करती है। अधिक (Broody), मक्कार और निम्न बौद्धिक स्तर के व्यक्ति भी प्राय. तीव्र भोजन पसद करते है और कभी-कभी तामसिक भोजन भी। इन सब का भी कारण हमारे शरीर की रासायनिक और स्नायविक स्थिति ही होनी चाहिए।

इस प्रकार अनेक प्रवृत्तियों के स्रोतों के सक्षिप्त अध्ययन में हमने देखा कि, प्राणी क्या करता है, क्यो करता है और वह क्या करेगा। इसके निश्चित जैवी और भौतिक कारण होते है। उसकी इच्छा-अनिच्छा का बहुत महत्त्व हो सकता है, किन्तु वह इच्छा-अनिच्छा कोई स्वतन्त्र चेतना-विलास नही है। इस प्रकार प्राणी एक ऐसा यत्र-मात्र रह जाता है जिसका प्रत्येक कार्य उसकी अपनी अतिप्राकृतिक इच्छा से नही, प्रत्युत् निश्चित कारण-कार्य-सबध से निर्धारित होता है। किन्तु बहुत से वैज्ञानिक इसे स्वीकार नही करना चाहते। पीछे हम रसल से एक उद्धरण दे आए है, यहाँ एक और उद्धरण हम उसकी दूसरी पुस्तक से देगे। वह कहता है कि "इससे यह प्रमाणित होता है कि सवेद Perception को केवल शारीरिक उकसाहट-मात्र कहना भ्रान्ति है। संवेद का वास्तविक अर्थ है आकृतियो को, विभिन्नताओ को, खंडों को और संपूर्ण को तथा सम्बन्धों को 'देखना'। 'सम्बन्धों' मे केवल दैशिक ही नही कालिक सम्बन्ध भी सम्मिलित है।

"उकसाहट शब्द का बहुत अधिक अनर्थ किया गया है। जब नर-पक्षी मादा को देखकर एक विशेष व्यवहार करता है तो मादा को केवल एक उकसाने वाली वस्तु कहना या नर के दृष्टि-व्यापार को केवल एक उकसाहट कहना पूर्णरूप से गलत है, क्योंकि उकसाहट का अर्थ केवल एक ही होता है, और वह है मादा के शरीर से प्रक्षेपित होती हुई किरणो का नर की रेटिना नाड़ी, केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय और मस्तिष्क केन्द्रों पर भौतिक प्रभाव। किन्तु वास्तव मे देखना क्या है?—वह है उसकी आवश्यकताओ (या वासनाओ) की सापेक्षता में मादा पर क्रियाशील होने की सम्भवना।" हमे इससे कोई मतभेद नही है, शायद किसी को भी नही होगा, हमने स्वयं प्रक्रिया की परिभाषा इससे कुछ मिलती-जुलती ही की है, किन्तु इससे यह प्रमाणित नही होता कि नर का यह व्यवहार शारीरिक-प्रक्रिया (Biological or Physiological act) नही है। यदि रेटिना के द्वारा प्राणी के मस्तिष्क

व्यवस्थित व्यवहार
लेखन
स्पर्शज्ञान
दृष्टि विषय स्मरण
दृष्टि विषय का संबंध ज्ञान
पढ़ना
शब्द स्मृति
संगीत निर्माण
भाषा निर्माण
संगीत की पहचान
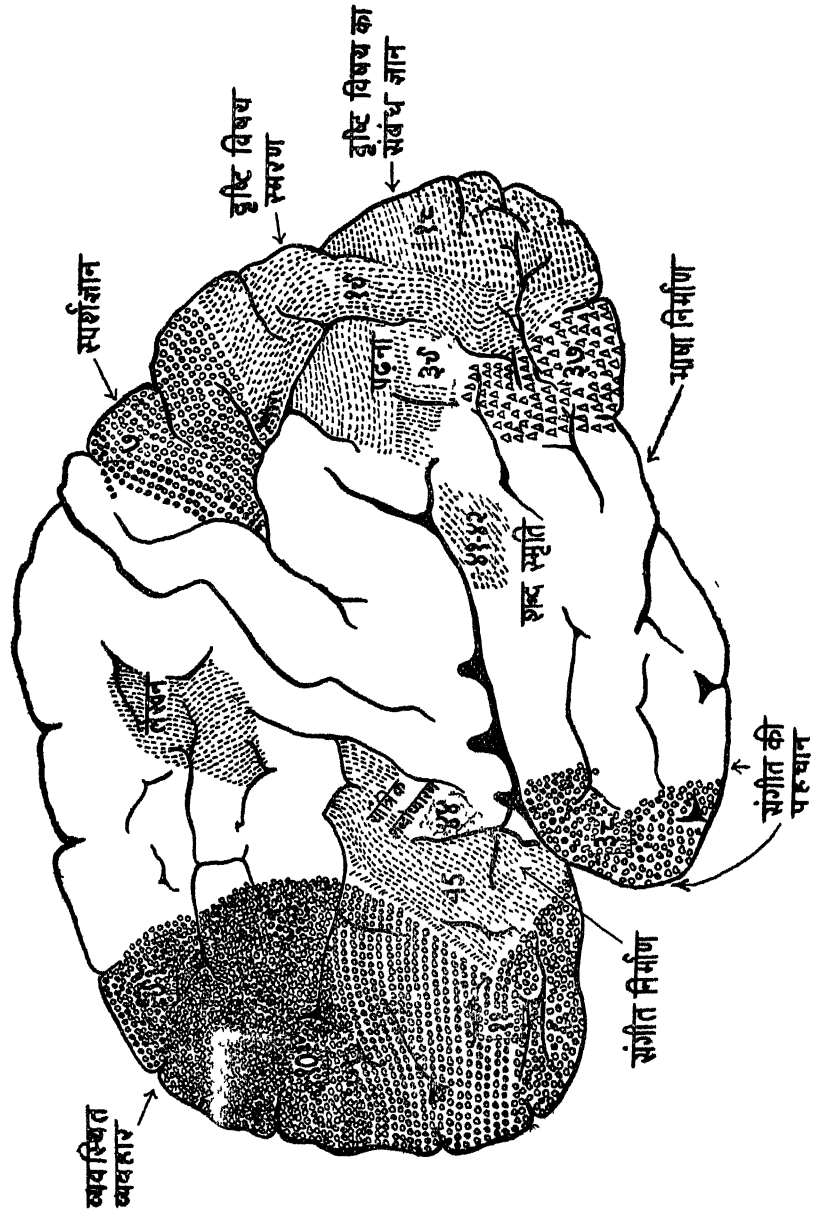
ततुओ पर होते हुए दृष्टि-विषय के शरीर से प्रतिबिंबित किरणो के भौतिक प्रभाव को किसी प्रकार रोक दिया जाए तो क्या वह प्राणी किसी प्रकार से भी मादा के दैशिक और कालिक संबध (Relation) को जान सकेगा ? यदि मस्तिष्क से (Pare Striatic Aria) को आपसारित कर दिया जाए तो नर के लिए मादा की सार्थकता की और उसके सम्बन्ध-ज्ञान की कोई सम्भावना ही न रह जायगी। पीछे दिए हुए मस्तिष्क के रेखा-चित्र मे मस्तिष्क के विभिन्न प्रदेशो की योजना से स्पष्ट है कि मस्तिष्क-प्रदेश के ये विभाग किसी भी संबध-ज्ञान के लिए आवश्यक है। जैसा कि हम सातवे निबन्ध मे देखेगे, स्मृति या विषयो के दैशिक और कालिक सम्बन्ध पूर्णत. शरीर वैज्ञानिक स्तर पर ही विकसित होते है। एक पक्षी के लिए अपना अडा केवल एक ऐसी गोल वस्तु है जिसकी सार्थकता उसके लिए एक विशेष परिवृत्ति में घिरे होने पर केवल सेने की प्रक्रिया के विषय के रूप मे है, इस प्रकार वह उसको किसी विशेष कालिक तथा अन्य सम्बन्ध मे नही जानता। केवल एक सीमित से दैशिक 'सबध' के साथ जानता है। यदि उसके अडे को उसके घोसले की सीमा (जो निश्चित रहती है) के बाहर उठाकर रख दिया जाए तो वह उसे या तो खा लेगा अथवा उससे उदासीन ही बैठा रहेगा। इसी प्रकार, यदि एक चूहे के घोसले के दोनो ओर की दीवारो मे से एक का रग बदल दिया जाए तो वह अपने घोसले और बच्चों तक को शायद न पहचान पाए। इससे भी अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि चीटी आँखे होने पर भी केवल इसलिए नही देख सकती क्योकि उसके मस्तिष्क-तंतु उसके लिए प्रस्तुत नही है। इससे यह समझना सहज ही है कि जिसे हम बुद्धि की सबसे बड़ी करामात (संबंध-विधान की योग्यता) समझते है, वह भी विशुद्ध शरीर वैज्ञानिक प्रक्रिया-मात्र है। यद्यपि प्रक्रिया के कुछ और पहलू भी हो सकते है, किन्तु वे शारीरिकता से उस प्रकार स्वतंत्र नहीं हैं जिस प्रकार समझा जाता है, जैसा कि हम अगले निबंध में देखेगे।

—:o.—

REFERENCES

1. *Beach F. A* — Hormons and Behavior, 1944, Hoeber, New York
2. *Coward* .. The Migration of Birds, 1929 3rd Ed Cambridge University Press
3. *Kruif P D* .. The Male Hormons, 1st Ed 1948. Perma Books, New York
4. *Madwoall* .. General Physiology and Bio-Chemistry, 3rd Ed. 1946. John Murray, London
5. *Morgon and Stillar* Physiological Psychology, 2nd Ed 1951. Mac Graw Hill Book Co., New York.
6. *Russell E S* .. Behavior of Animals, 2nd Ed. 1938. Edward Arnold Co., London.
7. *Tinbergen* . The Study of Instinct Ed. 1st 1951.Oxford University Press.
8. *Walker K* .. The Physiology of Sex, 6th Impression 1944. Panguin Books. L T. D., London.

२—मनःप्रक्रिया और विकास

पिछले निबंध मे हमने प्रक्रिया के स्रोतों या हेतुभूत यत्रो को और प्रक्रिया के साथ उनके संबंध को देखने का प्रयास किया। इस निबंध मे हम प्रक्रिया-वासना और व्यय—को पिछले निबध के पूरक के रूप मे देखेंगे। इस निबंध मे हमने प्रक्रिया के साथ ही विकास (वाद) की समस्या को भी उठाया है और वह भी इस निबन्ध का महत्वपूर्ण भाग है। वास्तव में हम समझते है कि प्रक्रिया की यांत्रिकता (Mechanical Process) को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

हमारे शरीर मे प्रक्रिया की सवाहक विविध धमनियाँ है जो परिवृत्ति के प्रभाव को मस्तिष्क-केन्द्र तक ले जाती है और जो प्राणी को परिवृत्ति पर क्रियात्मक होने के उपयुक्त बनाती है। यह स्नायुततु ही है जिनके द्वारा शरीर के सम्पूर्ण भागो और स्थलो का निर्धारण होता है, जिससे कि व्यक्ति परिवृत्ति का लाभ उठाने की ओर और सम्भावित हानियों से बचने की ओर प्रवृत्त होता है। स्नायुततुवाय के सयोजकों को सामान्यतः Somatic (सोमैटिक—शरीर की बाह्य परिवृत्ति संबंधी) और Splanchnic or Visceral (विस्सेरल—उदरस्थ धमनि गुच्छ तथा आँत-संबंधी) नाम दिया जाता है। स्नायुततुवाय के ये दोनों ही संयोजक बहुत सी सामान्य विशेषताएँ रखते है, जैसे प्रभाव ग्रहण करने वाले तंतु और प्रभाव को प्रक्रियात्मक रूप देने वाले तंतु। प्रभाव को प्रक्रियात्मक अगो मे अनूदित करने वाले इन तंतुओं का जाल इतना उलझनपूर्ण और विस्तृत है कि उसका विवरण यहाँ देना अनावश्यक और असभव भी है। सोमैटिक सयोजक, सामान्यतः उस उकसाहट की, जो सोमैटिक तंतुओं के प्रभाव-ग्राहक सूत्रों में उत्पन्न होती है और प्रक्रिया-चालक (Locomotor) यत्र मे स्पंदन के रूप मे परिणत होती है, संप्राप्ति, अनुवाद और संवाहन की व्यवस्था करते है। इन संयोजकों को हम केन्द्रानुसारिणी (Centripetal) और केन्द्रापसारणी (Centrifugal) धमनियों मे विभक्त कर सकते हैं। सोमैटिक संग्राहक हमारी त्वचा में, जोड़ों में और मसल्ज इत्यादि में बिखरे रहते है। त्वचा से संबद्ध संग्राहक (Receptors) बाह्य उकसाहट को ग्रहण करते है। जिन विभिन्न उकसाहटों को वे बाहर से ग्रहण करते है उन्हे बाह्य सग्राहक (Exteroceptive) कहते हैं। इसके विपरीत जो संग्राहक मसलों में, जोड़ों में या Tendons (पुट्ठे—मसलों के विशेषस्नायु गुच्छ) मे पाये जाते

है, वे अपना कार्य-क्षेत्र शरीर के भीतरी भागों में बनाते है, बाह्य प्रभाव के साथ उनका कोई संबंध नही रहता। इन विभिन्न उकसाहटों को ग्रहण करने वाले ततुओ को अन्तर संग्राहक या (Proprioceptive) कहते है। अन्तर-अनुभूति के ये सग्राहक, बहिरनुभूति के सग्राहको के समान ही अपना प्रतिनिधित्व Cerebral Cortex (मस्तिष्क का अग्रभाग) या Thalamus (मस्तिष्क का पृष्ठभाग) मे रखते है। किन्तु कुछ अन्तर-अनुभूति के संग्राहक ऐसे भी है जो हमारे चैतन्य-व्यापार मे कोई हस्तक्षेप नही करते। वे तो हमारे मसलों की व्यवस्था मे सहायक होते है, जो मसल हमारे प्रत्येक अंग-चालन के लिए अनिवार्य है।

सोमैटिक केन्द्रापसारी—धमनि-संयोजक शरीर के प्रक्रियात्मक यत्रों का प्रबध करते है। ये यत्र अन्तर-अनुभूति-सबंधी किसी भी उकसाहट को क्रियात्मक रूप देते है, उन्हे केन्द्रानुसारी धमनि-यत्र केन्द्र तक पहुँचाते है।

इसके विपरीत विस्सेरल (उदरस्थ स्नायुतंत्र) के संयोजक 'स्नायु ततुवाय' के वह विभाग है जो रक्त, रस-स्रावक ग्रंथियों और रक्त-बर्तन आदि की क्रियाओं का निर्धारण करते है। सोमैटिक संयोजकों के समान ही इस यत्र को भी केन्द्रानुसारिणी और केन्द्रापसारिणी धमनियों में विभक्त किया जा सकता है। केन्द्रानुसारणी धमनियो के विशेष विभाग उकसाहट का अनुभव ग्रहण कराने के लिए रक्त वर्त्तन की दीवारो के साथ संबद्ध रहते है जबकि केन्द्रापसारणी धमनियों का प्रक्रिया यंत्र (Glandularal Epithalialcells) और विस्सेरा तथा रक्त बर्तनों की मसलों के द्वारा अन्तर-अनुभूति (उकसाहट) को क्रियान्वित करता है। सामान्य अवस्थाओं में स्नायुओं का यह उदरस्थ-स्नायु-गुच्छ संबंधी* प्रबंध निरन्तर क्रियाशील रहता है, किन्तु उसकी यह क्रियाशीलता प्राणी के चैतन्य-व्यापार से स्वतन्त्र ही चलती रहती है। जब सम्पूर्ण viscera (अन्तर-प्रदेश) सुव्यवस्थित रूप से अपना कार्य कर रहा होता है उस समय हम एक विचित्र स्फूर्ति और स्वास्थ्य-सुख का अनुभव करते है। यद्यपि अभी यह निश्चित रूप से जाना नही जा सका है कि इस यत्र का प्रतिनिधित्व मस्तिष्क के ज्ञान-तंतुओं में है या नहीं, तो भी विशेष अवस्थाओं में यह अपने केन्द्रों की गम्भीर परिस्थिति का परिचय सोमैटिक धमनियों के माध्यम से तो देता ही है।

स्नायुतंतुवाय के ये दो बड़े संयोजक यंत्र हमारे चेतना-व्यापार और प्रक्रियात्मक व्यवहार को जन्म देते हैं। Impulses (अन्तः-प्रेरणाएँ) जो

---

*Splancnic

कि केन्द्रापसारिणी धमनियों के द्वारा शरीर के प्रक्रियात्मक संचालन मे परिणत हो जाती है, पूर्णरूप से केन्द्रापसारिणी धमनियो के ही व्यापार पर निर्भर है और इनके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण करती है ।

किन्तु ये स्नायु-ततुवाय केवल टेलीफोन की उन तारों के समान ही है जो ध्वनि-लहरो के संवाहन का साधन बनती है; प्राणी के शरीर के क्रिया-व्यापार को प्रेरित करने मे तो शरीर की विभिन्न ग्रथियो से बहने वाले रासायनिक रस और कोष तथा मस्तिष्क तंतु ही प्रभावशाली होते है, जो न केवल हमारे शरीर की प्रेरणाओ के ही कारण होते है, प्रत्युत् प्राणी की प्रकृति या स्वभाव के निर्धारण मे भी बड़ा महत्वपूर्ण भाग लेते है । यद्यपि विभिन्न ग्रथियों के हटाने से उत्पन्न होने वाले प्रभाव के बारे में विभिन्न वैज्ञानिको मे मतभेद है, किन्तु इनके सामान्य महत्व के विषय मे किसी को भी संदेह नही है ।

ये ग्रथियां या इनके रस हमारे शरीर की व्यवस्था मे कितना महत्वपूर्ण स्थान रखते है, यह हम उनको शरीर से अनुपस्थित करके देख सकते है । ओवरी ग्रंथि के रस, जो मैथुन प्रवृत्ति का निर्धारण करते हैं, व्यक्ति की क्रियात्मक शक्ति के भी महत्वपूर्ण विधायक है । यदि इन्हे प्राणि विशेष मे से निकाल दिया जाए तो उसका प्रक्रियात्मक स्तर सामान्यत. पॉचगुणा तक कम हो जाता है, और मैथुन-प्रवृत्ति तो बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है । किन्तु यदि, जैसा कि रिचर और हर्टमैन कहते है, इन अपसारित ओवरी प्राणियों में Estrone (एस्ट्रोन) रस का इंजेक्शन कर दिया जाए तो इनका प्रक्रियात्मक स्तर फिर प्रायः सामान्य हो जाता है । किन्तु जो प्राणी इस अपसारण से पूर्व ही निष्क्रिय हो, उन्हे इन रसों की कितनी भी मात्रा सामान्य स्तर पर नही ला सकती । गोनाड्ज के समान ही, जैसा कि हम अगले अध्याय मे भी देखेंगे, ऐड्रेनल ग्रथि-रस भी प्रक्रिया के निर्धारणमें बहुत महत्वपूर्ण भाग लेते है । इनका अपसारण प्रक्रिया के स्तर को ९० प्रतिशत तक घटा देता है । मसलों की क्रियाशक्ति क्योकि ऐड्रेनल रसों पर ही आश्रित है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि इस रस का अभाव शरीर पर इतना गंभीर प्रभाव छोड़े । किन्तु इन सबसे अधिक प्रभाव पिच्यूइटरी ग्रथि के अपसारण का होता है । यदि इस ग्रंथि को हटा दिया जाए या इसका हाइपोथालमस (मस्तिष्क का एक अग्रिम भाग) के साथ संबंध विच्छिन्न कर दिया जाए तो क्रियाशीलता बहुत अधिक घट जाती है । इसका कारण यह भी है कि पिच्यूइटरी ग्रंथि के रस अन्य ग्रंथियों के रस-स्राव को भी नियंत्रित करते हैं और इस प्रकार शरीर की सामान्य रासायनिक प्रक्रिया का निर्धारण करने में सर्वाधिक प्रभावशाली बनते है । पिच्यूइटरी के अपसारण के पश्चात ऐड्रेनल, थाइराइड और गोनाड्ज आकार मे लघु और

क्षीण हो जाते है, और ये ग्रंथियाँ, जैसा कि हम आगे देखेंगे, शारीरिक प्रक्रिया और प्रवृत्ति के निर्धारण मे बहुत अधिक महत्वपूर्ण भाग लेती है।

इस ग्रथि के अपसारण का प्रभाव केवल प्रक्रियात्मक-स्तर को बदलने के रूप मे ही नही, प्रत्युत् प्रक्रिया के आवृत्ति-चक्र (Cycle) को भी बदलने मे, विशेषत: मादा मे, देखा जाता है। जहाँ पिच्यूइटरी ग्रथि से युक्त चूहा चार से पाँच दिन का मैथुन-प्रक्रिया-चक्र प्रदर्शित करता है, वहाँ अपसारित-पिच्यूइटरी-ग्रंथि वाले चूहे मे १४ से १८ दिन का क्रिया-चक्र देखा जाता है।

इसी प्रकार मस्तिष्क-ततु भी प्रक्रिया के निर्धारण मे बहुत अधिक प्रभावशाली देखे जाते है। वास्तव मे शारीरिक प्रक्रिया का कारण किसी एक ही यंत्र को नहीं कहा जा सकता। यह ठीक है कि Biochemicles (रासायनिक जीवन रस) हमारी प्रक्रिया का निर्धारण करते हैं, किन्तु, जैसा कि हम पीछे कह आए है, ये अपने आप को स्नायु-ततुवाय के माध्यम से ही क्रियान्वित करते है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि इस ततुवाय को शरीर की आन्तरिक परिस्थितियाँ बहुत अधिक प्रभावित करती है। मस्तिष्क के स्नायु-तंतुओं के विशेष भागों को काट देने पर तो शरीर की प्रक्रियात्मक-योजना इस प्रकार बिखर जाती है कि प्राणी–विशेष या तो असबद्ध प्रक्रियाओ की दौड़ मे मर ही जाता है या फिर किसी भी प्रक्रिया को उचित और सुनियोजित ढग से करने के सर्वथा अयोग्य हो जाता है। बिल्लियों पर प्रयोग करते हुए मस्तिष्क के श्वेत धमनि-गुच्छ मे एक घाव किया गया, जिससे कि उनकी सम्पूर्ण प्रक्रिया की प्रकृति में ही एक गुणात्मक अन्तर लक्षित किया गया। (Bailey Davis)। ये बिल्लियाँ निरन्तर सीधी चली जाती, जब तक कि कोई वस्तु रास्ते मे आकर उन्हे गिरा नही देती थी, किन्तु तब भी ये ठहरती नही थी, प्रत्युत् किसी दूसरी दिशा की ओर अग्रसर हो जाती थीं। यह व्यवहार इन दुर्भाग्यशाली प्राणियों मे तब तक जारी रहता है जब तक ये पूर्ण रूप से निश्शक्त होकर गिर नही पड़ते। इसी प्रकार मटलर ने भी बिल्ली पर प्रयोग करते हुए Corpus striatum (मस्तिष्क मे स्नायु-गुच्छो के विशेष कोषो) पर घाव किये और इस प्रकार आहत-प्राणियों में पूर्ण रूप से अव्यवस्थित तथा अत्यन्त प्रवृद्ध प्रक्रिया को परिणाम में प्राप्त किया। Muttler सुझाव देता है कि Striatum सामान्यत: प्रक्रियात्मक धमनियों के निम्न केन्द्रों पर नियंत्रण करता है और जब इसे हटा दिया जाता है तो ये स्नायु-केन्द्र स्वतन्त्र हो जाते है। रिचर और हाइज् ने बन्दर के स्ट्रेटम (अग्रिम मस्तिष्क-ततुओं के सैल) और Cortex (मस्तिष्क के अग्र भाग में एक विभाग) के कुछ भाग को घायल करके देखा कि उसमें क्रियाशीलता

बहुत अव्यवस्थित और प्रवृद्ध हो गई थी जब कि Beach ने चहे में स्ट्रेटम को अपसारित करके कुछ भी विशेष अन्तर नही पाया। पॉच चूहो पर एक-से प्रयोग करके उसने पाया कि केवल एक में दौड़ने की क्रिया बढी थी, दो मे सामान्य से अपेक्षाकृत कम हो गई और दो में कोई भी परिवर्त्तन लक्षित नही हुआ। इसी प्रकार का एक उदाहरण हम पिछले अध्याय में भी दे आए है कि कैसे Frontal poles का अपसारण चूहे मे असम्बद्ध रूप से इधर-उधर भागने की प्रवृत्ति को इतना अधिक बढा देता है कि वह थककर मर जाता है।

इसका क्या कारण है, यह अभी तक निश्चित नही हो पाया, किन्तु सभव है कि ये अप्सारित-प्रदेश गोनाड्ज़ तथा अन्य ग्रंथियो के प्रवाह को रोकते हों और इस प्रकार प्रक्रिया को व्यवस्थित रखते हो और इनके अपसारण से इन ग्रथियो का रस-प्रवाह बढ कर प्रक्रिया को असबद्ध रूप से बढ़ा देता हो। (T. Morgan) जैसा कि हम पीछे भी देख आए है, गोनाड्ज़ का या अन्य ग्रंथियो का अपसारण प्रक्रिया को कम कर देता है। मस्तिष्क प्रदेश के विभिन्न प्रदेशों से रहित किये हुए प्राणियों मे Ovary ग्रथि का बढ़ जाना इसकी पुष्टि करता है। (Morgan) किन्तु हमने पीछे यह भी देखा था कि यदि इन प्राणि-विशेषों को अधिक हॉर्मन भी पिला दिये जाएँ तो भी इनकी प्रक्रिया-शक्ति में गभीर अन्तर देखा जाता है, तब भी, यदि इनकी ग्रथियॉ अपसारित कर दी गई हों। इससे यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि मस्तिष्क के ये विभिन्न प्रदेश स्नायु ततुवाय के विभिन्न यंत्रो मे सन्तुलन स्थापित करते है, सम्भव है ग्रंथियों के रस-प्रवाह मे भी ये प्रभावशाली होते हो। किन्तु, जैसा कि Beach के भी बाद के अनुसंधान प्रमाणित करते है, यह आवश्यक नहीं है कि मस्तिष्क तंतुओं के ये प्रदेश अपसारित होने पर प्रक्रियाओं को बढाते ही हों, कभी-कभी ये इन्हे कम भी कर देते है, यद्यपि अग्रिम भाग अपसारित होने पर प्रायः प्रक्रिया को बढावा ही देते है। फिर सभी प्राणियों में भी इस अपसारण का प्रभाव एक-सा ही नही देखा जाता। इससे स्पष्ट है कि अभी इस ओर और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि क्यों सभी प्राणियों मे एक ही प्रदेश का अपसारण एक ही परिणाम प्रदर्शित नही करता।

इस विषय में सम्भवत. किसी को भी संदेह नही होगा कि इन प्रक्रिया-यन्त्रों के बिना हम न तो कुछ ज्ञान या अनुभूति प्राप्त कर सकते है और न क्रियाशील ही हो सकते हैं। Emotional (इमोश्नल) व्यवहार की शरीर-वैज्ञानिक व्याख्याएँ यद्यपि अनेक है, और यद्यपि इस विषय मे किसी निश्चित

सिद्धान्त पर नही पहुँचा जा सका, तो भी इन सभी व्याख्याओं से इस विषय मे कोई सदेह नही रह जाता कि हमारा यह व्यवहार हमारे स्नायु-ततुओ और रासायनिक ग्रथि-रसो की ही प्रक्रिया है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी विभिन्न रुचिया और विभिन्न प्रवृत्तियाँ रखते है, किन्तु यह सब मस्तिष्क की स्नाय-विक योजना और ग्रंथि-रसों के आनुपातिक विभाजन का ही सुपरिणाम है। यदि इस योजना को विघटित कर दिया जाए, या इस अनुपात को बिगाड दिया जाए तो प्राणी की मानसिक योजना भी बिखर जाएगी—उसकी बाह्य उकसाहट की प्रतिक्रिया अव्यवस्थित और अनर्गल हो जाएगी। इस ओर जेम्ज़ और लैंग्ज़ की व्याख्या सर्वाधिक मान्य समझी जाती है। उनके अनुसार आवेगात्मक प्रतिक्रिया (Response) हमारे रक्तबर्त्तनों मे और विभिन्न ग्रथियो मे तथा विशेष मस्तिष्क केन्द्रों मे एक गति ला देती है, और यह गति केन्द्रापसारिणी धमनियों के द्वारा उकसाहट की प्रतिक्रिया के लिए प्राणी को प्रेरित कर देती है। ये प्रतिक्रियाए हमारे आन्तरिक सग्राहकों (Visceral Receptors) को उकसा देती है, और ये उकसाहट को केन्द्रा-पसारिणी स्नायुओ मे स्थानान्तरित कर देते हैं, और इस प्रकार आवेग Emo-tion का अनुभव अथवा ज्ञान प्राप्त करते है। इस तरह जेम्ज़ के अनुसार, हम क्योकि डरते है, इसलिए नही भागते, बल्कि भागते हैं, इसलिए डरते है। इस सिद्धात की विशेषता इसमे है कि इसके अनुसार आवेगात्मक अनुभूति सोमैस्थैटिक (शरीर की बाह्य परिवृत्ति संबन्धी) धमनियों और मसलज़ के खिचाव द्वारा ग्रथियों और गम्भीर मस्तिष्क ततुओं आदि के केन्द्रों से आती है, न कि बाह्य उकसाहट के केन्द्रानुसारी यन्त्रों के द्वारा मस्तिष्क-केन्द्र तक आने और वहाँ रुके बिना केन्द्रापसारी तंतुओं के द्वारा प्रक्रिया मे अनूदित होने के रूप में। जेम्ज के अनुसार "शारीरिक परिवर्तन एकदम उकसाहट तत्वों की अनुभूति से अनुधावित होते हैं, इसलिए हमारी यह अनुभूति शारीरिक परिवर्त्तन की अनुभूति है न कि बाह्य उकसाहट की"—इस सिद्धान्त को आज भी एक सीमा तक सर्वमान्य समझा जाता है, यद्यपि अनेक वैज्ञानिक इसे अव्याप्ति दोष से दूषित मानते है। इनमें Sherrington का स्थान सर्व प्रमुख है। उसने कुत्ते पर अपने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि आवेगानुभूति वह मानसिक प्रक्रिया है जो कि प्रत्यक्ष रूप से बाह्य उकसाहट से सम्बद्ध है। उसने गर्दन के निचले भाग से स्पाइनल कॉर्ड को घायल कर दिया, Vitscera (आँतों के गुच्छ) को भी मस्तिष्क से तथा अन्य सभी सम्पर्कों से पृथक कर दिया। इस पर भी, उसके अनुसार कुत्ते मे आवेग की अभिव्यक्ति उतनी ही सजीव थी

जितनी सामान्य कुत्तों मे देखी जाती है। उसके अनुसार, इसलिए विस्सेरल परिवर्तनो को आवेग का प्रत्यक्ष कारण नही कहा जा सकता, प्रत्युत् यह कि ये आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन मस्तिष्क तन्तुओ से सबद्ध इस अनुभूति के प्रवर्धन मे सहायक भर हो सकते है । (Cannon) के प्रयोग ऐड्रेनिन रसो के प्रभाव को इमोशनल अनुभूति मे और भी अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करते है। उसके अनुसार यदि ऐड्रेनल ग्रथि रसो का इजेक्शन कर दिया जाए तो उस व्यक्ति-विशेष में क्रोध और भय की शारीरिक अभिव्यक्ति सहज ही देखी जा सकती है। हम पिछले अध्याय मे विभिन्न ग्रथि रसों के शरीर पर प्रभाव को देख ही आए है कि किस प्रकार ये ग्रथि-रस और विशेषत ऐड्रेनल ग्रंथि-रस डर, क्रोध जैसी प्रवृत्तियों को बहुत अधिक बढा देते है। इससे एक सीमा तक तो यह कहा जा ही सकता है कि जेम्ज् का सिद्धान्त ठीक है यद्यपि Sherring-ton) के प्रश्न का उत्तर यह सिद्धान्त नही दे सकता। हमारे विचार में (यद्यपि हम इस अवस्था मे नही है कि अपने विचार को महत्त्व दे सके) सामान्यत जेम्ज् का सिद्धान्त निरपवाद रूप से ठीक कहा जा सकता है, किन्तु क्योकि प्राणी के पूर्वानुभव भी उसके व्यवहार मे महत्त्व रखते है, इसलिए यह भी कहना युक्तिसगत प्रतीत होता है कि इमोश्नल अनुभूति के जागरण मे मात्र अन्त: शारीरिक परिवर्तन को ही प्राथमिक नही कहा जा सकता। इसे यदि कुछ इस प्रकार कहा जाए कि इमोशन या आवेग केन्द्रानुगामिनी धमनियो से मस्तिष्क में पहुँचकर एक ओर बिना मस्तिष्क के व्यवधान के ही केन्द्रापसारिणी धमनियो मे पहुँच कर (प्रतिक्रियात्मक व्यवहार Reflex-action) उत्पन्न कर देता है, वहाँ उसी लहर से प्रेरित मस्तिष्क तंतुओं के प्रदेश व्यक्ति को उस आवेग का ज्ञान भी करा देते है, तो ठीक होगा। और भी ठीक शब्दो मे, यदि कहें तो कहना होगा कि यह आवेग एक साथ ही शरीर के विभिन्न केन्द्रों को प्रेरित कर देता है, इसके लिए न तो यही कहा जा सकता है कि क्योकि हम दौड़ते है इसलिए डरते है और न यही कि क्योंकि डरते है, इसलिए दौड़ते है, और न यह कि यह आवेग हमारे भीतरी प्रक्रिया-केन्द्रो की अशान्ति की चेतना है। सामान्यत: भय और क्रोध मे शरीर की बाह्य अभिव्यक्तियाँ और उदरस्थ स्नायु प्रक्रियाएँ एक ही सी देखी जा सकती हैं, ऐड्रेनल ग्रंथि-रसों के इंजेक्शन के प्रभाव में भी क्रोध और भय दोनो की अभिव्यक्तियाँ एक ही सी देखी जाती है। इससे कहा जा सकता है कि शरीरिक अभिव्यक्ति एक होने पर भी दो भिन्न आवेगो का होना एक स्वतन्त्र मानसिक अस्तित्व की सम्भावना को बढा देता है। किन्तु यह युक्ति वास्तव मे अनुपयुक्त है, क्योंकि इन दोनों आवेगों की शारीरिक

अभिव्यक्तियों मे अनेक असमानताएँ भी देखी जा सकती है। तो भी Sherrington की युक्ति का उत्तर जेम्ज का सिद्धान्त नही दे सकता, यह स्पष्ट ही है।

यद्यपि हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति मे नही है तो भी हम आवेगात्मक व्यवहार मे किसी स्वतत्र मानसिक प्रक्रिया के पक्ष मे अपना मत देना नही चाहते। इसमें भी हमारे स्नायुततुओ और विशेषत. मस्तिष्क के पिछले और निचले भाग बहुत अधिक योग देते हैं। यदि मस्तिष्क-ततुओ को अपसारित भी कर दिया जाय तो भी प्राणी कुछ सामान्य आवेग अनुभव करते हुए देखे जा सकते हैं। जैसे स्पाइनल पशु (जिनका सम्पूर्ण मस्तिष्क काट दिया गया है) चुभन इत्यादि की प्रतिक्रिया करते है, किन्तु क्रोध भय इत्यादि के लिए मस्तिष्क-ततु आवश्यक है।

कभी यह विवाद का विषय था कि मस्तिष्क के मध्य भाग में भी कही आवेग केन्द्र है या नही ? किन्तु कैल्लर ने अपने प्रयोगो मे मध्य मष्तिष्क को अपसारित करके भी बिल्ली मे क्रोधात्मक प्रक्रिया प्रदर्शित की है। पर बहुत से विद्वानो का विचार है कि Hypothalamus (मस्तिक का पृष्ठ-भाग) के ठीक होने पर ही क्रोध की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप मे प्राप्त की जा सकती है। इस विषय मे इनका कथन है कि हाइपोथालमस के अपसारित कर देने पर भी यद्यपि क्रोधाभिव्यक्ति के विभिन्न पहलू हम प्राणी मे प्राप्त कर सकते है, जैसे गुर्राना, पूछ पटकना, जबड़े खोलना इत्यादि, किन्तु ये पूर्ण और सुश्रृखलित अभिव्यक्तियाँ न हो कर विश्रृखलित और खण्ड अभिव्यक्तियाँ है। मस्तिष्क के विभिन्न भागो मे विभिन्न विद्वानों ने घाव करके कुत्ते बिल्ली इत्यादि के व्यवहारो का अध्ययन किया है। इनसे अनेक आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त किये जा सके है। मस्तिष्क के अग्रिम भाग के अपसारण के पश्चात् देखा गया कि क्रोध पर नियत्रण या रुकाव बहुत कम हो गया, अब अपसारित मस्तिष्काग्र प्राणी को थोड़ी सी उकसाहट से ही इतना क्रोधाभिभूत किया जा सकता था कि वह थक कर ही चैन लेता। इससे यह अनुमान करने के लिए कि अग्रिम-मस्तिष्क-प्रबध प्रक्रिया-क्षेत्रो पर नियत्रण का कार्य करता है, हमारे पास काफी ठोस प्रमाण है। इसके विपरीत मध्य भाग के प्रदेश क्रोध की उकसाहट का उदात्तीकरण और सयोजन करते है। यदि इन प्रदेशो को किसी प्रकार बिजली की लहरों से उकसा दिया जाय तो (Unesthatized) बिल्ली भी क्रोध के व्यवहार के पूर्ण प्रक्रिया खडों की अखडता का प्रदर्शन करती है। इसी प्रकार अग्रिम मस्तिष्क रहित बिल्ली भी

यद्यपि क्रोध की अखंड और प्रवृद्ध अभिव्यक्ति करती है किन्तु आक्रमण की दिशा का उसे ज्ञान नही रहता। इतना ही नही, अपसारित कोर्टेक्स बिल्ली यह भी नही जान सकती कि उसको तग करने वाली वस्तु किस ओर और कौनसी है। जैसे, यदि कोई उसकी पूछ को छेड़ता है तो सम्भव है बिल्ली सामने की ओर ही या किसी अन्य ओर आक्रमण करे।

इस प्रकार हमने देखा कि कैसे मौलिक प्रवृत्तियों और सामान्य व्यवहारो तथा प्रतिक्रियाओ के लिये जीवन ने शरीर-यत्रो का सुयोजनापूर्ण सकलन किया है। किन्तु प्राणी का व्यवहार कहाँ तक बाह्य उकसाहट पर निर्भर है और कहाँ तक आन्तरिक आवश्यकताओ से प्रेरित, दूसरे शब्दो मे कहाँ तक यात्रिक है और कहाँ तक सोद्देश्य—यह एकदम विवाद का विषय है, यद्यपि बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। Behaviorist (प्राणी-व्यवहार का अध्ययन करने वाले) जहाँ बाह्य उकसाहट पर बल देते है वहाँ मनोवैज्ञानिक उसकी आन्तरिक आवश्यकताओ-मानसिक अभावानुभूतियो-की प्रेरणा को प्राथमिक मानते है। इनके अतिरिक्त एक और वर्ग है जो मनुष्य की मनोवैज्ञानिकता को साक्षी रखकर पहले दोनो से पृथक एक अपदार्थिक तत्व (मन) की सम्भावना पर बल देता है।

यह एक बहुत पुराना विवाद है, जो अब भी उसी प्रकार अनिर्णायक अवस्था मे है। यह कहना बहुत कठिन है कि व्यवहार को आन्तरिक (Spontaneous) कहा जाए या बाह्य उकसाहट (External Stimuli) का परिणाम मात्र? प्राणी-व्यवहार का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिए सबसे बडी कठिनाई अध्ययन के प्रारम्भ के साथ ही उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि न केवल प्राणियों की विभिन्न जातियो के व्यवहार की प्रकृति मे ही बहुत बड़ा अन्तर है, प्रत्युत् उनकी ज्ञानेद्रियो की शक्ति और प्रकृति में भी बहुत अधिक अन्तर पाए जाते है, इसलिए कौन-सा प्राणी परिवृत्ति के किस गुण के प्रति प्रतिक्रिया करता है, यह जानना अत्यन्त कठिन हो जाता है। तो भी वैज्ञानिकों ने इन परीक्षणों के अनेक उपायों का आविष्कार किया है; किन्तु परिवृत्ति की जिस वस्तु को वे पसंद या नापसद करते है—वह क्यों, यह अभी तक निश्चित रूप से कह सकना सम्भव नही हो सका है। इसका ज्ञान या तो सम अनुभूति से ही हो सकता है, या फिर (सभवत:) समृद्ध शरीर—वैज्ञानिक ज्ञान से अनुमान किया जा सकता है। जहाँ तक सम अनुभूति का प्रश्न है, जब तक हमारे वही ज्ञानेद्रियाँ और शरीर की वही स्थिति नही है, अथवा, जब तक हमारा ठीक वही इतिहास और वर्तमान नही है, जिसका

हम अध्ययन कर रहे है, तब तक यह संभव ही नही, और शरीर-विज्ञान अभी तक इस स्थिति मे नही है कि वह हमे किसी सर्वमान्य निश्चय पर पहुँचने मे समर्थ कर सके। प्राणी-व्यवहार के सावधान निरीक्षण से सहज ही यह जाना जा सकता है कि किन्ही भी दो जातियों की ज्ञानेन्द्रियाँ समान नही है, फिर अन्तर-शरीर स्थिति की भिन्नता का तो कहना ही क्या। इसलिए इस ओर अध्ययन करने वाले के लिए प्रथम आवश्यकता इस तथ्य को समझने की है, क्यों कि इसे जाने बिना अध्ययन का प्रारम्भ ही ग़लत आधार पर होगा।

Vonfrisct के अनुसार सबसे अधिक अन्तर रासायनिक ज्ञानेन्द्रियो मे पाया जाता है। उसके अनुसार, मधुमक्खी शहद मे मिठास के लिए जिन वस्तुओ का उपयोग करती है, उनमे अधिकांश यद्यपि मनुष्य के लिए भी मीठी ही है, किन्तु कुछ वस्तुएँ उनमे ऐसी भी है जिनका मनुष्य की जिह्वा के लिए कोई स्वाद नही होता, दूसरी ओर मधुमक्खियाँ ऐसे कुछ रसो को बिल्कुल ही ग्रहण नही करती जो मनुष्य के लिए मीठे है। इतना ही नही, विभिन्न जातियो की आँखों मे भी बहुत अन्तर पाया जाता है – Papaver phoeas फूल, जो मनुष्य को गहरे लाल रग के दिखाई पड़ते है, वही मधुमक्खी को गहरे नीले रग के प्रतीत होते है। (यह भूत वैज्ञानिक के लिए भी मनोरजक अध्ययन का विषय है)।

इसी प्रकार दिशा और देश ज्ञान की शक्ति भी पशुओ मे विभिन्न स्तरों पर पाई जाती है। कुछ प्राणी जहाँ स्पर्श से दिशा-ज्ञान प्राप्त करते है, वहाँ दूसरे घ्राण से, जब कि सामान्यतः आँख को इसका सब से अच्छा साधन समझा जाता है, या कम से कम मनुष्य का दिशा ज्ञान आँख पर आश्रित है।

Waterbug या Notonecta glano, दिशाज्ञान स्पर्शेन्द्रिय से प्राप्त करता है। वह हल्की से हल्की लहरों से भी अपने शिकार की दिशा और देश का निश्चय कर लेता है। कभी-कभी तो कुछ प्राणी स्पर्श और रासायनिक इंद्रियों की सहायता से आँख के बिना भी देश की तीनों दिशाओ या विस्तारो का ज्ञान प्राप्त कर लेते है। Marine मछली गर्दन के निचले भाग मे लटकती हुई तीन रस्सियों में स्वाद ग्रहण करने की शक्ति रखती है। मछली इन्हें यथेच्छया किसी ओर भी फैला सकती है और इस प्रकार आस-पास के जल में भोजन की विद्यमानता का ज्ञान प्राप्त कर सकती है (Tinbergen)।

कृमियों में भी चक्षु-इन्द्रिय के स्थान पर घ्राण इन्द्रियाँ ही देश-ज्ञान का कार्य करती है। कृमियों के व्यवहार का सूक्ष्म अध्ययन करने पर हम निश्चित

रूप से जान सकते है कि अधिकांश कृमियों मे घ्राण-शक्ति अत्यधिक विकसित होती है। चीटियो की प्राय सभी जातियाँ अधी या अर्ध-अधी होती है। जिनके आखे होती भी है, वे भी आखो के बिना उसी प्रकार कार्य करती हैं जैसे आखो वाली चीटियाँ, जब कि घ्राण-शक्ति से रहित कर देने पर उनका कार्य-सचालन विशृंखलित हो जाता है। घ्राणेन्द्रिय से रहित कर देने पर वे घोसले के पास रखी जाने पर भी उसको नही जान पाती; इतना ही नही, वे खा-पी भी नही सकती और न अपने शत्रु-मित्रों को ही पहचान सकती है। यदि उनके घोसले से उनके बच्चे भी उनके सम्मुख लाकर रख दिए जाए तो भी वे उन्हे नही पहचानती। इससे स्पष्ट है कि चीटियों की घ्राणेन्द्रिय ही एक मात्र विकसित इन्द्रिय है, क्योकि दास चींटियो के लिए घोंसले के बच्चों से अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु और कुछ नही हो सकती।

इन सब प्रक्रियाओ के लिए चीटियाँ घ्राण-शक्ति पर ही निर्भर करती हैं। जैसा कि हम अगले अध्यायों मे भी देखेंगे, चीटियाँ दूर-दूर तक बिना भटके चली जाती है और पूर्ण विश्रब्ध भाव से अपने घोसले की ओर लौट आती है, इसका श्रेय उनकी घ्राणशक्ति को ही दिया जा सकता है, क्योकि चक्षुरिन्द्रिय से तो वह घोंसले के पास पड़ी भी उसे नही जान पाती। उनकी यह इन्द्रिय उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी मनुष्य के लिए चक्षु-श्रोत्र और घ्राण इन्द्रियाँ, क्योकि चीटी इसी से अपने घोंसले की सदस्याओं से दूसरो को पृथक् करती है, इसीसे अपने शत्रु और मित्र का ज्ञान करती है, इसी पर उनकी स्मृति–शक्ति आश्रित है और यही उनके दिशा ज्ञान की साधन है (Cheesman)।

इसी प्रकार अन्य कृमियो में चक्षु-इन्द्रिय प्रधान या एकमात्र इन्द्रिय है। किन्तु सबसे विचित्र इन्द्रिय है कुछ कृमियो की श्रोत्र इन्द्रिय। अनेक कृमि, विशेषत. रोमिल चर्म वाले कृमि, इन रोमो से शब्द-ज्ञान प्राप्त करते है। इनके ये रोम चिटिन chitin (एक पदार्थ जो विशेष कृमियो के शरीर के सख्त भाग के निर्माण मे प्रयुक्त होता है) मे से होकर विशेष धमनियों से जुडे रहते है, जिससे कि जो भी कुछ उन पर प्रभाव डालता है, इन धमनियो के द्वारा धमनि-केन्द्र तक पहुँचा दिया जाता है, जो कि कृमियो का मस्तिष्क है। इससे कोई भी शब्द, जो इनमे लहरों से प्रभाव डाल सके, इन्हे ज्ञात हो जाता है। फिर भी यह कह सकना कठिन है कि इन रोगो के द्वारा उन्हें शब्द-ज्ञान ज्ञान के रूप में होता है या स्पर्श-ज्ञान के रूप में अथवा किसी अन्य रूप में? एक वैज्ञानिक का कथन है कि कुछ विशेष प्रकार की संगीत ध्वनि इन रोमों मे लहर उत्पन्न कर देती हैं। उसने एक विशेष प्रकार

से एसी सगीत-ध्वनि करके, जो उस जाति की मादा करती है, पाया कि नर के वे रोम उन लहरों को ग्रहण कर रहे थे। जब मादा नर के पर्याप्त समीप से शब्द करती है तो वह इन्हे इन रोमों से ग्रहण करता देखा जा सकता है। ग्रास-होप्पर्ज की श्रोत्र-इन्द्रिय उसकी टॉग मे होती है। इसी प्रकार विभिन्न कृमि जातियों मे यह इन्द्रिय विभिन्न स्थानों पर देखी जाती है।

ये कृमि और अन्य प्राणी भी सामान्यत. इन इन्द्रियों का प्रयोग यंत्रों के समान करते है, जैसा कि हम पिछले अध्याय मे अनेक उदाहरणों से दिखा आए है। किन्तु क्यो इन उदाहरणों को एक मनोवैज्ञानिक योजना का परिणाम नही कहा जा सकता, यदि मन को शारीरिक स्थिति की अन्तर-निहित प्रक्रिया का यत्र समझा जाए तो ? जैसा कि हमने पीछे अन्तर-सग्राहको और अन्तर्-प्रेरणा यंत्रो के विषय मे बताते हुए देखा था—हमारी प्रक्रिया योजना में उनका बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ तक बाह्य संग्राहकों का संबंध है, उनके लिए भी यह नही कहा जा सकता कि वे हमारी आन्तरिक आवश्यकताओं से निर्धारित नहीं है। मधुमक्खी अपने शहद की मिठास के लिए ऐसे पदार्थो का सग्रह करती है जो मनुष्य के लिए कोई स्वाद नही रखते, उन पदार्थो को देखते ही उसमें संग्रह की यात्रिक आवश्यकता-अनुभूति उत्पन्न होगी—यह निर्विवाद है, किन्तु इसका कारण उस पदार्थ और बाह्य सग्राहको के यांत्रिक सबध को ही एकदम कैसे कहा जा सकता है ? उस स्वाद के पीछे निरन्तर आन्तरिक प्रेरणा और आवश्यकता से प्रेरित शारीरिक विकास और एक जर्म से दूसरे जर्म मे निहित होती हुई प्रवृत्ति को क्यों नही कहा जा सकता ? यह नही कहा जा सकता कि क्योंकि यह एक प्रक्रिया विशेष है जो कि व्यक्ति या जाति की आवश्यकता और बाह्य पदार्थ के गुण की सामयिकता की समन्वित योजना का परिणाम है ? यह हम अगले अध्याय में विस्तार से देखेंगे। नर थ्रीस्पाइंड स्टिक्कल बैक का रंग सामान्यतः काला होता है, किन्तु वसन्त-ऋतु में उसका रंग लाल हो जाता है। यह उसकी मैथुन की ऋतु है। इस ऋतु की समाप्ति के पश्चात् वह अपने रंग को फिर (कहा जाएगा) बदल लेता है। इसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से प्रबल शत्रुओं से आत्म रक्षा ही होना चाहिए, जैसा कि बहुत से वैज्ञानिक कहेगे। किन्तु हम इससे सहमत नही है, जैसा कि हमारे हार्मन संबंधी निबंध से भी स्पष्ट है। टिन्बर्जन भी, जो कि बहुत सावधानी से अपना निर्णय देता है, इसे मानसिक या वासनात्मक (Spontaneous) व्यवहार के अन्तर्गत रखता है। मैं भी इसे बाह्य उकसाहट (External Stimuli) का परिणाम नहीं कहता, किन्तु वासनात्मक-व्यवहार से जो अर्थ प्रायः समझा जाता है, हम उससे

सहमत नही है । टिंबर्जन तथा हैब्ब या रसल इत्यादि इस प्रकार के व्यवहार मे एक प्रकार की चतुराई (Trick) और प्रयास को स्वीकार करते है, वे इसे एक ऐसी यांत्रिक प्रक्रिया नही मानते जो प्राणी–विशेष मे स्वतः ही उसी प्रकार यत्रवत् क्रियान्वित हो जाती है, जैसे बाह्य उकसाहट उसे यत्रवत किसी निश्चित प्रक्रिया मे नियोजित कर देती है। यह इससे भी स्पष्ट है कि यदि नर थ्रीस्पाईड को अप्राकृतिक रूप से भी वसन्त का तापमान और दिनमान दिया जाए तो भी उसका रग लाल और व्यवहार मैथुन-वासनायुक्त हो उठता है। इसका कारण केवल उनके उन हार्मन रसों का प्रवाह मात्र है जो एक ही साथ बिलकुल यात्रिक रूप से उनकी मैथुन वासना और लाल रग को उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार बाह्य या आन्तरिक उकसाहट मे केवल इतना ही अन्तर है कि आन्तरिक उकसाहट केवल रासायनिक या ग्रथि-रसो का परिवृत्ति निरपेक्ष प्रभाव होता है जब कि बाह्य उकसाहट अन्तर मे विभिन्न परिवर्तनों के रूप मे अनूदित होकर प्रक्रिया में क्रियान्वित होती हैं। किन्तु अपनी उत्पत्ति मे दोनो एकदम यात्रिक है।

सच पूछा जाए तो ये दोनो ही पहलू किसी भी प्रक्रिया की अभिव्यक्ति और विकास के लिए आवश्यक है। आन्तरिक शारीरिक आवश्यकताए, जो कि हॉर्मन रस, आन्तरिक ज्ञानेन्द्रियो (Viscera and Blood vessels) और स्नायुततुवाय पर निर्भर है, विभिन्न स्तरो की हो सकती हैं। ये यद्यपि एकदम यात्रिक है किन्तु इन्हे बाह्य उकसाहट मात्र कहना अनुपयुक्त होगा। जैसे विशेष तापमान और प्रकाश भिन्न ऋतु मे भी मैथुन आकाक्षा और अन्य पूरक प्रक्रियाओ और अभिव्यक्तियो को उत्पन्न कर सकते है, यह अकॉक्षा पुन. प्राणी मे दौड़ने, लड़ने और मैथुन साथी खोजने की प्रक्रियाओ को उत्पन्न कर देती है, किन्तु इस आकांक्षा को आकांक्षा-सतुष्टि की वास्तविक प्रक्रिया से भिन्न ही कहा जाएगा। इसका प्रमाण यह है कि जब तक इस प्रकार की आन्तरिक आकाँक्षा से अभिभूत प्राणी को इसकी सन्तुष्टि का साधन-विषय प्राप्त नही हो जाता तब तक उसकी इस प्रक्रिया को क्रियान्वित होते नही देखा जा सकता, दूसरे यह आकॉक्षा इस दूसरी प्रक्रिया की विभिन्न अभिव्यक्तियो (जैसे लड़ना, मैथुन करना, घोसला बनाना, इत्यादि) के उसी रूप में क्रियान्वित होती देखी जा सकती है जिस अभिव्यक्ति का साधन सामने प्राप्त हो सके। इन दो प्रक्रियाओ को क्रमश. वासनात्मक प्रक्रिया और आत्मव्ययी प्रक्रिया* कहा जा सकता है। टिन्बर्जन के अनुसार पशु के अधिकाँश व्यवहारो मे ये दोनों पहलू कारण होते

*Appetitive Behaviour or and Consumatory Act

है। वह कहता है कि पशु के सामान्य व्यवहार लडना, काटना, मैथुन करना इत्यादि भी, जिनमे निम्नतम शारीरिक केन्द्रों की धमनियो की क्रिया ही अपेक्षित होती है, अपनी उत्पत्ति के लिए उन गम्भीर, उलझनपूर्ण और सुदूरगामिनी प्रक्रियाओ के अन्तिम छोर-मात्र है जो अपनी सन्तुष्टि या सप्राप्ति के लिए प्राणी को बाध्य कर देती है। लडना, प्रहार करना और मैथुन करना इत्यादि वास्तव मे आत्म-विश्रान्ति या व्यय (Self exhaustion) मात्रके लिए है। इन प्रक्रियाओ के ये केन्द्र स्वय ही, प्रक्रिया को आन्तरिक आवश्यकता से स्वतन्त्र क्रियान्वित करने मे समर्थ नही हो सकते। वे अपनी प्रेरणा आन्तरिक आवश्यकताओ (Appetites) के केन्द्रो से ही ग्रहण कर सकते है। वास्तव मे प्राणी के 'आवश्यकता पूति के लिए किये गए हुए 'सोद्देश्य प्रयास' को समझने के लिए आन्तरिक आकॉक्षा या वासना और आत्मव्ययी प्रक्रिया के सम्बन्ध को समझना आवश्यक है। यह प्राय ही कहा जाता है कि पशु अपनी आकॉक्षा-पूति के लिए संघर्ष करते है—वे अपनी आकाक्षा का ज्ञान रखते है। लोरेंज के अनुसार, आकाँक्षा पूर्ति के लिए यह प्रयास अन्तर् वासनाओ (Appetites) का ही कार्य है न कि (Consummatory act) आत्मव्ययी प्रक्रिया का, जब कि अन्तर्वासना प्रेरित व्यवहार का उद्देश्य स्वय विषय की प्राप्ति न होकर आत्म-व्ययी प्रक्रिया ही होता है जो कि प्राणी को उपयुक्त उकसाहट (Stimuli) प्राप्त होने पर क्रियान्वित हो जाता है। इसलिए कहा जा सकता है कि भूखा पशु भोजन के लिए नही प्रत्युत् अपनी वासना के व्यय के लिए दौड़ता है और जब तक भोजन उसकी आत्मव्ययी प्रक्रिया को क्रियान्वित करने के लिए उपस्थित नही होता वह भोजन की चेतना नही रखता। इसी प्रकार पक्षी घोसला किसी निहित उद्देश्य से नही बनाते, प्रत्युत् यह घोंसला बनाने की यांत्रिक प्रवृत्ति ही है जो विशेष परिवृत्ति मे पक्षी मे एक वासना के रूप मे जागृत हो उठती है, और पक्षी तिनके इत्यादि सम्मुख पाते ही उसे क्रियान्वित कर देता है। घोंसला बनाते हुए उसमें न तो निर्मित होने वाली वस्तु के फल का लोभ है और न स्वय निर्मित होने वाली वस्तु से मोह, वह केवल एक वासना की धकेल से बाध्य उसके व्यय के लिए क्रियाशील होता है। इसका अर्थ यह नही कि घोंसला बनाने की प्रवृत्ति उसके हॉर्मंज और धमनि यंत्रो की विशेष यॉत्रिक स्थिति का ही परिणाम है—प्रत्युत् यह कि यह एक आवश्यकता—अनुभूति की प्रक्रियात्मक योजना है जो कि एक जर्म से दूसरे मे निहित होती हुई एक यॉत्रिक प्रक्रिया के रूप मे विकसित हो गई है। यदि हम ऐसे पक्षियों के बच्चे प्राप्त करें जिन्हे घोंसला नही बनाने दिया गया और इस क्रम को कुछ सन्तानो तक चलने दे तो हम सहज ही एक दिन ऐसे पक्षी प्राप्त कर सकेगे

जिनमे घोंसला बनाने की वासना ही उत्पन्न नही होगी । तब उन्हे पुन. उन्ही परिस्थितियों मे, जिनमे उन्हे घोंसला बनाने की आवश्यकता हो, रख कर देखा जा सकता है, सम्भवत शीघ्र ही हम पुनः उनमे उस प्रवृत्ति को विकसित होते देख सकेंगे । McDougall ने कुछ चूहो पर प्रयोग करके पाया कि शिक्षित चूहो के ३४ वी पीढी के बच्चे दूसरे चूहो से उस विशेष कार्य मे कही अधिक चतुर थे जिनका उनके पूर्वज अभ्यास करते रहे थे । प्रवृत्ति संबधी निबध मे हम कितने ही ऐसे उदाहरण देगे जिनमें हम देखेगे कि किस प्रकार प्राणी सहज ही ऐसे व्यवहार करते है जो आश्चर्यजनक रूप से रहस्यमय प्रतीत होते है—जैसे चीटियो का सर्वथा दो भिन्न जातियों के बच्चे देना, जिसके लिए हम कह सकते है कि यह सामाजिक संगठन की प्रक्रिया ही है जो चीटी के जर्म मे अन्तर्निहित होकर उक्त व्यवहार को सहज करती है । किन्तु ये केवल अटकले है, क्योकि इस सम्बन्ध मे हम कभी भी कोई निश्चित प्रयोगात्मक प्रमाण नही दे सकते और फिर जेनेटिक्स के अध्ययन से यह सिद्ध किया जा सकता है कि ये प्रवृत्तियाँ न तो जर्म में निहित है और न चिन्तित हीं ।

विभिन्न प्राणियों के विभिन्न व्यवहार और एक ही प्राणी के विभिन्न व्यवहार, जिन्हें हम सामान्यत. आत्म व्ययी प्रक्रिया (consummatory act) के अन्तर्गत रख सकते है, विभिन्न अन्तर्वासनाओं की धकेल Appetitive push के परिणाम ही कहे जा सकते है किन्तु यह अन्तर्वासिना अपनी उत्पत्ति मे इतनी यात्रिक है और यह आत्मव्ययी प्रक्रिया अपनी अभिव्यक्तिमें इतनी स्टिरियोटाइप्ड है कि इन्हे किसी प्रकार की ऐसी मानसिक प्रक्रिया समझना, जिसका अर्थ किसी प्रकार की इच्छा हो, भारी भूल होगी । जैसा कि मर्फी कहता है "यह निर्विवाद सत्य है कि अन्तर्वासना अथवा आन्तरिक धकेल (Internal push) बहुत दूर तक शरीर के रासायनिक परिवर्तनों और अन्य अनेक बाह्य और आन्तरिक कारणों—जैसे तापमान भोजन, रासायनिक पदार्थो, हार्मज इत्यादि से निर्धारित होती है । और यह भी निर्विवाद है कि प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया को उत्तेजित करने में अथवा अन्तर्वासना की अवरुद्ध शक्ति का द्वार खोलने मे आत्म-व्ययी (consummatory) प्रक्रिया के विषय (External Stimuli) की आवश्यकता है ।" यदि इस वासना को एक बर्तन मे बंद गैस की उपमा दी जाए तो आत्मव्ययी प्रक्रिया के विषय को विस्फोटक चोट की उपमा दी जा सकती है । यदि इस वासना-प्रेरित प्राणी को उस गैस की धकेल को व्यय करने का साधन प्राप्त नही होता तो बहुत सम्भव है कि वह उसे सहन न कर पाकर मर जाए या फिर इसके निकास के

ऐसे साधन खोजे जो उसे थका कर निष्क्रिय बना दे—जैसे मैथुन-वासना से प्रेरित प्राणी निकास का विषय प्राप्त न करके सोने या खाने मे आत्म-व्यय करने लगता है।

यह स्वाभाविक भी है, क्योकि उसकी अन्तर्वासना की अभिव्यक्ति का प्रक्रियात्मक सबध अपने स्वाभाविक विषय से हटकर एक अन्य अस्वाभाविक विषय मे स्थानान्तरित हो जाता है। यह प्रक्रिया-योजना पशु के यान्त्रिक जीवन मे कितनी महत्वपूर्ण है, यह हम एक उदाहरण से देखेगे—नर थ्रीस्पाईड-स्टिक्कल बैक दूसरे नर के लाल पेट को देखकर उस पर अनिवार्य रूप से आक्रमण करता है जैसा कि हम पीछे भी देख आए है, स्टिक्कलबैक का पेट मैथुन-ऋतु मे लाल हो जाता है, जो चेतन चुनाव न होकर भी मैथुन का प्रतीक तो है ही। नरो का लडना भी मैथुन-वासना का ही एक पहलू है। इस प्रकार एक नर स्टिक्कल बैक दूसरे के लाल पेट को देख कर सहज ही 'समझ' लेता है कि यह उसका प्रतिद्वंद्वी है, इससे उसका लाल पेट वाले स्टिक्कल बैक पर आक्रमण करना स्वाभाविक ही है। किन्तु रोचक और विशेष तथ्य यहाँ यह है कि यदि नर के आगे हम एक ऐसा लाल पेट वाला स्टिक्कल बैक भी बना कर रख दे जिसकी आकृति बिल्कुल ही स्टिक्कल बैक-सी न हो, तो भी वह उस पर उतनी ही उत्कटता से आक्रमण करेगा जैसे वह वास्तव स्टिक्कल बैक ही हो, जब कि बिल्कुल ठीक आकृति के लाल रग के बिना उपस्थित करने पर उसे सघर्ष के लिए प्रस्तुत नही किया जा सकता। स्पष्ट है कि उसे संघर्ष के लिए केवल लाल रंग ही प्रेरित करता है, जब कि वह परिवृत्ति की दूसरी वस्तुओ के देखने मे भी उतना ही समर्थ है। लाल पेट के प्रति सघर्षोन्मुख होने का कारण बडी सुविधा से समझा जा सकता है, यद्यपि अन्य पहलुओं—आकृति इत्यादि—की ओर एकदम उपेक्षा-वृत्ति का कारण विवदास्पद हो सकता है। किन्तु हम इसका कारण प्रक्रियात्मक योजना को समझते हैं—सैक्सुअल-संघर्ष की प्रक्रिया थ्रीस्पाईन्ड स्टिक्कल बैक मे प्रतिद्वंद्वी के लाल पेट पर इस प्रकार केन्द्रित हो गई रहती है कि उसके लिए लाल पेट-मात्र उसकी संघर्ष-वृत्ति के आह्वान का पर्याय हो उठता है—जब कि अन्य पहलू सर्वथा उपेक्षित ही रह जाते हैं। इसी प्रकार प्राणी की अन्य प्रवृत्तियों के अनुसार भी उसके लिए विश्व का प्रक्रियात्मक विषयों के रूप मे निर्धारण हो गया रहता है। मादा स्टिक्कल बैक के लिए नर का वक्र नृत्य ही उसकी सैक्सुअल प्रवृत्ति के जागरण मे प्रभावशाली हो सकता है अन्य कुछ नही। यदि कोई विद्रूप आकृति भी मादा के सम्मुख Zig-zag नृत्य करने लगे तो भी वह उतनी ही उत्कटता से मैथुन के लिए उद्यत हो जाएगी जब कि बिल्कुल ठीक आकृति भी इस

नृत्य के बिना मादा की मैथुन-वासना के व्यय का विषय नही हो सकती। मुर्गी अपने बच्चो की करुण पुकार सुनकर एकदम भयानक रूप से आक्रमणशील हो उठती है चाहे वे बिलकुल भी दिखाई न पड़ते हो जब कि उसके सामने भूख से तड़पते उसके बच्चे किसी भी प्रक्रिया को उत्पन्न नही कर सकते। एक मनुष्य एक व्यक्ति को देखकर प्राय. उपहास ही करता है जब कि दूसरे के सम्मुख आते ही उसके व्यवहार मे एकदम परिवर्तन आ जाता है, वह उससे केवल एक विशेष ढग की ही बातचीत करता है। इसी प्रकार प्यार के लिए भी, वह एक विशेष व्यक्ति से प्यार करता है, उसके सौदर्य की सराहना करता है जब कि अन्य कोई भी उससे कितना भी अधिक सुन्दर व्यक्ति उसकी स्नेह-प्रक्रिया को उत्तेजित नही कर सकता। ये सब व्यवहार सहज हैं और प्रक्रिया-केन्द्रीकरण के स्पष्ट प्रमाण हैं।

इसका अर्थ यह नही कि यह प्रक्रिया अपनी परिवृत्ति मे स्वतन्त्र है—प्रत्युत् यह है कि यह अन्तर की माँग और प्ररिवृति की स्थिति दोनों से निर्धारित होती है। नर स्टिक्कलबैक मे मैथुन-प्रवृत्ति (Searial instinct) अन्तर की माँग है जब कि संघर्ष की प्रक्रिया और उसका केन्द्रीकरण परिवृत्ति की बाधकता और उस बाधकता के रूप पर निर्भर है। स्टिक्कलबैक 'जानता' है कि केवल लाल पेट का स्टिक्कलबैक ही उसका प्रतिद्वद्वी हो सकता है और इस प्रकार प्रतिद्वद्विता की यह प्रक्रिया परिवृत्ति की मांग और अन्तर की प्रेरणा दोनों से ही निर्धारित होती है, किसी एक से नही। कहा जा सकता है कि नर स्टिक्कल बैक जिस प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पेट का रग काले से लाल करता है, उसी प्रवृत्ति की सहज प्रेरणा से वह यह भी जानता है कि लाल पेट युक्त का अर्थ है मादा को आकर्षित करने की उत्कण्ठा, जो कि उसकी आकाक्षा पूर्ति मे बाधक है, और इस प्रकार प्रक्रिया का केन्द्रीकरण परिवृत्ति के लाल रंग से निर्धारित न हो कर उस अन्तर्-प्रेरणा से ही निर्धारित होता है जिससे यह प्रक्रिया प्रेरित होती है। इसके प्रमाण और भी कितने ही दिये जा सकते है जिनमें हम देखते है कि बाह्य विषय प्राणी की प्रक्रिया शृंखला मे उसकी अन्तर्वासिना से ही निर्धारित होते है। एक ही वस्तु एक ही प्राणी के लिए विभिन्न वासनाओ मे विभन्न स्तरों की और विभिन्न गुणों की प्रक्रियाओं का विषय बनती देखी जा सकती है। (E. S. Russell) के अनुसार नर थ्रीस्पाईड स्टिक्कल बैक अपना घोसला तैयार करके उसके समीप पहरा देता है और जो भी वस्तु उसकी ओर आती है उसको वह दूर हटा देता है। कोई भी प्राणी यदि उस घोंसले के एक विशेष निर्धारित क्षेत्र मे प्रवेश करता है तो वह उस पर भीषण आक्रमण करता है फिर चाहे वह अपरिपक्व या उपयुक्त मादा ही क्यों न हो। किन्तु कोई भी मैथुन के

लिए उपयुक्त मादा, जो विशेष प्रकार के गति-चिन्ह प्रदर्शित करती है, वहाँ स्वागत पाती है। वह उसके साथ सभोग करता है तथा उसके अडे देने तक उसे घोसले मे स्थान देता है। वह घोंसले और मादा के बीच के स्थान मे वक्र (zig zag) नृत्य करता है, एक विशेष प्रकार का रस गुर्दो Kidney से प्रवाहित करता है और फिर मधुर दश से उसे घोसले की ओर प्रेरित करता है। तब मादा उस घोसले मे प्रवेश करती है, अडे देती है और तीव्रता से दूसरी ओर से बच निकलती है। नर उसके बाहर निकल आने पर उसे दूर भगाने के लिए उस पर आक्रमण तक कर देता है। उसकी प्रक्रियात्मक योजना अब अपनी वासना, आत्मव्ययी प्रक्रिया और विषय (विषय की अर्थाभिव्यक्ति Significant property) सभी के साथ बदल जाती है—मादा नर के लिए मैथुन-साथी के स्थान पर आक्रमण का विषय हो उठती है।

रसल और मैक्डुगल इस अन्तर्प्रेरणा पर बहुत बल देते है, मैक्-डुगल के अनुसार "भूख और प्यास अन्तर-वासना-जन्य-प्रक्रियाएँ ही है," जैसा कि शब्द का सामान्य प्रयोग भी बताता है, किन्तु यह भी स्पष्ट ही है कि सम्पूर्ण प्रवृत्यात्मक व्यवहार एक सीमा तक अन्तर-वासना की अवस्था पर निर्भर करते है। शिकारी पशु केवल तभी शिकार करते है जब वे भूखे होते है, एक सन्तुष्ट बिल्ली चूहे की, अपनी पूछ पर बैठने पर भी उपेक्षा कर सकती है। इसी प्रकार कबूतरों की मैथुन-प्रक्रिया का चक्र भी विशेष अन्तर-वासना पर ही निर्भर करता प्रतीत होता है। मैथुन की लालसा उनमे वन्सत-ऋतु मे उत्पन्न होती है और इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतु मे भी प्रत्येक चक्र की समाप्ति के पश्चात् पुनरुद्भूत होती है। अन्य अवस्थाओ में मादा को नर का कोई भी व्यवहार मैथुन के लिए प्रस्तुत नहीं कर सकता। अब उममे एक दूसरी वासना उत्पन्न होती है—बच्चों के पालन की और घोंसला-निर्माण की, जो पुन. प्रक्रियात्मक-योजना में परिवर्तन की द्योतक है। रसल के अनुसार प्रत्येक प्राणी अपने एक विशेष संसार में रहता है। वह प्राणी के विशेष व्यव-हार और प्रक्रिया के विषय के साथ सम्बन्ध को एक विशेष शब्द (valence) के द्वारा प्रकट करता है, जिसकी व्याख्या वह कुछ इस प्रकार करता है कि प्रत्येक विषय अपने आप मे जीव के लिए कुछ महत्त्व न रख कर उसकी वासना की अभिव्यक्ति का साधन भर है। इस वासना और विषय के संबंध को वह इस शब्द द्वारा शायद प्रकट करता है।

हम सामान्यतः इससे सहमत है, किन्तु प्राणी-व्यवहार के अनेक पहलू ऐसे भी है जो इसके अन्तर्गत नही आ सकते, ये अधिक यांत्रिक और

धमनि-यंत्र के निम्न स्तरीय विभागो के कार्य कहे जा सकते है। जैसे नर थ्रीस्पाइड स्टिक्कलबैक अडो के घोसले से बाहर एक विशेष सीमा मे पड़े होने पर उन्हे उठा कर घोसला मे रख लेता है, जब कि उस सीमा से बाहर पड़े अपने घोसले के अडो को भी खा जाता है। इसी प्रकार वह घोसले मे पड़े अडो के गल जाने पर घोसले को भी तोड़ देता है और पुन. संपूर्ण प्रक्रिया की आवृत्ति करता है। इसी प्रकार गल भी अपने या अन्य किसी के अडों को घोसले से बाहर एक विशेष सीमा मे पडे होने पर अपने घोंसले में उठा लाती है जब कि उस सीमा से बाहर पडे अपने अडों की वह बिल्कुल भी परवाह नही करती, मानों वे उसके लिए कुछ भी नही। सभवत इन प्राणियो के लिए अडो, घोसलो और बच्चों इत्यादि का कोई स्वतत्र अस्तित्व नही है, वे एक विशेष प्रकार की परिवृत्ति को ही देखते और जानते है। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस प्रक्रियात्मक योजना के निर्धारण मे न तो परिवृत्ति को ही कारण कहा जा सकता है और न प्राणी की किसी अन्तर-प्रकृति को ही, प्रत्युत यह एक विशुद्ध प्रक्रियात्मक योजना प्रतीत होती है, अर्थात् प्राणी के एक विशेष-व्यवहार और उसके एक निश्चित विषय का एकपक्षीय सबंध जिसमे विषय के शेष पहलू उपेक्षित रहते है। यह सबध ऐसे ही क्यों बना, अथवा प्रक्रियात्मक योजना का विकास इस तरह ही क्यो हुआ, इसका कोई कारण आकस्मिक प्रतीत होता।

इस सब से यह स्पष्ट है कि प्रक्रिया-केन्द्रीकरण के लिए यह आवश्यक नही है कि प्रकिया-केन्द्र या प्रक्रियात्मक-योजना प्राणी की अस्तित्व रक्षा में उपकारक ही हो। सच पूछा जाए तो अस्तित्व-रक्षा के उपकारक अपकारकत्व की 'उद्देश्य-कल्पना' अत्यारोपण मात्र प्रतीत होती है। मै नहीं जानता कि प्राणी की प्रक्रियात्मक योजना को Appetitive-Behavior और Consumatory Act) वासनात्मक और आत्मव्ययी प्रक्रिया की सज्ञा देने वाले कहाँ तक इन व्यवहारों को अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति मे उपकारक या अपकारक समझते है, अथवा कहाँ तक वे विकासवाद के इस सिद्धान्त के निर्वाह का ख्याल रखते है, किन्तु हम समझते है कि प्रक्रिया का पर्याय (Consumatory act) आत्मव्ययी प्रक्रिया शब्द अस्तित्व-रक्षा और प्रक्रिया के सबधो को अच्छी तरह से स्पष्ट कर देता है। आत्मव्ययी प्रक्रिथा के लिए यह कोई शर्त नही है कि वह अस्तित्व-रक्षा की सापेक्षता मे ही विकसित हो अथवा अस्तित्व-रक्षा की साधन बने, प्रत्युत् यह कि वह अन्तर-प्रेरणा की धकेल 'poush को निकास दे सके। अन्तर वासना (Appetitive urge) और अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति मे भी सच पूछा जाय तो कुछ सामान्य नही है, इन्हें एक

दूसरी से सर्वथा स्वतन्त्र कहा जा सकता है। अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति को Appetitive Behavior नही कहा जा सकता और न अस्तित्व-रक्षा-सबधो व्यवहार को किसी वासना की धकेल के निकास का साधन (Consumatory act) ही कहा जा सकता है, यह केवल एक प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है जिसे सामान्यत. Reflexive या Emotional Behavior (आवेगात्मक व्यवहार) कहा जा सकता है। अस्तित्व-रक्षा को अब तक जीवन की आधारभूत प्रवृत्ति समझा जाता रहा है, किन्तु जैसे स्वादिष्ट भोजन के परमाणुओ के स्पर्श से हमारी जिह्वा के नीचे की ऐडोक्राइन ग्रथियाँ हमारी इच्छा और ज्ञान के बिना ही सालिवा छोड देती है, उसी प्रकार किसी प्रहार या अन्य अस्तित्व-अपकारक सम्भावना के साथ ही हमारे शरीर के अग स्वतः ही सुरक्षात्मक-कार्यवाही करते है। इसके विपरीत मैथुन प्रक्रिया एक आन्तरिक वासना-भूख-से प्रेरित होती है, जिसका विस्फोट यद्यपि विषय के सम्मुख आने पर ही होता है किन्तु जिसकी उत्पत्ति के लिए हमारे ग्रंथिरस या अन्य शरीर-वैज्ञानिक पहलू ही उत्तरदायी होते है। इसी प्रकार भूख इत्यादि के लिए भी। किन्तु अस्तित्व-रक्षा के लिए कोई स्वतन्त्र आन्तरिक प्रेरणा नहीं होती, प्रत्युत यह कि यह हमारा सहज प्रक्रियात्मक शरीर-धर्म ही है, जैसे गर्मी या सर्दी लगना, दर्द या चुभन का अनुभव होना इत्यादि। मैथुन की वासना और मैथुन-साथी या निकास-साधन के लिए विवश दौड के उत्तरदायी हमारे कुछ ग्रथिरस है, यद्यपि मनुष्य या बन्दर जैसे विकसित प्राणियों मे मस्तिष्क-तन्तु तथा अन्य ज्ञान तंतु और (viscera) भी काफी महत्वपूर्ण होते है, जैसा कि अगले निबध मे हम देखेंगे। इनके बिना यह वासना प्राणी मे उत्पन्न ही नही होती, दूसरे, इसकी उत्पत्ति के लिए किसी भी बाह्य विषय या उकसाहट की आवश्यकता नही है। आत्म-व्ययो प्रक्रिया यद्यपि विषय सापेक्ष है किन्तु यह केवल उस धकेल की, विषय अथवा निकास-साधन प्राप्त होने पर, उपभुक्ति का प्रसार भर है—अपने आप मे स्वतन्त्र प्रक्रिया नही। इसी प्रकार भूख-नीद इत्यादि के लिये भी, किन्तु क्रोध, चुभन या बचाव की प्रक्रिया की उत्पत्ति-मात्र के लिए किसी बाह्य विषय की अनिवार्य अवश्यकता है, इसके बिना ये प्रक्रियाएँ उत्पन्न ही नही हो सकती और न दूसरा कुछ ऐसा व्यवहार ही देखा जा सकता है जिसे अस्तित्व-रक्षात्मक प्रक्रिया कहा जा सके।

प्राय सभी विकास-वादी दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक (आज विकासवाद उनसे आगे बढ़ चुका है) सभी प्रवृत्तियों के विकास का कारण अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति (हम कहेंगे आवेग–भय की आवेगात्मक Emotional प्रक्रिया)

पर आधारित सहज चुनाव को मानते हैं, किन्तु हम नही समझते कि ऐसा कहने के लिए क्या उपयुक्त कारण दिया जा सकता है। यदि यह कहा जाए कि प्राणी के प्राय सभी व्यवहारो और आकाक्षाओ का परिणाम अस्तित्व-रक्षा होता है, तो इसके गलत होने पर भी, इसे एक सीमा तक समझा जा सकता है, किन्तु यह कुछ अधिक सगत नही जान पडता कि सभी व्यवहारों के मूल मे आस्तित्त्व रक्षा की प्रवृत्ति एक धकेल Push के रूप में स्वीकार की जाए। जैसे, मैथुन-प्रक्रिया और आकाक्षा दोनो को ही अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति Push का परिणाम कहा जाता है, किन्तु हम नहीं समझते इसे क्योंकर स्वीकार किया जाए ? उनका तर्क है कि प्राणी सन्तानो के रूप मे अपने अस्तित्व को सुरक्षित करता है और इसीलिए मैथुन की प्रक्रियात्मक धकेल भी इसी उद्देश्य से विकसित हुई है। डारविन 'ओरीजन ऑफ स्पेसीज' मे इसके कितने ही उदाहरण देता है, जैसे, अधिक देश को अधिगत करने के लिए अधिक सन्तानोत्पत्ति करना, वृक्षो का ऐसे बीज उत्पन्न करना जो पक्षियो से बच सकें, पखदार बीज होना, जिससे वे अन्य वृक्षो की प्रतिद्वद्विता से बचकर हवा के द्वारा सुरक्षित स्थान पर पहुँच सके इत्यादि। किन्तु सन्तानोत्पत्ति और सतति-रक्षा की इस प्रवृत्ति को हम व्यक्तिगत अस्तित्त्व–रक्षा का परिणाम समझे या जातिगत अस्तित्व रक्षा का ? यदि इसे व्यक्तिगत अस्तित्व-रक्षा का परिणाम कहा जाए तो इसमे व्यक्ति को अपनी शरीर-रक्षा का पहिले ध्यान होना चाहिए न कि सन्तति-रक्षा का, किन्तु हम देखते है कि प्राय: सभी प्राणी अपने बच्चो पर सकट पड़ने पर अपने जीवन को पूरी तरह से सकट में डाल कर भी अपने बच्चों की रक्षा का प्रयत्न करते है। तो भी यदि आग्रह किया जाए और कहा जाए कि इससे स्थिति मे कुछ अन्तर नही पड़ता तो सन्तति-रक्षा के विरोधी भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते है—जैसे, सँपनी अपने बच्चो को खा जाती है। प्राय ९० प्रतिशत जीवों मे नर को सन्तानो की कोई चिन्ता नही रहती। बिल्ला तो नर-बच्चो को मार ही डालता है। इन सब से स्पष्ट है कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति ही मैथुन-वासना और सन्तति-स्नेह का कारण नही है। नही तो सन्तान-रक्षा में केवल मादाओ को ही क्यों रुचि हो, नर को क्यों न हो ? बिल्ले में तो मैथुन-वासना सन्तति-रक्षा से प्रधान और उसकी अपकारक हो कर आती है। इसी प्रकार थ्रीस्पाईड स्टिवकलबैक का मादा को आकर्षित करने के लिए अपने रग लाल, श्वेत और चमकदार बनाना उसके लिए अस्तित्व-रक्षा की दृष्टि से घातक हो उठता है। अनेक कृमियों और मछलियो मे मादा प्रथम-प्रसूति के ही कुछ

बड़े होने पर मर जाती है। कुछ कैटर-पिल्लर जातियो के व्यक्ति एक विशेष अवस्था के पश्चात् (यौवन अवस्था) सन्तानोत्पत्ति और मैथुन-सभोग के नाम पर द्विधा या त्रिधा विभक्त हो जाते है और तितलियो के रूप मे विकसित हो जाते है। इसी प्रकार एक और भी आश्चर्यजनक सुन्दर शाखाओ वाला समुद्री पौधा कोरोलाइन पोलियस के साथ चिपटा हुआ समुद्र के भीतर की एक शिला से स्पर्श करते ही फूलों मे खिल उठता है, कुछ समय के पश्चात् उसके फूल विभक्त होकर तैरने वाले बड़े-बड़े चोचदार जीव बन जाते है, फिर ये जीव अडे देते है जिनसे छोटे-छोटे जीव उत्पन्न होते है जो अपने आपको फिर इन समुद्री शिलाओ के साथ जोड देते है और कोरोलाइन पौधे बन जाते है। इसी प्रकार यह व्यापार पुन प्रारम्भ होता है। इनमे कुछ उदाहरणो को जहाँ व्यक्ति के अस्तित्व-नाश का प्रमाण कहा जा सकता है, वहाँ कुछ को व्यक्तित्व का विघटन और अन्यो को सर्वथा भिन्न योनि मे प्रवास कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। यदि मैथुन-प्रक्रिया को जाति-रक्षा के उद्देश्य से विकसित कहा जाए तो उपर्युक्त उदाहरणो के साथ प्रश्नावली मे अन्य उदारहण भी रखे जा सकेंगे, जैसे एक ही जाति के किसी व्यक्ति के घोंसले मे यदि दूसरे व्यक्ति के अडे ला कर रख दिये जाएँ तो वह पहचान लेने पर उन्हे तोड देता है, उपर्युक्त कृमियो के अतिरिक्त अनेक ऐसे कृमि और पशु-पक्षी है जो मैथुन-प्रक्रिया के पश्चात् मर जाते है या विघटित हो जाते है। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि मैथुन प्रक्रिया और सन्तानोत्पत्ति तथा सन्तति-रक्षा की प्रक्रियाएँ अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति से प्रेरित नहीं है प्रत्युत् स्वतन्त्र प्रक्रियाएँ है।

मैथुन—वासना और प्रक्रिया का परिणाम यद्यपि सन्तानोत्पति होता है किन्तु सन्तति-रक्षा की वासना और मैथुन-वासना सर्वथा भिन्न और स्वतन्त्र वासनाएँ है। इन दोनों के लिए हमारे शरीर में सर्वथा भिन्न hormones और इनकी सुखानुभूति की प्रवृति भी सर्वथा स्वतंत्र है। सच तो यह है कि ये दोनों वासनाएँ एक सीमा तक एक दूसरी की अवरोधक भी हैं, जैसे, सन्तति–स्नेह के जनक prolectin रस (hormone) मैथुन-वासना के रसों के स्राव को कम कर देते है और इस प्रकार मैथुन-वासना की तीव्रता को बहुत कम कर देते है। मनुष्य-जाति मे भी ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ देखी जाती है जिनमे यह वासना बहुत कम होती है, जबकि सन्तति-वासना बहुत अधिक होती है। कभी-कभी तो कुछ स्त्रियाँ मैथुन प्रक्रिया से घबराती तक देखी जाती हैं, और यदि उन्हें कोई अधिक मैथुन रुचि पति मिल जाए तो वे बीमार हो जाती हैं, जबकि इसके सर्वथा विपरीत उदाहरण बहुत अधिक प्राप्त किये जा सकते है। इसी प्रकार पशुओ मे भी ये वासनाएँ विभिन्न स्तरो की देखी

जाती है। इस लिये भूख, नींद, मैथुन-वासना इत्यादि सभी वासनाएँ अस्तित्व रक्षा से भिन्न प्राणी के शरीर की कुछ ऐसी प्रवृत्ति-जन्य आवश्यकताएँ है जिन्हे केवल push (धकेल) या Appetite (लालसा) ही कहा जा सकता है और जिनका अस्तित्व रक्षा से कोई संबंध नही है।

इस प्रकार प्रवृति का शरीर-वैज्ञानिक और व्यवहार-सबंधी अध्ययन हमें इस परिणाम पर पहुँचाता है कि प्रत्येक जीव कुछ सामान्य और कुछ निर्धारित प्रवृत्तियो से युक्त है और प्रत्येक प्रवृत्ति धमनि-केन्द्र की प्रक्रिया (Activity) से नियोजित होती है।

जैसा कि हम पींछे देख ही आए है, प्रवृत्ति क्रियान्वित होकर प्राणी मे एक निश्चित वासना, अभावानुभूति, उत्पन्न कर देती है, जो कि अन्ततः उसे तृप्ति खोजने की ओर प्रेरित कर आत्म-व्ययी प्रक्रिया के द्वारा शान्त होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि यह धमनि-केन्द्र पशु को प्रत्येक प्रक्रिया के लिए बाध्य करता है। टिन्बर्जन इसे 'ठीक समय पर ठीक प्रक्रिया' कहकर इसका कुछ अस्तित्व-रक्षात्मक मूल्य बताना चाहता है, जिसकी, जैसा कि हम पीछे विस्तार से देख आए है, तथ्य से कोई संगति नही बैठती। वह कहता है कि प्राणी इस प्रकार धमनि-यत्र के प्रयोग और क्रमशः उसकी प्रक्रियात्मक योग्यता के चुनाव के द्वारा परिवृत्ति में अपने आप को उपयुक्ततम बनाने की ओर अग्रसर होता है।

किन्तु कुछ ऐसे उदाहरणों के द्वारा, जिनमें अटकल लग सके, जीवन की सामान्य प्रक्रिया पर सहज-चुनाव को ठोंसना युक्ति-संगत प्रतीत नही होता। यद्यपि सघर्ष और 'अस्तित्व रक्षा एकदम वहिष्कृत नही किये जा सकते, किन्तु यह जीवन की सामान्य प्रक्रिया और अन्तर्निहित प्रवृत्ति नहीं है। सिम्पसन के शब्दो में, जीवन के ऐतिहासिक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो कुछ सम्भाव्य है, अथवा कहना चाहिए, जो कुछ हो सकता है, वह होता है। इस कथन मे, कि, जो होता है वह होना ही था, कि इसमें कोई निश्चित योजना है कोई तथ्य प्रतीत नही होता। जीवन केवल उन अवसरों का अनुसरण करता है, जो उसे अपनी यात्रा में प्राप्त होते है। इस प्रकार, विकास की मूल प्रवृत्ति, अवसर वादिता कही जा सकती है। 'अवसरवादिता' शब्द का प्रयोग यहाँ कुछ खतरनाक हो सकता है क्योंकि इसमें एक चेतन प्रयास की भावना निहित है, जैसे जीवन प्राप्त-अवसर को एक्सप्लायट करता हो। किन्तु पाठकों को विज्ञान में ऐसे शब्दों के प्रयोग को सावधानी से समझना चाहिए और किसी भी मानवीय अत्यारोपण से बचना चाहिए। यहाँ किसी प्रकार के चेतन प्रयास से अभिप्राय नहीं है, वास्तव में किसी 'फलाप्ति के लिए अचेतन प्रयास भी' यहाँ सार्थक

नहीं हो सकता। यह शब्द केवल विकास की इस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का ही द्योतन करता है, कि 'जो होता है सामान्यतः वही हो सकता था; परिवर्तन होते है, जैसे वे हो सकते है, जैसे वे उन परिस्थितियों मे सम्भावित है, ये परिवर्तन किसी सबसे अच्छे की प्राप्ति के लिए या 'सबसे अच्छे' की सम्भावना के रूप मे नही होते। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया अवसर का अनुसरण करती है, किसी योजना का नही। जैसा कि हम प्रवृत्ति संबंधी अध्याय मे बार-बार कह आए है, किसी प्रकार की भी प्रक्रिया, प्रवृत्ति और चुनाव परिस्थितियो की, जिनमे प्राणी भी एक अंग है, यांत्रिक योजना के परिणाम हैं। प्राणी मे प्रत्येक परिवर्तन उसकी सारी परिवर्तनो की सम्भावनाओं को भी बदल देता है। इसमे भौगोलिक परिस्थितियो का भी बड़ा हाथ रहता है। इसी प्रकार शरीर की अपनी प्रकृति भी उसमे उतनी ही, और विकास मे आगे बढ़े हुए प्राणियों के लिए कही अधिक, प्रभावशाली होती है। कोषों की शरीर में वृद्धि, अथवा अधिक कोषोंवाले प्राणियों की उत्पत्ति ने उनके लिए वे सब प्रक्रिया विस्तारों के और शारीरिक परिवर्तनो के द्वार बन्द कर दिये जो एक कोष वाले प्राणियों के लिए खुले थे। किन्तु अब उनके लिए दूसरी ओर कितनी ही सम्भनाए बदनवार बनाने लगीं। इस प्रकार किसी भी प्राणी के जीवन में किसी भी घटना के घटित होने के लिए उसकी शरीर-वैज्ञानिक स्थिति और परिवृत्ति उत्तरदायी होती है। इसे हम और भी विस्तार से अगले अध्याय मे देखेगे।

इसका अर्थ यह नही कि विकास में सहज-चुनाव का कोई हाथ ही नही। हमने अगले अध्यायो मे इसके कितने ही उदाहरण देकर इसका समर्थन किया है, किन्तु न तो विकास में सहज चुनाव को एक प्रधान तत्व कहा जा सकता है और न एक ऐसी प्रक्रिया जो शरीर-वैज्ञानिक और परिवृत्ति की प्रकृति से स्वतंत्र हो। प्राणी की सहज वासनाएँ (Appetites) उसे अपनी तृप्ति के लिए बाध्य कर देती है और इस तृप्ति के लिए उसे किसी निश्चित विषय से सम्पर्क स्थापित करना होता है। वासना और विषय का यह सम्पर्क न तो केवल शरीर वैज्ञानिक कारण से निर्धारित कहा जा सकता है और न परिवृत्तिसे, यद्यपि इसमे परिवृत्ति अधिक प्रभावशाली तत्व है किन्तु इसे आवश्यकता और अवसर (Opportunity) दोनों का संयुक्त फलित ही कहना उपयुक्त हो सकता है। वासना और परिवृत्ति तथा इन दोनो का फलितप्र—क्रिया विकास को निर्धारित नही करते, जैसा कि आज भी बहुत से वैज्ञानिक समझते है, प्रत्युत वासना, शरीर- और परिवृत्ति की सापेक्ष प्रकृति और तदनुसार निर्धारित प्रक्रिया एक ऐसे यांत्रिक और आधार भूत तंत्र से निर्धारित होते

हैं, जिसमें इनका प्रायः कोई भी हस्तक्षेप नहीं है। इसलिए जो वैज्ञानिक यह कहते हैं कि शरीर यंत्र प्रयोग के द्वारा, लाभ के ग्रहण और हानि के परित्याग में शिक्षित होता हुआ परिवृत्ति के अनुसार ढलता है, और अपनी बदली हुई परिवृत्ति में उपयुक्त होने के लिए बदलता है, केवल भूल करते है जैसा कि हमारे अगले अध्याय मे और भी विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

इस प्रकार विकास का न तो मनस्तत्त्व एक मात्र कारण ही है और न अनेक कारणों में से एक कारण, यह केवल प्रक्रिया की प्रेरणा और निर्धारण में कारण है, जब कि यह स्वयं विकास से निर्धारित है। इसमें जेनेटिकल सिस्टम की उलझन पूर्ण रासायनिक स्थिति और रासायनिक परिवर्तन ही प्रधान कारण कहे जा सकते है। जैसा कि हम अगले निबन्ध में देखेंगे एक शरीर की प्रकृति, एक अविभाज्य इकाई के रूप मे, एक अथवा दूसरे जेन के प्रभाव अथवा परिवर्तन से निर्धारित नहीं होती, प्रत्युत् सम्पूर्ण जेन्ज् की क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वारा विकसित होती है। कुछ (स्त्री-पुरुष के) सम्मिलन बहुत हीन कोटि के शरीर का निर्माण करते है जब कि कुछ बहुत उत्कृष्ट कोटि के शरीर को सम्भव करते है। और वास्तव में इन जेन-सबंधों की एक ही जाति में अरबों सम्भावित प्रकृतियाँ हो सकती है, जिनमें प्रत्येक उपयुक्त शरीर का सृजन करने में समर्थ हैं। इन विविधताओं की सम्भावनाएँ वास्तव में वर्तमान और अतीत विविधताओं से कहीं अधिक हो सकती हैं। इन सम्भावनाओं का क्रियान्वित होना न होना मैथुन प्रक्रिया में संबद्ध नर-मादा के जेन्ज् की रसायनिक परिणतिपर निर्भर करता है। अनेक वैज्ञानिकों का विचार है कि सहज चुनाव इस सम्मिलन की प्रकृति को निश्चित करता है, जो, हमारे विचार में गलत है। इसके दो प्रमाण दिये जा सकते है, प्रथम तो यह कि यदि इस चुनाव का संबन्ध व्यक्तियों की तात्कालिक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति पर निर्भर होना मानलिया जाए तो यह कभी भी सम्भव नही कि उनकी यह परिस्थिति कभी भी एक जैसी हो सकती है, दूसरे, इस प्रकार की क्षणिक परिस्थिति को जर्म में निहित मानना वैसे भी संगत प्रतीत नहीं होता। यदि एक अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक परिस्थिति को इसका कारण माना जाए तो वह सम्पूर्ण जाति में सामान्य रूप से निहित होने से किसी भी सम्भावित विविधता के लिए अवसर नहीं रहने देगी। दूसरा और बड़ा प्रमाण यह है कि ऐसी अनेक प्रवृत्तियाँ अनेक प्राणियों में देखी जा सकती हैं, जो न तो किसी प्रकार की अन्तरवासना की तृप्ति के प्रयास के कारण उत्पन्न हुई प्रतीत होती है और न अस्तित्व-रक्षा में उन्हें उपकरण कहा जा सकता है।

कुछ तो स्पष्ट रूप से इन दोनों की अपकारक है। जैसे John Y. Beaty के अनुसार, एक विशेष मधुमक्खी किसी के डक मारने के एक दम पश्चात् मर जाती है क्योंकि इसका डंक चुभ जाने के पश्चात् निकल नही सकता। यह डंक मक्खी के जीवन-तन्तुओं के साथ अच्छी तरह से सम्बद्ध रहता है और ज्यों ही मधु-मक्खी इसे बाहर खींचती है, उसके वे जीवन-ततु बाहर खिच आते है, और इन तन्तुओ के बिना यह मक्खी जीवित नही रह सकती। इस मक्खी का यह डंक बना ही कुछ इस तरह से होता है कि वह उसे बाहर नही खीच सकती। स्पष्ट रूप से यह एक ऐसी अवस्था है जिससे किसी लाभ या वासना-तृप्ति की कल्पना नही हो सकती। किन्तु Beaty, अखड सत्य के ज्ञाता के समान, कहता है कि "यह एक विचित्र अनियमितता है कि मधु मक्खी, जिसे डंक जीवन-रक्षा के लिए प्राप्त हुआ, इसका उपयोग करके इसे खो बैठती है। वह और भी निश्चय से कहता है—फिर भी आखिर, मधु-मक्खी ने अपना मिशन पूरा किर लिया। यह उसका कार्य नही कि वह अपनी रक्षा करे, प्रत्युत् यह कि वह अपने साथियों की रक्षा करे। जब वह किसी आक्रमक को बाहर धकेल देती है, वह अपने साथियों के लिए अपने जीवन का त्याग कर देती है।" सम्भवत. इस नैतिकता का तो उसे ज्ञान न होगा, किन्तु स्पष्ट रूप से यह जर्म से जर्म में निहित होते हुए सहज-चुनाव के सिद्धान्त के लिए बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न कर देता है। यह एक और भी बड़े आश्चर्य की बात है कि रानी मक्खी का डक भिन्न प्रकार से बना होता है, वह जितनी बार चाहे उसका प्रयोग कर सकती है, किन्तु वह उसका प्रयोग केवल रानियों पर ही करती है, न तो अन्य मक्खियों पर ही वह इसे प्रयुक्त करती है और न किसी अन्य प्राणी पर। इससे प्रतीत होता है जैसे चींटियों में सामाजिक प्रक्रिया अपनी पूर्ति के लिए दो भिन्न-जाति की दास चींटियों को जन्म देती है, उसी प्रकार-यहाँ भी वही प्रक्रिया इस भिन्नता को उत्पन्न कर रही हो सकती है, किन्तु स्पष्ट रूप से यह मधु-मक्खियों के किसी भी स्वार्थ की, जो हम समझ सकते हैं, पूर्ति मे सहायक नही होती। इसे सम्भवत: जेन्ज़ में रासायनिक परिवर्तन का परिणाम ही कहा जा सकता है। और रानी मधु-मक्खी का भिन्न होना इसका खंडन नही करता क्योंकि संभव है जिस जेन के कारण वह अन्य से भिन्न है उसी के कारण उसका डंक भी भिन्न हो। जहाँ तक उस के प्रयोग की विशेषता का सम्बन्ध है वह पूर्णत: किसी प्रकार के चुनाव और उसके कारण भूत अपनी प्रकृति और परिवृत्ति पर निर्भर हो सकता है। कृमियों की किसी प्रवृत्ति और प्रक्रिया की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि वे हम से बहुत

ही अधिक भिन्न हैं । इसलिए उनकी वासना और उसकी सन्तुष्ट की व्याख्या करते हुए हम निश्चित नहीं हो सकते । इसका हम एक और उदाहरण प्रस्तुत करेंगे --एक विशेष कृमि मैंटिस जीवित मास के भक्षण की ऐसी वासना रखती है कि वह अपने मैथुन साथी तक को खा जाती है । नर मैथुन के लिए उसके समीप आता है और शीघ्र ही वह उसकी पकड मे पहुँच जाता है । वह उसे तब निगलना प्रारम्भ कर देती है । यह कृमि प्राय सवा तीन इंच लम्बा होता है । इसी प्रकार एक और कृमि मादा अपने मैथुन–सखा को मैथुन क्रिया के बाद एक विशेष स्थान पर काट कर उसे आगे किसी भी मैथुन क्रिया के आयोग्य कर देती है । इसमे मादा का कुछ स्वार्थ हो सकता है, जो हमारे लिए समझना कठिन है, किन्तु नर क्यों सहज चुनाव के द्वारा अपनी रक्षा नही करता ? फिर पहले उदाहरण मे मादा की जीवित मांस की भूख इस अत्याचार की कारण समझी जा सकती है किन्तु दूसरे उदाहरण में इसमे किसका स्वार्थ समझा जाए ? हमारे विचार मे इन दोनों उदाहरणों को सामान्यत सहज चुनाव के अन्तर्गत नही रखा जा सकता है, किन्तु इन्हे किन्ही अज्ञात रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा उत्पन्न अज्ञात वासनाएँ कहा जा सकता है । वास्तव में कृमि-समष्टियो या जातियों मे ९० प्रतिशत प्रक्रियाएँ सामान्य रासायनिक परिवर्तनो का परिणाम ही कही जा सकती है । वे (कृमि-जातियॉ) प्रवृत्ति के विशेष उपकरणों की सीधी उपज है, उनमें किसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक कल्पना सगत नही जान पड़ती । यदि हमारे इन दो उपर्युक्त उदाहरणों को किसी उपयोगी वासना का परिणाम भी कहा जाए तो हमे कुछ विशेष आपत्ति न होगी, किन्तु हम जो पीछे अनेक उदाहरण ऐसे दे आए है जिन में ऐसी किसी वासना या जीवन-रक्षा की प्रवृत्ति को नही पाया जा सकता, उन्हे ध्यान मे रखकर ही ऐसी विचित्र प्रवृत्तियों की व्याख्या की जानी चाहिए । सामान्यत· हम एक ही जाति के दो वर्गों में, जिनमें किसी कारण से कुछ भिन्नता आ गई रहती है, दो भिन्न प्रवृत्तियो को देखते है । इन भिन्नताओं का कारण हम सहज चुनाव को नही समझ सकते । इसी प्रकार भिन्न जातियो को प्रवृत्तियों को भिन्नता के लिए भी । इसका कारण भी हम जर्म या जेन मे होते हुए आकस्मिक रासायनिक परिवर्तन को ही समझते है । जैसे, हम हरिणों के अनेक वर्गो मे सींगों की बड़ी भिन्नता को पाते हैं, वास्तव में यही मुख्य भिन्नता उनके वर्गीकरण की आधार है । किन्तु इन सींगों की भिन्नता स्पष्ट रूप से सहज चुनाव की परिभाषा नहीं है । सींगों की विद्यमानता का कारण आत्म-रक्षा कहा जाता है, किन्तु स्पष्ट रूप से इनमे अनेक वर्गो के सीग, जो बाद में भिन्न हुए हैं, आत्म-रक्षा मे सहायक

नहीं हो सकते। इसी प्रकार पक्षियों की एक ही जाति के दो भिन्न वर्गो का भिन्न ढंग से पानी पीना उस भिन्नता का कारण सहज चुनाव को सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि ये दोनों ही ढग समान रूप से लाभदायक है। इसका हम एक और उदाहरण देगे जो पूर्ण रूप से हमारे कथन की सत्यता को प्रमाणित करता है—एक तितली की आँख उच्चस्तर के कृमियो की आँख के समान बनी है। यह तितली (टोर्टोईस) छः से सात हज़ार लैंज़ तक अपनी प्रत्येक आँख मे रखती है। प्रत्येक लैंज़ एक स्फटिक सदृश बनी नुक्कर के ऊपर जटित होता है, यह ऊपर से चौड़ा होता है किन्तु नीचे की ओर एक बिन्दु पर केन्द्रित होता है जिससे कि यह आने वाली किरणो को समेट कर उस बिन्दु पर केन्द्रित कर सकता है। यह केन्द्र आगे फिर एक पतली नाड़ी से जुड़ा हुआ है जिसके नीचे धमनि केन्द्र और पेशियाँ होती है। अभी तक यह समझा जाता था कि इस प्रकार की आँखे छोटी-छोटी आकृतियो को प्रतिबिबित करती है, प्रत्येक लैंज़ एक भिन्न आकृति को गृहण करता है, किन्तु वास्तव में इन आँखों से उससे कही अधिक स्पष्ट देखा जा सकता है जितना कि विभिन्न लघु-आकृतियों के घपले को प्रतिबिम्बित करने वाली आँखें देख सकती है। वास्तव मे प्रकाश किरणे उस वस्तु के विभिन्न बिन्दुओं से, जिसे यह तितली देख रही होती है, इन लैंज पर प्रतिबिबित होती है, परिणामतः तितली उतने ही विभिन्न स्थलों को एक साथ देखती है जितने उस पर प्रतिबिबत होते है। ये सब प्रतिबिबित होने वाले बिन्दुओं की समष्टि एक विस्तृत चित्र उपस्थित करती है। क्योंकि कृमियों की आँखे समतल न ही कर गोल होती है इस लिए उस पर प्रतिबिबित होने वाले विभिन्न स्थल बहुत अधिक होते है, किन्तु इस से यह न समझना चाहिए कि वे एक घपला बनाते है प्रत्युत् उसी प्रकार एक समन्वित चित्र उपस्थित करते है जैसे हमारी आँखे।

किन्तु जब एक मृत तितली की आँख निकाली गई और सम्पूर्ण मसल उससे पृथक कर दिए गये, वह एक पूर्ण छोटे कैमरे की तरह प्रतीत होती थी। यदि इसे ग्लैसरीन की एक बूद पर रख दिया जाए तब तो इसमें एक सुन्दर चित्र प्रतिबिंबित देखा जा सकता है। इस चित्र से हम सहज ही यह देख सकते है कि यह तितली कितनी दूर तक और क्या कुछ देख सकती है। इस प्रकार से प्रतिबिंबित चित्र, यद्यपि वह बहुत स्पष्ट नहीं होता, दूर तक फैले विस्तार की एक आश्चर्य जनक प्रतिकृति उपस्थित कर देता है। यह बहुत आश्चर्यजनक बात है, क्योंकि यह अच्छी तरह से प्रमाणित किया जा चुका है कि यह तितली नौ फुट से परे किसी भी वस्तु की ओर ध्यान नहीं देती उसे वह नही दीखती, किन्तु देखने का यह यन्त्र आँख आश्चर्यजनक रूप से पूर्ण

है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि यह आँख किसी भी प्रकार से तितली को सहज चुनाव के द्वारा प्राप्त नही हुई है प्रत्युत् एक ऐसी रासायनिक प्रक्रिया से विकसित हुई है जिसने न केवल जेन्ज की प्रकृति में एक बार परिवर्तन ही सम्भव किया और इस प्रकार सतानो को एक अनावश्यक लाभ का वर-दान दिया प्रत्युत उनमे स्थायी भी हो गया। इससे न केवल यही प्रमाणित होता है कि किसी अग या प्रवृत्ति के विकास का कारण मुख्यत. सहज चुनाव नही है और यह कि किसी स्थायी प्रवृत्ति की विद्यमानता उस जाति की स्थायी आवश्यकता को सिद्ध नहीं करती प्रत्युत यह भी कि अनुपयोग से कोई अग समाप्त नही हो जाता। इसलिए जेनपरिवर्तन (Gen Mutation) में मूल रूप से मुख्य कारण सहज चुनाव या परिस्थिति के अनुसार अपने आपको ढाल कर आत्म-रक्षा करने की प्रवृत्ति न हो कर परिस्थितियो (आन्तर या बाह्य) द्वारा थोपी गई रासायनिक परिवर्तन की प्रक्रिया है। जर्म मे कुछ जेन बहुत स्थायी होते है जब कि दूसरे प्राय. परिवर्तित होते रहते है, यह भी स्पष्ट ही है कि यह परिवर्तन अधिक स्थायी जेन्ज् मे भी परिवर्तन ला सकता है यदि वह परिवर्तन कुछ गम्भीर हो। इस निरन्तर और सामान्य रूप से घटित होते परिवर्तन की प्रक्रिया की प्रकृति को अनेक बाह्य प्रभाव बदल सकते है जैसे गर्मी, कॉस्मिक. किरणो या अन्य प्रकाश किरणों का प्रभाव, तथा अन्य रासायनिक प्रभाव किन्तु ये प्रभाव जेन-म्यूटेशन को बहुत दूर तक निर्धारित नही करते। किसी भी एक जेन-प्रकृति-परिवर्तन का प्रभाव आकृति या शरीर परिवर्तन पर सामान्य और स्वल्पतम भी हो सकता है और मौलिक परिवर्तन के रूप में भी हो सकता है। बड़े परिवर्तन, जो कि शरीर पर मौलिक प्रभाव डालते है, सामान्यत', यद्यपि सदैव नही, घातक होते है। ये सामान्यत' गर्भ-स्थिति में बच्चे के विकास को अवरुद्ध कर देते है या शीघ्र मृत्यु के कारण होते है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जेन मे रासायनिक-परिवर्तन उपयुक्त तम स्थिति की प्राप्ति और आवश्यकताओं इत्यादि की पूर्ति से कोई संबंध नहीं रखता। इस मामले में वे बिल्कुल आकस्मिक और अनियमित होते है। एक ऐसे प्राणी मे, जो पहले से ही अपनी परिस्थितियो का अधिक से अधिक लाभ उठाने में समर्थ है, यह जैन-रासायनिक परिवर्तन हानिकारक ही हो सकता है, क्योकि ऐसी परिस्थितियो मे कोई भी आकस्मिक परिवर्तन उसको उनपरिस्थितियो का लाभ उठाने मे अनुपयुक्त बना देगा। अन्य प्रणियो में, जो अपनी परिस्थियो मे अयोग्य है, ये परिवर्तन लाभदायक हो भी सकते है, किन्तु यह बिल्कुल सयोग है।

इससे हम सहज ही यह समझ सकते है कि तितली की उस आश्चर्य जनक

ऑख के विकास का, जिसका वह बिल्कुल भी लाभ नही उठाती (क्योकि उसके मस्तिष्क ततु उतने विकसित नही हो सके) इस प्रकार विकास क्यो हुआ। इस प्रकार के हम कुछ और उदाहरण भी देगे, जिनका अब तक के प्रचलित सिद्धान्तो से कोई मेल नही बैठता। जैसे एक स्तन-पायी प्राणी आरमा-डिल्लो एक बार मे चार बच्चे देता है और ये चारों अनिवार्य रूप से या तो नर होते है या मादा, मिले जुले ये कभी नही होते। एक कृमि डूडलबग आठ टॉगो से युक्त होने पर भी पेट के विशेष सकोच-विस्तार से ही चलता है और इसके चलने की दिशा आगे न होकर पीछे की ओर होती है। नर ग्राइ-लिडी इतना सुस्त होता है कि वह अपने स्थान से हिलना भी नही चाहता और यदि मादा समीप न हो तो पेट भरने के लिए दूर जाने से बचने के लिए, अपने बच्चे तक खा जाता है। एक जल-जन्तु हाइड्रा बच्चा या अडा देने की बजाय एक डाली के समान वस्तु उत्पन्न करता है जिसपर फूल होता है। समय आने पर यह फूल हाइड्रा बन कर तैरने लगता है। ऐसे और भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते है जिनकी ऐसी कोई व्यख्या नही दी जा सकती जैसी हम अपनी कल्पनाओ को प्रकृति पर आरोपित करके करते है।

इन विभिन्न प्रवृत्तियो के और अगो के विकास के मुख्यत दो कारण दिए जा सकते है---प्रथम जेनेटिकल और दूसरा प्रक्रियात्मक। जैन्ज मे होने वाले आकस्मिक परिवर्तन प्राणी के लिए लाभ कर हो या हानिकारक, कभी-कभी उस जाति के एक वर्ग मे और कभी सम्पूर्ण जाति मे ही स्थायी हो जाते है। यह भी एक बडा कारण है कि क्यों विकास पूर्ण रूप से 'उपयुक्त तम' की ओर ही नही होता, और अव्यवस्थित तथा अनिर्धारित परिवर्तन प्रदर्शित करता है। चुनाव वास्तव मे, होते हुए परिवर्तनों मे प्रक्रियात्मक प्रयास के द्वारा प्रभाव-शाली होता है अवश्य, किन्तु ये परिवर्तन उसकी अधिक चिन्ता नही करते। फिर प्राणी की प्रक्रिया का 'लाभ' के साथ भी केवल इतना ही सबन्ध है कि उनकी प्रकृति ने उनको जो विशेष वासनाएं दी है, उनकी पूर्ति के लिए सुविधाए जुटा सके।' इस प्रकार स्वयं लाभ की प्रकृति उनके आकस्मिक परिवर्तनों के साथ बदलती रहती है, और एक बडे चुनाव का विषय न होकर, अथवा यों कहे, कि मुख्यतः चुनाव से प्रेरित न होकर स्वय निर्धारित होते हुए चुनाव से निर्धारित होती है।

यह समझ लेने पर, ऐसी वासनाओं को, जो स्पष्ट रूप से अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति की अपकारक है---जैसे पतंगों का दीपक पर मरना, थ्रीस्पाईन्ड स्टिक्कल बैक का अपने रंगों का निखार कर हिंसक शत्रुओं के लिए सुलभ होना इत्यादि, भी हम सहज ही उसी प्रकार एक सामान्य वासनात्मक प्रक्रिया

के अन्तर्गत रख सकते है जैसे मैथुनवासना और भूख को । कुछ प्राणियो मे मैथुन-प्रक्रिया भी वास्तव में मृत्यु का सदेश है, जैसे कृमियो की अधिकाश जातियो मे नर ज्यों ही मैथुन-योग्य अवस्था का होता है त्योंही वह समय के अपव्यय के बिना अपने मैथुन-साथी की ओर दौड़ता है और मैथुन-प्रक्रिया के शीघ्र ही पश्चात् वह मर जाता है । (Cheesman) इसी प्रकार, मोर्गन के अनुसार, साल्मोन मछली अडे देने के पश्चात् मर जाती है । टिबर्जन के अनुसार, सामान्यतः अनेक प्राणी जीवन मे केवल एक ही बार मैथुन प्रक्रिया करते है और उसके पश्चात् मर जाते है । नर मैटिस कृमि मैथुन के पश्चात् मादा से खा लिया जाता है, यूरोपियन मादा फील्ड—क्रिक्कट मैथुन प्रक्रिया के पश्चात् नर के पखों को फाड़ कर उनमे से मैथुन के लिए मादा को उकसाने वाले एक विशेष अंग को काट देती हैं । इस सबसे स्पष्ट है कि मैथुन प्रक्रिया का उद्देश्य अस्तित्व-रक्षा कभी भी नही हो सकता—अन्यथा ऐसे प्राणियों को भी अपनी ही जाति के अन्य प्राणियो के समान जीवन के पूर्ण विकास मे से बीतना चाहिए, फिर चाहे वह कितना भी अल्पकालिक क्यो न हो । मैटिस और फील्ड—क्रिक्कट जाति के नरो को या तो मैथुन-क्रिया ही छोड देनी चाहिए या फिर कोई ऐसा उपाय खोजना चाहिए जिससे वे मादाओ के पंजे से छुटकारा पा सके । कृमियो मे ही अनेक वर्ग ऐसे भी है जो पूरा जीवन जीते है जब कि प्रथम मैथुन के पश्चात् ही मर जाने वाले कृमि अधूरी आयु का उपयोग करते है । इनके विपरीत छत्ता-मक्खियो की जातियो मे बच्चो के बड़े हो जाने पर रानी अपने दासो के साथ निकल जाती है और आमरण अनशन करके आत्म-हत्या कर लेती है जिसे हम आत्म-हत्या की वासना कह सकते है ? प्रकृति मे कोई ऐसा आध्यात्मिक प्राणी नही है जो यह सोचे कि उसने कर्तव्य कर्म कर लिए हैं, इसलिए अब उसकी कोई आवश्यकता नही, वे जो कुछ करते है वह केवल इसलिए क्योकि वे वैसा करने के लिए वासना की धकेल से या अपनी शारीरिक परिस्थियों से बाध्य है । इसलिए यह कहना बहुत कठिन हैं कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति ही जीवन मे प्रक्रियाओं की एक मात्र प्रेरक शक्ति है । कुछ वैज्ञानिक जीवन के लिए सघर्ष को अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति का पर्याय मान कर उसी के एकमात्र प्रेरक और आधार-भूत प्रवृत्ति होने पर बल देते है, जैसे डारविन कहता है—"क्योंकि मिस्टलिटो (एक लता) पक्षियों द्वारा नष्ट की जाती है इसलिए इसका अस्तित्व उन पर निर्भर है, और इस प्रकार वह, आलंकारिक रूप से ही सही, दूसरे फलदार अपने साथी पौधो से संघर्ष निरत कही जा सकती है, जो आत्म-रक्षा के लिए पक्षियों को उसके

बीज खाने के लिए उकसाते है ।" कितनी बड़ी सूझ है, इसे पूर्ण रूप से प्राणी शास्त्र के अध्ययन का मानवीकरण कहा जा सकता है । यद्यपि डारविन 'आलकारिक रूप से' कहते है, किन्तु मै नही समझता, यह कहने की आवश्यकता ही क्यो पडी यदि यही न मान लिया जाए कि वे इस शब्द का अर्थ विस्तृत करके अनर्थ करना चाहते है ? जिन वृक्षों के मीठे फल हम तोड कर खाते है और इस प्रकार उनकी संख्या वृद्धि को हानि पहुँचाते है, वे वृक्ष क्यो सहज चुनाव के द्वारा अपने आप मे कोई परिवर्तन नही लाते ? इसका उत्तर डारविन 'मनुष्य द्वारा चुनाव' कह कर दे देगा, किन्तु तब उन जगली वृक्षों के लिए क्या कहा जाए जिनके फल बन्दर खाते है ? डारविन के ही ऊपर दिये उदाहरण मे यह संदेहास्पद बात है कि किसी वृक्ष को अन्य वृक्षो से इस प्रकार आलंकारिक सघर्ष मे क्यों पडना चाहिए, जिसका अर्थ केवल हमारे द्वारा ही आरोपित हो, क्यों न वह अपने में ही ऐसा परिवर्तन करे जिससे उसे खाने वाले कृमि-पक्षी उसका उपयोग ही न कर सके ? वास्तव में कृमियो मे, निम्न स्तर के रीढ़ धारियो मे और वृक्षो में विकास या परिवर्तन का मूल कारण परिवृत्ति मे परिवर्तन के कारण जेन मे परिवर्तन या मैथुन प्रक्रिया मे जेन सम्मिलन के द्वारा कोई विशेष रासायनिक परिवर्तन हो सकता है, जब कि वासना-पूर्ति और उसमे आने वाली बाधाओ के अपसरण का प्रयास केवल इन परिवर्तनो के परिणाम है, कारण नही ।

डारविन कहता है—"अनेक सामान्य परिवर्तन, जो एक ही दम्पति की विभिन्न सन्तानों में पाए जाते है, छोटे होने पर भी महत्व पूर्ण होते है । वह कहता है कि ये व्यक्तिगत परिवर्तत उत्तराधिकार मे प्राप्त किये जाते है, जिनका कि प्राकृतिक चुनाव Natural Selection मे बहुत महत्व है ।" उसके अनुसार, इन परिवर्तनों में बीतते हुए व्यक्तियो में उपयुक्ततम ही शेष रह पाते है और अन्य समाप्त हो जाते है । यदि यह बात इसी प्रकार ग्रहण की जाए—तब संभवतः किसी को भी आपत्ति नही होगी, किन्तु डारविन इस उत्तराधिकार को भी सहज चुनाव mental selection या Adaptation से निर्धारित मानता है, जो एकदम ज्यादती प्रतीत होती है । इसके खडन के लिए हम उसी का दिया एक उदाहरण लेंगे । वह कहता है—"मै उस जाति को उदाहरण रूप मे स्वीकार करता हूँ जिसे बहु-रूपिणी कहा जा सकता है, जिसमे प्रत्येक वर्ग अनेक रूप की सन्तानों को जन्म देता है । इन रूपो को लेकर बहुत मतभेद है, बड़ी कठिनाई से कोई दो वैज्ञानिक इनके वर्गीकरण मे सहमत हो सकेंगे । हम पौधों मे से र्‍यूबस, रोजा और हीराशियम को और जीवो मे से कुछ कृमि-जातियों को उदाहरण रूप मे रखेंगे ।

सबसे अधिक विभिन्न आकृतियो वाली जाति मे छ. वर्ग निश्चित और स्थिर रूप और चरित्र होते है । जो जातियाँ एक देश मे विभिन्न आकृतियो वाली है वे दूसरे देश मे भी कुछ अपवादों के साथ विभिन्न आकृतियो वाली होती है । वह ागे कहता है कि कुछ प्राणियों मे बहुत से अग न लाभ कर होते है और न हानिकारक और ये अंग उनमे स्थायी हो जाते है, क्योकि सहज़ चुनाव उन पर प्रभावशाली नही होता ।"

इन दो उदाहरणों को डारविन उलझन पूर्ण बताता है, क्योकि सहज चुनाव इन पर सीधे से लागू नही होता । पहले उदाहरण में जहाँ यह प्रमाणित होता है कि सर्वथा भिन्न परिवृत्ति और बाधाएं भी सहज चुनाव के द्वारा उत्तराधिकार को प्रभावित नही कर सकी वहाँ दूसरा उदाहरण यह भी प्रमाणित करता है कि अंगों की विद्यमानता-अविद्यमानता सहज चुनाव पर निर्भर नही करती । इसका कारण हम केवल यही समझते है कि जेन्ज़ मे का अन्तर्निहित inertia (इनर्शिया—एक ही स्थिति मे बने रहने की प्रवृत्ति) परिवृत्ति के प्रभावो को निष्प्रभाव करता रहता है, और जो विभिन्न, और विभिन्न परिवृत्ति मे भी समान वर्ग देखे जाते है वे यह घोषित करते है कि जेन्ज के विभिन्न सम्मिलन यद्यपि असंख्य सम्भावित रूपो को जन्म दे सकते है किन्तु इनके विकास में, यदि यह अब चलता रहे तो, एक नियमित श्रृखला होनी सम्भव है। किन्तु हम सदैव विभिन्न परिवृत्तियों मे विकसित होते एक ही जाति के प्राणियों में कुछ भिन्नता पाते है, जो कभी कभी काफी गम्भीर होती है और व्यक्तिगत-भिन्नता से अधिक स्थायी' होती है, इस भिन्नता का कारण हम परिवृत्ति-जन्य भिन्नता को समझते है जो जेन्ज़ के इनर्शिया मे छिद्र खोज लेती है । किन्तु यह जेन्-इनर्शिया उतना ही अधिक सशक्त होता है जितना ही विकसित प्राणी हो, नही तो कृमियों और वनस्पतियो मे इतना इनर्शिया नहीं होता, अथवा, उनके जेन उत्तराधिकार को सुरक्षित रखने में इतने समर्थ नहीं होते ।

जेन्ज़ में वासना भी परिवर्तन सम्भव कर सकती है, जैसा कि हम पीछे कह आए है, किन्तु यह परिवर्तन किसी ऐसे सुक्ष्मतत्त्व के जेन्ज़ मे प्रवेश से नही होता जिसे हम वासना या भावना कह सकते हैं प्रत्युत् वासनाएं और प्रक्रियाएं जिस धकेल से उत्पन्न होती है, वह उन रासायनिक परिस्थितियों की ही परिणाम होती है जो उत्तराधिकार और जीवन की परिवृत्ति (भौगोलिक और रासायनिक) की परिणाम होती है । किन्तु एक बार जब यह वासना स्थिति में आ चुकी रहती है उस समय उसकी धकेल को व्यय करने के लिए प्राणी निकास ·खोजता है और इस प्रकार

प्रक्रिया का जन्म होता है। यह प्रक्रिया अपनी उत्पत्ति के लिए शरीर के रासायनिक परिवर्तनो से कितनी निर्धारित होती है यह इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि यदि भूखे प्राणी का खून पूर्ण तृप्त प्राणी मे डाल (इजेक्ट कर) दिया जाए) तो वह भी भूख से व्याकुल हो उठता है। (Mc-dougal) इस प्रकार यह वासना मौलिक है और प्रक्रिया आवश्यक है, क्योकि वासना की धकेल अपने व्यय के लिए प्राणी को बाधित कर देती है। और यदि यह धकेल अपना उपयुक्त निकास नही कर पाती तो इसका प्राणी के लिए घातक होना अनिवार्य है, सम्भव है वह कभी उसके जनन कोषो पर प्रभाव डालकर उसमें जेन म्यूटेशन की कारण हो उठे। इसका दूसरा प्रभाव जेन्ज के चुनाव पर होना भी सम्भव है क्योकि यह शरीर मे ऐसे रासायनिक तत्वों को उत्तेजित कर सकता है जिससे विशेष कोषों का और अगों का प्रतिनिधित्व करने वाले क्रोमोसोम (Chromosome) अधिक क्रियात्मक हो उठे और इस प्रकार दूसरे मैथुन साथी के विशेष क्रोमोसोम के साथ मिलकर शरीर-प्रकृति पर प्रभाव डाले। किन्तु परिवर्तन या विकास के इन कारणों मे से किसी को भी बहुत दूर तक नही खीचा जा सकता, जैसा कि अनेक वैज्ञानिक किसी एक को ही आधार भूत मान कर अन्य से निषेध करते आए है। फिर चुनाव संबंधी ये कल्पनाएँ प्रयोग सिद्ध न होकर केवल अटकले ही है।

डारविन ने सहज-चुनाव पर बहुत बल दिया है; सहज चुनाव मे 'एप्पी-- टाइटिवबिहेव्यर और कज्यूमेटरी ऐक्ट' जन्य चुनाव भी सम्मिलित होने चाहिए; किन्तु वह सहज-चुनाव को जीवन-संघर्ष तक ही सीमित रखता है जो अन्ततः अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति का ही पर्याय है। सैक्सुअल-चुनाव को भी वह एक सीमा तक महत्त्व देता है, किन्तु यह वास्तव में अपवादों की व्याख्या करने के लिए। फिर उसके अनुसार, सैक्स भी अन्ततः अस्तित्व-रक्षा के ही अन्तर्गत है, क्योंकि सन्तानोत्पत्ति का यह साधन है और ज्यामितिक अनुपात Geome tnical Ratio बढ़ाने मे सन्तान की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस प्रकार सहज ही यह देखा जा सकता है कि डारविन तथा अन्य विकासवादी बलात् उन प्रक्रियाओं पर एक ऐसे उद्देश्य को ठोंसते है जो वास्तव में हमारी अपनी कल्पना है। सन्तानोत्पत्ति सैक्सुअल प्रवृत्ति का उद्देश्य नहीं परिणाम है, इसी प्रकार ज्यामितिक अनुपात-वृद्धि भी सन्तानोत्पत्ति का उद्देश्य न हो कर परिणाम मात्र है।

× वासनात्मक और आत्मव्ययी प्रक्रिया।

जैसा कि हम इस निबन्ध के प्रारम्भ मे देख आए है, हमारे व्यवहारो को दो मुख्य वर्गों मे बाँटा जा सकता है— (१) वासना प्रेरित क्रियाशील ता और उसका प्रक्रियात्मक व्यय तथा (२) आवेगात्मक प्रतिक्रिया Emotional Response)। प्रथम यद्यपि अन्तः प्रेरणा और शारीरिक-प्रक्रिया जन्य व्यवहार है, किन्तु यह शारीरिक-प्रक्रिया परिवृत्ति के जिस विषय (Object) पर क्रियाशील होती है उसके अनुसार अपने प्रक्रियात्मक व्यवहार को निर्धारित करना उसके लिए आवश्यक है, किन्तु आवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ—भय, क्रोध, विस्मय, और घ्राण तथा स्पर्शानुभूति आदि इन्द्रिय विषय प्रतिक्रियाएँ–सामन्यित. हमारा शरीर-धर्म ही है, यद्यपि ये भी एक सीमा तक विशेष से चिपटी रहती है, और कुछ उन पूर्वानुभवों पर, जिनमे उत्तराधिकार में प्राप्त अनुभव भी सम्मिलित है, अवलबित है। चूहे का बिल्ली को देखते ही भय-कम्पित हो उठना पूर्वानुभवों पर आश्रिति है और इसी प्रकार बिल्ली का चूहे को देखते ही आक्रमण-प्रवृत्ति से अभिभूत हो उठना पूर्वानुभव-प्रेरित आवेगात्मक व्यवहार है। किन्तु यदि बिल्ली को प्रारंभमे ही खाने को कुछ दूसरी वस्तु दी जाए तो उसकी आवेगात्मक प्रक्रिया उस पर केन्द्रित हो जायगी × इसी प्रकार यदि चूहे को प्रारम्भ में ही ऐसी बिल्ली के पास रखा जाए जो अहिसक है तो उसकी आवेगात्मक प्रक्रिया—केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बदल जाएगी। इसी प्रकार अन्य भी कितने ही उदाहरण दिए जा सकते है। अस्तु, इन दोनो व्यवहारों मे न केवल बाह्य अन्तर है प्रत्युत्, जैसा कि हम पीछे भी कह आए है, शरीर वैज्ञानिक—शरीर की अन्तः प्रकृति में निहित, अन्तर भी है। सामान्त· अस्तित्व-रक्षा का संघर्ष इन दोनो से बँधा है—पहले में जहाँ उदर पूर्ति के लिए प्राणी अनेक साधनो का आविष्कार करता है वहाँ दूसरे मे वह बाह्य खतरो से अपनी रक्षा करने मे समर्थ होता है। किन्तु अस्तित्व-रक्षा इन दोनों मे से किसी भी व्यवहार को पूर्ण रूप से व्याप्त नही कर सकती। कहा जा सकता कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति जीवन की अन्तर्निहित प्रवृत्ति है—यह जीवन-रचना और जीवन-विकास की प्रकृति में ही निहित है, और आवेगात्मक प्रतिक्रिया अपकारक परिवृत्ति से बचने की और इस प्रकार अस्तित्व-रक्षा की साधन है।

मै नही समझता कि इससे कुछ मौलिक अन्तर पड़ता है, इसमे शब्दों का चक्कर ही अधिक है, क्योकि प्रायः प्रत्येक आवेग, विशेषतः स्पर्श-सुख या चुम्भन और पीड़ा इत्यादि भी, शायद अधिक स्पष्ट और निश्चित् रूप से, जीवन

× महादेवी जी की बिल्ली केवल पापड़ खाती है, चूहा तो बिल्कुल भी नहीं खाती।

की किसी भी अभिव्यक्ति (शरीर) में पाई जा सकती है। और सच तो यह है कि यदि कहा जाए कि वासनात्मक धकेल (Appetitive Push) और आवेगात्मक प्रतिक्रिया (Emotional Response) ही वास्तव मे परिवृत्ति के सघर्षण मे अपनी आवश्यकतानुसार प्राणी के व्यवहार और प्रक्रिया मे कारण भूत होती है तो यह अधिक उपयुक्त जान पडता है (यद्यपि इनसे स्वतन्त्र जेनम्यूटेशन भी इसमे बहुत महत्व रखता है)। आवेगात्मक प्रतिक्रिया यद्यपि अस्तित्व-रक्षा मे बहुत अधिक सहायक है किन्तु यह कैसे कहा जा सकता है कि ये विभिन्न प्रतिक्रियाए अस्तित्व-रक्षा की ही पर्याय है?—अर्थात् जीवन ने अपनी रक्षा के लिए ही इनको जन्म दिया है? भय अपने बलवान् शत्रु से भी होता है और छोटे से ही पीडा जनक प्रहार से भी; यद्यपि इन दोनो मे अन्तर मात्रात्मक है किन्तु प्रभाव मे तो गुणात्मक अन्तर ही है न कि मात्रात्मक, और इन दोनों मे शरीर-यंत्र की एक ही प्रक्रिया-योजना प्रयुक्त होती है। सामान्यत पशु यह अनुभव से जानता है कि अमुक प्रहार उसे केवल कम या अधिक पीड़ा पहुँचाएगा जब कि दूसरा उसके अस्तित्व तक को मिटा सकता है, किन्तु तब भी उसकी आवेगात्मक प्रतिक्रिया मे कुछ अन्तर नही देखा जाता। सर्दियो मे पशु गर्म स्थानो की खोज करते है, चाहे उस सर्दी से उनकी मृत्यु की कोई भी सम्भावना न हो। फिर एक सीमा तक सर्दी मे स्वयं हमारा शरीर अपना इस प्रकार प्रबन्ध करता है कि सर्दी का प्रभाव कम किया जा सके, किन्तु यह क्रिया एकदम भौतिक है न कि प्रयास जन्य। यह ठीक है कि अधिक सर्दी या अधिक गर्मी मृत्यु का कारण हो सकती है किन्तु वे इससे इसलिए नही बचते कि इससे उनके अस्तित्व को कोई खतरा है बल्कि इसलिए कि परिवृत्ति की प्रतिकूल परिस्थिति से जो भौतिक परिवर्तन उनके शारीरिक-सस्थान में होते है वे उनको असुविधा पहुँचाते हैं, वे उनको पीड़ित करते है, उनके शरीर की शक्ति का अपव्यय होता है और इस प्रकार उनको इससे थकावट और तगी अनुभव होती है। इसी प्रकार भूख की सन्तुष्टि न होने से प्राणी की मृत्यु अनिवार्य है, किन्तु प्राणी उसकी सन्तुष्टि के लिए इसलिए प्रयास नहीं करता कि यह उसके अस्तित्व के लिए खतरा है बल्कि इसलिए कि वासनात्मक धकेल उसको इसके लिए बाध्य कर देती है, उसकी नाड़ियाँ उस धकेल से तन जाती है और उस तनाव का व्यय करने के लिए व्याकुल हो उठती है, नहीं तो यह तनाव स्वयं समाप्त हो जाता है और उसका यह अस्वाभाविक व्यय उसमें थकन और दौर्बल्य छोड़ जाता है, उन नाड़ियी में उत्पन्न शक्ति शरीर को ही खाने लगती है। सम्भवतः भूख की

वासनात्मक धकेल उसे उसी प्रकार बाध्य करती है जैसे शलभ की जलने की वासना उसे अग्नि पर जलने को बाध्य करती है, या मैथुन वासना प्राणी को मैथुन साथी खोजने के लिए बाध्य करती है या कुछ कृमियो मे यह जीवन-नाशक-मैथुन-प्रक्रिया के लिए धकेलती है। इसी वासनात्मक धकेल, वासना-व्ययी प्रक्रिया तथा आवेगात्मक प्रतिक्रिया के परिवृत्ति के साथ सम्बन्ध के आधार पर ही सहज-चुनाव की प्रवृत्ति का भी निर्धारण होता है। सहज-चुनाव शब्द हमारे अर्थ को बिलकुल भी ठीक प्रकट नही करता, क्योकि यह कुछ सीमा तक मनोवैज्ञानिक पहलू पर अधिक बल देता है, इसलिए हम प्रक्रिया शब्द का प्रयोग, जैसा कि हम पीछे भी करते आए ह, करेगे। प्रक्रिया शब्द मे न केवल प्राणी की क्रिया शीलता ही अभिप्रेत है प्रत्युत् परिवृत्ति के विषय (object) भी समवेत ह, क्योकि प्राणी-व्यवहार मे प्राणी की प्रकृति और परिवृत्ति की प्रकृति दोनों ही समान रूप से प्रभावशाली होते है। इसमे न केवल प्राणी का शारीरिक विकास ही प्रत्युत् प्राणी का व्यवहार भी अन्तर्हित हो जाता है। डारविन सहज चुनाव की जो व्याख्या करता है वह बहुत कुछ निर्दोष अवश्य है किन्तु उसमे हमारी प्रक्रिया और जैन-म्यूटेशन तथा अधिक मनोवैज्ञानिक तत्वो का घपला कर दिया गया है। नर थ्रीस्पाईड स्टिक्कल बैक का लाल पेट इसका बहुत ही स्पष्ट उदाहरण है—एक नर थ्रीस्पाइड की दूसरे थ्रीस्पाइड के लाल पेट को देखकर आक्रमण करने की प्रवृत्ति एक ऐसा व्यवहार है जिसमे मादा को आकर्षित करने की प्रवृत्ति, मादा का लाल रंग के प्रति आकर्षण और प्रतिद्वदी का तुष्टि मे बाधक होना सभी कुछ सम्मिलित है, फिर भी यह एक सहज प्रक्रिया है जो लाल पेट पर इस प्रकार केन्द्रित हो गई है कि उसे अन्य किसी पहलू की अपेक्षा ही नही है। यह प्रक्रिया-केन्द्रीकरण जहाँ स्टिक्कल बैक को शस्त्र-सज्जित होने के लिए प्रेरित करता है वहाँ इसमे अन्तर्निहित दूसरा प्रक्रिया-केन्द्रीकरण (मादा को आकर्षित करने की वासना) उसे और अधिक आकर्षक होने के लिए उत्तेजित करता है, और इस विकास मे प्रक्रिया केवल Internal inspiration (अन्तः प्रेरित वासना) के रूप में ही नही External stimuli (बाह्य आवेगात्मक उकसाहट) के द्वारा भी समान रूप से निर्धारित होती है; इसे यदि इस प्रकार कहा जाए कि प्रक्रिया की प्रकृति या 'चुनाव' मे अन्तः प्रेरणा और बाह्य उकसाहट की अन्विति कारण भूत है तो अधिक उपयुक्त होगा, और इस प्रक्रिया-केन्द्रीकरण को अस्तित्व रक्षा के उपकारक तत्वो का समूह न कहकर वासनात्मक धकेल और उसकी वासना-व्ययी क्रिया की प्रक्रियात्मक अन्वित कहा जा सकता है। इस अन्विती के दोनों पहलू प्रक्रिया-विकास के

लिए कितने आवश्यक हैं यह हम वनस्पतियों और पशुओं के प्रक्रिया यंत्रों और प्रक्रियात्मक व्यवहारों की तुलना करके सहज ही देख सकते हैं। वनस्पतियों की शारीरिक निर्माण की प्रकृति ही कुछ इस प्रकार से विकसित हुई है कि वे अपना भोजन वायु और पृथ्वी से ही प्राप्त कर सकते हैं और उनकी मैथुन-वासना की सन्तुष्टि वायु के द्वारा अथवा कृमियों या पक्षियों के द्वारा लाए गए हुए विरुद्ध लिंगी फूलों इत्यादि के रज वीर्य को प्राप्त करके ही हो जाती है। इसी प्रकार उनकी त्वचा और स्नायु ततु भी बहुत कम चेतन हैं। यही कारण है कि उन्हें न तो चलने फिरने की आवश्यकता है और न गर्मी-सर्दी से बचाव की। किन्तु जिन वनस्पतियों को अपनी वासनाओं की सतुष्टि के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिला, उन्हें अपने प्रक्रिया केन्द्रों को बदलना पड़ा, वे अपने आहार की प्राप्ति के लिए दूसरे विषय खोजने को बाध्य हुईं। वनस्पतियों का जन्तुओं से भिन्न प्रक्रिया-विकास इसलिए हुआ हो सकता है कि उनकी शरीर-रचना ही इस प्रकार की थी या फिर इसलिए कि उनकी परि-वृत्ति ही इस प्रकार की थी कि उनके प्रक्रिया-यत्र इस प्रकार से विकसित हो गए! स्पष्टत. इसमें कारण प्रयास न होकर विकास ही हो सकता है। बर्गसा के विचार में जीवन का एक ही स्रोत है इसलिए वनस्पतियों और जन्तुओं के भिन्न विकास का कारण उनकी अस्तित्व-रक्षा की आवश्यकताएँ ही कही जा सकती है। उन्होंने बहुत विस्तार से इसका वर्णन किया है और उनकी काव्य मयता ने उसे बहुत आकर्षक बना दिया है, किन्तु क्यों एक ही उत्स से उत्पन्न जीवन एक ही स्थान पर एक ही परिस्थिति में इतनी विभिन्न दिशाओं की ओर बढ़ गए—इसका सतोषजनक समाधान हम बर्गसां के पास से नहीं पा सके। यदि एक ही प्रकृति के दो व्यक्तियों को एक ही परिस्थिति में रखा जाए तो कोई कारण नहीं कि वे भिन्न और इतने भिन्न क्यों हों।

यदि यह मान लिया जाए कि जीवन की उत्पत्ति प्रारभ से ही कुछ भिन्न रूपों में हुई होगी तो यह आपत्ति-जनक क्यों समझा जाए? यह ठीक है कि ऐसे अनेक जीव आज भी विद्यमान हैं जो वनस्पतियों और प्राणियों के अन्तर के केन्द्र बिन्दु पर है, किन्तु इससे कुछ मौलिक अन्तर नहीं पड़ता।

सम्भवतः इसमें किसी को भी आपत्ति नहीं होगी कि जीवन पृथ्वी की अपनी प्रकृति और सूर्य की किरणों की शक्ति—पूर्ण उष्णता के एक विशेष रासायनिक सघर्षण का परिणाम होगा जो कि प्रोटोप्लास्मिक (Protoplasmic) रासायनिक तत्व के रूप में उत्पन्न हो गया, इसलिए जीवन की वासना Push या Impetus पदार्थ की सकलयिता न होकर स्वय संकलन की परिणाम है, इसीलिए जीवन और सकलित रासायनिक

पदार्थ भी अभिन्न है,—इसे दूसरे शब्दो में ऐसे भी कह सकते है कि प्राणी परिवृत्ति का विशेष सकलन है, जिसमें पृथ्वी के तत्व, सूर्य की किरणे इत्यादि ही नही, सर्दी-गर्मी इत्यादि सभी सम्मिलित है, जो कि इस रसायनिक द्रव्य की प्रकृति का निर्धारण करते है—या स्वय उसमे एक तत्व है। यह स्वीकार कर लेने पर अब यह सुविधा से कहा जा सकता है कि प्रत्येक जीव परिवृत्ति के विशेष रासायनिक संकलन का ही परिणाम होगा और इस प्रकार वह प्रकृति में भी प्रत्येक अन्य सकलनो से भिन्न होगा। सम्भवतः यही कारण है कि जीवन इतनी दिशाओं में विभक्त मिलता है। इसका यह अर्थ नही कि प्रत्येक प्राणी प्रारम्भ से ही कुछ आधार भूत भिन्नताओ के साथ उत्पन्न होकर आगे होनेवाले परिवर्तनो मे विकसित होता रहा है। सम्भव है चावल पहले कुछ भिन्न रंग के भिन्न प्रकार के भिन्न स्वाद के और भिन्न ऋतु मे होते हों, किन्तु चावल और पीपल का उत्स एक ही हो, यह न तो अवश्यक ही है और न असंभव ही। इसी प्रकार मच्छर और मनुष्य का एक ही उत्स से उत्पन्न होना या न होना समान रूप से सम्भाव्य है, तो भी मच्छर और मनुष्य का बहुत एक जैसी अथवा एक ही रासायनिक अन्विति से विकसित होना बहुत सम्भव है।

किन्तु जीवन का उत्स क्या है, यह हमारे लिए यहाँ उतना महत्वपूर्ण नही है, हमारे लिए महत्व इस बात का है कि परिवृत्ति प्राणी पर कहाँ तक प्रभाव डालती है अथवा वह कहाँ तक परिवृत्ति से निर्धारित होता है। इसके लिए हमारा सहज और सामान्य यही उत्तर हो सकता है कि जिस जाति के जैन्ज़ पर परिवृत्ति का जितना अधिक प्रभाव पड़ता है, अथवा जिस जाति के जेन् जितने अधिक बाह्य प्रभाव के लिए खुले है वह जाति उतनी ही अधिक परिवृत्ति से निर्धारित होती है, जैसा कि हम आगे और भी विस्तार से देखेगे।

किन्तु एक बार जीवन के किसी भी रूप मे अस्तित्व में आ जाने पर उसका परिवृत्ति के साथ प्रक्रियात्मक–सम्पर्क स्थापित होता है और एक के बाद दूसरी सन्तति मे आवश्यकतानुसार कुछ न कुछ सम्भावित परिवर्तन होते रहते है—जिसके लिए हम पीछे कुछ लिख आए है और आगे एक निश्चित सैद्धान्तिक स्तर पैर और भी देखेंगे। पीछे हमने देखा था कि कैसे प्रवृत्तियां विकसित होती हुई या तो प्राणी की शरीर रचना मे, या फिर उसके स्नायविक प्रबन्ध की प्रकृति में अपना स्थान बनाकर व्यवहार के विकास का या परिवर्तन का कारण होती है। इसी प्रकार हमने शिक्षित और अशिक्षित चूहो का उदाहरण भी दिया था कि कैसे ३४ वीं पीढ़ी में परीक्षित

चूहों मे काफी बड़ा अन्तर पाया गया था। जैन्ज़ में जो अधिक इनर्ट Inert जेन भी है, वे यदि नहीं भी बदलते तो भी ऐलैल्ज (शीघ्र परिवर्तित अथवा प्रभावित होने वाले जेन) निरन्तर प्रभावित होते रहते है और वे इस प्रकार प्राणी की परिवृत्ति को उसके शारीरिक संस्थान में निहित करते रहते है। Somesthetic System (जर्म के अतिरिक्त जीवन-पदार्थ) जो इन क्रोमोसोम्ज़ (जैन्ज को धारण करने वाले लम्बे डब्बे जिनका स्नायुओ से भी संबंध है) से विकसित होता है, इस प्रकार उत्तराधिकार मे प्रक्रिया को और परिवृत्ति को एक विशेष और भिन्न शारीरिक संस्थान के रूप मे ग्रहण करता रहता है। इस प्रकार घनीभूत होते हुए प्रवृत्ति या प्रक्रिया और परिवृत्ति (भौतिक) के प्रभाव हमारे विकास में कारण बनते हैं।[1] किन्तु वर्गसा इस विकास मे मनोवैज्ञानिक विकास को अधिक मुख्य समझता है, यद्यपि वह एक ऐसी जीवन की लहर की कल्पना करता है जो अभौतिक है और अविभाज्य है। इस प्रकार उसका मन भी एक सीमा तक अभौतिक और अविभाज्य है। वह कहता है—"इस प्रकार हम Eimer से तब सहमत नही हो सकते जब वह कहता है कि भौतिक और रासायनिक कारणों का संकलन ही इसके लिए काफी है। इस के विपरीत, हमने आँख के उदाहरण से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यदि जर्म से जर्म में सीधे विकास क्रम को स्वीकार किया जाए तो मनोवैज्ञानिक कारणों को स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है। एक उत्तरोत्तर होता हुआ निश्चित दिशा की ओर परिवर्तन, जो निरन्तर पुजीभूत होता हुआ अधिक से अधिक उलझन पूर्ण यत्र को सम्भव करता है, निश्चित रूप से प्राणी के प्रयास का परिणाम है, क्योंकि बाह्य परिस्थितियो से स्वतंत्र यह प्रयास ही, जो कि एक जाति के सभी प्रतिनिधियो के लिए सामान्य है और जो उनके शरीर के बजाय जर्म में निहित है, और जो उनकी सन्तानों में और भी विकसित होता रहता है, विकास की ठीक व्याख्या दे सकता है।" इस प्रकार वर्गसां जीवन को एक मौलिक प्रवृत्ति या निरन्तर विकास शील मौलिक शक्ति के रूप में देखता है, जो अपनी अभिव्यक्ति या विकास के लिए पदार्थ को सहायक रूप मे स्वीकार करती है। वह कहता है "यदि यह बात न होती तो विभिन्न दिशाओ में प्रगति शील प्राणियों मे आँख का एक ही समान यंत्र कैसे सम्भंव होता?" इसलिए, उसके अनुसार, "इससे यह परिणाम निकलता है कि विभिन्न दिशाओं में विकासशील

---

१ जर्म सेल और शरीर-विकास के संबंध की ठीक व्याख्या के लिए तृतीय और चतुर्थ निबंध देखें।

जीवन के आधार में एक मौलिक प्रवृत्ति या शक्ति की सम्भावना आवश्यक हो जाती है जो विकास की विभिन्न दिशाओं में उलझती हुई विभक्त हो गई है। ये विभिन्न जातियाँ इस मौलिक शक्ति-स्रोत से ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों इनकी विभिन्नताएँ भी बढ़ती गई, किन्तु कुछ पहलुओं में उनमें अब भी समता पाई जा सकती है, और यह समता होनी अनिवार्य है, नहीं तो हमारी यह मौलिक शक्ति की कल्पना निराधार हो उठेगी।" किन्तु यह अभौतिक शक्ति-स्रोत[1] क्या है, उनकी Creative Evolution से यह समझना कठिन है, और यदि हम उनकी दूसरी पुस्तकों की इसे समझने मे सहायता लें तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाएगी क्योंकि Matter and Memory में वह एक प्रकार की आत्मा की कल्पना करते है, किन्तु वह आत्मा और Time and Free will का सहजमन (Intuition) इस समस्या को सुलझाने के बजाय और अधिक उलझा देते है। वह वास्तव में आत्मा की व्याख्या नवीन विज्ञान (१६ वीं शताब्दि का) के और नवीन वैज्ञानिक दर्शन के प्रकाश में करता है, इससे वह न पूरी तरह से आत्मा रह जाती है और न भौतिक मन। फिर यदि बर्गसां की कल्पना को हम एक बार पूर्णरूप से स्वीकार भी कर ले तो प्रश्न किया जा सकता है कि क्यो समता अन्यत्र बिल्कुल न होकर केवल आँख तक ही सीमित रही ? फिर आंख भी सब प्राणियों में समान नही है। Infusoria में आंख के नाम पर केवल आँख का चिन्ह है, जिसे वर्गसां प्रकाश का प्रभाव स्वीकार करता है। यहाँ दो प्रश्न किये जा सकते है, प्रथम तो यह कि Infusoria की आँख का विकास, जो बाद की बात है, उन दो भिन्न श्रेणियों मे एक समान ही कैसे हुआ जो अन्य पहलुओं में पहले एक समान रह कर भी बाद में भिन्न हो गए ? यह सचमुच ही आश्चर्य की बात है कि एक प्राणी जिन पहलुओं में पहले एक समान ही थे उनमें वे भिन्न हो जाएं और उस भिन्नता की प्राप्ति के बाद उनमें विकसित होने वाली आँख समान हो। दूसरा और अधिक उपयुक्त प्रश्न यह है कि प्रकाश Infusoria (इन्फ्यूजोरिया) के एक विशेष स्थल पर ही आँख के चिन्ह बना सका, वे चिन्ह अन्यत्र क्यों नहीं बने ? फिर वे चिन्ह ही आगे आँख के रूप में क्यों विकसित हुए ? यह संभव है कि प्राणी ने प्रयास भी किया हो किन्तु केवल प्रयास ही कैसे इस उलझन पूर्ण यत्र को सम्भव कर सका ? सम्भव है बर्ग सां का Common-Stuff से अभिप्राय Common Physiology (समान शारीरिक संस्थान) और

[1]Vital Impetus

इस प्रकार Common Heredity (समान उत्तराधिकार) से हो, जो जीवन के एक उत्स के कारण सम्भाव्य है । किन्तु हम शीघ्र ही देखेंगे कि इसके लिए भी कोई वास्तविक आधार नही है । बर्गसां स्वय ही एक श्वेत बिल्ली का उदाहरण देता है जिसकी आँखों में देखने की शक्ति नही रहती, और वह स्वीकार करता है कि इसका केवल शरीर वैज्ञानिक कारण ही समझा जा सकता है । तो हम नही समझते कि यही कारण सार्वभौमिक रूप से क्यों न स्वीकार किया जाए ? इंफ्यूजोरिया के चक्षु-चिन्ह को प्रकाश का परिणाम स्वीकार कर लेना और मनुष्य या पक्षी की अत्यन्त विकसित आँख को किसी मनोवैज्ञानिक प्रयास से विकसित और जीवन की अन्तर्गत एकता से समान कहना ऐसा ही है जैसे कोई केवल प्रोटोप्लास्म (सजीव रासायनिक द्रव्य) के जीव अमोयबा को तो केवल रासायनिक सकलन का परिणाम कहे और मनुष्य में आत्मा की ज्योति के जगमगाने की बात करे । मोल्लुस्क और मनुष्य की दो सर्वथा भिन्न जातियों मे विभाजित वह 'मौलिक जीवन शक्ति' यदि किसी मनोवैज्ञानिक कारण से विभाजित हुई है तो उसकी यह भिन्नता आँख पर भी प्रभाव शाली होनी ही चाहिए। इस प्रकार बर्गसा जिस सुविधा के लिए मनोवैज्ञानिक शक्ति और किसी रहस्यमय जीवन-स्रोत की कल्पना करता है वह समस्या को और भी अधिक उलझा देती है ।

फिर, मोल्लुस्क और मनुष्य की आँख में आश्चर्य जनक समता दिखा-कर जो जीवन की एक सार्वभौम योजना या सार्वभौम जीवन-शक्ति की सम्भावना को सिद्ध करते हैं वे आँखों की अनन्त विभिन्नताओं को भूल कर केवल एक उदाहरण चुन लाते है । ये सब आँखें एक ही ढंग से कार्य करती है किन्तु एक ही ढंग से बढती (Develop) नही होती और न एक ही समान विकसित होती है । रीढ़ धारियों की आँख मे रेटिना (विशेष स्नायु-गुच्छ) और इसके प्रकाश ग्राहक कोष प्रकाश से भिन्न दिशा मे उद्दिष्ट है जब कि मोल्लुस्क में प्रकाश की ओर अभिमुख हैं । यही गम्भीर अन्तर कुछ चित्र न ग्रहण करने वाली, अरीढ़धारी प्राणियों की आँखों में पाया जाता है। इसलिए वास्तव में यह जीवन की प्रकृति और परिवृत्ति है जो एक ही कार्य के लिए करोड़ों भिन्नताओं को जन्म देती है । असंख्य रीढ़धारी और अरीढ़-धारी प्राणियों में स्पष्ट रूप से बाह्य विषयों को देखना अथवा प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया शील होना एक सामान्य व्यापार है। कुछ प्राणियों में, जिनके हम आगे उदाहरण देंगे, यह किसी भी विशेष महत्व से रहित है, जब कि कुछेक में, यद्यपि ऐसे बहुत कम प्राणी होंगे, यह व्यापार हानिकारक भी हो सकता है । किन्तु यह परिवृत्ति से लाभ उठाने में एक स्वभावतः लाभप्रद व्यापार

है। कुछ प्राणियों में तो यह व्यापार केवल प्रकाश की उपस्थिति या अनुपस्थिति की सूचना देने भर तक सीमित है, जब कि दूसरो मे यह आकृति का पूर्ण चित्र ग्रहण करने मे समर्थ है, जो आकृति प्रकाश को प्रतिभासित करती है। यहाँ तक कि ये आखे विषय की दूरी, गति और रंग तक को ठीक ठीक बता सकती हैं।

प्रकाश-ग्रहण करने की क्रिया अधिक विशेष और निर्धारित हैं। यह कल्पना की जा सकती है कि इस प्रक्रिया के विकास का केवल एक ही मार्ग था, कम से कम केवल एक ही सब से अच्छा ऐसा यंत्र हो सकता था जो बाह्य प्रकाश विषयों का संवेद कर सके। तो भी वास्तव मे प्राणियों की आँखो (Photoreceptors) की असख्य विभिन्नताएं देखी जा सकती हैं। कुछ एक कोष वाले प्राणियों में शरीर विभिन्न कोषों में विभाजित न होने से, सारा का सारा ही प्रकाश-किरणों की उकसाहट के प्रति प्रतिक्रिया शील (sensitive) है, जब कि दूसरों में एक विशेष प्रकाश-सग्राहक बिन्दु प्रोटोप्लास्म में उत्पन्न हो गया है। किन्तु चित्र-ग्राहिणी आँखें भी, साधारण प्रकाश-ग्रहण के प्रकार की दृष्टि से भी, जिसके अनुसार वे कार्य करती है, किसी प्रकार से भी समान नहीं है। इस दृष्टि से सामान्यत. चार प्रकार की आँखे देखी जा सकती है : लैंजयुक्त, केवल सूक्ष्म सुराखो वाली, अनेक ट्यूबों वाली और गुम्बदाकार या गोल आँखे। पहली सामान्यत. रीढ़ धारियो मे, दूसरी नॉटिलुस (विशेष जल जन्तु) में और तीसरी मक्खियों मे पाई जा सकती है जब कि चौथी अनेक कृमियों में विभिन्न स्तरो पर देखी जा सकती हैं। (Simpson)

अकेले कृमियों में ही आँखों की असंख्य विविधताएं देखी जा सकती है। कुछ कृमियों में जहाँ केवल एक लैंज ही आँख के लिए पर्याप्त है वहां दूसरों में हजारो लैंज एक ही आँख में प्रयुक्त होते है। इतना ही नही, कुछ कृमियों में आश्चर्य जनक रूप से विकसित आँखों के साथ एक या अधिक ऐसी आँखें भी होती हैं जो नितान्त साधारण है और जिनसे वे कुछ भी काम नहीं लेते। ये आँखें सामान्यत. उन्ही कृमियो के होती है जिनके नितान्त विकसित आँखे भी पाई जाती है। ये आँखे (ocelli) दूसरी आँखों से भिन्न दिशा की ओर उन्मुख होती है, कभी कभी सिर के ऊपर और कभी मस्तक के आगे की ओर, इसलिए ये वास्तविक आँखों से भिन्न दिशा में ही देखती हैं। कृमियों की वास्तविक आँखें सिर के दोनों (दाहिने—बाएं) ओर

लगी होती है । सम्भवत. ocelli दूसरी दिशाओं से (ऊपर या सामने से) आने वाले शत्रुओं को, प्रकाश और छाया के ज्ञान द्वारा, देखने मे सहायता देती है, किन्तु यह भी प्रयोगो से सिद्ध नही हो सका है । एक विशेष मछली की प्रत्येक भुजा पर एक आँख होती है । (Beaty)

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि बर्गसाँ जिस एकता की और इस प्रकार एक जीवन लहर (Elen vital) की कल्पना करता है उसमें कोई सत्यता नही है । अपने तर्क के प्रमाण मे वह एक और उदाहरण देते हुए कहता है––यदि crystalline lens को अपसारित कर दिया जाए तो Iris (इरिस) स्वय ही पुनः उसे उत्पन्न कर देती है, जब कि इरिस का कार्य और निर्माण लैंज से सर्वथा भिन्न हुआ है । उसके अनुसार, इस प्रकार भिन्न कारण से भिन्न कार्य का होना पुनः किसी आन्तरिक और सप्राण प्रेरणा की ओर सकेत करता है। जब कि यह उदाहरण वास्तव में बर्गसां के तर्कों का दुहरा खंडन करता है, क्योंकि यहाँ यह प्रमाणित होता है कि मोल्लुस्क और मनुष्य की आँख का समानान्तर विकास––Law of coordinated development (दो घटनाओं का समानान्तर कारण नियम द्वारा होना अथवा हेतु हेतु मद् संबंध) के अनुसार हुआ है वहाँ यह भी सिद्ध होता है कि यह उसी प्रकार शरीर-वैज्ञानिक प्रकृति का है जैसे नीली आँखों वाली सफेद बिल्ली का बहरी होना शरीर-वैज्ञानिक है। वास्तव में यह कार्य-कारण-संबंध ही है जो कि इस प्रकार हेतु हेतुमद् सम्बन्ध-विकास के द्वारा बिल्कुल भिन्न दिशामे विकसित प्राणियों में भी समान आँख को सम्भव कर सका और बिल्कुल एक ही जाति Genera के प्राणियों मे भिन्न आँखों का कारण बना । बर्गसां बिल्ली के जिस उदाहरण में Co-ordinated Development (हेतु हेतु मद्-प्रगति) को स्वीकार करता है उसमें भी वह हेतु हेतु मद् प्रक्रिया केवल रग के द्वारा कानों पर प्रभाव तक सीमित नही है, क्योंकि, जैसा कि Tait बताता है, यह बहरापन केवल नर में ही पाया जाता है, मादा में नही, जिसका अर्थ है कि इस बहरे पन पर Sesxual determination का प्रभाव भी पड़ता है और इस प्रकार इसकी जड़ें बहुत गहरी है । इसी प्रकार, डारविन के अनुसार प्राणी का रंग तक शरीर में गहराई तक प्रभाव डालता है । वह बताता है कि सफेद भेड़ों और सूअरों पर अनेक पौधे घातक प्रभाव डालते हैं । कुछ पौधों की जड़ों (Lachnanthes) को खा लेने पर इन सूअरों की हड्डियाँ और खुर पीले पड़ जाते हैं और गलने लगते हैं । खुर तो झड़ तक जाते है, जिससे सूअरों की अवश्यम्भावी मृत्यु हो

जाती है । किन्तु काले रंग के सूअरो पर वनस्पतियाँ ऐसा कोई प्रभाव नही डालती । इस उदाहरण से केवल यही प्रमाणित होता है कि ये सूअर अस्तित्व रक्षा की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के रहस्यमय प्रभाव से प्रेरित होकर भी इन जड़ों को खाना नही छोड़ते प्रत्युत् यह भी कि शरीर मे प्रत्येक परिवर्तन प्राय ही दूसरे भागों पर भी अनिवार्य प्रभाव डालता है और इस प्रकार Coordinated development के सिद्धान्त को पुष्ट करता है ।

वास्तव में इस तथ्य को कि यह शारीरिक प्रकृति और परिवृत्ति की सापेक्ष स्थिति ही है जो जेन म्यूटेशन की प्रकृति को निर्धारितकरती है अथवा जो कुछ भी घटित होता है वह इसीलिए क्योंकि वही उस समय घटित हो सकता था, समझना और धारण करना बहुत कठिन है, क्योकि हम अपनी विशेष मानसिक स्थिति के कारण प्रत्येक प्रक्रिया और घटना के उद्देश्य और योजना की कल्पना करते हैं । E.S. Russell थ्रीस्पाईंड स्टिक्कल बैक की आँखो के बारे में कहता है - जहाँ तक मेरी कल्पना जाती है, स्टिक्कल-बैक अपना भोजन खोजने मे अपनी आँखों से बहुत अधिक सहायता नही लेता, ये उसके सिर के प्राय: ऊपर होती है और प्राय: आते हुए शत्रु की सूचना देती हैं ।" इससे फिर यही बात प्रमाणित होती है कि न तो किसी अंग विशेष का होना प्रयास पर निर्भर है और न जीवनकी एकत्व योजनाया उद्देश्य-विस्तार पर, यह केवल एक यांत्रिक शरीर-योजना है जो अंगों को, शरीर की, अन्तर प्रकृति को और प्राणी की वासना और आत्म-व्ययी प्र क्रिया को निर्धारित करता है ।

इसका अर्थ यह नही कि हम प्रयत्न और मनोवैज्ञानिक पहलू से एक दम निषेध कर रहें है, पीछे प्रकिया की व्याख्या करते हुए हमने इसके महत्व को पूर्णरूप से स्वीकार किया है । जीवित और जड़ पदार्थ में निश्चित रूप से बहुत बड़ा अन्तर है, इसे कौन स्वीकार नही करेगा ? और जीवन की सार्थकता यही है कि वह एक बार ज्यो ही अस्तित्व में आ जाता है, अपनी परिवृत्ति मे से भोजन के रूप मे कुछ ग्रहण करके आत्मसात करता है, उसकी कुछ वासनाएं होती है, जिनके लिए वह प्रयास करता है और परिवृत्ति के विषयों परकेन्द्रित अपनी अभिरुचियोंके अनुसार प्रक्रियाशील होताहै । उसकी ये प्रवृत्तिया और प्रक्रिया--केन्द्रीकरण एक सीमा तक अभौतिक भी कहा जा सकता है किन्तु ये उसी प्रकार अभौतिक है जैसे आग और पानी से बनी भाफ की धकेल से इंजन की क्रियाशीलता अभौतिक कही जा सकती है । किन्तु क्योकि

जीवन की यह क्रिया-शीलता स्वयं उस रासायनिक द्रव्य की प्रकृति है जो प्राणी का शरीर है, अथवा यह कि क्योंकि क्रिया प्राणी के शरीर में प्रयुक्त द्रव्यों के रासायनिक संघर्षण के कारण होने वाले शक्तिशाली विस्फोट की परिणाम है, इसलिए इसकी प्रत्येक प्रक्रियात्मकता जहाँ भीतरी धकेल को निकास देती है वहाँ इसमे कुछ अनिवार्य परिवर्तनो को भी सम्भव करती है। यह विस्फोट प्राणी मे क्रमशः वासना, क्रियाशीलता और प्रक्रियात्मक व्यय को जन्म देता है। यदि इस विस्फोट से उत्पन्न वासना और तज्जन्य क्रियाशीलता को निकास का साधन न मिले तो प्राणी के लिए जीना ही कठिन हो जाए, इसी से वह असीम व्याकुलता से अपनी वासनात्मक धकेल से प्रेरित हुआ अपने निकास का साधन खोजता है। और यही क्रिया शीलता तथा अनुक्रम मे प्राप्त प्रक्रियात्मक व्यवहार विभिन्न अंगो के विकास का मनोवैज्ञानिक कारण कहा जा सकता है। जब एक वासना है, अवश्य ही उसकी कोई अभिव्यक्ति भी होगी ही, जब मैथुन वासना है तब उसकी अभिव्यक्ति के प्रक्रियात्मक अंग भी होगे ही। किन्तु हम एसा कहने मे इस प्रकार जल्दी नही करते, नही तो अमोयबा भी बिना किसी अंग के ही अपनी वासनाओ की सन्तुष्टि करता ही है। शायद कहा जाए कि बड़ी वासना के लिए बड़ी तृप्ति चाहिए, किन्तु यह बड़ी वासना आई कहाँ से ? क्या यहाँ विकास की मूल प्रेरणा, जो स्वयं जीवन पदार्थ की अन्तर्निहित प्रकृति ही है, इन दोनों का मूल स्रोत नही कही जा सकता ?

इन वासनाओं के अतिरिक्त भी ऐसा बहुत कुछ है जिसे हम प्रक्रियात्मक योजना के अन्तरगत रख सकते है किन्तु जो सर्वथा यांत्रिक है, इसे हम पीछे Reflexive behavior के प्रकरण में देख आए हैं। इस प्रकार यह विकास और प्रक्रिया इतने विभिन्न स्तरो पर और इतने विभिन्त तत्वों से निर्धारित होती है कि हम सहज ही एक को देखते हुए दूसरे के महत्व को भूल जाते है! पालतू मुर्गो के पँखो की अस्थिया जंगली मुर्गे के पंखों की अस्थियों से शरीर के शेष पिंजर के अनुपात में छोटी होती हैं जब कि पैर और टागों की अस्थियां अधिक भारी और सशक्त होती है, इसे हम परिवृत्ति के द्वारा यान्त्रिक ढंग से निर्धारित जेनेटिक विकास—व्यवहार का परिणाम कह सकते हैं ? जब कि श्वेत बिल्ली के बहरेपन का कारण शरीर वैज्ञानिक संयोजन को कहा जा सकता है।

किन्तु वासना या तज्जन्य प्रक्रिया से उत्पन्न परिवर्तन, उन्हें परिवर्तन ही कहा जाए तो, मौलिक और महत्वपूर्ण नही होते, ये केवल प्रक्रिया—केन्द्रों में आवश्यकतानुसार सामान्यव्यवस्थात्मक परिवर्तन होते हैं । जैसा कि हम पिछले अध्याय में भी देख आए है, ये परिवर्तन जेन में उस प्रकार 'निहित' नही होते जैसे म्यूटेशन-जन्य अन्तर, प्रत्युत ये उनसे एक दम भिन्न है । जहाँ तक हेतुहेतु मद् अभिवृद्धि (Law of co-ordinated development) का संबंध है, वह पूर्णतः जेन की प्रकृति में केन्द्रित योजना उद्घाटन भर होता है । इन सबको हम और भी विस्तार से अगले अध्यायमे देखेगे ।

REFERENCES

1. *Beaty. John . Y* .. Nature is Stranger than Fiction. 1943 George G. Harrap and Co., London.
2. *Bergson* .. Creative Evolution, 1944 2nd Impression. The Modern Library, New York.
3. *Do.* .. Matter and Memory 6th Impression 1950, Library of Philosophy, London.
4. *Do.* .. Time and Free Will 6th Impression 1950, Library of Philosophy, London.
5. *Cheesman* .. Every Day Doings of Insects 1st Ed. 1924, Georg G. Harrap and Co., London.
6. *Darwin* .. Origin of Species 1948. 3rd Impression, Thinker's Library, London.
7. *Hebb D. O.* .. Organization of Behavior, 1949. New York.
8. *Macdougal* .. Psychology, sixth Impression 1933, London.
9. *Madowall* .. General Physiology and Bio Chemistry, 3rd Ed. 1946, Johan Murray, London.
10. *Morgon T. and Stillar* Physiological Psychology 2nd Edition. MacGraw Hill Co New York.
11. *Murphy* .. General Psychology, 2nd Ed. 1938. New York.
12. *Russell E. S.* .. Behaviour of Animals 2nd Ed. 1938, Edward Arnold and Co., London.
13. *Sympson* .. Meaning of Evolution, 1st Ed. 1949, Yale University Press.
14. *Tinbergen* .. The Study of Instinct 1st Ed. 1951. Oxford University Press London.

३—जेनेटिक्स: विकास की यांत्रिक प्रक्रिया

पिछले अध्याय में हमने विकास का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करन का प्रयास किया। यह स्पष्ट है कि हमारी स्थापना और निर्णयों पर कुछ आपत्तियाँ उठाई जा सकती हैं, किन्तु फिर भी हम इस विषय को काफी दूर तक समझने में सफल हो सके है। इसमे एक मुख्य बाधा यह भी थी कि इस ओर वैज्ञानिकों का अभी पर्याप्त ध्यान नही गया, प्रवृत्ति का अध्ययन यद्यपि काफी प्रामाणिक स्तर पर हो रहा है किन्तु उसका विकास के साथ क्या संबंध है, यह विषय अभी तक अध्ययन का विषय नहीं बनाया गया।

वहां हमने देखा था कि प्राणी की कोई भी प्रक्रिया या तो यांत्रिक व्यापार मात्र है अथवा वासना की धकेल (Appetitive Push) के उपभोग (consumption) का बाध्यता जन्य व्यवहार। किन्तु इस व्यापार या व्यवहार के निर्धारण में परिवृत्ति का भी बहुत बड़ा हाथ है क्योंकि प्राणी की प्रक्रिया के विषय परिवृत्ति से ही उपलब्ध होते हैं।[१] किन्तु परिवृत्ति न तो क्रिया की धातृ है और न विधायक, वह केवल उसके क्रियान्वित होने के उपकरण जुटाती है। इससे सुरक्षात्मक व्यवहार (Adaptive-Behavior) प्राणी के व्यवहार का प्रेरक और प्रत्यक्ष निर्धारक न होकर केवल परोक्ष रूप से संशोधक (Modifier) है। जहाँ तक परिवृत्ति के अधिक उत्तम उपयोग का संबंध है, वहाँ भी हम प्राणी की 'मनःस्थिति' या वासना को ही उसका पदार्थ कह सकते है, परिवृत्ति केवल उसकी आत्मव्ययी प्रक्रिया की आकृति—उसके घटित होने के प्रकार का एक सीमा तक निर्धारण मात्र करती है, यद्यपि अधिक उत्तम उपयोग का कौशल इस दिशा या प्रकार से ही अधिक संबंध रखता है।

किन्तु इस अध्याय में हम विकास के उन मूल कारणों को समझने का प्रयास करेंगे जो स्वयं जीवन-पदार्थ की प्रकृति और उसके परिवर्तन से सबंध

---

[१] यश देव 'शल्य'—पन्त का काव्य और युग 1951, किताब महल, इलाहाबाद। इस पुस्तक में हमने परिवृत्ति को बहुत अधिक महत्व देते हुए सबंध का विवेचन किया है।

रखते है, जब कि अगले अध्याय मे वासनात्मक प्रक्रिया और मनस्थिति के मूलतत्वों के विवेचन का प्रयास किया जाएगा ।

'विकास' में हम पहले से ही एक ऐतिहासिक प्रक्रिया और क्रम (chronological order) को स्वीकार कर चलते है । हम यह स्वीकार करते है कि प्रतीयमान भिन्नताओं का कोई एक स्रोत है और इस शृखलता में कोई नियम और शृंखला विद्यमान है जिसका एक इतिहास है । मनुष्य प्रारंभ से ही विभिन्न जीवों की आश्चर्य जनक भिन्नता और समता को देखता और अनुभव करता आया है, जैसाकि "धर्मोहि तेषामधिको विशेष:, धर्मेण-हीना: पशुभि: समाना:" से भी स्पष्ट है। किन्तु इस 'ज्ञान' में किसी प्रकार की वैज्ञानिक दृष्टि न थी, जिसका उद्भव १९वी शताब्दि में हुआ । उस युग में केवल मनुष्य और पशु इसी अर्थ में समान समझे जाते थे कि दोनो समान रूप से पीड़ा या सुख अनुभव करते है, किन्तु मनुष्य ईश्वर की ओर से ही वर प्राप्त कर अवतीर्ण होता था, जैसा कि "का जाने कछु पुन्न प्रगटे, मानुसा अवतार" से प्रकट होता है । इन लम्बे युगों मे बड़ी श्रद्धा और आश्वस्तता से यह स्वीकार किया जाता रहा कि संसार ईश्वर की कृति है और मनुष्य को ईश्वर ने विशेष रूप से इस सृष्टि रचना के उद्देश्य को समझने के लिए बनाया है। यह आश्चर्य की बात है कि एक भी ऐसा दार्शनिक इन हजारों वर्षों की अथाह परम्परा में नहीं उत्पन्न हुआ जो जीवन में ऐतिहासिक शृंखला को देख सकता। सौभाग्य से १८वी शताब्दि के उत्तरार्ध में (1744--1829) लामार्क ने इस ओर महत्वपूर्ण कदम उठाया। लामार्क यद्यपि ऐतिहासिक क्रम को अच्छी प्रकार से समझता था किन्तु उस पर उस युग का प्रभाव होना भी आवश्यक था। दूसरे, उस समय जेनेटिक्स, आकृति विज्ञान (Morphology) शिलाओं के नीचे दबे अवशेष या फोस्सिल (Fossile) तथा शरीर विज्ञान physiology — Anatomy के तथ्यों का उतनी दूर तक ज्ञान नहीं था। वह समझता था कि मनुष्य इस विकास-प्रक्रिया की चरम् सीमा है और जो शृंखला मानव की ओर विकास शृंखल से टूटकर दूसरी ओर बढ़ गई है इसका कारण जीवन की सामयिक परिवृत्ति की बाध्यता है । वह समझता था कि सामयिक परिवृत्ति प्राणी के व्यवहारों का और उसके तथा अन्य स्रोतों के द्वारा विकास का निर्धारण करती है। उसके अनुसार परिवृत्ति के उपभोग के लिए उचित प्रवृत्तियों की आवश्यकता है और प्रवृत्तियों के प्रयोग और अप्रयोग Use and Disuse के द्वारा यह प्राणी की

आकृति और प्रकृति को निर्धारित करती है। डारविन लामार्क से बहुत आगे बढ़ा और उसने प्राकृतिक चुनाव, उत्तराधिकार का प्राणी की शरीर रचना पर सीधा प्रभाव (परिवृत्ति से निर्धारित होकर) तथा प्रयोग और अप्रयोग को विकास के कारण रूप मे अपने प्राणी—व्यवहार के अध्ययन के बाद प्रस्तुत किया।

इससे जीव-विज्ञान लामार्क और डारविन का बहुत आभारी रहेगा, किन्तु वे दोनों अपने युग की सीमाओं से बँधे थे, इसलिए उन्होने जो कुछ कहा, आज उसका ऐतिहासिक महत्व ही अधिक है। आज प्राणियो की भिन्नता और एकता के कुछ दूसरे ही स्रोत समझे जाते है। यह तो स्पष्ट ही है कि भिन्नता आश्चर्य जनक रूप से बहुत अधिक है—एक ओर विशाल-काय हाथी और ह्वेल मछलियॉ है तो दूसरी ओर अनुवीक्षण यत्र से भी कठिनाई से दीख पड़नेवाले कीटाणु। इसी प्रकार प्राणी अपने व्यवहारो और जीवन के प्रकारो में भी असीम भिन्नता लिए हुए है। पिछली, लगभग अढ़ाई शताब्दियों से आकृति वैज्ञानिक (Morphologist) और शल्य वैज्ञानिक (Anatomist) वर्तमान जीवों का अध्ययन कर उनके शारीरिक निर्माण के नियमो को जानने का प्रयास करते रहे है और उनकी शिला-अवशेषो से तुलना करते रहे है, किन्तु अभी तक उसकी कोई सीमा दिखाई नही पड़ती। शिला अवशेषों को अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों (Paleontologists) ने अथक परिश्रम से शिलाओ के नीचे दबे-छिपे या अन्यत्र भीषण वनो मे पड़े करोड़ो वर्ष पुराने जीवो की जातियों को खोजा है, किन्तु इनका समन्वय डारविन से पूर्व बिलकुल भी नही हो सका था और इनके समन्वय का रहस्य जेनेटिक्स के वर्तमान अध्ययन से पूर्व, जिसका प्रवर्तन मुख्यतः मैडल (Mendal) से हुआ, नही जाना जा सका था।

डारविन ने जीव विज्ञान में एक अभूतपूर्व और अकल्पनीय रूप से महत्वपूर्ण युग का प्रारम्भ करते हुए जिस अन्तर्निहित एकसूत्रता की ओर सकेत किया और जिस योग्यता से उसको प्रमाणित किया, वह उसे सभी युगों के महानतम और प्रथम श्रेणी के प्रतिभाशाली व्यक्तियों में प्रतिष्ठित कर सकता है। उसने बड़ी योग्यता से कुछ निश्चित नियमों और कार्यकारण संबंधो की स्थापना और व्याख्या की और दिखाया कि यह दृश्यमान भिन्नता किसी ईश्वरीय सनक की परिणाम नही है, इसमें एक निश्चित कारण-कार्य संबंध शृंखला ह। (Simpson)

जीवित पदार्थ की सबसे बड़ी विशेषता है–पुनरुत्पादन, आत्मोघाटन के रूप में विकास (Development) और परिवृत्ति से भोजन के रूप में (भोजन विस्तृत अर्थ में) कुछ ग्रहण कर उसे आत्मसात करने की शक्ति। पुनरुत्पादन की प्रक्रिया एक बड़ी विचित्र प्रक्रिया है, क्योंकि उत्पादक तत्व या पदार्थ (Germ) परिवृत्ति से एकदम अपरिवर्तनशील है, इसलिए पुनरुत्पादन मे उसका झुकाव ठीक उत्पादक की प्रतिलिपि प्रस्तुत करना होता है। यदि कहा जाय कि परिवर्तन उस पर ठूंसा जाता है, तो भी अत्युक्ति न होगी। इसके विपरीत अभिवृद्धि बाह्य परिवृत्ति के समीकरण से ही सभव होती है, जिससे उसकी प्रकृति का परिवृत्ति पर निर्भर होना अनिवार्य हो उठता है। इतना ही नहीं, जर्म भी पुनरुत्पादन में उसका आश्रय लेता है, नही तो जर्म-सेलकी द्विधाविभक्ति कभी सभव ही न हो। आत्मजनन या पुनरुत्पादन के इस विज्ञान को जेनटिक्स कहते है और इस विज्ञान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने आत्मोपादक तत्वों की आणविकता को, इसके मौलिक घटको को, जिन्हें जेन कहते है, खोज निकाला है। उस रासायनिक प्रक्रिया को, जिसके द्वारा जेन अपनी प्रतिकृति—संन्तानों का जनन और उनकी प्रकृति का निर्धारण करता है, जानने मे अभी तक जेनेटिक्स समर्थ नही हो सका है, किन्तु फिर भी सर्वमान्य रूप से उसके विषय मे जितना ज्ञान है, Dobzhansky उसे इस प्रकार चित्रित करता है—

क + ख = २ क + ग

यहाँ 'क' जब कि जेन का प्रतीक है 'ख' समीकृत परिवृत्ति का। जेन कुछ निश्चित समय के बाद द्विधाविभक्त हो जाता है और २"क" का रूप धारण कर लेता है, जब कि अतिरिक्त उपज (By Product) के रूप मे यह गया शारीरिक कोषों को जन्म देता है। यद्यपि यह मात्र प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, किन्तु इससे जेन-आत्मजनन और अतिरिक्त उपज के रूप में शारीरिक सेल या (Soma cells) के जनन की प्रकृति को समझने मे बहुत अधिक सहायता मिलती है, क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण तथ्य को चित्रित करता है कि जेन सदैव आत्म-जनन परिधृत्ति से अप्रभावित रह कर कैसे करता है। जेन कोष के घटक तत्वों में सबसे अधिक सक्रिय और मौलिक रासायनिक कण है। जेन प्रत्येक अनुगामी कोष विभाजन के अन्तर काल में आत्म-जनन की एक निश्चित प्रक्रिया में से बीतते हैं, जो कि अन्ततः पूरे कोष विभाजन का रूप ग्रहण करती है। वही जेन न

केवल अभिवर्धमान (Developing) शरीर के प्रत्येक शरीर सेल (Some cell) को जन्म देते हैं प्रत्युत अक्षुण्ण रूप से सन्तान मे हस्तान्तरित भी किये जाते है। यह परिवर्तन और अपरिवर्तन का एकत्र मिलन जेन की विचित्र रासायनिक विशेषता के कारण ही सम्भव हो सका है। प्राय. शून्य अपवादो के अतिरिक्त जेन अपनी अपरिवर्तित प्रतिकृति को ही जन्म देते है। यह विशेषता जीवन पदार्थ को अपनी एकता और अविच्छिन्नता को बनाये रखने की शक्ति प्रदान करती है और इससे न केवल वह परिवृत्ति के थपेड़ो को सहन करने मे ही समर्थ होता है प्रत्युत उसे बदलने में भी कभी कभी सफल होता है। आत्म-जनन जीवन का आधारभूत गुण है, इससे कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर प्रथम आत्मोपादक अणु का उद्भव जीवन का प्रथम सदेश था। (Muller)

जैसा कि क + ख = २क + ग से स्पष्ट है, जेन के आत्म-जनन मे उस की एकता भंग न होने पर भी परिवृत्ति उसकी अभिव्यक्ति—शरीर की प्रकृति (Phenotype)—मे बहुत अधिक प्रभावशाली और निर्णायक हो सकती हैं। जो व्यक्ति एक जैसे दिखाई पड़ते है, उन्होने अपने पुनरुत्पादक पदार्थ में कुछ ऐसे तत्व प्राप्त किये है जो परिवृत्ति के प्रभाव को समान रूप से ग्रहण करते है, अथवा जो एक विशेष परिवृत्ति में एक विशेष शरीर-स्थिति (Phenotype) को जन्म देते है। इस प्रकार दो ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने पुरुत्पादक पदार्थ में समान तत्व प्राप्त किये हैं ठीक एक ही परिवृत्ति में एक ही जैसा शारीरिक विकास करेंगे, यहाँ तक कि उनका मानसिक विकास तक एक सा होगा। अनेक बार तो ऐसा देखा गया है कि दो युग्म (twin) भाई सर्वथा भिन्न परिवृत्ति में बहुत कम बदलते है और रोगी तक एक साथ होते है। बर्मिंघम विश्व विद्यालय के शिशु-जन्म-संबंधी विषयों के डाक्टर प्रो० डेमहिल्डा लायड ने तो दो युग्म लड़कियों की अन्तर्यामिता का भी एक उदाहरण दिया है। उन्होंने बताया कि एक बार एक कक्षा की युग्म बहनों को एक विषय की आधी-आधी पुस्तक दी गई। इससे उन्हे वे बातें भी ज्ञात हो गई जो उन्होंने व्यक्तिशः नही पढ़ी थी। अध्यापिका को सन्देह हुआ कि उन्होंने एक दूसरे की नकल की है, किन्तु बाद में उसका यह भ्रम निवारण कर दिया गया, क्योकि दोनों दूर दूर बैठी थी, यह सिद्ध हो गया*। किन्तु यह या ऐसे ही उदाहरण अस्पष्ट है, इससे हम यहाँ इन पर विचार नही करना

---

* हिन्दुस्तान (दिल्ली, अक्तूबर २२, १९५२।

चाहते। किन्तु यह एक प्रयोग सम्मत तथ्य है कि एक ही जेनोटाइप के दो व्यक्तियो मे एक ही परिवृत्ति में प्राय कोई अन्तर नही होगा, किन्तु दो भिन्न परिवृत्तियों मे उनकी शरीर-प्रकृति मे तदनुकूल कुछ अन्तर होगा और इस प्रकार मूलत. एक ही पदार्थ दो कुछ भिन्न आकृतियो मे अपनी अभिव्यक्ति करेगा। जेन जीवन का मूल बीज होने से शरीर की सम्पूर्ण अभिवृद्धि की दिशा का इस प्रकार निर्धारण करते है जो कि उनमें सिमटे तथ्य का ही उद्घाटन है। परिवृत्ति के प्रभाव के लिए यदि यह भी कहा जाय कि विभिन्न परिवृत्तियो मे जेन की विभिन्न अभिव्यक्तिया उसमे पहले से ही निहित रहती है, तो यह अनुपयुक्त न होगा, अब यह परिवृत्ति पर निर्भर है कि वह असीम संभावनाओं में से किसे अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करती है। इसलिए उत्तराधिकार व्यक्ति का अपने जनक के समान शारीरिक प्रकृति प्राप्त करना नही है प्रत्युत वह "प्रवृति" प्राप्त करना है जो अपने जनक के समान एक विशेष (अथवा किसी भी) सभावित परिवृति मे सन्तान में एक संभावित अभिव्यक्ति को क्रियान्वित करती है। (sinnot and Dunn) यदि एक पौधा उत्तराधिकार में ऐसे बीज प्राप्त करता है जिनकी अभिव्यक्ति (phenotype) फुगस (एक घातक कीटाणु) के जीवन के लिए अनिवार्य है, तो पौधे के लिये परिवृत्ति मे इस कीटाणु की उपस्थिति उन विशेष गुणों के विकास के लिये अनिवार्य हो उठेगी जिनका विकास उसके पूर्वजों मे उस कृमि के कारण हुआ था। जैसा कि हम आगे देखेंगे, कुछ कीटाणुओं के लिए तो वीरुस आदि घातक कीटाणु परिवृत्ति में केवल इसलिए अनिवार्य हो उठते है क्योंकि वे उनके उन पूर्णजो की परिवृत्ति में विद्यमान थे जिनके लिए यह घातक थे और जिनके प्रतिरोध के लिए उन्होंने अपनी सन्तानों को भिन्न गुणों के साथ 'उत्पन्न किया'। परिवृत्ति पर इतनी निर्भता यद्यपि उन जीवों और पौधों में दृष्टि गोचर नही होगी जो काफी स्थिर और सुनिश्चित परिवृत्ति में रहते है, किन्तु उनमें भी यह बात आसानी से देखी जा सकती है, यदि परिवृत्ति में सामान्य सा अन्तर लाया जाए तो। जब मक्की खेतों में बोई जाती है तो उसका रंग सूर्य से लाल हो जाता है, किन्तु यदि उसे धूप न लगने दी जाए तो उसमे लाल रंग की अभिव्यक्ति नहीं होती। इस प्रकार मक्की लाल रंग उत्तराधिकार में प्राप्त करते हुए भी सूर्य के बिना उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाती। इसी प्रकार खरगोश की एक जाति, हिमालयन खरगोश, जिनमें कि गहरी भूरी आँखें और कान, पैर तथा पूंछ काले और शेष शरीर श्वेत होता है अपनी

स्थान पर काले और काले के स्थान पर श्वेत उत्पन्न होगे। सामान्यतः यह समझा जाता है कि रंग और दूसरे गुण भी ठीक उसी प्रकार उत्तराधिकार मे प्राप्त किए जाते हैं जैसे वे जनक में किसी विशेष परिवृत्ति मे विद्यमान होते है, किन्तु यह धारणा एकदम गलत है। वास्तविकता यह है कि जनक सन्तानो को वह पदार्थ उत्तराधिकार मे देते है जिसमे अपनी कुछ विशेष सभावनाए है और जो विभिन्न परिवृत्तियो मे उसी प्रकार क्रियान्वित होती है जैसे कि उनमे उनके जनक की होती। यदि हम उत्तराधिकार के निर्णायक पदार्थ और परिवृत्ति के संबन्ध की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देना चाहे तो वह इस प्रकार होगा —

$$क + ख_1 = २क + ग_1$$
$$क + ख_2 = २क + ग_2$$
$$क + ख_3 = २क + ग_3$$

इस प्रकार यदि जेन की परिवृत्ति बदल भी दी जाती है तो भी स्वयं जेन मे कोई परिवर्तन नही होता, अन्तर केवल उसकी अभिव्यक्ति मे पड़ता है। जेन बड़ी वफादारी से अपनी प्रतिलिपियाँ बनाता रहता है। किन्तु यदि परिवृत्ति में परिवर्तन इस प्रकार का हो कि जेन अपनी प्रतिलिपि ही नही बना पाए तो उसकी पुनर्जनन की क्रिया रुक जाएगी और अतिरिक्त उपज (By-produt) के रूप मे प्राप्त होने वाले सोमा सेल (कोष) भी नही उत्पन्न होगे। जेन बहुत कम ही अपनी परिवर्तित प्रतिलिपि (वह भी अल्पतम मात्रा मे) का निर्माण करता है। जेन की इस स्थिरता के विपरीत इसकी परिणति (Phenotype) विभिन्न परिवृत्तियों में तदनुसार बदलती रहती है— ग१, ग२, ग३,......।

किन्तु शारीरिक प्रकृति में यह परिवर्तन स्थायी नहीं होता, क्योंकि शरीर के उत्पादक जेन नही बदले होते, अतः इसे वास्तविक विकास नही कहा जा सकता, वास्तविक विकास तो तभी होता है जब जेन अपनी परिवर्तित प्रतिलिपि उत्पन्न करता है—अर्थात जनक अपने से भिन्न जेनोटाइप (जेन—प्रकृति के या समूह के) की सन्तान्त को उत्पन्न करते हैं ; यह भिन्नता मूल में ही होने से एक दम स्थायी होती है। किन्तु यह परिवर्तन भी अपने अस्तित्व की सूचना अपनी अभिव्यक्ति में परिवर्तन के रूप मे ही देता है। जेनोटाइप में

यह परिवर्तन परिवृत्ति से उस प्रकार प्रभावित नहीं होता जैसे शरीर में परिवर्तन, इस प्रभाव को सुदीर्घ अतीत से विभिन्न परिवृत्तियां और जेनोटाइप की अपनी प्रकृति के विविध संकलनों की एक अन्विति कहा जा सकता हैं। किन्तु प्राणी की मृत्यु या जीवन, परिवृत्ति में उसकी उपयुक्तता या अनुपयुक्तता उसके शरीर की प्रकृति पर निर्भर करती है, जिसका विकास अन्ततः जेनो टाइप की प्रकृति पर ही आधृत है। मेरे विचार में परिवृत्ति के परिवर्तन से प्रेरित फिनोटाइप (शरीर) मे परिवर्तन किसी प्रकार के सुविधात्मक चुनाव (Adaptive selection) के रूप में नही होता, बल्कि यह उसी प्रकार जेन की रासायनिक प्रकृति और परिवृत्ति की प्रकृति के सम्मिश्रण का परिणाम होता है जैसे कोई भी रासायनिक द्रव्य विभिन्न द्रव्यों के साथ सम्मिश्रण में विभिन्न अभिव्यक्तियाँ करता है। इसका अर्थ यह नही कि इससे प्राणी की Adaptability—unadaptability मे कुछ अन्तर 'नही पड़ता, संभव है रंग में Phenotypic फिनोटाप संबंधी परिवर्तन विशेष परिवृत्ति मे प्राणी के लिए लाभदायक प्रमाणित हो सके, किन्तु यह केवल सभावित है और फिर यह इसका कारण तो कभी भी नही है। फिनोटाइप मे यह प्रभावात्मक परिवर्तन यद्यपि जेनोटाइप मे परिवर्तन का सूचक नही है, किन्तु यह परिवर्तन जेनोटाइप की प्रकृति मे निहित सम्भावित अभिव्यक्ति की प्राप्ति का सूचक अवश्य है और इस प्रकार वह एक ऐसे प्रति-प्रक्रिया 'यंत्र' Reaction Norm का विधायक बनता है जो परिवृत्ति के प्रति एक विशेष प्रति-प्रक्रियात्मक रुख अपनाता है, जिसका अपना कुछ विशेषसुरक्षात्मक मूल्य (survival value) होता है। जेनोटाइप, फिनो टाइप और परिवृत्ति के इन सापेक्ष संबधो को यदि हम प्रतीकों मे उपस्थित करें तो यह कुछ इस प्रकार होगा

$$क_{य} + ख_{र} = ग_{पर} + स \; (प—अ)$$

यहाँ क जबकि जेनका प्रतीक है तो ख परिवृत्तिका, तथा य और र 'क' तथा 'ख' की अपनीं अपनी प्रकृति के। य प्रकृति का र प्रकृति के ख के योग से जिस प्रति-प्रक्रियात्मक यत्र या फिनोटाइप को जन्म देगा वह न केवल परिवृत्ति की प्रकृति र से युक्त ही होगा प्रत्युत् जेन् की य प्रकृति से भीं निर्धारित होगा, और यह प्रति-प्रक्रियात्मक यत्र य र एक विशेष सुरक्षात्मक मूल्य (प-अ) से संयुक्त होगा, अर्थात् प्राणी कीसुरक्षा उसकी अपनी प्रकृति और शक्ति तथा परिवृत्ति

× प्रति-प्रक्रियात्मक = प्रतिक्रियात्मक + प्रक्रियात्मक

की सापेक्षता से निर्धारित होगी। अब यह प (परिवृत्ति) के सापेक्ष मूल्य पर निर्भर है कि वह सत्ताशील प्राणी के अस्तित्व का क्या मूल्य निर्णय करता है।—अ परिवृत्ति के संभावित अपकारकत्व का प्रतीक हैं।

विभिन्न प्रकार की फिनोटाइप का सुरक्षात्मक मूल्य Survival value एक ही जेनोटाइप होने पर भी सर्वथा भिन्न हो सकता है, इस प्रकार जैसे जैसे र मे अन्तर आता जाएगा वैसे वैसे य और उससे ग में भी अन्तर पड़ेगा जो अन्ततः स के लिए प के मूल्य को घटायेगा। जो फिनोटाइप उस परिवृत्ति में अभिवृद्धि का अवसर प्राप्त करता है जो उसके पूर्वजों की अभिवृद्धि के समय वर्तमान रही है उसकी अवस्थिति और उपयुक्तता अपेक्षाकृत अधिक निश्चित होगी - अर्थात उसके लिए प का मूल्य—अ से अधिक हो जाएगा, जबकि ऐसी परिवृत्ति की, जो उसके पूर्वजों के जीवन मे सामान्य नहीं रही, उपयुक्तता और अवस्थिति के लिए पोषक होने की बहुत कम संभावना है। प्रत्येक प्रति-प्रक्रिया—यंत्र परिवृत्ति के उपयुक्त या अनुपयुक्त ढलने की सहस्रो सँभावनाएं रखता है, किन्तु उपयुक्त रूप मे ढलने की संभावनाएं अनुपयुक्त रुप से ढलने की संभावनाओं से कही कम रहती हैं। जिससे स्पष्ट है कि ये परिवर्तन कभी इच्छित (मानसिक) न हो कर एक दम याँत्रिक होते है, किन्तु ये परिवर्तन, चाहे उपयुक्त हों या अनुपयक्त, जनोटाइप पर कोई प्रभाव नही डालते। जेनोटाइप ऐसे किसी भी प्रकार के फिनोटाइप की अपेक्षा के बिना, जिसे वह विभिन्न परिवृत्तियों में विभिन्न रूपों मे जन्म देता है, अपरिवर्तित आत्म-जनन की प्रक्रिया को जारी रखता है।

जो प्राणी अपनी परिवृत्ति में उपयुक्ततम है और जिसकी प्रवृत्तियाँ उसके अनुसार ढलकर स्थिर हो चुकी है, आवश्यक है कि परिवृत्ति में परिवर्तन उसके लिए घातक ही होगा, क्योंकि जेनोटाइप उसके अनुसार नही बदल चुका होगा और फिनोटाइप में जो परिवर्तन होगा अनिवार्य रूप से वह परिवर्तन सन्तुलन स्थापित करने के 'उद्देश्य' से न होकर भौतिक और रासायनिक कारण-कार्य के अनुसार होगा; जिसका अर्थ है कि परिवर्तन कुछ भी हो सकता है। इस परिवर्तन के अनुसार प्राणी की वासना की प्रकृति और मात्रा में भी अन्तर पड़ेगा और उसकी आत्म-व्ययी प्रक्रिया को क्रियान्वित होने के लिए नये सिरे से प्रारम्भ करना होगा। इस प्रकार प को केवल परिवृत्ति के प्रतीक होने का भार न सँभालकर परिवृत्ति में और जेनोटाइप तथा फीनोटाइप में परिवर्तन मात्र के प्रतीकत्व का भार सँभाला जा सकता है। वास्तव में अपकारक परिवर्तन सामान्यतः उन प्रतिक्रियाओ के रूप में होते है जो

आकस्मिक हो जबकि उपकारक परिवर्तन प्राणी के जर्म में धीरे-धीरे होते विकास से अस्तित्व मे आते है (किन्तु यह केवल संभावित है, आवश्यक नही, जैसा कि हम आगे देखेगे ।) परिवृत्ति मे परिवर्तन के प्रति प्रति-प्रक्रियात्मक यत्र का रुख और स्वरूप प्राणी के अपने जेनोटाइपिक इतिहास और प्रकृति से सबध रखते है, जैसे चीटियो मे घर बनाने की प्रवृत्ति का इतना विकास और उसमे उनकी इतनी योग्यता यद्यपि उनकी शरीर रचना पर बहुत अधिक निर्भर करती है, किन्तु यह शरीर रचना, जो कि उनकी सामजिक योग्यता को इतना उत्कृष्ट बनाती है, उनकी किसी परिवृत्ति के प्रभाव से विकसित नही हुई, होगी प्रत्युत् यह चीटी के जेनोटाइप की ही अपनी विशेषता होगी। चीटियो मे अधिकाश सदस्य अनुत्पादक मादा होते हैं जबकि .०१प्रतिशत उत्पादक तथा कुछ नर होते है । इन अनुत्पादक मादाओ मे भी दो वर्ग होते है, जिनमे एक वर्ग बडे आकार की चीटियो का होता है और दूसरा छोटे आकार की । ये दोनो वर्ग केवल सामाजिक श्रम के संयोजक होते है । इस भिन्नता का एक मात्र कारण नर और मादा में क्रीमोसोम्ज् का असमान अनुपात में होना ही प्रतीत होता है जिससे कि उनके मिलने से और न मिलने से दो भिन्न अनुपात के क्रोमोसोम के प्राणी उत्पन्न हो सकते है। सभव है इसका कारण उनके जेनोटाइप की कोई ऐसी ही और विशेषता हो, किन्तु निश्चित है कि इसका कारण एक जेनोटाइप की त्रिधा अभिव्यक्ति नही है ।

परिवर्तन के जेनोटाइपिक कारण

इस प्रकार स्पष्ट है कि शरीर-रचना में और प्रवृत्तियो मे भिन्नताओ का आधार जर्म प्लास्म (जीवन कोष) के संयोजक क्रोमोसोम्ज का नर मादा मे अनुपात तथा अन्य बहुत सी विशेषताएँ (+ हाइब्रिडाइजेशन, *म्यूटेशन, क्रोमों-सोम स्थिति परिवर्तन, तथा जेन–संख्या परिवर्तन) है जिनका विवेचन हम अब यहाँ करेंगे।

उत्तराधिकार की प्रकृति या जर्म प्लास्म के संयोजक जेन का प्रथम अध्ययन हाइब्रिडाइजेशन से प्रारम्भ हुआ था, क्योकि यह एक सबसे अधिक सुविधा जनक प्रयोग है । मैडल के इन प्रयोगो से "यह प्रमाणित हो गया कि विभिन्न आकृतियां और प्रकृतियाँ, जो हम प्राणी-सन्तानों में पाते हैं, उनके उद्भव का कारण परिवृत्ति या वातावरण नहीं है, और न उन परिवर्तनों को

+ विजातीय मिलन । *मौलिक परिवर्तन ।

जेनम्यूटेशन या मौलिक परिवर्तन ही कहा जा सकता है, प्रत्युत् इनका श्रेय किन्ही कारणो से दबे पड़े जेन के पुनरुद्धार या उनके क्रम-परिवर्तन को ही दिया जाना चाहिए। ऐसे परिवर्तन या विविधताएँ ऐसी सन्तानो मे ही अधिकतर देखी जाती है जिनके जनक किन्ही ऐसे पूर्वजो की सन्तान हो जो दो भिन्न जेनोटाइप के थे। किन्ही भिन्न प्रकृति के क × ख माता पिता के अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, इत्यादि विभिन्न प्रकार की सन्तानों का यही रहस्य है, अथवा यह भी संभव है कि किन्ही क × क प्रकृति के माता पिता का कोई पूर्वज अ × इ प्रकृति का रहा हो और उनकी विभिन्न सन्तानो मे से एक क मे उनकी कोई विशेषता दबी रह गई हो, जो शेष सभी सन्तानो से भिन्न एक व्यक्ति सन्तान मे उद्घाटित हो गई। कुछ पीढ़ियो से गोरे रग के जनक जननी के मिलन से अचानक एक काले रङ्ग का बच्चा उत्पन्न होने का तथा काली आखो वाले जनक × जननी से भूरी आँखें वाला बच्चे उत्पन्न होने का यही रहस्य है। इस प्रकार सन्तान मे प्राप्त ऐसी भिन्नता किसी मौलिक परिवर्तन की अथवा परिवृत्ति जन्य परिवर्तन की द्योतक न हो कर पहले से ही विद्यमान गुण की अभिव्यक्ति है।

बहुत सभव है कि पूर्वजो के गुणो की इस अभिव्यक्ति की प्राप्ति मे इतना विलंब हो जाए कि वह जब प्रगट हो तो जेन म्यूटेशन का भ्रम उत्पन्न करे। Lotsy ने वनस्पतियो में ऐसी अनेक सन्तानो को देखा और हाइब्रिड-सिद्धान्त के उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया है। वह तो यहाँ तक कहता है कि मौलिक परिवर्तन (म्यूटेशन) या तो कल्पना मात्र है अथवा बहुत कम प्रभाव शाली परिवर्तन है; उसके अनुसार बड़े से बड़े परिवर्तन पहले से ही विद्यमान ऐलेलेज (Alleles) की क्रम-भिन्नता के कारण ही उत्पन्न होते है। उसके पश्चात हाइब्रिडिटी के कितने ही ऐसे उदाहरण अनेक वैज्ञानिकों ने वनस्पतियों मे प्राप्त किये जिनका भौगोलिक क्षेत्र या तो बिल्कुल समीप है अथवा एक ही है। Anderson ने तो हाइब्रिडाइज़ेशन को बहुत ही अधिक महत्व दिया है, जब कि लाइसेंको (Lysanko) परिवृत्ति के प्रभाव को सबसे अधिक महत्व देता है। Riley न इरिस फुल्वा (Iris fulva) और हैक्सागोना (Haxagona) जातियों में यह सम्मिलन और क्रम भिन्नता बहुत योग्यता से प्रदर्शित की है। इनमें पहली जाति चिकनी मिट्टी की भूमि पर उत्पन्न होती है और छाया को अधिक पसंद करती है, जब कि दूसरी बहुत गीले कीचड़ में तेज़ धूप के नीचे रहना पसन्द करती है। परिवृत्ति की यह भिन्नता एक स्थान पर जंगलों के नष्ट होने तथा कीचड़ों के सूख जाने से समाप्त हो गई। परिवृत्ति की इस भिन्नता के समाप्त होने पर इनके

सम्मिलन से उत्पन्न सन्तान (FI) आंशिक अनुर्वरता को लेकर उत्पन्न हुई, किन्तु इन्हें अपनी जनक जातियों से मिलाने (Crossकरने) पर उनकी सन्तानों में इरिस हैक्सागोना के विभिन्न रूपों को प्राप्त किया गया जिनमे इरिस फुल्वा के भो जेन विभिन्न अनुपातों और रूपों (गौण और प्रधान Recessive and Dominent) में विद्यमान थे। (Dobzhansky)

किन्तु क्रम–भिन्नता की उत्पत्ति के रोचक उदाहरण उन इज्जड़ो मे पाये जाते हैं जहाँ सर्वथा एक से नर-मादा का या भिन्न किन्तु नियत नर-मादा का मिलन कराया जाता है। अमेरिका में केवल काले या सफेद रग के ही (Holstein Friesian) ढोर रजिस्टर किये जाते है तथा उन्ही को सन्तानोत्पत्ति का अवसर दिया जाता है, किन्तु अचानक लाल-श्वेत रग का बच्चा उत्पन्न हो जाता है, जब कि पिछली सात आठ पीढ़ियो मे ऐसी कोई सन्तान उस इज्जड़ में नहीं देखी गयी होती। यदि यह पता न हो कि (Holstien) डच इज्जड़ों के उत्तराधिकारी है, जिनमे काले और लाल दोनो रंग के बछड़े समान रूप से पाए जाते हैं और यह कि लाल रंग जर्म मे निहित होने पर भी काले से आच्छादित रहा, तो स्वभावत. लाल बछड़ा जेन में परिवर्तन के कारण उत्पन्न समझा जाता। किन्तु अब यह बात नही है, अब लाल रग के बछड़े की उत्पत्ति केवल प्राचीन और काले रंग के जेन से आच्छादित लाल जेन के प्रगट हो जाने के कारणसमझी जाती है। (Sinnot and Dunn) इसलिए जिन व्यक्यिों काजेनोटाइप दो भिन्न जातियों के संयोग से निर्मित हुआ है उनकी दूसरी पीढ़ी (F2) में और अगलो पीढ़ियों में भी वितरण के द्वारा अधिक भिन्नताओं की उत्पत्ति की सभावनाए छिपी रहेंगी और इनकी प्राप्ति मे क्रमश भिन्नता बढ़ती जाएगी। प२ (दूसरी पीढी) में या अगली पीढ़ियों मे किन्हीं ऐसी विशेषताओं की उत्पत्ति, जो उसके जनक व्यक्तियों में नहीं पाई जाती, या किसी बहुत दूर की आगामी पीढ़ी में किसी विचित्रता की उत्पत्ति, संभव है किसी मौलिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न हो और संभव है क्रम—भिन्नता मात्र हो किन्तु मौलिक परिवर्तन की संभावना विकसित प्राणियों मेंतो बहुत ही कम होती है, यद्यपि कम विकसित प्राणियों में भी मौलिक परिवर्तन बहुत कम ही संभावित रहता है। इसलिए विभिन्नताओं की उत्पत्ति मे पुनरुद्भव या क्रम-भिन्नता ही सामान्यत: महत्व पूर्ण भाग लेते है।

किसी गौण recessive जेन के पुनरुद्भव और जेन में क्रम-भिन्नता की उत्पत्ति को आकस्मिक या चाँस कहना, हमारे विचार में, संगत

नहीं है क्योंकि इसका अर्थ कुछ ऐसा हो जाता है मानो यह कोई कारण-कार्य संबंध-रहित रहस्य मय घटना हो, किन्तु वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह स्वीकार करना आवश्यक है कि कोई भी घटना कारण-कार्य संबंध से स्वतन्त्र नही है। इससे किसी प्रकार की क्रम-भिन्नता या पुनरुद्भव के लिए यह प्रश्न किया जाना स्वाभाविक ही है कि अ + ब से स ही उत्पन्न क्यों हुआ स र क्यो नही। हमारे विचार मे इसके अनेक कारण हो सकते है – जैसे जर्म-कोषों की रासायनिक स्थिति, जो उनके इतिहास पर निर्भर है, रज और वीर्य ova-sperm के मिलन काल मे उनके मिलन की प्रकृति, किरणों तथा गामा किरणों Gama ray इत्यादि का प्रभाव इत्यादि। यद्यपि कारण-कार्य सबंध इन मे हो सकते है, किन्तु किरणे किन जेन्ज़ पर आक्रमक होगी यह केवल आकस्मिक और चांस है, क्योकि वे कही अन्यत्र हो सकती थीं, इस प्रकार यह बहुत कुछ आकस्मिक हो सकता है कि उनका ही पारस्परिक सम्पर्क क्यों हुआ अन्य का क्यों नही, किन्तु अ + ब से स की उत्पत्ति आकस्मिक घटना नही हो सकती। इसके लिए कहा जा सकता है कि बच्चों मे विशेषरज-वीर्य कोषो की रासायायनिक प्रकृति एक विशेषसमय एक विशेष प्रकार की थी और क्योकि इनका मिलन एक विशेष प्रकार की तदीय स्थितियो में हुआ इससे एक विशेष परिणाम निकला इत्यादि। यह बात और है कि अब हम वह सब कुछ नही बता सकते, किन्तु लाइसैंको जिस तरह परिवृत्ति के प्रभाव पर बल देता है उससे हम सहमत नहीं है। वह कहता है––पौधों में उनके विशेष गुण अथवा तदोयता की विद्यमानता का कारण यह है कि वे गुण और विशेषताएँ उनकी जनक दम्पति मे विद्यमान होती है और संघर्षण तथा रासायनिक प्रक्रियाओं (metabolism) के द्वारा वे गुण और विशेषताएँ उनके भी रज और वीर्य मे निहित हो जाती हैं जो कि आगे नवीन सन्तति को जन्म देते है। किन्तु, वह आगे कहता है, "ऐसे बहुत से उदाहरण देखे जा सकते हैं जब कि सन्तान सर्वथा या बहुत अधिक भिन्नताओं के साथ जन्म लेती है। ये आकस्मिक विशेषताएँ किन्ही पूर्वजों मे विद्यमान रह चुकी होती है और केवल दुबारा नवीन रूप में कुछ सन्ततियों के बाद उत्पन्न होती है। ये विशेष गुण और तदीयताएँ, मैंडलिस्ट-मोर्गनिस्टो के अनुसार, अन्तर्गुह्य रहती है, यह एकदम गलत है। इसके कारणों की व्याख्या करने के लिए हमें अपने उस उदाहरण की आवृत्ति करनी चाहिए जिसमें हम दिखा आए हैं कि कैसे कनक के पत्ते ठीकधूप मिलने पर हरे निकलते हैं अन्यथा सफेद या पीले ही रह जाते है। जब छोटे पत्ते पृथ्वी परउत्पन्न होते हैं तबहरेनहीं होते, उनमें क्लोरोफिल Chlorophyle

नही होता, किन्तु उनमें एक पदार्थ Plastid रहता है जो कि धूप और तापमान मिलने पर हरे रग मे विकसित हो जाता है।" वह आगे कहता है कि "यदि आप इसके एक भाग को छाया मे उत्पन्न करे और दूसरे को धूप मे तो छाया मे बढने वाले पौधे के पत्ते लाल नही होगे जब कि धूप मे बढने वाले के लाल रंग के होंगे। इसी पीले पत्तो वाले पौधों मे उत्पन्न बीजो को यदि बोया जाए और उनको धूप मे बढाया जाए तो वे पुनः हरे रंग के पत्ते उत्पन्न करेगे, अर्थात् क्लोरोफिल (Chlrophyle) के कण अपना उचित विकास कर सकेंगे। यहाँ हम देखते है कि हरे पत्ते वाले पौधो के जनक के पत्ते हरे नही हैं जब कि उसकी सन्तान के पत्ते हरे है, अर्थात् पहले में प्लास्टिड-क्लोरोफिल मे विकसित ही नही हुई जब कि दूसरे में वह हो गई। स्पष्ट रूप से इसका यही अर्थ समझा जाएगा कि क्लोरोफिल प्लास्टिड और धूप के सम्मिलन का परिमाण है। प्लास्टिड में विकास की यह सम्भावना पहले भी विद्यमान थी, किन्तु उसे उचित परिवृत्ति न मिलने से उसका विकास या विस्फोट रुक गया जो कि अगली पीढ़ी में उसके प्राप्त हो जाने से वह क्रियान्वित हो गया।" वह बडे निश्चय से आगे कहता है कि "इस प्रकार की तर्क प्रणाली से हम बड़ी आसानी से उन व्यक्तियो को समझ सकते है जो अपनी विशेष प्रकार की तदीयता और गुणों के कारण अपनी जनक दम्पति से प्रतीयमान रूप से भिन्न किसी पुरानी पीढ़ी से सबधित प्रतीत होते है। इसका कारण यह है कि वे अन्तर्गुह्य गुण, जो कि इतनी सन्तानों मे छिपे रहते है अपने उपयुक्त परिवृत्ति नही प्राप्त कर सके होते।"

किन्तु यह बात ठीक प्रतीत नही होती, क्योंकि किन्ही पौधो के या किन्ही विशेष प्राणियो के इस प्रकार के रंगों की धूप या तापमान मे अभिव्यक्ति उनकी फिनोटाइपिक अभिवृद्धि (Development) से संबंध रखती है जो अन्ततः जेनोटाइप पर निर्भर करती है, यहाँ लाइसैंको न केवल यही मानता है कि Soma cells (शारीरिक कोष) जर्मसेल्ज को उत्पन्न कर सकते है और करते हैं, (जैसा कि उसके इस कथन से प्रतीत होता है कि प्राणी मे परिवर्तन और विकास का कारण उसकी समीकृत परिवृत्ति मे परिवर्तन है, और प्रत्येक अग और कोष लिंग कोष को जन्म देता है इत्यादि) बल्कि यह भी कि जेन विशेष का पुनरुद्भव केवल परिवृत्ति पर निर्भर है। प्रथम तो पुनरुद्भव को स्वीकार करना ही समीकरण सिद्धान्त का खंडन करता है, दूसरे यह न केवल सभी अवस्थाओं में ठीक नहीं है प्रत्युत अधिकतर अवस्थाओ मे भी ठीक नहीं हैं। फिर लाइसैंको का यह उदाहरण विजातीय मिलन के बारे में कुछ भी नहीं बताता जिसे कि मैंडल का अन्तर्गुह्यता

का सिद्धान्त से ठीक ठीक निरूपित करता है । लाइसैंको के उदाहरण मे प्लास्टिड वर्तमान है , किन्तु वह धूप न मिलने से क्लोरोफिल में विकसित नही हो सका , जबकि हाइब्रिडिटी (विजातीय मिलन) मे या भिन्न क्रम मे जेन्जके मिलन मे यह बात नही है —विजातीय मिलन से उत्पन्नहोने वाली सन्तानों मे विभिन्नता की सभावनाएं किसी भी परिवृत्ति मे ठीक ठीक क्रियान्वित हो जाएगी । पुनरुद्भव और भिन्न क्रम मे मिलन केवल उचित परिवृत्ति के अभाव मे जेन की आत्माभिव्यक्ति न कर सकने की क्रिया से सर्वथा भिन्न बात है । अभिवृद्धि और अभिव्यक्ति के लिए जहाँ केवल परिवृत्ति के आत्मीयकरण की आवश्यकता है और यह आत्मीयकरण जहॉ प्रतिपल इस अभिव्यक्ति और अभिवृद्धिको निर्धारित करता है वहॉ पुनरुद्भव और क्रम भिन्नता इस प्रकार परिवृत्ति से एक दम प्रभाविक नही होते , जैसा कि हम पीछे देख आए है । जहॉ तक विभिन्न रंगों के व्यक्तियो मे जेन की गौणता और प्रधानता का प्रश्न है बहॉ भी परिवृत्ति मे अभिव्यक्ति से उस का कोई संबध नहीं है , क्योकि मैडलियन विभाजन (Segregation) के सिद्धान्तानुसार, जिसे सभी जेनेटिस्ट उसकी प्रयोगसिद्धता के कारण स्वीकार करते है , यह भिन्नता एक दम परिवृत्ति से स्वतंत्र और नियमित है । मैडल दो गुणों वाले एक ही जाति के नर और मादा का मिलन Cross करवाता था और उनकी प्रथम हाइब्रिड सन्तान प^{१} को देखता था । यह सन्तान निश्चित रूप से अपने दोनों विजातीय जनकोंकी विशेषताओ को अभिव्यक्त या अनभिव्यक्त रूप मे सॅजोए रहती है । किन्तु यदि इस पीढ़ी के दो व्यक्तियों को सन्तानो के लिए मिला दिया जाए तो प^{२} मे एक दम नियत संख्या मे अपने जनक दम्पति तथा विजातीय पितामहो का प्रतिनिधित्व होता हैं और यह नियमितता असंख्य वैज्ञानिकों के असंख्य प्रयोगों पर उतरीं है उसने Pure breeding (अपनी विशेषताए ठीक ठीक हस्तातरित करने वाले) लाल फूलो के पौधों को सफेद फूलों वाले पौधो से मिलाया और देखा कि प^{१} मे सभी बच्चे लाल रंग के उत्पन्न हुए । इसके पश्चात इस पीढ़ी के विभिन्न व्यक्तियो का मिलन करवाया गया और प^{२} की सन्तानों की प्रतीक्षा की गई । इस पीढ़ी में न केवल लाल ंग के ही बच्चे उत्पन्न हुए प्रत्युत श्वेत रंग के भी , जिनका अनुपात क्रमश. १$\frac{९}{६}$ और $\frac{२}{१०}$ था । इस अनुपात में भी आगे कुछ और भिन्नताएँ थी जिनका कारण लाल और श्वेत ऐल्लेल्ज (Alleles) का भिन्न भिन्न व्यक्तियों में गौणता और प्रधानता का भिन्न भिन्न अनुपात था । स्पष्ट है कि प १ मे ल×स से उत्पन्न होने वाली लाल सन्तान में प्रधान और गौण ऐल्लैल्ज

ल और स का अनुपात ल ल स स रहा होगा जबकि प^{2} मे विभिन्न व्यक्तियो मे यह अनुपात ल ल स स , ल ल स स , ल ल स स तथा ल ल स स और ललसस के रूप में विभक्त हो गया । प^{1} की सन्तानों मे तथा प^{2} की सन्तानों में स्पष्ट रूप से दोनों हो विजातीय तत्व विद्यमान है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न है और फिर यह अभिव्यक्ति एक दम नियमित है फिर चाहे उसका प्रयोग किसी भी प्राणी पर क्यो न किया जाए। यहाँ प^{1} मे लाल रंग के फूल उत्पन्न होने का कारण यह है कि लाल ऐल्लैल श्वेत पर पूर्णत: प्रभावशाली (Dominant) है किन्तु ऐसे बहुत से उदाहरण हो सकते हैं कि किसी रग सबधी या अन्य गुण संबधी ऐल्लैल समानरूप से प्रभावशील हों , उस अवस्था में प^{1} मे दोनों जनक दम्पति से भिन्न प्रकार की सन्तान होगी और प^{2} मे यह अनुपात थोड़ा सा बदल जाएगा , जिसमें कुछ संताने प^{1} जेसी होंगी और कुछ जनक-दम्पति जैसी । इनमें यह अनुपात ६,४,३, का होगा । इनका ऐल्लल–विभाजन प्राय: इस प्रकार होता है ।

	लाल			श्वेत
	ललसस			ललसस
		मिश्र		
प १		ललसस		
	मिश्र	मिश्र	मिश्र	मिश्र
प २	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस
	मिश्र	लाल	मिश्र	लाल
	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस
	मिश्र	मिश्र	सफेद	सफेद
	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस
	मिश्र	लाल	सफेद	सफेद
	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस

यहाँ यद्यपि मिश्ररंग के फूल ६ हैं किन्तु इनमें एक श्वेत ललसस भी वास्तव में मिश्र ही है क्योंकि इसमें दोनों ओर के ऐल्लैल गौण हैं। इस प्रकार यह विभिन्नता परिवृत्ति के समीकरण का, अतएव आकस्मिक, परिणाम नहीं है प्रत्युत् यह विभिन्न व्यक्तियों और जातियों के अपने अपने जेनोटाइप की विशेषता है जो वास्तविक कारण है ।

डोब्ज़्हेंस्काई, हारलैंड और सिन्नट तथा डन ने जेन की प्रधानता और

गौणता के विषय मे यह सिद्ध कर दिया है कि यह सर्वथा जेनोटाइप की अपनी विशेषताओ पर निर्भर है, जैसा कि हमने ऊपर दो उदाहरणो में देखा है। एक ही रंग, सभव है दो भिन्न विजातीय मिलनों मे एक मे प्रधान प्रमाणित हो और दूसरी जाति मे उस मिलन मे गौण। विभिन्न प्राणियो मे विभिन्न जेन प १ मे किसी स्थान पर प्रधानता कही गौणता और कही सम्मिश्रण पाते है जबकि प २ मे सार्वभौकि रूप मे विभाजन के द्वारा ३ : १। अथवा ९ : ७ के अनुपात मे विभक्त हो जाते है। इस प्रकार जब दो भिन्न गुणों वाले और जन वाले दो व्यक्ति एक दूसरे के साथ मिलते हैं, इनमे अपनी मिश्र सन्तानो मे आत्माभिव्यक्ति की योग्यता भी भिन्न होती है, जैसा कि हम लाल और सफेद रग के फूलो के मिलन मे देख आएहै। जैसे गोस्सिपियम—बार बेंडेस × गोस्सिपियम हिर्सुटम पौधो के पत्ते लाल धब्बो से युक्त होते है और इनसे रहित व्यक्तियो पर हावी रहते है। इन रहित और सहित व्यक्तियों के मेल से प१ मे छोटे लाल धब्बो वाली सन्तान उत्पन्न होती है जबकि प२ मे तीन प्रकार की सन्तान उत्पन्न होती है—बड़े धब्बेवाली, धब्बे से सर्वथा रहित और इन दोनो के बीच कडी मिलाने वाली व्यक्तियो की शृखला रूप अनेक आकार के धब्बो वाली। मैडिलियन विभाजन (Segeagation) का यही नियम कुक्कुटो के इस चित्र मे भी देखा जा सकता है। गो० बार-बेंडेस और गो०हिर्सुटम के मिलन से प२ मे उत्पन्न सन्ताने यद्यपि प्रतीयमान रूप से अनुपात के मैडिलियन नियम को प्रमाणित नही करती, और स्वयं मैडलको इसका पता था, किन्तु ऐल्लैल-विभाजन वास्तव में ठीक उसी प्रकार और उसी अनुपात मे हुआ है, यह केवल उनकी सापेक्ष प्रभाव शालिता और अप्रभाव शालिता में अन्तर होने से भिन्न परिणाम में परिणत हुआ है।

दूसरी पीढी मे लाल रंग के हाइब्रिड जनक से ठीक पितामहो जैसे श्वेत और लाल फूलो का सर्वथा भिन्न उत्पन्न होना प्रमाणित करता है कि प्रत्येक प्राणी मे ये विशेषताए अपने स्वतत्र व्यक्तित्व के साथ विद्यमान रहती है। जब किन्ही भिन्न जेन्ज़्वाले प्राणी आपस मे मिलकर एक तीसरी प्रकार के मिश्र व्यक्ति को उत्पन्न करते है तब भी प २ में उत्पन्न होने वाली सन्तानो मे से कुछ प १ जैसी और शेष उनकी जनक दम्पति में-से एक या दूसरे जैसी उत्पन्न होती हैं। किन्तु, हमारे विचार में यह अधिक उपयुक्त होगा कि हम उनकी प्रतीयमान आकृति की बजाय जेन विभाजन को गणना के लिए इकाई बनाए। इससे प्रायः कोई भी अनियमितता नही रहेगी, जैसा कि हम पीछे देख ही आए है।

यह प्राय: सर्व विदित ही है कि जनक और सन्तानो के बीच की संबंध-विधायक कड़ी केवल जर्मसेल या गेमेट (Gamete) है, जोकि उस प्रत्येक गुण को, जो जनक से सन्तान मे हस्तान्तरित होता है, धारण करते है। इस प्रकार यह सुविधा से कहा जा सकता है कि जिस लाल फूल से सजातीय मिलन मे केवल लाल फूल ही उत्पन्न हों उसके जेन-ऐल्लैल्ज मे लाल ऐल्लैल्ज पूर्ण रूप से प्रधान है, इसी प्रकार सभी रगो के लिए। इसी से जब लल × लल व्यक्तियों का सम्मिलन करवाया जाता है तो उनकी सभी सन्ताने लल ऐल्लैल वाली ही उत्पन्न होती है। किन्तु लाइसैंको जर्मसेल और सोमासेल की कल्पना तक से इन्कार करता प्रतीत होता है (यद्यपि पीछे दिये गए उद्धरण मे वह इनमे किसी न किसी प्रकार गंभीर अन्तर करता प्रतीत होता है) वह कहता है कि "मैंडलिस्ट-मोर्गनिस्ट जेन-वैज्ञानिक प्राणी को दो भिन्न पदार्थों—सामान्य शरीर और उत्तराधिकार मे प्राप्त पदार्थ (Hereditary Substance) से युक्त मानते है। प्रथम पदार्थ (Soma) अथवा सामान्य शरीर प्राणी के क्रिया व्यापारो को क्रियान्वित करने वाला यत्र है, यह अपनी परिवृत्ति पर निर्भर करता है और उसमे परिवर्तन के साथ साथ परिवर्तित होता रहता है। दूसरा, उत्तराधिकार मे प्राप्त पदार्थ, इन जेनेटिस्टों के अनुसार, केवल सन्तानोत्पादन और पूर्वजों के गुणों को हस्तान्तरित करने का कार्य करता है। इसी से उनकी उत्तराधिकार की परिभाषा है—प्राणी की वह सम्पत्ति, जो उसको आत्मजनन की शक्ति प्रदान करती है।

"किन्तु, इसके विपरीत," वह आगे कहता है," हमारे विचार मे संपूर्ण शरीर केवल एक ही पदार्थ, सामान्य शरीर या सोमा से युक्त है। इसके अतिरिक्त उसमे ऐसा कोई पदार्थ नही होता जो सामान्य शरीर से भिन्न हो। इसके विपरीत प्रत्येक कण या परमाणु, वास्तव में प्रत्येक छोटी से छोटी बूंद जब एक बार जीवन युक्त हो लेती है, वह उत्तराधिकार सबंधी पदार्थ से भी युक्त हो जाती है, अर्थात् वह अपने जीवन-धारण के लिए, अपने विकास और अभिव्यक्ति के लिए विशेष परिवृत्ति की मांग करती है।" अपनी पुष्टि मे वह वेजिटेटिव हाइब्रिड्ज़ (Vegetative hybrids) को, जिन में कि एक से अधिक पौधो के शरीर कोष या शरीर के भागो (शाखाओं इत्यादि) को मिला कर एक पौधे के रूप में बढ़ाया जाता है प्रस्तुत करता है। किन्तु लाइसैंको ने जो यह उदाहरण दिया है इससे यह प्रमाणित नही होता कि उत्तराधिकार संबंधी पदार्थ सोमा (Soma) सें भिन्न नही है, इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि अनेक वनस्पतियो में एक पोधे की शाखा दूसरे पौधे में भी अपना भोजन प्राप्त कर बढ़ सकती है। और यदि अब यह कहा जाय

कि यह उदाहरण उत्तराधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त की और भी पुष्टि करता है तो अधिक ठीक होगा, क्योकि इस प्रकार एक या अनेक शाखाएं किसी पौधे मे जोड़ देने पर भी मूल पौधे के बीज शाखाओ के उत्तराधिकार को धारण नही करेगे। आश्चर्य की बात यह है कि लाइसैको स्वयं यह स्वीकार भी करता है कि सेक्सकोष या कलियाँ, जिनसे सम्पूर्ण शरीर विकसित होता है, सम्पूर्ण शरीर के विकास का प्रतिनिधित्व करती है,' और स्वय इससे इन्कार भी करता है। सभवत. उसके इस कथन का अभिप्राय यही है कि सेक्सकोष यद्यपि अन्य कोषो से भिन्न है किन्तु यह भिन्नता केवल यही है कि ये उनके विकास की और प्रत्येक तदीयगुण की अन्विति है। किन्तु जब वह कहता है कि इसी से ये सेक्सकोष उस प्राणी के सम्पूर्ण अगों का और शरीर का प्रतिनिधित्व करते है, जो इन्हें उत्पन्न करता है और यह कि वपित कोष से शरीर का विकास और उस विकास में प्रकट होते हुए परिवर्तन घटनाओं की केवल आवृत्तियाँ है जो उसके पूर्वजो ने अपने जीवन के विकास-पथ में अनुभूत की थी, और जब वह इस आवृत्ति की उपमा लिपटे हुए उस कागज के पुलिन्दे से देता है जिसमें लिखित योजना, ज्यो ज्यो वह खुलता है, उद्घाटित होती जाती है, तब केवल आश्चर्य होता है कि वह कहना क्या चाहता है। यहाँ स्पष्ट है कि उपमा और उपमित, दोनों उसके पूर्व कथन से मेल नही खाते क्योंकि अनुद्घाटित योजना का उद्घाटन कभी भी परिवृत्ति का समीकरण नही है, जिसमे प्रत्येक क्षण नवीन और आकस्मिक है।

इससे चाहे और कुछ भी क्यों न अर्थ लिया जाए, यह अर्थ कभी नही लिया जा सकता कि सेक्स सेल सोमासेल से भिन्न नही है, जबकि वह आगे यह स्पष्ट लिखता है कि सोमासेल्ज़ मे नवीन प्राणी को जन्म देने की शक्ति नही होती। लाइसैको शायद कम्यूनिस्ट रूस और स्टालिन का पूर्ण वफादार होने के लिए और स्टालिन-मार्क्स सिद्धान्त को एक मात्र सत्य सिद्ध करने के लिये यह आवश्यक समझता है कि परिवृत्ति के महत्व को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाए। किन्तु हम पीछे प्रधानता और गौणता के तथा Segragation

---

* Dialectical Materialism, developed and devoted to a new high plants by the workers of comrade Stalin, is the most valuable, most patent theoretical weapon in the hands of Soviet biologists, and this is the weapon they must use in solving the profound problems of biology including the problems of the descent of one species from another. The Science of biological species P. 12.

के जो उदाहरण दे आए है उनसे उसका यह प्रयास एकदम भ्रान्ति पर्ण हो जाता है।

अस्तु, प्राणी का कोई गुण या विशेषता किस सीमा तक अपनी अभिव्यक्ति करेगे यह इसके जेन-ऐल्लैल की दूसरे साथी ऐल्लैल्ज के साथ सापेक्ष स्थिति पर निर्भर करता है। यदि कोई ऐल्लैल अपने साथियो के ऊपर पूर्ण रूप से हावी हो जाए तो वह दो ऐल्लैल्ज् के समान प्रभावशाली होगा जबकि दो की एक सी स्थिति होने पर वे सम्मिलित अभिव्यक्ति करेगे। किन्तु संभवत: यह प्रधानता और गौणता कभी भी पूर्ण नही होती। ऐसे बहुत से उदाहरण दिये जा सकते है जहाँ पर एक स्थान पर एक ऐल्लैल प्रधान होता है और दूसरे पर वही गौण रहता है। वास्तव मे प्रधानता या गौणता एक दम उलझन पूर्ण स्थितियॉ है और अभी तक इनके निश्चित नियम या Law का पता नही चल सका है। इस पर परिवृत्ति के प्रभाव के उदाहरण रूप मे हम हिमालयके खरगोश और कुछ फूल प्रस्तुत कर आए है, किन्तु इसमे अनेकानेक आन्तरिक कारण भी हो सकते है, जैसे भेड़ की कुछ जातियो मे नर सीगवाले ऐल्जैल से रहित होने पर भी सीगयुक्त होते है जबकि मादा उन्ही ऐल्लैल के साथ भी सींग रहित रहती है। इसी प्रकार कोई ऐल्लैल प्राणी मे बचपन मे गौण प्रभाव वाला हो सकता है और यौवन में या उसके पश्चात् केवल आयु के मुख्य हो सकता है।

जेन्ज और ऐल्लैज के स्वतंत्र होने पर भी सेक्सकोष केवल एक ऐसा डब्बा नही है जिसमें जेन अपने अपने स्थान पर एक दूसरे से अप्रभावित पड़े रहते हो अथवा ऐसा खगोल नही है जिसमे तारे अपने अपने वृत्तपर घूमते रहते है, बल्कि ऐसी अविभाज्य इकाई है जिसमे तारों के समान जेन एक दूसरे की क्रियाओं पर प्रभाव डालते रहते है, जैसा किसी भी जीव मे देखा जा सकता है। स्वीट पी पौधे अनेक रंगो के पाए जाते है और वे प्राय: सभी स्वतंत्र जातियॉ है। स्वीटपी की ये विभिन्न जातियाँ एक जगली जाति के पूर्वज से विकसित हुई है जिसके फूल गहरे लाल रंग के होते है तथा डोडी के पख लाल होते है। इसमे गहरा लाल रग श्वेत के ऊपर हावी रहता है। यदि जंगली जाति की विकसित पीढ़ियो की स्वीटपी जातियो में लाल और श्वेत का अथवा श्वेत की दो भिन्न जातियो का मिलन करवा दिया जाए तो प १ मे जंगली जाति की गहरी लाल स्वीटपी के पौधे उत्पन्न हो जाते है और प २ मे यह अनुपात गहरी लाल और श्वेत मे क्रमश: ९/१६ और ७/१६ मे विभाजित हो जाता है। किन्तु यहाँ आश्चर्य की बात यह है कि गहरे लाल (Purple)

रग के पौधे केवल तभी उत्पन्न होते हैं जब कि श्वेत रंग युक्त ऐल्लैल (र) और गहरेलाल ऐल्लैज (ल) में से या तो दोनो ओर का एक एक मुख्य हो या दोनो मुख्य हो, किसी भी एक ओर के ऐल्लैल होने पर फूल केवल श्वेत रग के ही उत्पन्न होगे ।

जैसे—
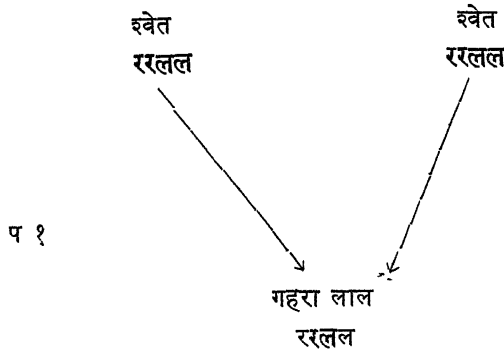
ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल
ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत
ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत
ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत

(Sinnot and Dunn-Principles of Genetics 1939)

स्वीटपी की प १ मे एक भिन्न रग की उत्पत्ति किसी मौलिक परिवर्तन की परिणाम नही है बल्कि दो भिन्न ऐल्लैज् के मिश्रण से उत्पन्न प्रभाव भिन्नता है, जब कि वे पृथक पृथक एक ही प्रभाव (श्वत रग) उत्पन्न करते है (Sinnot and Dunn)

स्वीटपी मे दो भिन्न प्रकार के जेन––ऐल्लैज के मिलन से एक तीसरे गुण की उत्पत्ति आश्चर्य जनक होने पर भी सामान्य है, क्योंकि रसायण विज्ञान में ऐसे अनेक रासायनिक पदार्थ स्वय रंग रहित होकर भी मिलाए जाने पर रग उत्पन्न कर देते है । इसी प्रकार इज्जड़ों या उद्यानो मे भी हाइबिड उत्पन्न होते रहते है ।

अनेक प्राणियो में, और एक ही प्राणी की अनेक विशेषताओ मे अनेक बार विभिन्नताओं की अनेक सभावनाएं विद्यमान रहती है । इनका अधिक तर श्रेय जेज के उस बड़े संग्रह को है जो दूसरे जेज के प्रभाव मे छिप रहते है, अथवा अन्य अनेक कारणों से, जिनमे परिवृत्ति भी एक कारण हो सकती है, अपनी अभिव्यक्ति नही कर पाते । जेंज के ये सग्रह व्यक्ति की आकृति पर बहुत अधिक प्रभाव डाल सकते है, अनेक जेन तो व्यक्ति को नपुसक या अत्यन्त दुर्बल तक बना देते है (यह प्रभाव जेज की पारस्परिक अन्त. प्रतिक्रियाओ से सबंधित है) । इतना अधिक प्रभाव डालने वाले जेज के अतिरिक्त ऐसे भी बहुत से जेन प्राणी के जर्म मे रहते है, जो व्यक्ति की किसी विशेषता को सम्मिलित रूप से निर्धारित करते है, जो यद्यपि प्रभाव की गंभीरता मे बहुत कम होते है किन्तु विविधता में अनेक और विस्तृत होते है । ये सामूहिक प्रभाव भी विकास मे महत्व पूर्ण योग दान की अनेक संभावनाए रखते है । कुछ जेनेटिस्ट प्रमख (Major) और समष्टि जेंज को दो भिन्न श्रेणियाँ मानते है, किन्तु यह बात कुछ ठीक नही जान पड़ती। यद्यपि यह ठीक है कि समष्टि जेज का व्यक्तिशः प्रभाव आकना कठिन है, किन्तु वे उसी प्रकार क्रोमोसोम्ज में विद्यमान रहते है जैसे प्रमुख, और वे कभी भी प्रमुख हो सकते है ।

सम्मिलित जेंज की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें परिवर्तन की संभावनाएं बहुत अधिक विद्यमान रहती है । मान लीजिए कि किसी जाति के कुछ संबद्ध व्यक्ति चार जेन-युगलों में भिन्न है, जो कि उनमे आकारगत (लंबाई या चौड़ाई) गत विशेषता को उत्पन्न करते हैं, तो उनमें इस भिन्नता की अनेकानेक सभावनाएं निहित रहेंगी,– यह स्वाभाविक भी है । मान लीजिए कि एक वंश की यह जेन सम्पत्ति आ आ इ इ उ उ तथा ए ए है और दूसरे की अ अ ई ई ऊ ऊ तथा ऐ ऐ और बड़े स्वरों में प्रदर्शित जंज का प्रभाव समान है तो. इन वंशों के ये दोनों व्यक्ति आकार में समान होंगे किन्तु यदि इनको आपस में मिला दिया जाए तो दूसरी पढ़ी प २ में विभिन्न आकारों के व्यक्ति उत्पन्न हो सकेंगे, जैसे अ अ ई ई ऊ ऊ ऐ ऐ ' आ आ

इ इ ऊ ऊ ऐ ऐ , आ आ ई ई उ उ ऐ ऐ , आ आ ई ई ऊ ऊ ए ए तथा आ आ ई ई ऊ ऊ ऐ ऐ × इत्यादि । इसी प्रकार अन्य परिवर्तनो मे भी, जो बहुत महत्वपूर्ण हो सकते है समष्टि-जेन बहुत प्रभाव डाल सकते है (Dobzhansky)

पीछे हमने देखा था कि एक ही क्रोमोसोम की गुणित (Multiple) इकाई प्राणी मे आकारगत , मुद्रागत तथा अन्य गुणों मे बहुत बडे परिवर्तन उत्पन्न कर सकती है, इसी प्रकार सख्या मे कमी भी कम गंभीर प्रभाव नहीं छोड़ती ।

हमने अब तक के अपने संक्षिप्त से अध्ययन में देखा कि कैसे जेन किसी मौलिक परिवर्तन के बिना भी केवल क्रम, संख्या, सापेक्षता तथा प्रधानता-गौणता इत्यादि मे परिवर्तन के द्वारा भी प्राणी मे गंभीर परिवर्तन के कारण हो सकते है । जेंज् मे इन अमौलिक परिवर्तनों के कारण आन्तरिक भी हो सकते है और बाह्य भी, किन्तु संभवतः विजातीय व्यक्तियो का मिलन, व्यक्तियो के जेनोटाइप की रासायनिक प्रकृति और रासायनिक प्रक्रिया इत्यादि का इसमें अधिक हाथ रहता है । किन्तु परिवृत्ति इस परिवर्तन में कम महत्वपूर्ण भाग लेती है । परिवृत्ति यद्यपि कभी कभी जेन में मौलिक परिवर्तन (Gene mutation) तथा क्रोमोसोम के दिशा परिवर्तन तक को सभव कर देती है, जैसा कि हम अब देखेंगे, किन्तु यह परिवृत्ति के विशेष उपकरण ही कर सकते है, जैसे गामा किरणे इत्यादि । इस से यह सहज ही कहा जा सकता है कि जेनोटाइप और फिनोटाइप में परिवृत्ति की सापेक्षता में भी एक मौलिक अन्तर है, और यह अन्तर केवल यही नही है कि एक (जेनोटाइप) सन्तानोत्पत्ति का कारणभूत पदार्थ है और दूसरा उस पदार्थ में बीज रूप मे निहित वह पदार्थ, जो कि परिवृत्ति के सयोग से उससे फूट निकलता है । यदि एक प्राणी को परिवृत्ति से उसका आवश्यक भोजन न मिले तो यह बिलकुल ठीक है कि उसका विकास रुक जाएगा, इससे भी अधिक, यदि एक बीज को गर्भपात्र और उसमें उपलब्ध होने वाला आवश्यक भोजन न मिले तो बीज कभी भी सन्तानोत्पादन नहीं कर सकेगा । किन्तु यह भी सत्य है कि परिवृत्ति पीपल के बीज में से आम उत्पन्न नही कर सकती । इस से भी अधिक महत्वपूर्ण यह बात है कि यदि एक बीज को उसकी प्राकृतिक परिवृत्ति से भिन्न परिवृत्ति में रखा जाए और अपने फिनोटाइप का विकास

+ यहाँ दीर्घ और ह्रस्व स्वर एक ही जेन की प्रमुख Dominant तथा गौण Recessive प्रतियों के लिये प्रयुक्त किये गये है ।

करने दिया जाए तो वह कुछ भिन्न प्रकार के फिनोटाइप को जन्म देगा, किन्तु उसके बीज पहले बीज से भिन्न नही होंगे, अर्थात् उसका जेनोटाइप परिवृत्ति से प्रभावित नही होगा। यही क + ख१ = २ क + ग १ का अर्थ है और यही प्राणी का उत्तराधिकार है। इसलिए लाइसैंको जब कहता है कि प्राणी की प्रकृति में परिवर्तन का कारण उसकी समीकृतपरिवृत्ति में परिवर्तन है तो यह केवल तथ्य पर जबरदस्ती मालूम पड़ती है। लाइसैंको अन्यत्र कहता है कि सन्तानों के रूप मे आत्मसृजन और नवीन जातियो की उत्पत्ति प्राणी के शारीरिक विकासकाल मे परिवृत्ति के द्वारा उत्पन्न होने वाले प्राणी में के रासायनिक परिवर्तनों के साथ बँधी है। इसकी पुष्टि में वह २८ क्रोमोसोमवाली ड्यूरम कनक (Durum wheat) का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो यदि पतझड़ के अन्तिम दिनों में बोई जाए तो तीन-चार पीढ़ियों के बाद ४२ क्रोमोसोम वाली ड्यूरमकनक में परिवर्तित हो जाती है। वह इससे भी अधिक आश्चर्यजक बात कहता है कि—ड्यूरम कनक की बालियों में नरम कनक (Soft wheat) के एक या दो कण कभी कभी आकस्मिक रूप से पाए जाते है। वह आगे बताता है कि जब ड्यूरम कनक की बालियों में भटके हुए नरम कनक के कणो को बोया गया तो इन्होंने नरम कनकको ही जन्म दिया ड्यूरम को नही। इसी प्रकार वह ड्यूरमकनक और नरमकनक की बालियों में Rye wheat के कणों की उपस्थिति भी बताता है। वह कहता है कि १९४९ मे फुटहिल ज़िले में ड्यूरम कनक और नरम कनक की बालियों में रे कनक के कण पाने का प्रयास किया गया। इस ज़िले में नरम कनक के साथ साथ रे कनक भी प्राय: उत्पन्न देखी जाती है। कुछ वर्षों तक इन ज़िलों में इसका कारण ज्ञात नही हो सका। किन्तु हाल के वर्षो मे ही V. K. Karapetian और V. N. Gromocheusky इत्यादि ने ड्यूरम और नरम कनक की बालियों मे रे के कण प्राप्त किये और ये कण पुन: बोए गए। इन कणों या बीजों से सामान्य बीजो के समान सन्तानें उत्पन्न की गईं, जब कि Hybrid (विजातीय मिलन से उत्पन्न) रे के बीज नपुंसक अथवा अनुत्पादक होते है। कुछ बीजों से भिन्न जाति की कनक भी यद्यपि उत्पन्न हुई, किन्तु ऐसे बीज बहुत कम थे। ठीक इसी प्रकार के और भी दो चार उदाहरण लाइसैंको ने दिये हैं। किन्तु उन्होने इसका कोई भी ठोस या थोथा कारण नहीं दिया, यद्यपि प्रत्येक पृष्ठ पर वह कारण बताने का आवश्वासन देता है। केवल इतना कह देने मात्र से कि प्राणी परिवृत्ति का समीकरण करता है इसलिए परिवृत्ति में परिवर्तन समीकरण (Assimilation) के द्वारा प्राणी में परिवर्तन संभव करता है,

निरर्थक है क्योंकि तब तो कनक में केवल यही अन्तर पड़ना चाहिए था कि बदली हुई परिवृत्ति मे विशेष जाति की कनक में कुछ विशेष अन्तर उस कनक की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति पर पड़ता, किन्तु यहाँ ड्यूरम कनक और नरम कनक की पूरी बाली मे एक भटके हुए विजातीय कनक-कणों की उपस्थिति के अतिरिक्त और किसी प्रकार के परिवर्तन की सूचना वह नही देता, इसी प्रकार ड्यूरम और रे की बालियो मे नरम कनक-कणों के लिए भी। फिर आश्चर्य की बात यह है कि ड्यूरम की बालियों मे भटके हुए नरम कनक के कणो के लिए तो वह केवल इतना ही लिखता है कि वे बोए जाने पर अपनी सन्तानो मे नरम कनक ही उत्पन्न करते हैं जबकि रे कनक-कणों में कुछ, उसके कथनानुसार, ठीक रे के पौधो को उत्पन्न करते हैं जबकि शेष विभिन्न जातियों के कनक के पौधो को जन्म देते हैं। इसका क्या कारण है, लाइसैको ने न केवल यही नही बताया, प्रत्युत इसे कुछ महत्व भी नही दिया। पाठक को भ्रम होने लगता है कि रे और नरम कनक के भटके कणो मे यह भिन्नता केवल लेखक के नरम कनक की सेक्स-प्रकृति बताने में भूल करने के कारण ही तो नहीं ? सभवत. इसका यही कारण है, अवश्य नरम कनक के बीज भी रे के समान भिन्न भिन्न प्रकार की सन्तानों को जन्म देते होंगे। किन्तु लाइसैको ने जिस प्रकार विभिन्न पौधों के रे के कणों से उत्पन्न होने की बात लिखी है वह अपने आप मे भी कम संशयास्पद नही है क्योकि वह इसे एक पैरे के अन्त में एक दो लाइनो में बताकर आगे बढ़ जाता है।

लाइसैको की उक्त सूचना मे सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि २८ क्रोमोसोम वाली ड्यूरम कनक की किसी किसी बाली में ४२ क्रोमोसोम वाली नरम- कनक के कण पाए जात हैं और इन दोनों में भिन्न संख्या के क्रोमोसोमवाली रे कनक के कण उत्पन्न होते हैं। हमने अब तक प २ मे विभाजन (segregation) के द्वारा ऐसी भिन्न सन्तानों के उत्पन्न होने के उदाहरण दिए थे जिनमें एक या दूसरे प्रकार का एल्लैल मुख्य है और यही भिन्नता शरीर में प्रतीयमान भिन्नता का भी कारण है। एक दूसरी प्रकार का उदाहरण हमने चीटियों में एक ही जेनोटाइप से तीन भिन्न प्रकार की -- छोटी वंध्या, बड़ी वंध्या और छोटी अवंध्या—चींटियों की उत्पत्ति का भी दिया था, जिनमे स्पष्ट रूप से क्रोमोसोम की संख्या में नर-मादा में अन्तर ही कारण हो सकता है। इसी प्रकार का एक और उदाहरण मधु मक्खियों का दिया जा सकता हैं। इनमें मादा के जर्मसेल में जहां ३२ क्रोमोसोम होते है नर के जर्म सेल में केवल १६, इसलिए जब मादा नर से मिलन के बिना ही बच्चा देती है तो Reduction division जर्म

सेल मे एक विशेष अवस्था मे विभाजन हो जाता है और क्रोमोसोम लगभग अन्धे रह जाते हैं) के द्वार १६ क्रोमोसोम वाला नर उत्पन्न होता है जब कि नर से मिलन होने पर ३२ क्रोमोसोम वाली मादा। ड्यूरम कनक और नरम कनक के बीच का भेद भी यद्यपि वैसा ही प्रतीत होता है किन्तु यहा यह बात नही है। फिर भी एक बात स्पष्ट है—कि जहा ड्यूरम कनक की क्रोमोसोम सख्या २ N=२८ है वहा नरम कनक की क्रोमोसोम संख्या ३N =४२ है अर्थात एक दुहरी (Diploid) है और दूसरी तिहरी (Triploid) है। इन दोनों मे इकाई N=14 है, इससे इनमे का अन्तर भी मात्रात्मक है गुणात्मक नहीं, जैसा कि लाइसैंको कहता है। तिहरे (Triploid) प्राय: दुहरे×तिहरे या दुहरे×चौहरे के सयोग से उत्पन्न होते है, इससे यही सभव प्रतीत होता है कि नरम कनक के कण किसी प्रकार से उस खेत में आ गए होंगे या पहले से ही विद्यमान रहे होंगे और उनके ड्यूरम कनक के साथ मिलन से यह घटना सभव हुई होगी, यद्यपि लाइसैंको इससे इन्कार करता है। किन्तु रे कनक-कणों के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि हमारे बताए कारण के होने की सभावनाए बहुत अधिक है, क्योकि लाइसैंको के अपने ही कथनानुसार ये बीज न केवल सजातीय सन्ताने ही उत्पन्न करते है प्रत्युत विजातीय सन्तानें भी उत्पन्न करते है, जो स्पष्ट रूप से विजातीय मिलन और वितरण (Segregation) का उदाहरण है।

इसी प्रकार के हम एक दो उदाहरण और प्रस्तुत करते है जिससे हमारी बात स्पष्ट हो सके। (Galeopsis) गेल्योप्सिस पौधे की आठ जातियां पाई जाती है जिनमें से छ: की क्रोमोसोम संख्या आठ (इकहरी=Haploid) है जब कि शेष दो मे २ n=16 है। प्रथम छ: में दो जातियां गे-प्यूबेस्सेंस G. Pubescens) और गे स्पेश्योसा (G. speciosa) है और दूसरी दो जातियों में से एक गे-टेट्राहिट (G. Tetrahit) है। प्यूबेस्सेस × स्पेश्योसा प्रथम पीढ़ी में एक दम नपुसक सन्तान को उत्पन्न करती है, किन्तु पोलिनेशन* (Pollination) से प २ में तिहरा (Triploid) पौधा (3N=२४) उत्पन्न होता है। डोब्जहेंस्काई के अनुसार इसकी उत्पत्ति का कारण संभवत: यह होगा कि इसके जर्म सेल और प १ के सोमासेल के

---

*×पौधों में नर लिंग से मादा लिंग में पोलन लगाना।

भाग आपस मे मिल जाते होगे। इस त्रि-क्रोमोसोम पौधे का पुन एक क्रोमोसोम पौधे (Pubescens) से मिलन करवाया गया, जो कि इसके पूर्वजों मे से एक था। इससे केवल एक ही जेनोटाइप का पौधा उत्पन्न हुआ जिसकी क्रोमोसोम सख्या ४ अथवा 4 N = ३२ थी। यह चौहरे क्रोमोसोम वाली जाति अनुत्पादक नही थी और इसी से टेट्राहिट जाति, जिसकी क्रोमोसोम सख्या ४ या 4 N = ३२ है उत्पन्न हुई। इसकी उत्पत्ति का कारण त्रिक्रोमोसोम वाले जर्म का बिना विघटित हुए एक-क्रोमोसोम वाले पौधे गेप्यूबेस्सेस से मिलन होना है। (Dobzhansky) सभवत. ड्यूरम कनक मे नरम कनक के कण उत्पन्न होने का भी यही कारण है, यद्यपि यहां यह भिन्नता है कि ये कण दूसरे पौध की बालियो मे भटके हुए मिलते है। इससे कन से कम यह कहना उचित प्रतीत नही होता कि क्रोमोसोम का द्विगुणित या त्रिगुणित होना परिवृत्ति विशेष के समीकरण का परिणाम है। फिर यहा जो केवल कुछ बालियो मे कही कही ही एक दो कण उपलब्ध हुए है उससे तो यह बात बिल्कुल भी प्रमाणित नही होती।

इसका अर्थ यह नही कि हम विकास मे या परिवर्तन में परिवृत्ति के प्रभाव से निषेध कर रहे है, सम्पूर्ण दूसरे अध्याय मे और प्रथम मे भी कही कही हमने परिवृत्ति के प्रभाव को पूरी तरह से स्वीकार किया है, किन्तु हम यह स्वीकार नही कर सकते कि प्राणी परिवृत्ति का उसी प्रकार एक समीकरण मात्र है जैसे पत्थर। और फिर परिवृत्ति का समीकरण भी पृथक् पृथक् प्राणियो मे पृथक् पृथक् महत्व रखता है। उसका जो प्रभाव गुलाब या बेरी मे देखा जा सकता है वह मनुष्य या गाय मे नही और जो कीटाणुओं में देखा जा सकता है वह इनमें नही। विकास स्तर पर जो प्राणी जितना आगे होगा, अथवा यो कहे कि जिसका जेनोटाइप जितना ही अधिक विशिष्ट होगा उसमे परिवृत्ति पर निर्भरता उतनी ही कम होती जाएगी।

फिर भी ऐसी व्यक्ति भिन्नताएँ, जो उत्ताराधिकार से सबध नही रखती, जैसे अच्छा या बुरा भोजन मिलने से, किसी घातक रोग से या चोट से अथवा कार्य की प्रकृति से उत्पन्न, ये परिवृत्तिपर निर्भर करती है और कभी कभी काफी गंभीर फिनोटाइपिक प्रभाव छोड जाती है। पहले अध्याय मे हम कुछ ऐसी कृमि जातियों के उदाहरण दे आए है जहाँ पर केवल भोजन का अन्तर व्यक्ति को रानी या दासी अथवा उत्पादक और अनुत्पादक बना देता है। इतना ही नही, यदि शैशव के बाद में भी दासी को रानी का भोजन दिया जाए तो भी वह

थोड़े ही समय में रानी बन जाती है, उसमे सन्तानोत्पादन की योग्यता आ आती है, जो परिवृत्ति के प्रभाव का स्पष्टतम प्रमाण है। फिर भी परिवृत्ति जनित अन्तर आनुवंशिक नहीं होता। यदि हम एक निचले भूमि स्तर पर उत्पन्न हुए पौधे को, जिसके पत्ते पतले तथा चौडे है और जिसके फूलो के वृन्त लम्बे है, दो भागो मे विभक्त करले और उसके एक भाग को ऊँचे पार्वत्य प्रदेश मे लगादें, जहाँ परा तापमान, प्रकाश, नमी तथा भोजन की प्रकृति सर्वथा भिन्न हो, कुछ पीढ़ियो बाद ही हम पाएगे कि एक ही उत्तराधिकार के बावजूद यह पौधा अपने पूर्वज से इतना अधिक भिन्न होगा कि हम उसे पहिचान तक न सकेंगे। (Sinnot and Dunn) इस प्रकार परिवृत्ति का प्राणी पर प्रभाव काफी स्पष्ट और कभी कभी काफी गभीर भी हो सकता है। हम प्राय ही एक ही उत्तराधिकार के व्यक्तियो में लंबाई, चौडाई, पत्तो की संख्या में भिन्नता, फलो की संख्या आकार और स्वाद तथा बीज के रूप आकार इत्यादि मे भिन्नता देख सकते है और इसमे परिवृत्ति का बहुत बड़ा हाथ रहता है। यह प्रभाव मनुष्य मे भी देखा जा सकता है। अमरीका में कुछ पीढियों से बसे जापानियो के कद दो से तीन इच तक अपनी मूल जाति से बड़े हो गए है।

मौलिक परिवर्तन

हमने अब तक प्राणी मे परिवर्तन या विकास की कुछ अवस्थाओ को देखा जिनमे परिवृत्ति का या तो कुछ भी हाथ नहीं है अथवा बहुत कम हाथ है, किन्तु परिवृत्त कभी कभी गभीर और स्थायी प्रभाव भी छोड़ती है जो जेनेटिक सिस्टम को आधार से ही बदल देता है और इस प्रकार अब तक वर्णित सभी परिवर्तनों से अधिक मौलिक होता है —इसे हम मौलिक परिवर्तन या म्यूटेशन कह सकते है। किन्तु यह परि-वर्तन परिवृत्ति के वैसे स्थूल समीकरण से नहीं होता जैसे सामान्यत: फिनोटाइप की अभिवृद्धि तथा लंबाई चौड़ाई तथा स्वास्थ्य इत्यादि में होता है, इस परिवर्तन के लिये अधिक गभीर प्रहारो की आवश्यकता होती है जो जेनोटाइप की सुरक्षा के सभी दुर्भेद्य आवरणो को चीर कर उसे सीधे आक्रान्त करे। ऐसे प्रहार उसके आकार को ही बदल देते है। परि-वृत्ति के पास जेन पर प्रहार के साधन X रश्मियाँ, गामा रश्मियाँ, कास्मिक रश्मियाँ तथा अल्ट्रा वायलट रश्मियाँ है जो अपनी चोट से जेन के परमाणुओ को तोड़ कर उन्हें दूसरे प्रकार से मिलने के लिए बाध्य करती है और उन पर अपना तथा अपनी चोट का भौतिक तथा रासाय-

निक प्रभाव भी छोड़ती है। सामान्य समीकरण, जैसा कि हम पीछे कह आये हैं, कोई प्रभाव यद्यपि जेन परिवर्तन पर नहीं डालता किन्तु उससे जेन को अपना कार्य ठीक प्रकार से करते रहने मे कुछ सहायता अवश्य मिलती है जो अन्ततः उस पर एक अत्यन्त परोक्ष प्रभाव छोड सकती
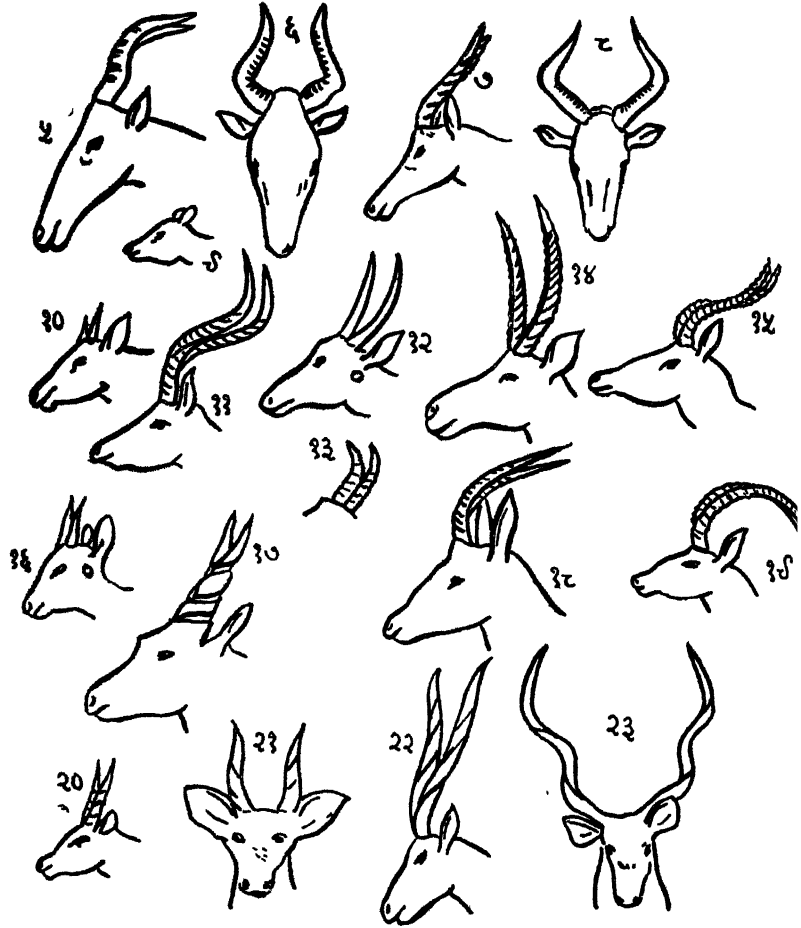
है, यह प्रभाव इतना अल्प और परोक्ष होता है कि उसे परिवृत्ति का प्रभाव कहना व्यर्थ है, उसे जेनोटाइप की अपनी ही प्रकृति की व्यंजना या अतीत की प्रगति कहना अधिक उपयुक्त होगा। प्राकृतिक परिवृत्तियों में ऐसे परिवर्तन प्रायः बहुत कम होते है क्योंकि वहाँ जेनो-टाइप स्वाभाविक रुप से अपना कार्य करता है, किन्तु बस्तियों में रहने

वाले, विशेषतः पालतू प्राणियों में मनुष्य उन पर दबाव डालता है अथवा उसके कारण कभी कभी परिवृत्ति में अन्तर पड़ जाता है जिससे प्राणी का या तो प्राकृतिक क्रम बिगड़ता है या विजातीय मिलन–जन्य अन्तर
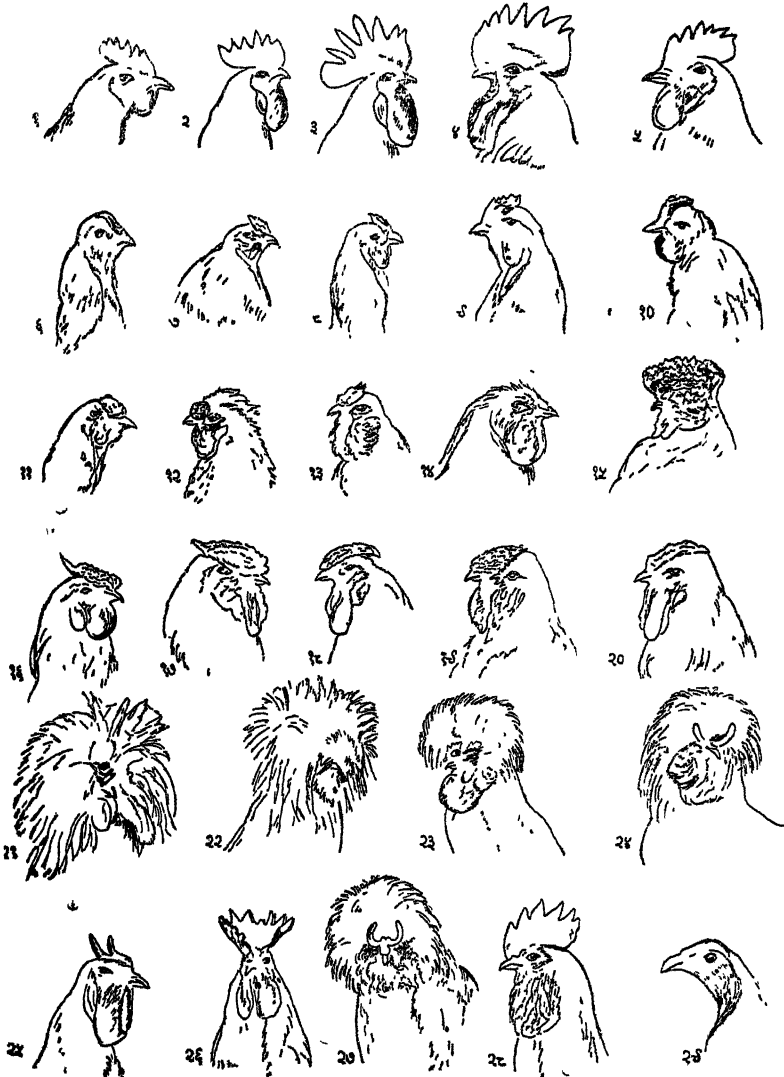
पड़ता रहता है। किन्तु एक्सकिरण (x Rays) इत्यादि से चोट खा कर जब एक बार जेन के परमाणु टूटने लगते हैं तब उसके परिवर्तन

की गति अपेक्षाकृत तीव्र और असंख्य संभावनाओं से युक्त हो उठती है। और यह परिवर्तन तब तक रुक नहीं पाता जब तक कि प्राणी एक या अनेक झुडो मे किसी परिवृत्ति में एक दम स्थायी नहीं हो जाता। स्पष्ट रूप से इस परिवर्तन के मूल में किसी प्रकार के चुनाव की संभावना नही है, किन्तु परिवर्तन को स्थायी करने में और अनुपयुक्त परिवर्तनों से प्रभावित व्यक्तियों या झुंडो को समाप्त करने मे प्राकृतिक-चुनाव (Natural selection) का बहुत बड़ा हाथ रहता है, किन्तु प्राकृतिक चुनाव में उत्तीर्ण होने वाले प्रत्येक परिवर्तन का कोई सुरक्षात्मक मूल्य (Survival value) हो ही यह अवश्यक नही हैं, और प्रायः ही बहुत से परिवर्तनो की Survival value एक दम शून्य और अनेक बार तो –xस* होती है, जैसा कि साथ के चित्रों से स्पष्ट है। इसके हम असख्य उदाहरण पिछले अध्याय मे भी दे आए है।

चित्र में ऐंटीलोप हरिण के सीग उसके जीवन-संघर्ष में सामान्यतः उसके सब अंगो से अधिक प्रभावशाली होते है, क्योकि इनसे वे अपने साथियों के ऊपर आक्रमण कर उन पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करते है और विजातीयो से आत्म रक्षा करते है। चित्र में की सब जातियों के सीग है किन्तु किन्ही भी दो जातियों के सीग आपस मे मेल नही खाते। इनमे किसी एक जाति के सीग संभवतः शेष के सीगो से अधिक अच्छे होंगे, यद्यपि यह बिल्कुल ठीक है कि सीगों की सार्थकता की दृष्टि से वे या कोई भी आदर्श नही है। फिर इ नमें तो ऐसे सीग ही अधिक है जो उलटी ओर झुके होने से बहुत कम उपयोगी प्रतीत होते है। इन सभी जातियों के ही सीगों में बहुत कमियाँ है। फिर सबसे अधिक कुतूहल जनक बात यह है कि १४ और १८ नबर के हरिणों मे मुद्रा मे सर्वत्र बहुत अधिक समानता होने पर भी १४ के सीग आगे की ओर झुके हुए है जब कि १८ के पीछे की ओर को झुके है। इसी प्रकार ११ और १५ के सीगों में दुहरा मोड़ हैं जब कि ऐसे सीग इकहरे और एक मोड़ वाले ७ तथा १७ नंबर के सींगों से कही कम उपादेय हो सकते है। दस और सोलह नंबर के सीग इतने छोटे है कि इनसे वे प्रायः कोई भी लाभ नही उठा सकते। इसी प्रकार १५ और '१९ के सीग इतने अधिक पीछे की ओर मुड़े हुए है कि वे इनसे संघर्ष मे किसी भी प्रकार का लाभ नही उठा सकते। इसी प्रकार कुक्कुटों में कलगी, केश और चोंच तथा लटकन के लिए भी। इस चित्र में कुछेक के कलगी या तो बिल्कुल भी नही है अथवा

×स = सुरक्षामूल्य

इतनी छोटी है कि इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि कलगी और लटकन को सेक्सुअल चुनाव* (Sexual Selection) से उत्पन्न माना जाए तो ६, १४, १६, २२, २३, २४, २५, २७, और २९ में कलगी का सर्वथा अभाव है जब कि अन्य बहुत सी जातियों में वह बहुत छोटी है। फिर कलगी के लिए इस चुनाव विशेष का पक्षपात स्वीकार करने पर, केशों के लिए किस चुनाव का पक्षपात कल्पित किया जाए ? पन्द्रह नंबर की कलगी ७,८,९,१०,११, १६,१७,१८,१९ तथा बीस की अविकसित कलगियों का ही विकसित रूप है जब कि बीस तथा २५ का भी प्रारूप उसे कहा जा सकता है। इसी प्रकार चोंच तथा लटकनों में भी काफी अन्तर है। कुछेक के तो लटकनें बिल्कुल भी नहीं है। कलगी यद्यपि प्राकृतिक चुनाव की दृष्टि से अपकारक है और कुक्कुट आपस मे लड़ते भी बहुत अधिक हैं, किन्तु डरविन के अनुसार सेक्सुअल चुनाव के कारण ये स्वीकार कर ली गई या उत्पन्न कर ली गई। किन्तु बड़े बड़े बालों वाले कुक्कुटों में जहाँ प्राकृतिक चुनाव को अर्धचन्द्र दे दिया गया प्रतीत होता है वहाँ सेक्सुल चुनाव को भी। हरिणों मे तो यह बिल्कुल ही स्पष्ट है। यदि हम एक जाति में किसी विशेषता की विद्यमानता का कारण किसी विशेष उपयोगिता को मानेंगे तो दूसरी जाति मे उसकी अविद्यमानता का कारण भी हमें बताना चाहिए। एक ही जाति (Specie) के भिन्न भिन्न वर्गो (Varieties) में एक में एक लाभदायक विशेषता का विद्यमान होना तथा दूसरे मे न होना और ऐसा आकस्मिक रूप से नही सामान्य रूप से होना प्रमाणित करते है कि चुनाव संबंधी इन कल्पनाओं मे कोई बड़ी भूल है। वास्तव मे किसी भी प्राणी में मानसिकता संबंधी अनुमान काफी सोच समझ कर करना चाहिए क्योकि उसके किसी भी पहलू की कल्पना में अपनी मानसिकता के आरोपण का भय रहता है। फिर किसी अंग की विद्यमानता का कोई मानसिक कारण बताते हुए तो बहुत ही अधिक सावधानी की आवश्यक्ता है। कुक्कुटों मे जैसे तेज और सशक्त पंजों वाला व्यक्ति न केवल शत्रु को परास्त ही कर सकता है, काम-सखा को दबोच भी सकता है, जैसा कि कुक्कुटों में मैथुन का ढंग है।+ इससे सेक्सुअल चुनाव में किसी ऐसे अंग की रक्षा

*सेक्सुल चुनाव या॰सिलेक्शन = अपनी काम सखी को प्रसन्न या आकर्षित करने के लिए किसी विशेषता को अपनाना।

+कुक्कुट प्राय: सदैव ही मैथुन के लिए मादा के पीछे तीव्रता से दौड़ता है जब कि वह आगे आगे भागती है, और तब वह बलात उसका घर्षण कर उससे मैथुन करता है।

करना जो उसके शत्रु के लिए लाभदायक हो, उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि विकास में न तो कोई योजना है और न सुरक्षा-मूल्य का आग्रह ही, यह केवल जेनोटाइप और परिवृत्ति की अथवा केवल जेनोटाइप की रासायनिक स्थिति की यांत्रिक क्रिया-प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। यह ठीक है कि सीग ऐंटीलोप की प्राय. सभी जातियो में विद्यमान है और यह भी कहा जा सकता है, जैसा कि सिम्पसन कहता भी है, कि विभिन्न दिशाओ मे विकास की बाध्यता के बावजूद सुरक्षामूल्य (Survival value) के कारण सीग सभी जगह बचा लिए गए है, और यह कि कार्य-क्षमता मे अपूर्णता होने पर भी इनका महत्वपूर्ण सुरक्षा-मूल्य है, किन्तु यह केवल सभावना है, निश्चित तथ्य नही, क्योकि दूसरे चित्र में कुक्कुटों मे हम स्पष्ट रूप मे इसका प्रत्याख्यान पाते है। फिर उन हरिणों में, जिनके सीग लगभग न के बराबर है (१० और १६) यह कहना एक दम ज्यादती प्रतीत होता है कि विकास की विभिन्न दिशाओ मे बाध्यता के बावजूद महत्वपूर्ण सुरक्षामूल्य के कारण सीग सभी जगह बचा लिए गए, क्योकि इनमे ये प्राय· समाप्त हैं। यह ठीक है कि सहज चुनाव अपकारक तत्वों या असमर्थ व्यक्तियों को निष्कासित कर देता है, और यह भी ठीक है कि प्राणी प्राप्त सुविधा और अवसर को उपयुक्त से उपयुक्ततर उपयोग करने का प्रयास करता है, किन्तु मौलिक परिवर्तन इनसे एकदम निरपेक्ष है, सापेक्ष नही।

किन्तु इस विषय मे और अधिक कुछ कहने से पूर्व हमें म्यूटेशन की परिभाषा निश्चित कर लेनी चाहिए। जैसा कि हम पीछे अनेक स्थलों पर कह आए है, हमारा जेनोटाइप विभिन्न और स्वतंत्र इकाइयो का सकलन है और इन स्वतत्र इकाइयों मे मिलानेवाली कडियाँ कोई नही हैं, यद्यपि ये आपस मे संपर्क मे रहती है। म्यूटेशन इन इकाइयों में से एक या अनेक में स्वल्प या गंभीर मौलिक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। यह परिवर्तन, तापमान, ऐक्स-किरण तथा अल्ट्रावायलट किरण इत्यादि के प्रभाव से जेन में उत्पन्न हो जाता है। किन्तु इसकी संभावनाएँ बहुत कम रहती है, और जब कभी यह अस्तित्व में आ भी जाता है तो जैसे भौतिक वातावरण में X किरणें या कॉस्मिक किरणें किसी भी परमाणु पर आकस्मिक प्रहार कर उसे तोड़ देती है उसी प्रकार जेनोटाइप मे भी न तो उनका आक्रमण चुनाव द्वारा निर्दिष्ट जेन पर ही हुआ होता है और न उनका प्रभाव ही किसी लाभ-हानि की अपेक्षा रखता है। जब कभी यह परिवर्तन दुहरे (Diploid) प्राणी के जर्मसेल में होता है, वहाँ क्रोमोसोमयुगल के केवल एक सदस्य को प्रभावित करने पर भी, जिस युगल का यह क्रोमोसोम सदस्य होता है उसका परिवर्तित जेन उस

सम्पूर्ण क्रोमोसोम को ही प्रभावित करता है और इस प्रकार उसे इकहरा और (Haploid) भी बना देना है। एक्स-किरणें जेन में क्रमिक और सहज अन्तर उत्पन्न न कर उसे एकदम तोड देती हैं, इससे उनसे उत्पन्न परिवर्तन सहज (Spontanious) नही होता। अल्ट्रावायलट (Ultra Violet) किरणें यद्यपि जेन को एक दम तोड़ नही देती और उनसे प्रेरित परिवर्तन सहज सा प्रतीत होता है, किन्तु उसकी गति तीव्र और प्रभाव पर्याप्त गभीर होता है, जितना कि सहज का नहीं होता। एक्स किरणों से प्रेरित परिवर्तन का अनुपात यद्यपि किरणों की संख्या के अनुपात मे होता है, किन्तु वहाँ इस बात की कोई अपेक्षा नहीं रहती कि क्रोमोसोम कितने समय तक उनसे प्रभावित हुआ या किरणों का लहर प्रसार (wave length) कितनी थी, जबकि अल्ट्रावायलट किरणों में समय और लहर प्रसार का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। वास्तव मे अल्ट्रावायलट किरणे बहुत कम प्रभावशाली होने से अनेक बार काफी गंभीर परिवर्तनों की कारण नही होती। किरणो के अतिरिक्त तापमान का भी म्यूटेशन मे महत्वपूर्ण स्थान है। जितनी गर्मी ड्रोसोफिला के स्वभावानुकूल है उस से अधिक गर्मी मिलने पर उसमें मौलिक परिवर्तन की संभावनाएँ बढ़ जाती है। म्यूटेशन यद्यपि रासायनिक द्रव्यो से भी उत्पन्न किया जा सकता है, किन्तु इस प्रकार के प्रयोगों की संभावनाएँ प्रकृति में बहुत कम ही रहती है। इससे म्यूटेशन मे एक्सकिरणें, अल्ट्रावायलट, गामा तथा कॉस्मिक किरणें, और तापमान बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

किन्तु म्यूटेशन की परिभाषा करने के लिए उसकी सीमाएं निश्चित करनी आवश्यक हैं। बहुत से जेनेटिस्ट म्यूटेशन के अन्तर्गत उन परिवर्तनों को भी ले लेते है जो मौलिक नही है और जो परिवृत्ति के इन प्रभावों से कोई संबंध नहीं रखते, दूसरे शब्दों में जो विजातीय मिलन जन्य क्रोमोसोम अथवा जेन की संख्या वृद्धि से सम्बन्ध रखते है। किन्तु हम म्यूटेशन को केवल मौलिक परिवर्तन ही कहेंगे, जो परिवर्तन मौलिक न हो कर संख्या इत्यादि से संबंध रखते हों उन्हें हम मौलिक परिवर्तन या म्यूटेशन नही कहेगे। किन्तु यदि किसी क्रोमोसोम में X किरणों की चोट से जेन-सख्या घट जाती है तो उस क्रोमोसोम का अपने युगल साथी से भिन्न हो जाना स्वाभावित ही रहेगा, उस अवस्था में केवल संख्या में परिवर्तन भी मौलिक परिवर्तन का कारण हो सकेगा। इस प्रकार हम म्यूटेशन के अन्तर्गत व्यक्ति में निहित वैविध्य की संभावनाओं लौर सख्या परिवर्तन को (यदि वह विजातीय मिलन से हुआ हो) नहीं रखते। म्यूटेशन तो प्राणी को मूलतः ही अपने पूर्वजों से भिन्न कर देता है, फिर चाहे वह भिन्नता कितनी भी स्वल्प क्यों न हो। किन्तु

म्यूटेशन के ऐसे उदाहरण भी संभव हैं जिनमे म्यूटेशन की उत्पत्ति एकदम आकस्मिक हो और यह कहना कठिन हो कि इसका क्या कारण है। ऐसे उदाहरण बड़े बड़े इज्जड़ों में प्रायः ही पाए जा सकते है। डन (Dunn) के अनुसार, इस प्रकार से म्यूटेशन से प्रभावित व्यक्ति न तो परिवर्तित कहे जा सकते है, न अपने जातीय इतिहास से ही उन्हें सम्बन्धित किया जा सकता है और 'न उन्हे अपनी जाति या विजातीय मिलन में निहित वैविध्य की सामान्य सभावनाओं का ही परिणाम कहा जा सकता है' ('—' यशदेव)। वह कहता है कि वनस्पतियों या पशुओं के जातीय जीवन में ऐसे परिवर्तनों की घटनाएं प्रायः ही घटती रहती है। उदाहरणतः, १८वी शताब्दि के उत्तरार्ध में इंगलैंड के एक किसान के घर एक मेढा[1] उत्पन्न हुआ जिसकी टाँगें बहुत अधिक छोटी और झुकी हुई भी थी। किसान ने उसे ध्यान से पाल लिया और उससे उसकी जाति बढ़ानी प्रारम्भ की, किन्तु लगभग ६० वर्ष पूर्व (१९३९ मे यह लिखा गया था) यह जाति समाप्त हो गई, किन्तु लगभग ५० वर्षो बाद अथवा दस वर्ष पूर्व एक नार्वेजियन किसान के घर एक और इसी जाति की सन्तान उत्पन्न हुई जो कि लगभग उसी का नवीन सस्करण थी। इस व्यक्ति का पुन. नवीन व श बढाया जा रहा है। इस उदाहरण में स्पष्ट ही परिवृत्ति का कोई हाथ प्रतीत नही होता यद्यपि किरणो इत्यादि का प्रभाव अवश्य संभावित है। किन्तु दो बार एक ही प्रकार की म्यूटेशन की किरणों के प्रभाव से उत्पत्ति असभव नही तो आश्चर्यजनक अवश्य है। यदि उसे किसी गौण जेन के प्रमुख होने का प्रभाव कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा क्यों कि इस जाति के मेष मलाया में पहले से ही विद्यमान थे, जिससे संभव है इन दोनो जातियो का एक ही मूल हो और इगलैंड तथा नार्वे की भेड़ जातियाँ अपने मूल से धीरे-धीरे भिन्न हो गई हों। किन्तु इससे भी आश्चर्यजनक उदाहरण और है जो कम से कम यह अवश्य प्रमाणित करते है कि उनकी उत्पत्ति में परिवृत्ति का कोई हाथ नही है। दुलकी चाल रहित घोड़े, दो अंगूठे वाली बिल्ली, श्वेत रोम और लाल आँखों वाले चूहे तथा सीग युक्त जातियों से सीग रहित सन्ताने ये सभी मौलिक परिवर्तन जन्य जातियाँ अपनी ही प्रतिनिधि सन्तानें उत्पन्न करती है, ये (True breader) है। इनमें चूहे मे श्वेतता के अतिरिक्त किसी भी म्यूटेशन में परिवृत्ति के समीकरण की संभावना नही कही जा सकती, यद्यपि इनकी ठीक प्रतिनिधि सन्तानें उत्पन्न करना बताता है कि यह समीकरण मौलिक परिवर्तन का ही द्योतक है, जो कि लाल आँखों से और भी अधिक निश्चित हो जाता है।

---

[1] नर भेड़।

दो अगूठे वाली बिल्ली को भी किसी न किसी प्रकार से परिवृत्ति का (किरणों इत्यादि का) प्रभाव कहा जा सकता है, इसी प्रकार सीग युक्त जातियों से सींग रहित व्यक्तियों के लिए भी, किन्तु दुलकी चाल रहित घोड़ों को एक दम आकस्मिक ही कहा जा सकेगा जो रज-वीर्य के मिलन की विशेष मिलन-— परिस्थिति (भौतिक या रासायनिक परिस्थित नही) के कारण उत्पन्न हो गए। इसे जेन की अपनी ही रासायनिक प्रक्रिया से उत्पन्न केवल अभि-व्यक्ति में परिवर्तन भी कहा जा सकता है। वास्तव मे प्रत्येक जाति या वर्ग में ऐसे जेन होते है जो अधिक परिवर्तनशील होते है जब कि अधिकाँश जेन परिवर्तन से बचते है। इनके अनुपात से ही जाति के सभावित परिवर्तनो की गति निर्धारित होती है। किन्तु परिवर्तनो की इस गति का ठीक गणित खोजना काफी कठिन और उलझन पूर्ण कार्य है क्योकि सभी जेन समान रूप से प्रभावित नही होते, और क्योकि उनका प्रभाव मिश्रित और बहुमुखी दोनों ही प्रकार का है, इसलिए जेनोटाइप की सामान्य और एक जेन की विशेष परिवर्तन शीलता का अनुमान करना सहज नही है। जब प्रत्येक जेन एक पृथक इकाई है और प्रत्येक की परिवर्तनशीलता भिन्न है तो जेनोटाइप की सामान्य गतिका अनुमान बहुत अधिक कठिन है, क्योंकि उसके लिये न केवल प्रत्येक व्यक्ति-जेन का निकट परिचय ही आवश्यक है प्रत्युत कठिन गणित का प्रयोग भी आवश्यक है। उस अवस्था में भी यह अनुमान केवल उसके परिवृत्ति से अप्रभाविव रहने पर ही ठीक हो सकता है। जहाँ तक एक जेन की गति का संबन्ध है वहाँ भी अनेक उलझनें रहती है, प्रथम तो प्रत्येक जेन आयु के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न अभिव्यक्तियाँ करता है, दूसरे, उसके प्रभाव की सीमाएं निश्चित करना भी प्रायः असभव कार्य है, और आगे जितनी दूर तक भविष्य में हम झाक सकते है, यह असंभव रहेगा, ऐसा प्रतीत होता है। मनुष्य जाति में भी हम प्रायः देखते हैं कि आयु के एक स्तर पर बच्चें के कान पहिले छोटे और सीधे है जब कि दूसरे स्तर पर बड़े और टेढ़े हो सकते है। इसी प्रकार अन्य अंगों के लिये भी, रंग में भी अनेक बार बिल्कुल परिवर्तन हो जाता है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि कभी-कभी बच्चा पहिले माता या पिता पर होता है जब कि बाद में पिता या माता पर और कभी-कभी बिल्कुल किसी अन्य पर हो जाता है। इतना ही नही, कभी-कभी आयु के साथ-साथ क्रीमोसोम और जेन इत्यादि की संख्या और स्थिति इत्यादि में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे इन्हीं दिनों स्त्री के पुरुष और पुरुष के स्त्री हो जाने के दो चार समाचार आए है। जो कि

प्रायः १५-१६ वर्ष की आयु के बाद परिवर्तित हुए हैं। स्पष्ट रूप से ये उदाहरण सख्या परिवर्तन और अभिव्यक्ति परिवर्तन के है। इसी प्रकार यदि अत्यल्प परिवर्तन होता है तो यह जानना कठिन है कि इस परिवर्तन में किस जेन ने कितना और क्या भाग लिया। यदि एक ही जेन के प्रभाव को देखना हो तब तो यह कार्य बहुत ही कठिन हो जाता है, क्योंकि यह प्रभाव इतना कम होता है कि उसे जानने के लिए बड़े तीव्र अणुवीक्षणों की आवश्यकता हो सकती है।

मौलिक परिवर्तन से सबंधित अनुसंधानों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनसे विकासवाद की अब तक की कल्पना में निहित 'प्राणी के लाभ' की धारणा समाप्त हो गई है। अब यह एक दप निश्चित है कि म्यूटेशन का कारण किसी भी प्रकार का चेतन या अचेतन प्रयास नही है और न किसी प्रकार का चुनाव ही। वास्तव में अच्छी प्रकार से अपनी परिवृत्तियों में सुरक्षित और उनके अनुसार ढली हुई जातियों मे मौलिक परिवर्तन सदैव एक अपकारक तत्व के रूप मे ही आ सकता है, क्योंकि तब वे परिवृत्ति की सापेक्षता मे परिवर्तित न होकर नये सिरे से अपने आपको उसमें ठीक बैठाने में कठिनाई पाएगी। संभव है उनके लिए यह परिवर्तन पूर्ण मृत्यु का भी कारण बन जाए और वह ज़ाति धीरे धीरे जीवन के प्रगतिशील क्षेत्र से बहिष्कृत कर दी जाए।

इसके विपरीत आवश्यकता होने पर भी अनेक बार प्राणियों में परिवर्तन नही होता और वह जाति जो एक समय में अपनी परिवृत्ति में उपयुक्ततम रही होती है, पैरों तले से उपक्तता के लिए सापेक्ष जमीन खिसक जाने से, अनुपयुक्त हो जाती है और इस प्रकार अस्तितत्र के क्षेत्र से पराभूत करके निकाल दी जाती है। रूपकात्मक अभिव्यक्ति मे हम कह सकते है कि उसके पैरों तले की जमीन खिसक जाती हैं जब कि उसके पैर नवीन के अनुसार नही ढल पाए होते, उसके खाद्य भंडार की सब वस्तुएं बदल जाती हैं जब कि उसके स्वाद की प्रकृति तथा पाचनशक्ति उसके अनुसार नहीं बदल पाई होती। दूसरे शब्दों में, वह उपयुक्तता के शिखर से गहरी तलहटी में धकेल दी जाती है। उस अवस्था में वह जाति समाप्त तक हो सकती है यदि वह अपनी बदली परिवृत्ति के अनुकूल अपने जेनोटाइप मे संभावनाएं नहीं रखती या उनका उपयोग उसके अनुसार नहीं कर पाती। किन्तु पुनः उपयुक्तता की चोटी पर पहुंचने के लिए, दूसरे शब्दो में अपने पैरों को उस तल के और मुंह को उस स्वाद तथा पाचन शक्ति को उस भोजन के अथवा अन्य उपयोग के पदार्थों का

अधिक से अधिक लाभ उठा सकने के उपयुक्त बनने के लिए न केवल प्राणी के लिए अपने जेन भंडार में परिवर्तन करना ही अवश्यक हो जाता है प्रत्युत प्रवृत्तियों में परिवर्तन भी अनिवार्य हो उठता है, जिनमें एक सर्वथा उसके बस के बाहर है और दूसरा एक सीमा तक प्रयास साध्य है। जबकि प्राणी के जेनोटाइप में परिवर्तन प्राणी के लिए नवीन शिखर या घाटी के द्वार खोलता है वहाँ दूसरा परिवृत्ति का उसे नवीन चोटी पर पहुंचने का आव्हान करता है।

नवीन उपयुक्तताओं की संभावनाओं का अर्थ है असीम अभुक्त परिवृत्तियो अथवा अनुपयुक्त रूप से अध्युषित परिवृत्तियां की विद्यमानता की संभावनाओं का होना, दूसरे शब्दो में, जेज् और परिवृत्ति की असंख्य सापेक्ष स्थितियों की संभावनाएं, जो अभीतक चरितार्थ नहीं की गई। इसका केवल यही अर्थ है कि प्राणी की प्रकृति और परिवृत्ति मे एक सापेक्ष संबंध है; यदि प्राणी की प्रकृति में परिवर्तन हो जाए तो परिवृत्ति मे परिवर्तन हुए बिना भी संबध की सापेक्ष स्थिति में अन्तर आ जाएगा और इस प्रकार एक अन्य सापेक्ष संबंध अस्तित्व में आ जाएगा। क्योंकि प्रत्येक प्राणी में असख्य जेन हैं और प्रत्येक जेन की प्रतिलिपियाँ और असख्य सबंध--संभावनाएं हो सकती है इससे असंख्य भिन्नताओं से युक्त प्रतिलिपियों की संभावनाएं हो सकती हैं। इसी प्रकार विशेष परिवृत्तियों में उन्हें अध्युषित करने वाले सभी प्राणी उन परिवृत्तियों में उपयुक्ततम नहीं होते और इस प्रकार उनके संबंधों में सुधार की अथवा उपयुक्तता की मात्रा में अधिक विभिन्न स्तरों के जेनोटाइप की संभावनाएं भी निहित है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि विदेशों से लाये गए अनेक पौधे अपनी जन्म भूमि से अधिक अन्य देश की पृथ्वी पर फूलते है और जहॉ वे इस प्रकार अधिक उपयुक्त होते है वहॉ वे कम उपयुक्त पौधों को अस्तित्व के क्षेत्र से निकाल फैकते हैं। अर्थात न केवल यही कि उनकी उत्पत्ति की अधिक ठीक परिस्थितियाँ होने पर भी उनकी वहाँ कभी उत्पत्ति नही हुई, अथवा उनकी उत्पत्ति की पूरी संभावनाए होने पर भी वे कभी क्रियान्वित नही हुई प्रत्युत यह भी कि उनमें उत्पन्न प्राणी एक तो अनुपयुक्त रुप से उसे अध्युषित किये रहे और दूसरे अनेक संभावित संबधों को शून्य छोड़े रहे। इससे यह भी परिणाम निकलता है कि 'जो हो सकता है वह अवश्य होता है' का सिद्धान्त गलत है। यह केवल संयोग है, यद्यपि ठीक कारण – कार्य संबंध से बँधा हुआ, कि एक घटना

घटित हो जाती है और दूसरी ९९ केवल प्रतीक्षा मे रह जाती हैं। जब एक पौधे की उत्पत्ति की उपयुक्ततम संभावनाए भारत में है जब कि उससे बहुत कम उपयुक्त इंगलैंड मे, और तब भी वह इंग-लैंड मे ही उत्पन्न होता है तो यही कहा जाएगा कि संयोगवश, यद्यपि किन्हीं निश्चित कारणो से, वह पौधा इंगलैंड मे उत्पन्न हो गया और भारत में उत्पन्न नही हुआ। यह विरोधाभास सा है किन्तु यह हम फिर निश्चित रूप से कहेंगे कि जो होता है न तो उसका होना आवश्यक था और न जो नहीं होता उसके होने की सभावनाए नहीं थी, इस लिए, यह केवल संयोग है कि असँख्य समान संभावनाओं मे से एक संभावना क्रियान्वित हो जाए और शेष प्रतीक्षा मे पड़ी रहें। +

अस्तु, प्राणियों के विभिन्न वर्ग और जातियां जेंज़ की सख्या और प्रकृति मे बहुत भिन्न होती है, इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति के जेन इस प्रकार समवेत होते हैं कि उसकी उपयुक्तता-अनुपयुक्तता उसके सम्पूर्ण जेनोटाइप की सामान्य विशेषता पर निर्भर करती है। विकास या परिवर्तन प्राणी मे केवल जेंज़ की संख्या को घटाता बढ़ाता ही नही है उनको समवेत और शृंखलित भी करता है। इस एक उपयुक्त अवस्था से दूसरी अधिक उपयुक्त अवस्था मे संक्रमण भी अन्तर काल में अनेक विषमताएँ उत्पन्न करता है, क्योकि इसके लिए जेनोटाइप का पूर्णत: नव-निर्माण करना पड़ता है जो कि दो उपयुक्त-ताओं के अन्तर में प्राणी को असन्तुलित रखता है। इस प्रकार उस जाति में, जो अपनी परिवृत्ति में पूर्णत: उपयुक्त है, म्यूटेशन का परिणाम यदि अन्तत: लाभदायक भी होने को हो, एक बार हानिकारक अवश्य होगा। इसलिए उनमें इस परिवर्तन को न तो प्राकृतिक चुनाव ही कहा जा सकता है और न सहज चुनाव (Adaptation)।

प्राकृतिक चुनाव के विरुद्ध मुख्य आपत्ति यह है कि उसमें अनेक पूर्व-कल्पनाओं की अवैज्ञानिकता निहित है। जैसे, उसके लिए पहिले से ही यह

+ भूत विज्ञान में क्वॉटम् सिद्धान्त (Quantum theory) का Law of Probability भी कुछ इसी प्रकार के मत की पुष्टि करता है, किन्तु आईस्टीन की unified theory, जो अभी तक पूर्ण विकसित नही हुई, 'सयोग शब्द का प्रत्याख्यान करने के लिए कटिबद्ध है, यद्यपि अभी तक आईस्टीन इसमें बिल्कुल भी सफल नहीं हो सके। एक तरफ जब कि White-head और Eddington इत्यादि दार्शनिक इसका तीव्र समर्थन कर रहे हैं, आईस्टीन संयोग शब्द को साईंस में उपहासास्पद समझते है।

मान लेना पड़ता है कि प्राणियों में सामान्य परिवर्तन (विजातीय मिलन इत्यादि से) तथा मौलिक परिवर्तन (mutation) की संभावनाएँ अनिवार्य रूप में निहित है, जिन पर कि चुनाव क्रियान्वित होता है। किन्तु भिन्नताओं की उत्पत्ति, फिर चाहे वे कैसी भी क्यों न हों, किसी भी प्रकार के चुनाव से प्रेरित नही होती, यह बात और है कि यह उत्पत्ति प्राकृतिक चुनाव की कसौटी पर कसी जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक चुनाव विकास का कारण नहीं है, विकास तो मुख्यत: मौलिक परिवर्तन और सामान्य परिवर्तन Hybridizdation and Recombination के द्वारा क्रियान्वित होता है। प्राकृतिक चुनाव का कार्य तो केवल छँटनी करना है। जैसा कि हम पीछे कह आए है, मौलिक परिवर्तन परिवृत्ति में उपयुक्त जातियो के लिए प्राय: ही हानिकारक होता है, प्राकृतिक चुनाव उस अवस्था में उन जातियों को अस्तित्व विहीन कर देता है। आश्चर्य की बात है कि आज भी बहुत से वैज्ञानिक विकास का कारण सहज चुनाव या प्राकृतिक चुनाव को मानते हैं, जिसका अर्थ है कि प्राणी का प्रयास परिवृत्ति की सापेक्षता मे विकास-प्रक्रिया को क्रियान्वित करता है। निश्चित रूप से हम प्राकृतिक चुनाव की शक्ति मे अविश्वास नही करते, किन्तु वह अस्तित्व में आ ही तब सकता है जब परिवर्तमान व्यक्ति या जातियाँ उसे क्रियान्वित करने के लिए अस्तित्व मे आ जाएँ, जहॉ तक सहज चुनाव का संबंध है, हम उसे पूर्णत: अस्वीकार नहीं करते, इसका प्राणी के परिवृत्ति को अपने लिए उपादेय बनाने के प्रयास के रूप मे महत्वपूर्ण स्थान हैं, किन्तु जैसा कि हम पीछे देख आए हैं (अध्याय दो) यह स्वयं अन्तत: प्राणी की शारीरिक प्रकृति और जेनोटाइप (अध्याय ४) से निर्धारित होता है।

यह प्राय· सर्व-विदित है कि डारविन ने सहज चुनाव का सिद्धान्त माल्थस (Malthus) से ग्रहण किया था, जैसा कि उसने स्वयं भी उरिजन ऑफ स्पीसीज़ में लिखा है, जिसके अनुसार सभी प्राणी अधिक से अधिक सन्तानोत्पत्ति करने का प्रयास करते है, जिससे वे अधिक से अधिक प्रदेश घेर सकें और अपकारक परिस्थितियों से बच सकें। इस धारणा के मूल में सामान्येत: उस शताब्दि के संघर्षशील और क्रान्तिकारियों के युग के 'जीवन के लिए संघर्ष' और 'उपयुक्त तम की अवस्थिति' तथा 'जीवो जीवस्य भोजनम्' इत्यादि नारे कार्य कर रहे थे, जो कि प्राकृतिक चुनाव तथा सहज चुनाव के भी प्राण हैं। क्योंकि इनकी धारणा के मूल मे, जैसा कि डारविन 'ओरिजिन आफ स्पीसीज़' में जीवन के लिए संघर्ष की

सार्वभौमिकता बताते हुए कहता है, शक्तिशाली की विजय और निर्बल की पराजय का भाव कार्य कर रहा था।

किन्तु, सिम्पसन और डोब्जहेंस्काई के अनुसार, सहज चुनाव को आज इस रूप में कोई भी स्वीकार नही करता। इसके विकल्प में वे इसकी दूसरी व्याख्या देते है,—वे कहते है, एक बस्ती Population में विभिन्न जेनो—टाइप हो सकते है जो कि बस्ती के सामान्य जेन-भडार में अपना दाय भाग देते है, जिस भंडार में से सन्तानें अपना प्राप्य पाती है। इनमें कुछ व्यक्ति (Genotype) अपेक्षाकृत अधिक सशक्त होते है और अधिक सन्तानें उत्पन्न कर सकते है जब कि दूसरे कम उत्पन्न कर पाते है। जेनोटाइपो की यह भिन्नता उनकी सापेक्ष अवस्थिति की उपयुक्तता का अनुपात निर्धारित करती है, इसी को प्राकृतिक चुनाव कहा जा सकता है। इस प्रकार प्राकृतिक चुनाव-जन्य उपयुक्तता अधिक सन्तानोत्पत्ति पर निर्भर करती है इत्यादि। किन्तु यदि सुरक्षात्मक मूल्य और प्राकृतिक चुनाव का अभिप्राय प्राणी की परिवृत्ति विशेष में उपयुक्तता समझा जाय तो हमे कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि यह प्राणी की अप्रयास-जन्य-यांत्रिक–योग्यता पर निर्भर है, जो उसे उसके जेनोटाइप के ऐतिहासिक निर्धारण और परिवृत्ति के अनुसार प्रवृत्तियो के विकास के आधार पर प्राप्त होती है। इसमें इस बात का भी बहुत बड़ा महत्व है कि वह जाति संख्या के अनुपात मे कितने विस्तार में फैली हुई है, उसके विभिन्न वर्गो के बीच कैसी दैशिक बाधाएँ है और उसका संख्याबल कितना है। कोई जाति कम उत्पादक होकर भी यदि एक घिरी हुई और उपयुक्ततम परिवृत्ति में रहती है तो उसका जीवन अत्यधिक सुरक्षित होगा और उसमें परिवर्तन की गति अत्यन्त धीमी होगी जब कि अधिक संख्यावाली विस्तृत प्रदेश में फैली जाति में परिवर्तन की गति तीव्र और कभी उपकारक तथा अपकारक होगी। इस जाति के स्तर भी अनेक होंगे। किन्तु छोटी और परिवृति में उपयुक्ततम जाति में दूसरी कमी होती है, वह परिवृत्ति में परिवर्तन आने पर अपना अस्तित्व अक्षुण्ण नहीं रख पाती। किन्तु सिम्पसन या डोब्जहेंस्काई जो अधिक सन्तान उत्पन्न करने की बात करते है वहाँ जाति के स्थान पर व्यक्ति आ जाता है, जैसे–'जो व्यक्ति अधिक सशक्त होते है वे अधिक सन्ताने उत्पन्न कर सकते हैं' इत्यादि, किन्तु सन्तानों की अधिक या कम उत्पत्ति का महत्व व्यक्ति के लिए न होकर जाति के लिए होता है, व्यक्ति के लिए तो महत्वपूर्ण केवल अपनी वासना तृप्ति और दीर्घजीवन का उपभोग है। जो भी हो, डारविन 'जीवन के लिए सघर्ष' को जो इतना अधिक महत्व देता

था, उसे आज सभवत.. कोई भी स्वीकार नही करता, क्योंकि प्राकृतिक चुनाव के लिए यह आवश्यक नही है कि उसमें संघर्ष का कोई योग हो ही, प्राकृतिक चुनाव, जो कि डारवीनियनिज्म की रीढ थी, आज न तो वह अर्थ ही रखता है और न वह महत्व ही। सहज चुनाव में अनेक तथ्य काम करते हैं, जैसे समान क्रोमोसोम युगलवाली (Homozygous) जाति में अपकारक (lethal) जेन की उत्पति उसके लिए पूर्णतः घातक हो सकती है जब कि असमान क्रोमोसोमवाली (Heterozygous) उस विपत्ति मे से बच निकलती है। इसी प्रकार, सम्भव है कोई अपने जेनोटाइप में परिवर्तन की संभावनाएं रहने पर भी कम सन्तानोत्पादन के कारण समाप्त हो जाय, अथवा सम्भव है उसको अपने विस्तार के लिए प्रदेश और भोजन के लिए उपयुक्त सामग्री न मिल सके और वह समाप्त हो जाय। दूसरी ओर, कम सन्तानोत्पादन के बावजूद किसी जाति के लिए सम्भव है कि वह प्राकृतिक चुनाव की कुदृष्टि से बची रहे। इस प्रकार अधिक सन्तानोत्पादन को हम भी जाति के अस्तित्वमूल्य के लिए महत्वपूर्ण समझते हैं, किन्तु इतना अधिक नही जितना अन्य अनेक वैज्ञानिक। सबसे बड़ी बात यह है कि इसको हम किसी प्रकार के निहित उद्देश्य के द्वारा प्रेरित नहीं समझते।

अब तक हम पर्याप्त विस्तार से यह दिखा आए है कि विकास के मूल में प्राणी के पुनरुत्पादक-पदार्थ या जेनोटाइप में यांत्रिक और आकस्मिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण भाग रहता है। किन्तु सिम्पसन के विचार में विकास की प्रक्रिया उभय-पक्षीय है—आकस्मिक और यांत्रिक भी तथा निर्दिष्ट और सोद्देश्य भी। वह कहता है कि जीवन की ऐतिहासिक प्रक्रिया न तो पूर्णतः यात्रिक और आकस्मिक है और न पूर्णतः निर्दिष्ट, प्रत्युत—इन दोनों का विषम समिश्र है। जब कि एक पक्ष को एक स्थान पर प्रधान देखा जा सकता है वहां दूसरे स्थान पर गौण, किन्तु जेनेटिक-सिस्टम में दोनों अविभाज्य रूप से विद्यमान रहते हैं। सोद्देश्यता का यह तत्व परिवृत्ति के अनुसार ढलने और उसके उपयुक्त होने की प्रक्रिया में निहित है न कि किसी तथा—कथित जीवन की लहर और निश्चित उद्देश्य की ओर बढ़ने की प्रक्रिया में (निश्चित उद्देश्य की ओर बढ़ने (Finalism) से तात्पर्य है, जीवन की उत्पत्ति और विकास का जीवन की मूल प्रकृति में ही निहित होना)। किन्तु, सिम्पसन के ही शब्दों में, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब जेन में परिवर्तन की प्रक्रिया एक दम आकस्मिक है, जैसा कि प्रमाणित किया जा चुका है, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि इसमें उपयुक्ततम स्थिति की प्राप्ति के लिये प्रयास का भी कुछ स्थान है और यह प्रयास उसे एक सुनि-

श्चितता तथा दिशा देता है ? वह अन्यत्र कहता है कि विकास मे एक निश्चित क्रम है, उसे आकस्मिक और विशृंखल नही कहा जा सकता, चाहे वह उतना निश्चित और नियोजित नही है जितना उसके लिये कहा जाता है।

यहाँ फिर वही भूल है जिसका सकेत हम पिछले अध्याय मे कर आए है—इसमे कारण और कार्य को घपला दिया गया है और इस प्रकार कार्य की ग़लत व्याख्या की गई है और कारण को भुला दिया गया है। यह ठीक है कि विकास और मौलिक परिवर्तन कुछ नियमित और निश्चित दिशा की ओर तथा कुछ क्रम से होते है, क्योकि उनमें इस नियमितता की कुछ सभावनाए है जिसका कारण उनके जेनोटाइप की रासायनिक प्रकृति है, जो एक प्रकार से क्रियान्वित हो सकती है और दूसरी प्रकार से नही हो सकती। जैसे मछली के जेनोटाइप मे कभी ऐसा परिवर्तन नही हो सकता कि उससे मनुष्य उत्पन्न हो सके और अमोयवा के भेडिया उत्पन्न हो जाए, यद्यपि मछली के जेनोटाइप मे, या किसी भी प्राणी के जेनोटाइप मे परिवर्तन की और प्रकारो की असंख्य सभावनाए रहती है। यद्यपि मछली के जेनोटाइप मे मनुष्य की उत्पत्ति की सभावना विद्यमान है, तभी मछली और मनुष्य के बीच हम शृखला मान सकते है, किन्तु यह संभावना अनेक क्रमिक संभावनाओ के क्रियान्वित होने के पश्चात् ही क्रियान्वित हो सकती है, जैसे दसवाँ एक के बाद एक दम संभव नही हो सकता जब तक पहले और दसवें के बीच दूसरा, तीसरा......और नवाँ क्रम मे नही आते। इस प्रकार मछली के जेनोटाइप में मनुष्य की सभावना विकल्प से और असंख्य क्रमिक अन्तरायों के साथ विद्यमान है। इसी प्रकार हमारी पृथ्वी पर जीवन की एक विशेष भौतिक प्रकृति है जो हमारी पृथ्वी की और उसकी खगोल से सापेक्ष भौतिक स्थिति की सापेक्षता मे निर्धारित होती है। क्योंकि यदि हमारी पृथ्वी के कीचड को सूर्य की विभिन्न किरणो का संपर्क प्राप्त न होता तो संभवत: कभी भी जीवन की उत्पत्ति न हो पाती। संभव है किसी और तारे में, यदि किसी मे जीवन का अस्तित्व है तो, जीवन की सर्वथा भिन्न और अकल्पनीय स्थिति और प्रक्रिया हो और सर्वथा भिन्न संभावनाएं हों। निश्चित रूप से हम उन संभावनाओं को इस पृथ्वी पर कभी भी क्रियान्वित होते नही देख सकते, क्योकि हमारी पृथ्वी की संभावनाएं उसकी अपनी प्रकृति और परिवृति के साथ बँधी हुई है, और हम स्वयं इस

× विकल्प से इसलिए क्योकि विकास केवल मनुष्य की ओर ही नहीं हुआ, सम्भव था मनुष्य कभी भी उत्पन्न न होता!

पृथ्वी की प्रकृति के एक अंग है। इस प्रकार यह केवल जीवन मे नही प्रत्येक कण में उसकी विकास शृंखला है और उसकी निश्चित सभावनाए है। इसीलिए किसी भी प्रकार का परिवर्तन किसी भी प्राणी मे एक दम विशृंखलित सन्तान सभव नही कर सकता। यदि कोई विशृंखलता कभी देखी जाती है, जैसे किसी के दो सिर वाले बच्चे की उत्पत्ति या नाक इत्यादि का एक से अधिक या अपने स्थान से हट कर होना इत्यादि, तो ऐसे बच्चे या तो मृत ही उत्पन्न होते है या शीघ्र ही मर जाते है; इसका कारण यह है कि ज़ेन अपनी अभिव्यक्ति और विकास का स्वाभाविक अवसर न प्राप्त कर सकने से अपनी प्रतिलिपि और अतिरिक्त उपज को उत्पन्न नहीं कर पाते; इसीसे विकास कभी भी विशृंखलित नही हो सकता। किन्तु प्रश्न यह है कि विकास और मौलिक परिवर्तन की कारण भूत प्रक्रिया की कोई योजना, उद्देश्य या शृखला है? क्या परिवर्तन सदैव एक ही निश्चित और निर्दिष्ट सभावना से युक्त है? इसका उत्तर हमे कभी भी सकारात्मक नही मिल सकता। यदि हम किसी सोद्देश्यता या नियमितता और निर्दिष्टता की सभावना मानले तो न हम यही कह सकते है कि जो हो सकता है वह अवश्य होता है और न यही कि असंख्य समान सभावनाओ मे से किसी का भी क्रियान्वित-होना केवल सयोग है, क्योंकि तब 'हो सकने' का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। सिम्पसन का भी निर्दिष्टता से यद्यपि वही अर्थ नही है जो हमारे इस वाक्य से प्रतीत होता है, किन्तु जिस निर्दिष्टता और निश्चित दिशोन्मुखता (Orientation) की वह बात करता है, वह कितने ही वैज्ञानिक ढग से प्रस्तुत की जाने पर भी ध्यान आकर्षित किये बिना नही रहती।

वास्तव मे यह केवल जेन और परिवृत्ति का आकस्मिक और सर्वथा अनियमित संघर्ष है अथवा जेन के अपने इतिहास की आकस्मिक और अनिर्दिष्ट प्रक्रिया है जो एक प्रतीयमान क्रम में अथवा नियमितता में परिणत होती है। शृखला और नियमितता के पक्षपाती इयोहिप्पस (Eohippus) से वर्तमान घोड़े तक इस जाति के विकास को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते है, किन्तु यह विकास-शृंखला उसी प्रकार एक प्रतीयमान परिणति है जैसे मौलिक परिवर्तन के अन्य उदाहरण, जिनमें अनेक बहुत अधिक विछिन्न से प्रतीत होते है। इयोहिप्पस से घोड़े तक का विकास अत्यन्त क्रमिक सा और निर्दिष्ट सा प्रतीत होता है, यह या तो (Ultra Violet) इत्यादि किरणों से एक बार जेनोटाइप के व्याकुल होने से उसकी स्थिर होने तक की शृंखला हो सकती है अथवा इसे छोटे और सामान्य से मौलिक-परिवर्तनों के कारण उदित कहा जा सकता है। यह प्रतीयमान रूप से नियोजित विकास परिणाम

में अस्तित्व-मूल्य की दृष्टि से प्रायः निष्पक्ष सा है अथवा कुछ उपकारक है, किन्तु यह इसकी मूल प्रेरणा और प्रतीयमान शृंखला का कारण या परिणाम है, यह कहना ऐसा ही है जैसे कार्य का कारण से अथवा परिणाम का प्रारंभ से पहले होना हो सकता है। जातियो में अनेक अन्य मौलिक परिवर्तन, जो कि अपकारक होते हैं, किस अन्तः प्रेरणा और योजना से होते हैं? मौलिक परिवर्तन सर्वथा विच्छिन्न और अनियमित होते है। ये परिवर्तन भयानक और घातक से लेकर स्वल्पतम और तटस्थ तक हो सकते है। इसलिए यह कहने मे हमें कुछ सार्थकता प्रतीत नहीं होती कि विकास में कुछ सुनिर्दिष्टता है। पीछे हमने जो एंटीलोप और कुक्कुट के उदाहरण दिए हैं उनसे भी यही बात प्रमाणित होती है।

मै प्राकृतिक चुनाव और सहज चुनाव से इंकार नहीं करता, जैसा कि भ्रम हो सकता है। सहज चुनाव परिवृत्ति की सापेक्षता में प्राणी की वासना तृप्ति की प्रक्रियाओं का निर्धारण करता हैं, इस चुनाव की छालनी से केवल वही प्रक्रियाएं निकल पाती है जो वासना-तृप्ति मे सहायक और उपकारक होती है जब कि दूसरी पुनकर फेंक दी जाती हैं। इस प्रकार सहज चुनाव का सबंध केवल वासना-तृप्तिकरी प्रक्रिया से है स्वयं वासना से नही। जैसा कि हैब्ब कहता है—प्राणी सीखते हुए (जीवों की बुद्धिमता की परीक्षा लेने के लिए उसे एक विशेष समस्यापिंजर मे बंद कर दिया जाता है, जहाँ से वह दौड़ धूप कर निकलता है, दुबारा वह पहले से कम दौड़ता है और निकलने मे सफल हो जाता है, इस प्रकार देखा जाता है कि वह कितनी बारियों में बिना किसी गलती के सीधे द्वार पर ही पहुँचता हैं) कुछ गलत हरकते करता है और कुछ ठीक हरकते करता है; वह कौन सी चीज है जो उसे ठीक हरकतें याद रखने में और गलत भुलाने में समर्थ करती है, अथवा ठीक शब्दों में, गलत हरकतों को निरुत्साहित करती है और ठीक को करने के लिए उत्साहित करती है? क्यों उसे ठीक याद रह जाती हैं और गलत क्रमशः भूलती जाती हैं। यह समस्या अत्यन्त उलझन पूर्ण है तथा प्राणी व्यवहार के अध्ययन में आगे बढ़ने के लिए इसका सुलझाव आवश्यक है।" हम इस उलझन पूर्ण समस्या का सुलझाव देने का साहस नही करते, किन्तु इसमे सहज-चुनाव (Adaptation) की संभावना निहित प्रतीत होती है। हमारे विचार में सहज चुनाव प्राणी की आत्मव्ययी प्रक्रिया की दिशा का निर्देश करता है, जैसा कि हम विस्तार से पिछले अध्याय में देख आए हैं। किन्तु वहाँ भी हमने यह स्वीकार करने से बार-बार इंकार किया है कि सहज चुनाव का स्वयं वासना से भी कोई संबंध हो सकता है। इसीलिए हम

अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति से, जिसके लिए सहज चुनाव के सिद्धान्त का जन्म हुआ, इस रूप में इन्कार करते है कि वह सार्वभौम है और प्राणी की वासना और प्रक्रिया का निर्देश करती है ।

यह एक आश्चर्य की बात है कि मौलिक-परिवर्तन (म्यूटेशन) की प्रकृति के ज्ञान के बाद भी, यह पूर्व कल्पित क्यों कर लिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक प्रक्रिया और उसका प्रत्येक अंग उसके लाभ की दुर्निवार प्रेरणा से ही उत्पन्न हुए होगे । इसके विपरीत प्रवृत्तियो और विकास को वे या तो उसी पूर्व कल्पना पर घटित करने का प्रयास करते है या फिर उसे अपवाद और प्रकृति की भूल कह कर शान्त हो रहते है । यह लगभग जीवन की लहर के सिद्धान्त*, उसकी सोद्देश्यता और मनस्विता को स्वीकार करने जैसा ही है । डोब्सहेस्काई कहता है कि मिश्रित Hybrid और विशुद्ध (primitive) जातियो और वर्गो मे प्राप्य विभिन्नताए प्राय. ही ऐसी विशेषताएं प्रदर्शित करती है जो सहज चुनाव की दृष्टि से एकदम समस्यात्मक होती है । सहज चुनाव की ओर यह स्पष्ट तटस्थता, जो कि विकास क्रम मे उत्पन्न जेनिक भिन्नताएं प्रदर्शित करती है, सहज चुनाव को प्राकृतिक चुनाव के द्वारा विकास का एकमात्र कारण समझने वालों के लिए बड़ी समस्या उत्पन्न कर देती है । वह आगे कहता है —यह एकदम उपहासास्पद प्रतीत होता है कि इस प्रकार शरीर के प्रत्येक भाग को ही इस सिद्धान्त पर परखने की कोशिश की जाय । किन्तु यह भी ठीक है कि प्रत्येक जेन एक ही समय मे शरीर के विभिन्न स्थलों पर अपनी अभिव्यक्ति करता है, इसलिए सहज चुनाव से तटस्थ विशेषता जेन की असख्य अभि-व्यक्तियो में से केवल एक अभिव्यक्ति है । विकास प्रक्रिया मे किसी जेन का भाग्य उसके शरीर रूप मे आत्माभिव्यक्ति के अस्तित्वमूल्य (Survival Value) से निर्धारित होता है । किन्हीं अंगों की पूर्णता जाति विशेष को इतनी लाभप्रद हो सकती है कि वह उसके कारण अपनी परिवृत्ति का श्रेष्ठतम प्राप्त करने योग्य हो जाए, किन्तु इसी कारण से उसके दूसरे अग अप्रयोग के कारण असमर्थ भी हो सकते है (use और disuse)," किन्तु ऐसी असंख्य जातियों के विकासों के लिए क्या कहा जाय जाए, जिनमें कोई अंग वैसा नहीं होता ? लेखक ने जिन आधारों पर प्रयोग अप्रयोग संबधी इस सिद्धान्त को उठाया है उसी पर अन्य सिद्धान्त और

*Elan Vital Bergson इसका प्रमुख समर्थक था ।

अधिक उपयुक्त रूप से, स्थिर किये जा सकते है। किन्तु इस पर एक आपत्ति उठानी भी आवश्यक है, क्योकि जब वह जेन की असंख्य अभिव्यक्तियों की बात करता है जिनमे कुछ तटस्थ और कुछ उपकारक या अपकारक है तब यह केवल जेन का ही कार्य है न कि किसी प्रयोग–अप्रयोग सबंधी प्रक्रिया का। वह शायद कहेगा कि जेन की विशिष्ट अभिव्यक्ति ने जो पखो और पैरो पर एक साथ प्रभाव डाला उससे प्रयोग अप्रयोग सबधी प्रक्रिया को अवसर मिला, दूसरे शब्दो मे, पंख के सशक्त तथा पैरो के निर्बल होने से पक्षी ने पैर पर निर्भर करना इतना कम कर दिया कि वे अप्रयोग से और भी असमर्थ हो गये। किन्तु यह बात संभव होने पर भी जँचती नही, क्योकि पक्षी कितना भी पखो पर निर्भर करे उसे प्रत्येक बार जमीन से उड़ने के लिए और भोजन प्राप्त करने के लिए तथा सोने के लिएपृथ्वी पर उतरना ही पडेगा। बाज या चील तथा गिद्ध जैसे आकाश मे ही या उड़ते उड़ते ही भोजन प्राप्त कर लेने वाले पक्षियो के प्राय ही पैर भी खूब सशक्त होते है जबकि सिलारा चिड़िया के, जिसे अपने भोजन के लिए अवश्य उतरना पड़ता होगा, पैर अत्यन्त अशक्त होते हैं। पीछे हमने एक ही जेन के कारण बिल्ली के श्वेत होने तथा अधप्राय होने और श्वेत सूअर के एक विशेष पौधा खाने से खुर और हड्डियाँ गलने के उदाहरण दिये थे। बिल्ली मे श्वेत रंग संभवतः उसमे किसी प्रकार के भी अस्तित्वमूल्य को नही बढाता, यह केवल संबद्ध जेन की यात्रिक अभिव्यक्ति है, और उसी जेन के अन्तः—संघर्ष (Interaction) के कारण या बहुमुखी प्रभाव के कारण उसमे एक विघातक विशेषता, अन्धेपन, की उत्पत्ति भी हो गई। इससे भी अधिक चौकादेने वाला उदाहरण दूसरा है—र जेन सूअर के रग औरहड्डियो पर एक ही साथ प्रभाव डालता है, अथवा हड्डियाँ और रंग एक ही जेन के प्रभाव-क्षेत्र बनते है। किन्तु न तो सूअर उन अपकारक पौधो को खाने से विरत होता है और न अपने जेन की अभिव्यक्ति को ही बदलता है। इस प्रकार न वह हैब्ब की बात मानता है न डोब्जहेंस्काई और सिम्पसन की इस प्रकार सफेद सूअर और बिल्ली डोब्जूहेस्काई के पूर्वपक्ष और परिणाम दोनों का खडन करते हैं। डोब्जहेंस्काई अपने कथन का आगे समर्थन करते हुए कहता है कि "सहज चुनाव से एक दम तटस्थ प्रतीत होने वाले गुण की उपयोगिता का बहुत स्पष्ट चित्रण जोंज और वाकर ने दिया है। प्याज मे एक विशेष जेन एल्लैंल। और i उसकी फुँगस (Fungus) की सापेक्षता मे

दृढ़ता और सामना करने की शक्ति को निर्धारित करते हैं। सम क्रोमोसोम (Homozygous) (ii) कलियो का रग सफेद होता है और ये कलियाँ फुंगस (Fungus) के आक्रमण की सहज ही अहेर हो जाती है, विषम क्रोमोसोम (Heterogygous) कलियाँ (ii) कुछ भूरे रग की होती है और फुंगस के प्रति अपेक्षाकृत अधिक दृढ होती है तथा समक्रोमोसोम (ii) बहुत गहरे लाल रंग की होती है और फुंगस से आक्रात नही होतो। इसका कारण यह है कि रगीन कलियो के पत्तो मे Protocatechuic तेजाब होता है और यह फुगस के लिए अपकारक होता है।" किन्तु इस से यह कब प्रमाणित होता है कि समक्रोमोसोम (ii) जेनो टाइप की उत्पत्ति का कारण फुगस से बचाव अथवा आत्मरक्षा की प्रवृति है; यदि ऐसा होता तो सम ।। और विषम ।i की उत्पत्ति होनी ही न चाहिए थी अथवा उन्हें अब तक अपने आप को ढाल लिया होना चाहिए था। स्पष्ट है कि यह पौधा (ii) किसी यात्रिक प्रक्रिया (किन्ही दो वस्तुओ की क्रिया-प्रतिक्रिया) से इस प्रकार जेन की शारीरिक Phenotypic अभिव्यक्ति करता है; इस यांत्रिक प्रक्रिया का कोई सुरक्षा-मूल्य भी है या नही, इसकी उसे कोई अपेक्षा नही होती। वास्तव में डोब्जहेस्काई भी जेन के परिवर्तन को यात्रिक प्रक्रिया–जन्य ही मानता है, और अ-रक्षा अ-मूल्य केवल परिणाम रूप में महत्त्व रखते हैं, कारण रूप मे नही। जैसा कि हम पिछले अध्याय मे भी अनेक स्थानो पर, देख आए है, इनका भी कुछ महत्व अवश्य है, किन्तु यह महत्व इनके कारण रूप मे होने मे नही प्रत्युत कार्य रूप मे होने में है, और इस अन्तर को उपेक्षित करने के कारण घपला उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

इस विस्तृत अध्ययन के पश्चात हम पाते है कि जीवन एक ऐसा अनगढ़ पदार्थ है जिसकी अपनी कुछ विशेषताएं है, किन्तु वह निरन्तर परिवृत्ति के संपर्क मे आता है जिसे हम अ×इ के रूप में रख सकते है। किन्तु उसकी विशेष परिवृत्ति के अतिरिक्त कितनी ही संभावित परिवृत्तियाँ भी रहती हैं जिनके संपर्क में आने की शतश: सभावनाए होती है। इसके अतिरिक्त वह परिवृत्ति के साथ साथ अपने सबध को निरन्तर क्रियान्वित करता है अर्थात् अ×इ एक नवीन परिणाम उ को धारण करते हैं। निश्चित रूप से अब वह अपने पूर्व रूप (अ) से भिन्न है, इसलिए इ के साथ उसकी सापेक्ष स्थिति में भी अन्तर आ जाता है, और इस प्रकार वह अब नवीन पदार्थ के रूप में इ के संपर्क में आता है। इसलिए परिवृत्ति नहीं भी बदलती तो भी इ की सापेक्ष स्थिति वह नही रहती जो वह अ के प्रसंग में थी। अतः स्वभावतः ही

उसकी सभावनाएँ भी बदल जाती हैं। इसलिए न तो कभी इ अ से वह परिणाम ला सकती है जो उ से और न अ इ से उ के समान वस्तु प्राप्त कर सकता है। यह एक सामान्य सी बात है जिसे बहुत ही बड़े रूप मे हम मनुष्यों और पौधो के 'एक ही' परिवृत्ति के संपर्क मे उनकी सापेक्षता जन्य भिन्नता मे देख सकते है। किन्तु इससे भी आगे बढकर यह कहा जा सकता है कि अ कभी भी किसी भी परिवृत्ति में उस स्थिति में नही हो सकता जो उ किसी भी परिवृत्ति में होगा। किन्तु यह संभव है कि अ इ १ के स्थान पर इ १०० के संपर्क मे आए और उ१ के बजाय उ१०० के रूप मे परिणत हो। इस प्रकार जीवन के क्रियान्वित होने की असख्य किन्तु निश्चित सभावनाए है जिनमें से किसी एक या किन्हीं एक को ही वह क्रियान्वित कर पाता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि जो हो सकता है वह अवश्य होता है और न यही कि जो होता है उसका होना निश्चित ही था, यह उसके भाग्य में बदा था, इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता था। तत्व की बात केवल इतनी ही है कि जीवन को अपनी ऐतिहासिक प्रक्रिया मे कुछसभावनाओ को क्रियान्वित करने का अवसर मिला और कुछ को नही। आज जीवन की जो स्थिति हमारे सम्मुख जैसी है वह इसीलिए ऐसी है क्योकि सयोगवश—जिसमे कार्य-कारण सबध केवल इतना ही है कि अ×इ१ कारण उ१ मे क्रियान्वित होता है उ२ मे नही, किन्तु यह केवल संयोग ही है कि अ का सपर्क इ१ से ही क्यो हुआ इ २ से क्यो नहीं, इसीसे वह संपर्क और फिर अनुगामी संपूर्ण कारण कार्य श्रृंखला कुछ और हो सकती थी और उसके लिए भी उतने ही सयोग थे। इस प्रकार विकास की प्रमुखतम विशेषता है—प्राप्त अवसर और उसका उपयोग। इस 'अवसर-प्राप्ति' और उसके उपयोग मे किसी भी प्रकार के प्रयास को लेना अभिप्रेत नही है, यह केवल एक प्रतीक है जिसका अर्थ हमारी पिछली सम्पूर्ण स्थापना के आधार पर ही समझना चाहिए। इस उपयोग और अवसर प्राप्ति मे किसी भी प्रकार से उपयुक्ततम अवसर प्राप्ति और उपयुक्ततम उपयोग का अर्थ निहित नहीं है, जब सयोग ही है संयोग केवल निर्दिष्ट या सोद्देश्य के विपरीत अर्थ मे तो कम उपयुक्त और अनुपयुक्त अवसर भी आ सकते है, किन्तु अनुपयुक्त अवस्था मे प्राणी या तो समाप्त हो जाएगा अथवा प्रवास करने को बाध्य होगा, जहाँ उसे जीवन निर्वाह का कुछ भी अवसर मिल सकता होगा। यदि उसमे कुछ संभावनाएं निहित है जो क्रियान्वित होने पर उस जाति की रक्षा कर सकती है, तो यह केवल संभव है कि वे क्रियान्वित हो जाएं, किन्तु इसके लिए भी उतने ही चांस है कि वे कभी भी क्रियान्वित न हों। इस प्रकार विकास किसी उद्देश्य

अथवा योजना के बजाय अवसर का अनुसरण करता है। जीवन का विस्तार ज्यों ज्यो अधिक होता जाता है त्यो त्यो उसकी सभावनाए भी विस्तृत होती जाती है और विभिन्नताए भी, किन्तु दूसरी ओर वह उन सभावनाओ से वचित भी हो जाता है जिनसे वह एक बार बीत चुका हो अथवा बीत रहा हो। जैसे अ×इ=उ, और कभी भी अब अ और इ सम्मिलित नही हो सकेंगे और अ×इ कभी भी उ नही होगे। इसी के साथ साथ अ के साथ इ के अतिरिक्त और भी कितने ही अवसर सपर्क स्थापित कर सकते थे जिनकी सभावना अ और इ के संपर्क के पश्चात समाप्त हो गई। किन्तु जीवन की विकास-प्रक्रिया मे इस गणित से कुछ अन्तर है और वह यह कि अ इ के साथ मिलकर उ का सृजन कर के भी अस्तित्व विहीन नही हो जाता जबकि इ अस्तित्व विहीन हो जाती है। किन्तु फिर भी अ अपनी प्रतिलिपियाँ उत्पन्न करता रह सकता है और परिवृत्ति के कुछ बदल जाने पर भी एक सामान्य से परिवर्तन के साथ अपना अस्तित्व बनाए रह सकता है। इस प्रकार यदि यह कहा जाए कि अ×इ उ का सृजन करते रहेगें और अ अपनी कुछ विशिष्ट संभवनाओं क के साथ अपनी नवीन परिवृत्ति इ१ के अथवा अन्य नवीन सयोगों के सपर्क मे आता रहेगा, तो अधिक उपयुक्त होगा।

यहाँ स्पष्टत ही हमने प्रतीयमान रूप से एक विरोधाभासपूर्ण बात कही है, और वह है परिवृत्ति के अनुसार अपने आपको ढालने की प्रक्रिया। यह विरोधाभास इससे पहले अध्याय कों ध्यान में रखते हुए तो और भी बड़ा प्रतीत होता है, यद्यपि हमने इसका इस अध्याय मे कुछ स्थानो पर सामजस्य बिठाने का प्रयास किया हैं। किन्तु यदि थोड़ी सी गंभीरता से भी इसे देखा जाए तो इसमें बिल्कुल भी विरोधाभास नहीं है, क्योंकि हमने यह तो कभी भी नही कहा कि प्राणी एक दम निर्जीवयंत्र है, प्रत्युत यह कि उसकी प्रक्रियाए जिन तत्वों से निर्धारित होती हैं उनका व्यापार एक दम यांत्रिक है। पिछले अध्याय में हमने यात्रिक प्रतिक्रिया व्यापार (Reflexive Mechanism) का विस्तार से अध्ययन करते हुये बताया था कि प्राणी पीड़ा और सुख का अनुभव करता है; निश्चित रूप से वह पीड़ा से बचना चाहता है और सुखानुभूति की आवृत्ति चाहता है, इससे वह उसका कुछ उपाय भी करता है, किन्तु इसका अर्थ यह नही कि इसे हम विकास का मूल, एक मात्र या प्रधान भी, कारण मानते है। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि प्राणी में कुछ सामान्य और शरीरिक परिवर्तन हो जाते है और कभी कभी ये स्थायी भी हो जाते है, किन्तु यह स्थायिता बहुत शीघ्र समाप्त भी हो

सकती है जब उसकी आवश्यकता न रहे। यह परिवर्तन-प्रक्रिया कुछ उतनी ही चेतन है जितनी एक राजकुमार से किसान बनने वाले किशोर में उसके शरीर मे धीरे धीरे होते हुए परिवर्तन मे होगी। यद्यपि यह परिवर्तन कभी भी जोनोटाइप मे प्रविष्ट नही होगा किन्तु उसकी शरीर रचना में अवश्य यह कुछ स्थायिता बना लेगा। किन्तु अविकसित प्राणियो मे ऐसे परिवर्तन कुछ और कभी कभी बहुत भी, जेनोटाइप मे निहित हो जाते है। यहां लाइसैको का समीकरण और डारविन का सहज-चुनाव दोनों ही बहुत दूर तक चरितार्थ हो जाते ह; किन्तु, जैसा कि सभी जानते है, जितने कम प्राणी विकसित होते है उतनी अधिक इनकी मानसिक प्रक्रिया यांत्रिक होतो है। किन्तु सामान्य परिवर्तन की, जो कि 'प्रयास जन्य' है, आधार भूत और प्रतिनिधि प्रक्रिया को हम एक दूसरे उदाहरण मे भी देख सकते है, और वह है अधिक सर्दी या अधिक गर्मी में हमारे शरीर का प्रतिरोध और आत्म सन्तुलन (Equilibrium) स्थापित करने का 'प्रयास'। अधिक ठंडी हवा चलने पर हमारे रक्त का दबाव बाहर की ओर को हो जाता है, निश्चित रूप से यह सन्तुलन और प्रतिरोध का प्रयास नही है, यह केवल एक यांत्रिक प्रक्रिया है। शीत-प्रधान देशो में पशुओ के बड़े बड़े बाल होना और खुश्क देशों मे वनस्पतियो की गहरी जड़े और गर्म खुश्क देशों में गहरी जड़ें तथा मोटे पत्ते होना, ये सब उदाहृण इसी प्रकार की यात्रिक प्रक्रिया के परिणाम भी हो सकते है, यद्यपि अधिक सभावना यही है कि ये उनके विशेष जेनोटाइप के कारण उत्पन्न हुए और उन देशो मे वे स्थायी हो गये जब कि दूसरो में नही हो पाए। अथवा जहाँ ये ऐसे पाए जाते है वहाँ का रासायनिक समीकरण ही ऐसा हुआ कि ये इन विशेषताओ के साथ उत्पन्न हुए। किन्तु इसका प्रयास जन्य होना भी उतना ही स्वाभाविक है, क्योकि शरीर सदैव सामजस्य बैठाने के प्रयास जन्य तनाव मे जीवित नही रह सकता, उसमे स्थायी सामंजस्य प्रवृत्या ही स्थापित हो जाता है। किन्तु कृमियो, मछलियों और पक्षियों इत्यादि का अपने प्रबल शत्रु से बचने के लिए परिवृत्ति के अनुसार अथवा शत्रु के लिए भय-जनक वस्तु अथवा प्राणी के अनुरूप रंग बदल लेना, स्पष्ट रूप से हमारी इस सम्पूर्ण स्थापना को चैलेज है, किन्तु इममें अधिक अत्यारोपण ही प्रतीत होता है। क्योकि पहले तो यही कहना कठिन है कि वे अपने शत्रुओं को भी उसी रंग के उसी प्रकार के दिखायी पड़ते है जैसे अपने विकासवादी मित्रों को; सभव है वे अपने शत्रुओं के लिए उस प्रकार से भी उतने ही गम्य हों जितने वे हमारे लिए भिन्न होकर होते, दूसरे, सभव है, उनके परिवृत्ति के अनुरूप रंग

होने का कारण उनके भोजन इत्यादि का उन पर प्रभाव हो, क्योंकि उनके शरीर का रंग परिवृत्ति के समीकरण पर निर्भर करता है। इसका प्रमाण वे कृमि है जो यूरोप के औद्योगीकरण से पूर्व श्वेत थे और पश्चात् धूए से काले हो गए। इगलैड, फ्रॉस तथा जर्मनी के इन कृमियो को इस प्रकार बदले देखकर सहज चुनाव के पक्षपातियो ने सोचा कि इसका कारण अवश्य सहज चुनाव ही हो सकता है, किन्तु हैरीसन ने इसका कारण उनके भोजन इत्यादि का धूम्रवर्ण हो जाना तथा उससे कुछ ऐसे रासायनिक परिवर्तन हो जाना दर्शाया है जिन से उनके रग मे यह परिवर्तन आया। उसने श्वेत कृमियो को मेगानीस तथा कुछ और रासायनिक द्रव्यों से मिश्रित भोजन देना प्रारंभ किया; इससे अगली ही पीढी मे उसने पाया कि उनकी सन्ताने काली थी और ये मेंगानीज के बिना ही काली सन्ताने उत्पन्न करती थी। वास्तव में कृमियो में किसी प्रकार के प्रयास की कल्पना एक दम व्यर्थ है, यह केवल 'आत्मवत सर्वं भूतेषु' देखने की भूल के कारण उत्पन्न भ्रम है। कृमियों के जीवन की प्रेरणाएं हमारे लिए सभवतः इतनी अपरिचित और अगम्य भी है कि उनके लिए कोई ऐसा निर्णय देना व्यर्थ है जो उनकी मनस्प्रक्रिया से संबधित है। जहाँ तक विज्ञान की प्रयोगात्मक पहुँच का प्रश्न है, उसके अनुसार उनकी प्रक्रियाएँ यान्त्रिक ही अधिक प्रतीत होती है।

किन्तु डोब्जहेंस्काई कीटाणुओ मे मौलिक परिवर्तन (Mutation) के कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करता है जो प्रतीयमान-रूप से सहज चुनाव जन्य प्रतीत होते है, जैसे कोलन नामक कीटाणु वीरुस (कोलन के लिए घातक कीटाणु) से, जो कि उनके कोषों मे रहते और सन्तानोत्पत्ति करते हैं, प्रायः ही आक्रान्त होते रहते हैं और इस प्रकार समाप्त होने का खतरा मोल लेते है। यदि ये रोग-कीट उनमे प्रविष्टि कर दिये जाएँ तो वे अपवादात्मक रूप से ही बच पाते हैं। किन्तु जो कीटाणु बच जाते है और सन्तानोत्पत्ति करते हैं, उनकी सन्तानें अपनी परिवृत्ति मे उपस्थित वीरुस के आक्रमण से प्रभावित नही होती। Luria के अनुसार, यह सामर्थ्य उनमें मौलिक परिवर्तन (Mutation) से उत्पन्न होती है। यह म्यूटेशन उनमे ल्यूर्या के अनुसार, २ × १०—८ के दर से कीटाणु नाशकों (वीरूस) के परिवृत्ति में विद्यमानता से निरपेक्ष रूप में होता है। इससे स्पष्ट है कि वीरुस कीटाणुओं में इस परिवर्तन का कारण नहीं है, प्रत्युत यह कि वह केवल प्राकृतिक-चुनाव का प्रतिनिधित्व करता है। जिन कीटाणुओं मे परिवर्तन की उपयोगिता- अस्तित्वमूल्य—कम होगी वे निष्कासित कर दिये जाएंगे, जब कि शेष परिवृत्ति की घातकता के लिए दृढ प्रमाणित होंगे।

किन्तु कीटाणुनाशको की विभिन्न जातियाँ हैं जो अपनी शारीरिक-प्रकृति और आकृति मे पर्याप्त अन्तर रखती है। इस प्रकार इनमे से किसी एक से युक्त परिवृत्ति मे जीवित और प्रबल कीटाणु केवल उस वीरूस के लिए ही प्रबल होगे जो उनकी परिवृत्ति का घातक अश था जबकि शेष के लिए वे भी उतने ही निर्बल होगे जितने वे परिवर्तन से पूर्व अपनी परिवृत्ति मे उपस्थित शत्रु के लिए थे। इस प्रकार एक ही जाति के कीटाणु विभिन्न शत्रुओं की परिवृति मे अगली पीढ़ियो मे प्रतिरोध शक्ति की दृष्टि से भिन्न हो उठेगे। इस प्रकार यदि ये कीटाणु विभिन्न शत्रुओ की परिवृत्ति मे रखे जाएं तो उनकी विभिन्न सन्ताने थोड़े ही समय मे प्राप्त की जा सकेगी।

क्योकि शत्रु के प्रतिरोध की शक्ति मौलिक परिवर्तन से उत्पन्न होती है, जो मौलिक परिवर्तन स्वय शत्रु की परिवृत्ति में विद्यमानता का सापेक्ष नही, और क्योकि प्रतिरोधक कीटाणु शत्रुओं से बच जाते है, जोकि शेष नही बच पाते, इस लिए स्वभावत ही बड़ी जल्दी सभी कीटाणुओं को शत्रु--प्रतिरोधक हो उठना चाहिये, किन्तु ऐसा होता नही, क्योंकि, एंडर्सन के अनुसार, इन कीटाणुओ की प्रबलता या अस्तित्व मूल्य वीरूस की (जोकि अब शत्रु नही रह गए होते, प्रत्युत जीवन के लिए अनिवार्य हो आते है) उपस्थिति के बिना, वीरूस के लिये निर्बल, अथवा स्वाभाविक परिवृत्तिओ मे विकसित होते कीटाणुओं से कम होता है। उसके अनुसार, इन कीटाणुओ को अपने जीवन के लिये विशेष और मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता होती है, जैसी उन्हे अपनी परिवृत्ति मे वीरूस की उपस्थिति से हुई थी।

परिवर्तन और चुनाव की इस क्रिया–प्रतिक्रिया का उदाहरण एक्स-किरणों और अल्ट्रा वायलट किरणों के प्रभाव मे भी देखा जा सकता है। यदि इ–कोली कीटाणु पर एक्स किरणो से आक्रमण किया जाय तो उनमें अधिकांश मर जाएंगे और शेष जिन सन्तानो को जन्म देंगे वे अपेक्षाकृत अधिक सबल और प्रतिरोधक होंगी। यहाँ भी प्रतिरोध-शक्ति परिवर्तन से उत्पन्न होती है जो परिवर्तन स्वयं किरणों के आक्रमण से होता है। यद्यपि यहाँ परिवर्तन की गति स्वाभाविक या वीरुस वाली परिवृत्ति से काफी अधिक होती है–जैसा कि किरण–आघात से सभी प्राणियो मे होता है, किन्तु प्रतिरोध शक्ति और किरण– आघात में कोई मनोवैज्ञानिक संबंध नहीं है।

कीटाणुओं के इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मलतः परिवर्तन की प्रेरणा मे चुनाव का कोई हाथ नही है, यह केवल वह साचा है जो उस परिवर्तन को अपने अनुसार ढाल लेता है, जहाँ तक कीटाणुओं में शत्रु-प्रतिरोध के रूप

का प्रश्न है। शभवतः शत्रु की उपस्थिति रासायनिक कारणो से उसमे कुछ विशेषता उत्पन्न कर देती होगी जिससे शत्रु उसके लिए घातक रसायण न हो कर उपकारक रसायण बन जाता है। बीरुस की उपस्थिति जन्य परिवर्तन और अवशिष्ट सन्तान के लिए उसका उसके जीवन के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता हो उठना यही प्रमाणित करता है।

किन्तु कीटाणुओ मे चुनाव या साँचा जितना प्रभावशाली होता है, अधिक विकसित प्राणियों मे यह इसके पासंग मे भी नही होता। परिवर्तन भी इन प्राणियों में बहुत कम होता है, किन्तु परिर्वतन और चुनाव का अनुपात फिर भी वह नही होता जो कीटाणुओ मे विद्यमान है। कीटाणुओ को तदनुकूल ढलने में अधिक सुविधा उनका शरीर-निर्माण देता है, क्योकि वे इतने कम विकसित अथवा इतने कम सजीव होते है कि उनके लिए विभिन्न आकृतियो में ढलना अथवा विभिन्न रासायनिक पदार्थो का समीकरण करना पानी के विभिन्न गिलासों में ढलने अथवा वायु के विभिन्न गधों को ग्रहण करने के समान है। उनके जीवन के लिए चुनाव के बाद शत्रु का उनकी परिवृत्ति में आवश्यक हो उठना बताता है कि शत्रु-कीटाणु की उपस्थिति का उन पर उसी प्रकार रासायनिक प्रभाव पड़ता है जैसे अन्य किसी भी रासायनिक द्रव्य का होता है। कुछ मनुष्य विष खाते है और उनके लिए यह एक दिन इतना आवश्यक हो उठता है कि वे उसके बिना जीवित नहीं रह सकते। यद्यपि यह परिवर्तन उनके जेनोटाइप में सरलता से निहित नही होता किन्तु एक ही सेल वाले अथवा इतने सरल शरीर रचना वाले सोमा और जर्म कोष के कीटाणुओं मे परिवर्तन की लगभग वही रीति है, जो हमारे उलझनपूर्ण शरीर यंत्र की।

हम इस बात को तो कुछ दूर तक समझ सकते है कि मनस्प्रक्रिया पर परिवृत्ति का कम या अधिक —जैसा पिछले निबध में हम विस्तार से देख आए है — प्रभाव पड़ता है, किन्तु कोई वासना या आत्म-रक्षा की प्रेरणा इत्यादि किसी प्रकार के मौलिक परिवर्तन की भी कारण हो सकती है यह हम स्वीकार नही कर सकते। पिछले दोनों अध्यायो में हम इसको मनस्प्रक्रिया के संबध मे देख आए हैं। प्राणियो के अपनी परिवृत्ति के समान रग होना, और उससे भी अधिक, अपनी परिवृत्ति में परिवर्तन के अनुसार रंग में परिवर्तन हो जाना, जहाँ हमारे इस निबंध के लिए चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है वहाँ पिछले दो निबंधों के लिए भी, ' और बहुत से समझदार वैज्ञानिक भी ऐसा ही समझते है, किन्तु हम इस प्रक्रिया

या इस व्यवहार के हेतु भूत यंत्रों को यहाँ कुछ विस्तार से दे कर दिखाएंगे कि यह भी उतनी ही यांत्रिक प्रक्रिया है जितनी अन्य कोई; और इसका प्रयास से कोई संबंध नही है ।

'गिरगिट के समान रंग बदलना ' एक मुहावरा ही हो गया है, और शायद सब कहेगे कि हमारी स्थापना के खंडन के लिए यही एक काफी बड़ा प्रमाण है , किन्तु वास्तव मे अनेक रंग बदलने वाले गिरगिट की यह चतुराई एक दम यॉत्रिक प्रक्रिया है जैसे मनुष्य की त्वचा का सर्दियो में काली और गर्मियों में कुछ निखरी हुई हो उठना । सामान्यत: गिरगिट पत्तों के समान हरित रंग से लाल, भूरे और काले रग का हो सकता है । इसी प्रकार एक अन्य छिपकली कारोलिना एनोलस (Carolina Anols) भी कुछ ही मिनटों में चमकीले हरित रंग से क्रमश: नसवारी और काले रंगो में बदल सकती है, 'इसी प्रकार काले या हरित से क्रमश: भूरे और फिर कुछ मैले सफेद मे परिवर्तित हो सकती है । यह मादा से प्राथमिक मैथुन के समय अपने गले मे गहरा लाल रंग भी उत्पन्न कर सकता है, किन्तु J. Porus और J. Milne के अनुसार, गिरगिट के इन रंगों में परिवर्तन का कारण उसके तापमान मे परिवर्तन और कभी कभी उसकी स्नायविक अस्थिरता है , और यह केवल सयोग ही हो सकता है यदि वे कभी अपनी परिवृत्ति के रगों से मेल खाते हो , किन्तु सामान्यत: वे उससे नहीं मिलते । गिरगिट का यह रंग बदलना उतना ही मानसिक है जितना मनुष्य का क्रोध से लाल रंग हो उठना । वह आगे कहता है कि–पृथ्वी पर रहने वाले जन्तुओं का आत्म रक्षा के लिए रग बदलना एक दम अत्युक्ति है । शत्रु को छलने के लिए रंग बदलने की कृमियो और मछलियों की अनेक जातियों की योग्यता के बारे मे बहुत कुछ भावोक्तियां लिखी और कही जाती है, किन्तु लेखक इस बात तक का ध्यान नहीं करते कि इन्हें शत्रुओं से कितना कम वास्ता पड़ता ह । इससे कही अधिक समय इन्हे अपने जीवन की अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति में बिताना होता है । किन्तु यह हमारा तर्क नही है, हम तो केवल यही कहना चाहते हैं कि इस प्रकार की योग्यता प्रथम तो जेन्ज की यॉंत्रिक क्रिया या उनकी प्रकृति की (जो कि मानसिक शासन से स्वतंत्र है) परिणाम है और फिर उनकी उत्पत्ति रूप शरीर के कोषों और हार्मेज इत्यादि के क्रिया व्यापार की परिणाम । इसके लिए हम रंगों के अधिष्ठाता कोषों का संक्षेप मे अध्ययन करेंगे ।

त्वचा के रग क्रोमेटोफोर नाम के कोषों की प्रकृति के ऊपर निर्भर है जिनमें रग को उत्पन्न करने वाले पदार्थ निहित रहते है। ये कोष ठीक त्वचा के नीचे होते हैं। सामान्यत. क्रोमेटोफोर तारे की आकृति का होता है जिसकी लबी लबी भुजाएं केन्द्रीय बिन्दु से निकल कर दूर दूर तक फैली रहती है। इनके रग बनाने वाले पदार्थ अत्यन्त छोटे छोटे कणों के होते है। ये कण सम्पूर्ण कोष में विकीर्ण किए जा सकते है और केन्द्र में एक स्थान पर भी एकत्रित रह सकते है। रंगो के ये कण एक कोष में एकही प्रकार के होते है —काले, लाल, हरे या भूरे, जिस किसी भी प्रकार के फिर चाहे वे हों। किन्तु शरीर मे, और विभिन्न प्राणियो के शरीरों मे भिन्न संख्या में, अनेक रंगों वाले रग–कोष या क्रोमेटोफोर होते है जिनके अपने अपने रंग के समान नाम हो सकते है। शरीर को काले रग का करने वाले कोष मेलानोफेर्ज (Milanophores) कहे जाते है, जोकि काले रग (Melanin) शब्द से बना है। जब ये मेलानिन कण कोष के सम्पूर्ण शरीर और भुजाओं में विकीर्ण हो जाते है तो शरीर का रंग काला हो जाता है, जब ये कोष के केन्द्र में एक बिन्दु के रूप मे केन्द्रित हो जाते है तो प्रकाश इन कोषों के भीतर से होकर गुजरता है जिससे शरीर का रंग पीला दिखाई पड़ता है। रंग के काला होने के लिए केवल इन केन्द्र स्थित कणों का विकीर्ण हो जाना ही पर्याप्त नही होता, इसके लिए अन्य ऐसे ही कणों की आवश्यकता होती है, यही वह क्रिया व्यापार है जो मनुष्य के शरीर को गहरे रंग का और मछली के शरीर को काले रंग का बना देता है। एक काली मछली कुछ ही घंटों में काली से भूरी हो सकती है जोकि केवल इन काले कणों के केन्द्रीकरण का परिणाम है। यदि इसे काफी समय के लिए स्वच्छ पानी में रखा जाय तो इसमें यह परिवर्तन सहज ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार मनुष्य का रंग भी, यदि उसे अल्ट्रावायलेट किरणो मे रखा जाय तो, उसका रङ्ग निखर आता है।

दूसरा महत्वपूर्ण त्वचा–रंग–कणहै पीत (Xanthophyll)—जो कि पतझड़ के पत्तों में भी पीतरंग का कारण होता है। काले रंग-कण वाले कोषसे भिन्न इस रंग के कोष संख्या मे घटते बढ़ते नही—इनकी संख्या स्थिर रहती है, ये रंग में परिवर्तन अपने रंग-कणों के विकीर्ण और सकोचन के द्वारा ही करते हैं। पीत–रंग कणों वाले कोष कृष्ण-रंग-कणों के साथ मिलकर मछली के रंग प्रदर्शन की विविधताओं की संभावनाओ को बहुत अधिक बढ़ा देते है। इनके विभिन्न अनुपातों में मिलने से मछली या अन्य जीव नीले, भूरे तथा काले रंग के अनेक आभास (Shades) प्रस्तुत कर सकते है।

तृतीय प्रकार का रग-कण-कोष गोआनिन (Guanine) है जिसका रंग हिम-धवल होता है। यह रंग प्राय: चित्रकारों के चित्रों के रंग के लिए चित्र फलक के आधार रंग के समान अन्य रंग के धब्बों के उभार के लिए भूमिका प्रस्तुत करता है। गुआनोफर कोष पीत रग के कोषों (Xanthophore) के नीचे की तह मे बड़ी घनता से सटे हुए होते है। ये गुअनोफर परिवर्तित नही होते प्रत्युत् एक तीव्र हिम धवल भूमिका के रूप मे रहते है। त्वचा में गहरे होने के कारण इनके श्वेत कोष आकाश-नील रग का चित्रपट प्रस्तुत करते हैं, किन्तु यह नीलिमा ऊपर के पीत कोषों मे छन कर हरित रग––जैसा हरित गिरगिट का होता है—की अभिव्यक्ति करती है। इन हिम धवल श्वेत रंग–कणों वाले कोषों के नीचे विभिन्न आभासों के काले कोषो की तह होती है; जिनमें कृष्ण रक्त और लोहित सम्मिलित है। इन कोषो की बाहे लम्बी लम्बी होती है। गिरगिट इनके रंग कणो के संकोच––विस्तार से विभिन्न रंगों की अभिव्यक्ति करता है। अब कृष्ण–रग–कण पूरी तरह से कोषो की बाहो मे फैल जाते है और गुआनो (श्वेत रंग कण) को ढक लेते है किन्तु पीत को नही ढॅक पाते, तो उनका रंग हल्का लाल हो जाता है, किन्तु जब पीत को भी ढॅक लेते है तब इनका रंग लोहित या काला हो जाता है। परिवर्तन शायद ही कभी सम्पूर्ण शरीर में समरस होता हो। इसलिए ये रंग प्राय· छोटे-छोटे धब्बो या लहरों के रूप मे ही धीरे-धीरे विस्तृत होने आरम्भ होते है।

ये रग-परिवर्तन किन कारणों से निर्धारित होते है ?––यह प्रश्न यहाँ महत्वपूर्ण है। जैसा कि हम आगे देखेगे, इसका कारण दृष्टि, तापमान इत्यादि भी हो सकते है और आन्तरिक ग्रंथियों का स्राव भी। साधारणत. धमनियां बाह्य उकसाहट की सूचना इन कोषों को प्रेषित करती है, जो कि शरीर के रासायनिक संदेशवाहक––हार्मज के द्वारा होता है। किन्तु कुछ प्राणी ऐसे भी है जिनमें ये धमनियाँ सीधे इन रंग–कोषों का नियंत्रण करती है, ये प्राणी मोल्लुस्क (Mollusk) हैं। इनके रंग-कोष लचकदार थैलों के रूप में होते है जिनमे कि प्रत्येक मे एक विशेष रंग का तरल रंग रहता है। प्रत्येक थैले के साथ एक स्नायु की पतली तार सी जुड़ी रहती है जो कि इसे फैलाकर चौड़े आकार मे भी ला सकती है, जिससे कि तदीय रंग प्रकट हो जाते हैं, और उन्हें संकुचित भी कर सकती है। इनमे से प्रत्येक थैले का नियंत्रण एक पृथक् स्नायु तार करती है। सेफोलोपोड (Cepholopod) या स्नायु-संबद्ध—रंग कोषवाले प्राणियों में आवेगो को इनके रंगों में पढ़ा जा सकता है। जैसे मनुष्य में छोटे स्तर पर

आवेगो में रग परिवर्तित होते है, उसी प्रकार बडे स्तर पर इन प्राणियों में होते है ।

जिनमे रग परिवर्तन दृष्टि (Vision) से नियन्त्रित है उनमे यह सदेह हो सकता है कि इनमें रग-परिवर्तन का कारण आत्म रक्षा की प्रवृत्ति है, जैसे कैटफिश मे । ये मछलियाँ जिस रग की परिवृत्ति मे होती है उसी रग की बन जाती है । यहाँ तक कि यदि इन्हे धब्बो वाली परिवृत्ति मे भी रखा जाय, इनके शरीर पर वैसे ही धब्बे प्रकट हो जाएगे । (Cott) ऐसा कहने के प्रयोगात्मक आधार है । और यह भी प्रयोग सिद्ध है कि परिवृत्ति के रग की मछलियाँ अपने शत्रुओं से बचने मे बहुत अधिक सफल हो जाती है । किन्तु क्या इन आधारों पर कहा जा सकता है कि इन रंग-परिवर्तनो का आधार या हेतु आत्म-रक्षा की प्रवृति है ? एक मानसिक प्रयास है ?

जैसा कि हम पीछे सर्वत्र कहते आए है, यह ठीक प्रतीत नही होता । हार्मज के द्वारा दृष्टि से प्रभावित होने वाले इन रगों में परिवर्तन का कारण पिच्युइटरी ग्रन्थि है (पीछे हार्मज की अनुक्रमणिकामे देखे) और यह ग्रथि केवल प्रकाश के प्रभाव मे यांत्रिक रूप से अपने स्राव की प्रकृति को बदलती रहती है । यदि मछलियों कें रंग परिवर्तन का कारण किसी प्रकार की 'प्रवृत्ति' होती तो इन कोषो का सम्बन्ध सीधे स्नायु तन्तुवाय से होना चाहिए था, जैसा कि मोल्लुस्क जातियो मे है । किन्तु क्योकि मोल्लुस्क इत्यादि मे यह आवेगात्मक रग-परिवर्तन किसी भी प्रकार से उपकारक नही है, क्योकि उसका परिवृत्ति के साथ मेल से कोई सबंध नही होता, इसलिए उसे भी केवल यान्त्रिक प्रक्रिया ही कहा जा सकता है, जैसे मनुष्य मे लज्जा, क्रोध भय इत्यादि के समय रग-परिवर्तन में । मान लीजिए कि किसी मछली के शत्रु को विशेष रंगों के लिए अँधा कर दिया जाता है, जैसे काले तालाब की मछली के शत्रु को काले के अतिरिक्त अन्य सभी रंगो के लिए अँधा बना दिया जाता है, और ऐसा मछली की दस सन्तानो के लिए किया जाता है, तो स्वभाव: काली मछली ही केवल अक्रान्त होगी अन्य सभी रगों की मछलियाँ बच जाएँगी । उस अवस्था में, यदि मछली का रंग-परिवर्तन किसी प्रकार की मानस-प्रक्रिया-जन्य है, तो उस मछली की आगे आने वाली सन्तानों को काले तालाब मे भी काले रंग से भिन्न किसी भी रंग की होना चाहिए । किन्तु ऐसा १०वीं नहीं किसी भी बाद की सन्तान में नहीं होगा । यद्यपि यह केवल कल्पना है, किन्तु यह तर्क सम्मत संभावना है, क्योंकि अन्य

अनेक जातियाँ, जैसे थ्री स्पाइड स्टिक्कल बैक और मेंडक मे मैथुन ऋतु में शरीर का रग लाल हो जाता है, और वे सुविधा से शत्रुओं के वशवर्ती हो जाते है। यहाँ कहा जायगा कि वे प्रेयसी को आकर्षित करने के लिए ऐसा करते है (Tinbergen) किन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता, क्योकि यह केवल उनके गोनाड्ज़ इत्यादि से स्रवित होने वाले हार्मंज का ही प्रभाव है जिसमे स्टिक्कलबैक की इच्छा या वासना को कुछ भी नही करना है।

जैसा कि हम अगले निबन्ध मे विस्तार से देखेगे, इन सबका आधार केवल जेज़ है, क्योकि ये ही प्राणी के कोषो, ऐंज़ाइम्ज और हार्मंज का निर्धारण करते है, और जैसा कि हम इस निबंध में पीछे देख आये है, जेंज का यह क्रिया—व्यापार एकदम स्वत· चालित है, प्रेरित नही। इस प्रकार रंग—परिवर्तन वासना और प्रक्रिया जन्य नही है, इनके कारण भूत यन्त्रों से नियन्त्रित भले ही हो।

इस प्रकार मानसिक चुनाव (Adaptation and Sexual-selection) इत्यादि के लिए जीव विज्ञान में कही भी स्थान नहीं है।

—:०:—

REFERENCES

1. *Cott H. B* — Adaptive Colouration in Animals 1st Ed 1940 (Oxford University Press, London.)

2 *Darwin* — Origin of Species (Watts & Co London.)

3. *DobzhanskryT* — Genetics & Origin of Species. 1st Ed. 1951 (Colombia University Press)

4 *Lysenko-T D* — Developments in the Science of Biological Species 1st Ed 1951 (Moscow.)

5 „ — Heredity & Its Variability. 1st Ed. 1951 (Moscow.)

6 *Sinnot & Dunn* — Principles of Genetics 1st Ed, 1939 (Macgraw Hill Book Co. New York.)

6 *Sympson* — Meaning of Evolution 1st Ed. 1949 (Yale University Press)

-

४—फिनोजेनेटिक्स और व्यक्तित्व-

पिछले निबंध में हमने यद्यपि मुख्यत· प्राणी—विकास के आधार भूत कारणो को देखने का प्रयास किया है किन्तु उसमें जेन (Gene) की प्रकृति और शारीरिक-विकास (Development) पर उसके प्रभाव को भी यत्र तत्र देखते आए है। इससे स्पष्ट है कि प्राणी का 'भाग्य' कितना अधिक 'निर्धारित' होता है और कितना कम स्वतत्र। इस निबंध मे हम इन जेन्ज के प्राणी के उन प्रक्रिया-स्रोतों पर नियत्रण और संबध को देखेंगे, जिनका वर्णन हम पहले निबध में कर आए है, और इस प्रकार हम वशानुक्रम और मानसिक प्रवृत्तियो (Heredity and Mental traits) की सापेक्षता को कुछ दूर तक समझ सकेंगे। इससे हम न केवल प्राणी—व्यवहार की प्रकृति को ही अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे प्रत्युत प्राणी की मानसिक योग्यता और इसकी वासनाओं की वशानुक्रम में एकता के कारण को भी समझ सकेंगे। प्राणी व्यवहार की ठीक ठीक व्याख्या के लिए वास्तव मे उत्तराधिकार की सीमाओ और प्रकृति को जान लेना अत्यावश्यक है, क्योकि इसके बिना हम यह नही जान सकते कि प्राणी किस प्रकार अपने पूर्वजों के समान व्यवहार करता है और व्यवहार किस रूप में शारीरिक पदार्थ मे निहित (Physiologically Rooted) होता है।

जबकि यह विषय इतना अधिक महत्वपूर्ण है, इस ओर इतना कम कार्य हो सका है कि निश्चितता से कुछ भी कह सकना असंभव है। तो भी, जो कुछ भी आज ज्ञात है उसके आधार पर हम इस अत्यन्त कठिन समस्या पर कुछ विचार करेंगे।

जेनेटिक्स सामान्यत: उस पदार्थ की प्रकृति का अध्ययन करता है जो पूवजों और सन्तानो को एक शृंखला के रूप मे सबधित करता है और इस प्रकार यह पदार्थ प्राणी के जीवन का वह आधार भत बीज है जिसमें प्राणी का जीवन केन्द्रितहोता और पुन· आत्मोद्घाटन करता है, यह आत्मोद्घाटन वपित रजकोष (Fertilized Egg) और पूर्ण विकसित व्यक्ति मे के अन्तर को नापता है, जिस अन्तर में जेन अपनी अभिव्यक्ति या आत्मोद्घाटन करते है और इस प्रकार शरीर को संभव करते है। जेंज के इस आत्मोद्घाटन या शारीर निर्माण का अध्ययन एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसके बारे मे जवैज्ञानिक हु अब त

कम जानते हैं। तथापि गोल्डश्मिट (Goldschmidt) और बीडल (Beadle) तथा अन्य भी जीव-रसायणशास्त्री (Biochemist) इस ओर कुछ दूर तक समस्या की व्याख्या करने मे समर्थ हो सके है।

जेंज् एक विशेष प्रकार के, किन्तु एक दूसरे से भिन्न, रासायनिक कण है और सभवत प्रोटीन (Protein) के बने है। इन प्रोटीन कणो से ही शरीर निर्माण होता है और शरीर मे उसके क्रिया व्यापार को चलाने वाले अन्य रासायनिक रस Enzymes, Co-enzymes, Hormones बनते हैं। ये रासायनिक द्रव्य भिन्न भिन्न जेंज् से निर्मित होने के कारण विभिन्न प्रकृतियों के होते है, किन्तु इन जेज् का यह सृजन एकदम परिवृत्ति से स्वतत्र नही होता, क्योंकि जैसा कि हम पिछले निबंध में देख आए है, ये परिवृति से ही भोजन प्राप्त कर शारीरिक कोषों और इन रसों का सृजन करते है। तो भी इनका यह निर्माण बहुत कुछ अप्रभावित ही रहता है। जेंज् और इन शारीरिक रसों के संबंध-ज्ञान से यद्यपि जीव-रसायनों में नवीन क्षेत्रों का उद्घाटन संभव हुआ है, किन्तु स्वय इनके बारे मे या तो कुछ भी नहीं जाना जा सका या इतना कम ज्ञान हो सका है कि उससे प्रायः कुछ भी अनुमान करना असंभव है। बीडल इत्यादि विद्वानो के विचार में, जेज् के सामान्य एलैल (Allel) एंज़ाइम्ज् का निर्माण करते है, जिससे कि विभिन्न शारीरिक क्रिया-व्यापारों का संचालन होता है। जब कोई जेन परिवर्तित या गौण हो जाता है तो उससे संबद्ध ऐंज़ाइम का भी निर्माण नहीं हो पाता और इससे शरीर का संबद्ध क्रिया-व्यापार भी बंद हो जाता है। वह आगे कहता है कि—एक जेन एक ही ऐंज़ाइम का निर्माण करता है जो शरीर में निश्चित और विशिष्ट रासायनिक क्रियाओं-प्रति-क्रियाओ को जन्म देता है, किन्तु अभी तक इसे प्रमाणित नही किया जा सका है। यद्यपि आगे कार्य करने के लिए इसे एक संभावना के रूप में स्वीकार किया जा सकता है किन्तु इसे अन्तिम समझने के लिए किसी ठोस प्रमाण की अनिवार्य आवश्यकता है। फिर अभी तक तो यह भी निश्चित नहीं सका कि विशिष्ट जेन और विशिष्ट ऐंज़ाइम में क्या संबन्ध है।

जैसा कि हम पिछले निबंध में भी देख आए है, जेन आणविक आकार का एक रासायनिक द्रव्य है जो कि जर्म कोष के केन्द्र में क्रोमोंसोम्ज् (Chromosoms) के डिब्बों में बन्द होता है। इस प्रकार का एक रासायनिक कण कैसे शरीर में के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े परिवर्तनों का निर्धारण करता है, यह आश्चर्य की बात है। गोल्डश्मिट (Goldschmidt) के अनुसार जेन की रासायनिक क्रिया कोषों के भीतरी प्रदेशों से ही प्रारंभ होती है,

फा० २१

जो कि बाद में शरीर में की अन्य क्रियाओं में अनूदित हो जाती है। जेज़ की ये क्रियाएं कोषों के भीतर से क्रोमोसोम्ज़ तथा साइटोप्लास्म (Cytoplasm) के संघर्षण से कैसे प्रारंभ होती है, इस विषय में अभी कुछ भी ज्ञात नही हो सकता। सब जेन एक जैसे ही क्रिया शील होते है या कुछ कम और कुछ अधिक क्रियाशील होते है, तथा क्या ये जेन निरन्तर क्रियाशील रहते हैं या विभिन्न और नियत समयों पर क्रिया शील होते है और क्या जेन-क्रिया कोषों के और इस प्रकार जेज़ के भी द्विधा विभाजन की अतिरिक्त उपज (Byproduct) मात्र है या कुछ और ? इस संबंध मे अभी तक वैज्ञानिक प्राय. अनिश्चय मे ही है। ऐसी अवस्था मे हम कम से कम जेंज़ के बारे में कुछ भी निश्चय पूर्वक नही कह सकते।

तो भी इस में प्राय: सभी सहमत हैं, और यह प्रयोग-सिद्ध भी है कि जेज़ शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओ का निर्धारण करते है। और ये रासायनिक प्रक्रियाएं न केवल प्राणी की आकृति और मुद्रा को ही बदल सकती है प्रत्युत भोजन इत्यादि के समीकरण, परिवृत्ति के दबाव मे उसे सहने के लिए शक्ति संचय, मस्तिष्क ततुओं की दुर्बलता या सबलता तथा वासना की प्रकृति और शक्ति का भी निर्धारण करती है। इस प्रकार हम यह विश्वास करते है कि जेंज़ और ऐंज़ाइम्ज़ का निकट सम्बन्ध है। जेन किस प्रकार रासायनिक द्रव्यो को जन्म देते और प्रेरित करते है, इस विषय में निश्चित ज्ञान न होने पर भी सामान्यत: दो संभावनाएँ हो सकती हैं—(१) या तो जेन शान्त जर्म-केन्द्र (Nucleus) मे क्रियाशील होते है अथवा (२) कोष विभाजन के समय साइटोप्लास्म (Cytoplasm) से क्रोमोसोम्ज़ का सीधा सम्पर्क होने पर ये रसायनिक रसों का सृजन करते है। सभवत: जेन के लिए ये दोनों संभावनाए सत्य है—वह दोनो ही अवस्थाओं में क्रियाशील होता है। प्रथम को जहाँ हम रज कोष (egg cell) के सन्तति पर प्रभाव के रूप में देख सकते है वहाँ दूसरे को वपन (Fertilization) के पश्चात् प्राय: प्रत्येक रासायनिक क्रिया मे देख सकते हैं। संभवत: वपन से पूर्व भी रज कोष में जो निर्णायक शक्ति उसके जेज की रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण उत्पन्न हो गई होती है उसमे कोष-विभाजन से तो संभवत: साइटोप्लास्म और प्रोटाप्लास्म का संपर्क सम्भव नही होता किन्तु तो भी उसके केन्द्र (Nucleus) में विशेष विस्फोट से यह संपर्क संभव होता है अवश्य, जिससे कि रासायनिक प्रक्रिया संभव होती है। इस प्रकार जेन व्यापार के दो भिन्न प्रकार होने पर भी उनमें मूलत: कोई भिन्नता नहीं है।

जेन-प्रक्रिया या व्यापार को कुछ और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम उनका कुछ इस प्रकार से भी वर्णन कर सकते है—जेन स्वय ही उन रासायनिक प्रतिक्रियाओं को जन्म देते हैं या नही जिन्हे हम ऐंज़ाइम सिस्टम से संबद्ध मानते हैं, इस बारे मे निश्चित न होने पर भी यह निश्चित है कि उनके व्यापार निर्णायक रूप से एकदम एक विशेष रसायनिक क्रिया (catalyses) मे परिणत हो जाते है। इन रासायनिक व्यापारो को क्रियान्वित करने वाले ऐंज़इम्ज़ बहुत अधिक विशिष्ट (specialised) प्रकृतियों के होत है, इसलिए वे तदनुकूल स्थिति मे ही क्रियाशील हो सकते है। इसके लिए न केवल वह पदार्थ ही उपस्थित होना चाहिए जिस पर वे क्रियाशील हों प्रत्युत तदनुकूल विशेष तापमान भी होना चाहिए जिसमें वे अपनी रासायनिक क्रियाओं को क्रियान्वित कर सकें। इसी प्रकार उनकी अन्य भी ऐसी अनेक आवश्यकताएं है जिनका पूरा होना उनकी रासानिक प्रक्रियाओं के क्रियान्वित होंने के लिए आवश्यक हैं। अनेक ऐंज़इम्ज़ को तो कुछ अन्य सहायक रासायनिक रसों की भी आवश्यकता होती है जिन्हें (Co Enzymes) या सहायक ऐंज़ाइम भी कहते है। जब ये सम्पूर्ण शर्तें पूरी हो जाती हैं तो ऐंज़इम अपने उस व्यापार को क्रियान्वित करते है जो कि रज ♀ में वीर्य ♀ के वपन के पश्चात् संभवतः सदैव निष्क्रिय अवस्था में विद्यमान रहता है और अपनी उन शक्तियों और क्रियाओं के क्रियान्वित होने के लिए उपयुक्त परिस्थिति और अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है। इसी को हम जेन का क्रियाशील होना कहते है। किन्तु यदि जेनिक क्रिया वपन से पूर्व भी प्रारंभ हो सकती है तो इसमें केवल माता के जेन ही उत्तरदायी होते हैं और इसमें शिशु में उत्पन्न हुए प्रभाव माता के स्वतंत्र जेंज़ के प्रभाव ही होते है।

इस प्रकार वपन के पूर्व ही माता के जेन किसी अंग–निर्माण पर अथवा किसी अन्य पहलू पर अपना प्रभाव डाल सकते है या नहीं, यह संशयास्पद होने पर भी आज प्रायः यह सर्व सम्मत है यद्यपि इसके पक्ष में पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं किन्तु जो कुछ भी प्रमाण उपलब्ध है उनसे यह एक सीमा तक प्रमाणित हो चुका है। सिल्क के कीड़े में गर्दन का रंग इसी प्रकार का माता से प्राप्त गुण है, इसी प्रकार सांप इत्यादि में लिपटनेअथवा कुडील मे मुड़ने की दिशा माता से प्राप्त गुण है।

कौन सा जेन किस ऐंज़ाइम का निर्माण करता है यह सीधे जेन और ऐंज़ाइम पर प्रयोग से ज्ञात न होने पर भी परिवर्तित जेंज़ का और तदनुसार परिवर्तित ऐंज़ाइम का अध्ययन कर वैज्ञानिक कुछ दूर तक तो यह जान सके ही है कि किस जेन का किस ऐंज़ाइम से सम्बन्ध है। कभी तो ये

परिवर्तित जेन सम्पूर्ण जेन-समवाय मे इतने विदेशी हो उठते हैं कि वे किसी रासायनिक द्रव्य और अन्य किसी प्रकार के क्रिया-व्यपार को जन्म ही नहीं दे सकते और इसका प्राणी पर अनिवार्य और गभीर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए न्यूरोस्पोरा क्रासा (Nurospora Crassa) थियाजोल पिरिमिडाइन (Thiazole Pyrimidine से अपना निजी थियामिन (Thiamin एक विशेष सहायक ऐंज़ाइम अथवा विटामिन बी) बनाता है, किन्तु एक ऐसा परिवर्तित वंश भी उत्पन्न किया गया जो थियामिन नही बना सकता था। जीव रसायण विज्ञान के अनुसार थियामिन के निर्माण के लिए एक विशेष ऐंजाइम (Thiazole Pyrmidine) की आवश्यकता है और इस विशेष जाति मे थियामिन न बन सकने या थियाजोल की अनुपस्थिति से सहज ही यह अनूमान किया जा सकता है कि परिवर्तित जेन का इस ऐंजाइम की उपस्थिति अनुपस्थिति से सीधा सबध है। (Morgan) इस प्रकार आज इस तथ्य में किसी को सदेह नही है कि जेज् और ऐंज़ाइम्ज में सीधा संबध है, किन्तु वैज्ञानिक इस संबध की प्रकृति से पूर्णतः अभिज्ञ नही है। बहुत से वैज्ञानिक अब यह विश्वास करने लगे है कि जेन प्रोटीन के विशेष आकारों के अणु (Molecules) है जो कि विभिन्न ऐंज़ाम्ज् का स्वयं निर्माण करते है। जो भी हो, ऐंजाइम्ज की उपस्थिति –अनुपस्थिति तथा उनकी विशेश प्रकृति जेन निर्धारित करते है। इसलिए जेन मे परिवर्तन ऐंजाइम की उत्पत्ति को भी प्रभावित कर सकता है और इस प्रकार शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं को बन्द कर देता है।

सभवतः परिवर्तित जेन दो प्रकार से रासायनिक क्रियाओं को प्रभावित करते है यदि हम इनकी क्रियाओं से उत्पन्न पदार्थों की प्रकृति का विचार न कर केवल उत्पन्न पदार्थ की रासायनिक क्रिया पर ही ध्यान केन्द्रित करें तो। इसमे एक तो यह संभावना की जा सकती है कि जेन से निर्धारित रासायनिक क्रिया व्यापार केवल उन कोषों तक केन्द्रित है जिनमें यह जेन बन्द होते है, इसे हम जेन की आत्म-केन्द्रित प्रक्रिया भी कह सकते है, और जेन-क्रिया व्यापार का दूसरा प्रकार उन द्रव्यों या रसों की उत्पत्ति हो सकता है जो केन्द्र से फैल कर शरीर के सुदूर प्रदेशों तक में रासायनिक क्रियाओं को जन्म देते हैं। जहाँ तक प्रथम सभावना का सम्बन्ध है, यह प्रमाणित करना अत्यन्त कठिन है कि जेन कोष के भीतर कैसे कार्य करते है, क्योंकि जेन को न किसी ने देखा है और न उस पर कोई प्रयोग ही किया जा सका है; इसलिए हमारे पास केवल एक ही रास्ता है जिससे हम जेन के क्रिया-व्यापारो को जान सकते है और वह है उन विचित्र और असामान्य व्यक्तियों

का अध्ययन जो या तो विशृंखलित रूप से अकेले दुकेले पाये जाते है अथवा जो किसी वश शृखला के रूप मे देख जा सकते हैं। इस ओर गोल्डश्मिट, बीडल और डोब्जहेस्की तथा मोर्गन और इन इत्यादि ने अपने प्रयोगों से रास्ता साफ कर दिया है। जैसे ड्रोसोफिला का वपित रज-कोष (Fertilized Egg cell) मादा बच्चे के रूप मे XX क्रोमोसोम्ज के साथ बढ़ने लगता हैं, कभी कभी अचानक ही एक X क्रोमोसोम वर्ग कोष-विभाजन के समय परिवर्तित हो जाता है और नर क्रोमोसोम (y chromosome) के रूप में विकाम करने लगता है। इस प्रकार ऐसा व्यक्ति उभयलिंगी हो जाता हैं। ये परिवर्तमान जेन या क्रोमोसोम्म अन्य जेंज़ या क्रोमोसोज़ से सर्वथा स्वतन्त्र अपनी अभिव्यक्ति करते है, फिर चाहे ये कितने भी थोड़े क्यों न हों। इन अवस्थाओं में परिवर्तित जेंज़ अनिवार्य रूप से कोष के भीतर ही क्रियाशील होते होंगें जिनमे कि वे स्थित हैं। यह भी कहा जा सकता है कि जेंज के ये प्रभाव ऐसे हैं जो केवल कोष-विभाजन से ही क्रियान्वित होते है। इस प्रकार ये कोषस्थ (Intracellular) क्रियायों के परिणाम न होकर कोष-बाह्य क्रिया व्यापारों के परिणाम होते है, जैसा कि ऐसे व्यक्तियों के पंखो पर उत्पन्न वर्ण-भिन्नता और पुरुष लिंग की उत्पत्ति से भी स्पष्ट है। इस प्रकार ऐसे क्रिया व्यापार, जो जेंज़ के शरीर पर प्रभाव और उसके विकास से सम्बन्ध रखते है कोषस्थ नहीं हो सकते।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण विभिन्न वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों से प्रस्तुत किये है, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि जेंज़ से नियंत्रित क्रिया-व्यापार गर्भस्थ शिशु (Embroy) के विभिन्न किन्तु निश्चित अंगों में निश्चित समयों पर क्रियान्वित होते हैं और क्रमशः अन्य अंगों पर भी प्रभाव डालते हैं। हम्बर्जर Humburger ने ट्रिटुरुस—क्रिस्टाटुस (Triturus cristatus) टि. टेन्याटुस (T. Taniatus) और ट्रिटुरुस पामाटुस (T. Palmatus) का मिलन करवाया और परिणाम में देखा कि गर्भस्थ शिशु बिलकुल उत्तरावस्था में ही एक दूसरे से कुछ भिन्न होने प्रारम्भ होते थे, पूर्वावस्थाओं में वे माता के रज-जेंज़ से ही निर्धारित होते थे। (Goldschmidt) इससे स्पष्ट हैं कि गर्भस्थ शिशु में आयु की प्रारम्भिक और कुछ बाद की अवस्था में भी केवल माता के जेन केन्द्र (Egg Nucleus) में के जेंज ही एक मात्र नियामक होते हैं। इसी प्रकार गोल्डश्मिट ने उभयलिंगियों पर अपने प्रयोगों से देखा कि लाइमेस्ट्रिया (Limestria) में नरत्व और स्त्रीत्व का निर्धारण तदीय जेंज की विशेष गति (Velocity)

से निर्णीत होता हैं । जेंज् के ये गति-क्रम (Velocity) इस प्रकार अपना क्रिया-व्यापार क्रियान्वित करते है और इस प्रकार अपने प्रभाव को अन्तिम रूप से व्यापारित करने के काल-बिन्दु निश्चित करते है कि इनमे से कोई एक आगे बढ़कर दूसरे पर विजयी हो जाता हैं। क्योंकि कृमियों मे उभयलिंगिता की यह उत्पत्ति स्वतः उत्पन्न प्रतीत होती है इससे यह कल्पना की जा सकती हैं कि लिंग-निर्धारण की क्रिया प्रत्येक कोष में होती है जिससे कि तदीय प्रकृति के और तदीय आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अन्य रासायनिक और शारीरिक परिवर्तन भी उत्पन्न होते है । इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ये कोषस्थ लिंग-निर्णायक पदार्थ (× – ५ जेन) इन हार्मंज के किसी न किसी प्रकार समान रासायनिक गुण के ही होंगे । इनमे अन्तर केवल यही है कि एक सम्पूर्ण शरीर के कोष मे विस्तृत होते है और दूसरे अपने निश्चित कोषों में केन्द्रित रहते है ।

इस प्रकार के प्रमाणों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है जिन में जेनिक क्रिया और उनसे प्रेरित हार्मज का पारस्परिक सबध स्पष्ट होता जा रहा है । ड्रोसोफिला की अनेक जातियो मे ऐसे उभय-लिंगी व्यक्ति स्पष्ट देखे जा सकते है जिनकी काम-ग्रंथिया (gonads) यदि अंडकोष हों तो वे सदैव गहरे लाल रंग के होते है और यदि ओवरी (ovary) हों तो हल्के रंग के होते है । इसी प्रकार, यदि ड्रोसोफिला नर (अंडकोष) हो तो उसकी आँखों मे भी गहरे लाल रग के धब्बे होते हैं जबकि मादा (ओवरी) होने पर ये धब्बे नहीं होते । इसका कारण यह हैं कि ओवरी के रस लाल रंग के जेन की अभिव्यक्ति को दबाये रहते है, अथवा और भी ठीक शब्दों में, ओवरी में उपस्थित जेन इस प्रकार का हार्मन बनाता है जोकि आंखों मे लाल रग उत्पन्न करने वाले जेन की अभिव्यक्ति को रोक देता है ।

जेंज् का स्थिति-परिवर्तन और क्रोमोसोम्ज् का रुख-परिवर्तन भी प्राणी पर बड़े गंभीर प्रभाव छोड़ते है जिनकी व्याख्या जेनेटिक्स के पुराने तर्कों के साथ नहीं हो सकती । क्योंकि इन परिवर्तनों में केवल क्रम ही परिवर्तित होता है कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता । इससे जिन व्यक्तियों के शरीर में इन परिवर्तनों से प्रेरित परिवर्तन हुआ हो उनमें जेन वही रहते हैं जो उनके पूर्वजों मे थे । यद्यपि कभी कभी इस प्रकार के स्थिति-परिवर्तनों से कोई विशेष अन्तर नहीं भी दिखाई पड़ता किन्तु अनेक बार काफी गंभीर

परिवर्तन भी देखे जाते है। जेंज् इस प्रकार अपनी स्थिति-परिवर्तन से शरीर पर जो प्रभाव डालते हैं वह पुन· जेंज और हार्मंज के पारस्परिक संबंध को प्रभावित करता है।

इसी प्रकार ड्रोसोफिला मे चक्षु-रंग का प्रधान जेन (अ अ) गौण (अ अ) हो जाने पर रंग में परिवर्तन का कारण होता हैं, इससे आँखो का रंग काले के बजाय लाल हो जाता है और (अंड कोष) का रग गहरे लाल से सफेद हो जाता है। गास्पेरी ने दो भिन्न जाति के ड्रोसोफिला के (अंड कोषों) को एक दूसरे मे मिलाकर देखा। जब अ अ अडकोष अ अ अडकोष वाले व्यक्ति में स्थानान्तरित किया गया तो उसकी आखों का रग काला हो गया। चक्षु-रंग को प्रभावित करने वाले ये जेन अन्यभी अनेक स्थानों पर इसी प्रकार प्रभाव डालते है। इनसे कैटरपिल्लर की त्वचा पीली हो जाती है, ओप्टीक स्नायुओ (Optic Nerves) के कोष-गुच्छो का रंग भूरे से गहरा लाल हो जाता है तथा वृद्धि की गति (Rate of Development) और सशक्ता का स्तर गिर जाता है। इससे स्पष्ट है कि जेन शारीरिक वृद्धि या विकास मे किस प्रकार हार्मंज् के द्वारा क्रमशः निर्णायक होते है। जैसा कि गॉस्पेरी ने दिखाया हैं अ अ जेन वाले व्यक्ति के अंडकोष अ अ व्यक्ति में स्थानान्तरित करने पर आंखें काली हो जाती है, जब कि अ अ (Dominant) के अअ (Recessive) मे स्थानान्तरित करने पर काली ही रहती है—उनमे कोई परिवर्तन नही आता। इस प्रकार प्रधान (dominant) जेन वाले अँडकोष के रग –जेन ऐसे हार्मज् का निर्माण करते हैं जो कि सम्पूर्ण शरीर पर अपना प्रभाव छोड़ते है केवल आँखो और पंखो के रगो को प्रभावित करने तक सीमित नही रहते। और ये केवल अडकोष ही नही है जो इस प्रकार के हार्मज् बनाते है प्रत्युत अन्य भी कितनी ग्रथियाँ हैं जो इसी प्रकार के रस बनाती हैं। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि ये हार्मन सबधी प्रभाव कोष (Egg cell) पर भी उसके वपन (Fertilization) से पूर्व प्र ाव शाली हो सकते है। यदि अ अ मादा मे अ अ जेन स्थानान्तरित कर दिया जाए तो उसके शुद्ध अ अ (Recessive) जेन॰ वाले अडकोष-युक्त बच्चो की आँखे भी बहुत शीघ्र लाल धब्बो से युक्त हो सकती हैं जो कि अ अ (प्रधान जेन) मे ही हो सकता है। गोल्डश्मिट के अनुसार अ अ अडकोष का हार्मन ओवरी मे निहित रज-कण के साइटोप्लास्य (Cytoplasm) में प्रविष्ट हो कर गर्भस्थशु (Embroy) पर प्रभाव डालता है।

सभवत. हार्मंज़ की जेंज़ पर आश्रितता और उनका शरीर पर प्रभाव उससे भी अधिक प्रभावशाली होते है जितने वे स्पष्टत. प्रतीत होते है। ये प्रभाव मानसिक व्यापार-प्रक्रिया, प्रवृत्ति (Instinct इत्यादि) और बौद्धिक योग्यता (सीखने की योग्यता, learning capacity) जैसी अधिक उलझन पूर्ण समस्याओ को समझने में भी बहुत अधिक सहायक होते है। इसका हम एक उदाहरण देगे.—फेनाइल पाइरूविक एसिड (Phenyl Pyruvic Acid) मे ऑक्सीजन के मिलाने और हाइड्रोजन परमाणुओं के अपसारण की क्रिया एक विशेष ऐंजाइम करता है। जिस व्यक्ति में इस ऐंजाइम के उत्पादक जेन अनुपस्थित रहते हैं उनमें यह ऐंजाइम भी उत्पन्न नहीं होता और इस प्रकार फेनाइल पाइर्यूविक एसिड की अन्तर्वर्तिनी क्रिया उन व्यक्तियों मे नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि इस अभाव से युक्त व्यक्तियो मे इस विशेष एसिड की अधिकता हो जाती है जिससे उस व्यक्ति पर घातक प्रभाव होता है और वह दुर्बल हृदय का हो जाता है। इस उदाहरण से स्पष्ट देखा जा सकता है कि जेंज़, ऐंजाइम्ज़ और शरीर की रासायनिक क्रियाओ मे कितना घनिष्ट संबंध है।(Morgan) सामान्यत: मनुष्य मे फेनाइल पाइरूविक तेजाव को ऐंज़ाइम्ज हाइड्रोजन-परमाणु-रहित करके ऑक्सीजन और पानी बना सकते है, इससे शरीर का सामान्य व्यापार जारी रहता है, किन्तु ऐसा न कर सकने वाले व्यक्तियों के मन पर इसका घातक प्रभाव होता है।

इस प्रकार के रोगी परिवारो का अध्ययन बताता है कि यह बीमारी उत्तराधिकार (Heredity) से संबंध रखती है। जिनमें इन ऐंजाइम्ज़ के उत्पादक जेन गौण (Recessive) रहते है उनमे यह रोग अनिवार्य रूप से उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि अभी तक यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हो सका है कि कैसे इस रासायनिक क्रिया की कमी स्नायु तंतुओं को भी दुर्बल कर देती है और इस प्रकार मन को निर्बल करती है किन्तु हम यह जानते है कि फेनाइल-पाइर्यूविक तेज़ाब एसेटाइल्कुलाइन (Acetyl choline:—एक विशेष रासायनिक द्रव्य जो कि स्नायु कोषों में आवेग या उकसाहट के समय उत्पन्न हो जाता है) रस के प्रवाह को रोक देता है और संभवत: इस प्रकार स्नायुओं की क्रिया-शक्ति को घटा देता है। इसी प्रकार थाइराइड की कमी या अधिकता और इंसुलिन (Insulin) की अधिकता सीखने की शक्ति और बुद्धिमत्ता को कम कर देती है। यद्यपि खोई हुई योग्यता को इन हार्मंज़ के इंजेक्शन लौटा नही सकते और इस प्रकार के कितने ही प्रयोग असफल हो चुके हैं किन्तु इससे कोई सिद्धान्तत: अन्तर नही पड़ता। उदाहरणत:, परिपक्व आयु के चूहों में इन ग्रंथियों के स्वल्पापसारण या हार्मंज़ के अभिवर्धन

से कोई अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु बचपन मे इस प्रकार का अपसारण काफी गभीर और घातक प्रभाव डालता है। वास्तव में थाइराइड के किसी भी आयु मे अपसारित करने पर भी उनके हार्मन एक दम बन्द नही हो जाते, इससे यदि पिच्यूइटरी के अपसारण द्वारा अथवा अन्य रासायनिक द्रव्यों से इस ग्रंथि की क्रिया को सर्वथा बन्द कर दिया जाए तो इसका अवश्यभावी प्रभाव होगा—और यह प्रयोग सिद्ध भी है। Morgan

इसी प्रकार उत्तराधिकार या वंशानुक्रम (Heredity) का प्रभाव आवेगात्मक निर्बलता (Schizophranic) और स्मृति भ्रश (Mnemic Deprissive) इत्यादि मानसिक रोगों मे भी देखा जा सकता है। जैसा कि सहज ही अनुमान किया जा सकता है, इस प्रकार के मानसिक पहलुओं का जेनिक अध्ययन बहुत कठिन कार्य है। फिर इस प्रकार के मानसिक दुर्बलता जनित आचरणो को परिवृत्ति का प्रभाव भी कहा जा सकता है, यद्यपि यह एक दम व्यर्थ है, क्योकि परिवृत्ति का प्रभाव जब एक विशेष परिवार के सभी सदस्यों के अन्य आचरणों या शारीरिक रोगों में समान दृष्टिगोचर नही होता, इसी एक विशेष पहलू में वह समान क्यों हो। इस लिए, और अन्य अनेक प्रमाणों से भी, यही ठीक प्रतीत होता है कि इस प्रकार के रोग वंशानुक्रम में ही निहित होते हैं। इसका प्रमाण यह भी है कि सहजात (Fraternal) शिशु युगलों में इस पहलू में उतनी ही समता होती है जितनी युग्म बच्चों में और अन्य पृथक् उत्पन्न भाइयों में, जो कि पुनः इस बात को प्रमाणित करता है कि यह रोग माता पिता में होने पर ही उनकी सन्तानों को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, इन भाइयों में तथा युग्म (Twins) तथा सहोत्पन्न (Fraternal) भाइयों में एक ही परिवृत्ति अथवा भिन्न परिवृत्तियों में भी रखने पर यह रोग एक निश्चित समय पर और निश्चित मात्रा में ही होता है।

यद्यपि इस समस्या का अभी तक कोई समाधान नहीं हो सका है कि इस रोग का शरीर-वैज्ञानिक आधार क्या है, तो भी इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों के तथा इससे रहित व्यक्तियों के हार्मन सिस्टम में कुछ अन्तर देखा जा सकता है। इस रोग के रोगी में महत्वपूर्ण कुछ कमियां ये हैं—ऑक्सीजन की खपत को क्रियान्वित करने वाले आधार भूत रासायनिक परिवर्तन (Basic Metabolic rates of oxygen consumption) बहुत कम हो जाते है, (२) ऐसे व्यक्ति व्यायाम के पश्चात् लैक्टिक रस (Lactic Acid)

को खपाने मे सफल नही होते जिससे रक्त में इस रस की अधिकता हो जाती है, इससे वह व्यक्ति अपने किसी आवेग को सभाल नहीं पाते। (३) वे थाइराइड ग्रथि के विशेष हार्मन थाइरोक्साइन तथा इंसुलिन की बड़ी बड़ी खुराको से प्रभावित नही होते। और (४) वे अपने रासायनिक शरीर को सामान्य रूप से कार्य करते रखने मे अपेक्षाकृत अधिक अस्थिरता और विविधता का प्रदर्शन करते है— दूसरे शब्दो मे, वे रासायनिक क्रियाओं मे तीव्रता आने पर उन्हें सामान्य स्तर पर लाने मे अन्य व्यक्तियो से अधिक अशक्त प्रमाणित होते है। (Morgan)

ये कुछ शारीरिक गुण या दोष है जिन्हें उपयुक्त आधारों पर जेनिक कहा जा सकता है, किन्तु इस का अर्थ यह नही कि केवल यही अवस्थाएं जेन सिस्टम की उत्पित्त है अथवा ऐसी सभी अवस्थाएं जेन सिस्टम की उपज होती है, प्रत्युत् यह कि हम इनसे शरीर और मन तथा मस्तिष्क के निर्माण मे जेज् का और वं शानुक्रम(Heredity)का कुछ महत्व समझ सकते है और यह जान सकते है कि जेन किस प्रकार शरीर और मन के आधार भूत अथवा मौलिक द्रव्य कहें जा सकते है। अनेक बार दो भाइयो में आकृतिगत समता इतनी अधिक पाइ जाती है कि उन्हे एक दूसरे के स्थान पर भूल से समझ लिया जाता है। कभी-कभी माता तक इसमे भूल कर जाती है। युग्म बच्चों में तो ऐसा प्रायः होता ही है। इस प्रकार की बाह्य समता रखने वाले बच्चों या भाइयों मे मानसिक समताकी भी सभावना की जा सकती है। युग्म भाइयो मे तो यह प्राय· होता ही है (बाह्य समता भी प्रायः उन मे पूर्ण होती है) फिर चाहे उन्हें कितनी भी भिन्न परिवृत्तियों में क्यो न रखा जाय। यह होना स्वाभाविक भी है, क्योकि मानसिकता, जैसा कि हम पहले दो निबंधों में भी देख आये है, मस्तिष्क के विशेष प्रबंध, स्नायुओं के विशेष संस्थान ओर हार्मंज के विशेष अनुपात पर बहुत निर्भर करती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिनका शरीर-यंत्र पूर्णत. समान होगा उनकी मानसिक योग्यता (Mental capacity) भी ठीक एक ही सी होगी।

किन्तु अनेक लेखक इस समता और वंशानुक्रम-प्राप्ति (Heritage) को बहुत गलत रूप मे समझते है, वे ससझते है संगीत, काव्य और शास्त्र-ज्ञान मे निपुणता इत्यादि भी ज्यो की त्यो वशानुक्रम में प्राप्त की जा सकती है—यह शायद गलत है, अथवा कमसे कम इसका कोई भी प्रयोग-सिद्ध आधार नही है। एक 'संगीतज्ञ' वंशका बच्चा वंशानुक्रम में जो प्राप्त करेगा, वह है संगीतज्ञ होने की शारीरिक योग्यता,—जैसे उसका

कण्ठ-स्वर मधुर होगा (जैसाकि हम जानते है, कण्ठ-स्वर प्राय: ही बच्चे का माता-पिता मे से किसी एक से, जिस लिंगका वह हो, मिलता ही होता है, कभी-कभी तो पहचानना तक कठिन हो जाता है कि बोलने वाली माता है या लड़की), उसका आवेग सस्थान भी इस प्रकार का होगा कि वह गाना अधिक पसंद करेगा—और यह सब केवल इसी रूप मे कि उस की शरीर-रचना ही इस प्रकार की होगी। जैसा कि हम पीछे हार्मंज के प्रभाव को व्यक्तित्व पर देखते हुए शेली, कीट्स और विल्सन के व्यक्तित्त्वो का उस आधार पर वर्गीकरण कर आए है उसी आधार पर प्रत्येक व्यक्तित्व का और आचरण का वर्गीकरण वंशानुक्रम के आधार पर हो सकता है, क्यों-कि बच्चा माता-पिता से यही प्राप्त करता है। इस प्रकार व्यक्ति वंशानु-क्रम में केवल विशेष शारीरिक परिस्थितियाँ प्राप्त करता है जो परिवृत्ति के प्रभाव में किसी दिशा विशेष की ओर ढलती या विकसित होती है। जैसे आईस्टीन के लिए; संभव था कि वह एक महान गणितज्ञ और वैज्ञानिक न बन कर वेदान्ती बनता, यह केवल उसकी परिवृत्तिपर निर्भर करता है कि वह वेदान्ती नहीं बना, किन्तु वह कवि कभी नहीं बन सकता था, फिर चाहे कोई भी परिवृत्ति उसको क्यों न प्राप्त होती। यौवन में गोनाड्ज़ के स्राव में तीव्रता होने पर और धमनियों मे रस-स्राव तीव्र होने पर किसी रमणी के होंठ प्रिय लगने स्वाभाविक और संभावित है और उस अवस्था में यह आशा की जासकती है कि आईस्टीन भी कविता लिख डालता, किन्तु वह केवल अस्थायी वृत्तिही हो सकती थी। इस का अर्थ यह नही कि प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसी निश्चित प्रवृत्ति के साथ उत्पन्न होता है जो उसमें प्रारभ से ही निश्चित और स्पष्ट होती है। कई एक व्यक्ति तो बिल्कुल घपला भी होते हैं —इतने अधिक कि वे कवि और वैज्ञानिक दोनों ओर की संभावनाए रखते हैं, किन्तु संभवतः उस अवस्था में उन में दोनों संभावनाए उतनी प्रखर नही हो सकतीं। यह भी आत्यन्तिक नहीं है, कुछ व्यक्ति अनेक दिशाओं मे सफल और महत् कार्य कर डालते हैं। जैसे अनेक व्यक्ति इतिहास मे प्राप्त किए जा सकते है जो कवि, उपन्यासकार, गणितज्ञ और वैज्ञानिक साथ-साथ ही थे। न्यूटन कवि और वैज्ञानिक दोनोंही था, यद्यपि सफल कवि उसे नहीं कहा जा सकता। ऐसे व्यक्ति जैसी परिवृत्ति प्राप्त कर लेते है उसी ओर अधिक सफल हो जाते हैं जब कि दूसरीं ओर कम सफल रहते हैं। इस प्रकार व्यक्ति एक ऐसा चित्र-पट होता हैं जिस पर कुछ विशेष प्रकार के चित्र ही अंकित किये जा सकते हैं और अन्य किसी प्रकार का चित्र उन पर ठीक नहीं उभर सकता। किन्तु उन विशेष प्रकार के चित्रों में से कौन सा उन पर अंकित होगा, यह केवल

संयोग की बात ही हो सकती है। महात्मा गाँधी अपनी जिस विशेष योग्यता (निष्ठा और ज़िद्द) से एक महान नेता बने उसी के कारण वे एक पुजारी या भक्त भी बन सकते थे और सनकी व्यक्ति भी, यह केवल संयोग ही की बात है कि वे नेता बने। इसी प्रकार यह सब के लिए कहा जा सकता है। इस प्रकार वंशानुक्रम में प्राप्त शरीर के जेनिक निर्धारण से विकसित मानसिक योग्यता को समझना एक कठिन और उलझन-पूर्ण कार्य होने पर भी एक निश्चित और सुदृढ़ आधार पर स्थित है, यह हम इस अध्ययन से सहजही अनुमान कर सकते है।

अब हम कुछ प्रयोगों को देखेंगे और उनके कारणों पर पहुँचने का प्रयास करेंगे जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि कैसे एक अपराधी का पुत्र अपराधी और विवेकी का पुत्र विवेकी होने की संभावनाएँ अपने अन्तः शरीर में निहित ले कर उत्पन्न होता है।

मानसिक दौर्बल्य—मानसिक रोगों मे बहुत सामान्य रोग है, जिसके अनेक प्रकार हो सकते है। इनमें से कुछ परिवृत्ति के कारण जैसे अल्कोहल इत्यादि नशीली और विषैली वस्तुओं के अधिक प्रयोग से भी हो सकते हैं। किन्तु अधिकतर हमारे शारीरिक निर्माण मे निहित रहते है—जैसे थाइ-राइड ग्रंथिके अधिक बढ़ जाने से व्यक्ति में मानसिक दौर्बल्य उत्पन्न हो जाता है जो कि वंशानुक्रम में चलता है।

अब हम इसके समर्थन में कुछ प्रयोग सम्मत तथ्य उद्धृय करेंगे। गोड्डर्ड (Goddard) ने कुछ परिवारो में, जिनमे कि प्रवर्तक माता-पिता (Progenitor) दोनों ही दुर्बल हृदय व्यक्ति थे, पाया कि उनमें से ४७० बच्चे दुर्बल हृदय के और केवल ७ बच्चे सामान्य मानसिक योग्यता के थे। संभव है. ये बच्चे अगली किसी पीढी में माता के किसी अन्य स्वस्थ मानसिक स्तर के व्यक्ति के साथ विवाह के कारण उत्पन्न हुए हों। दूसरे परिवारों में, जहाँ माता पिता में केवल एक दुर्बल हृदय का व्यक्ति था और दूसरा सामान्य मानसिक योग्यता का, ११३ बच्चे दुर्बल हृदय थे और १४४ सामान्य थे।

हृदय का यह दौर्बल्य निश्चित रूप से प्राणी के व्यवहार को भी प्रभावित करता है, जो अपनी प्रकृति के आधार पर और परिवृत्ति की सापेक्षा में उसे विभिन्न दिशाओं में प्रेरित करता है। उदाहरणतः दुर्बल हृदय व्यक्ति चोर, हत्यारा और शराबी भी हो सकता है और सामाज या ईश्वर से डरकर बुरे कार्यों से बचने वाला भी, किन्तु जिनका स्नायु और अग्रिम मस्तिष्क (Fore Brain) दुर्बल होता है वे व्यक्ति अधिक आवेगात्मक

और रासायनिक प्रक्रियाओं सें सन्तुलन खो बैठने वाले होते है, और अपनी इन दुर्बलताओ से हत्या, चोरी, इत्यादि अपराधो में प्रवृत्त हो जाते है। किन्तु कोई व्यक्ति कैसे अपराध मे प्रवृत्त होगा, यह उसकी परिवृत्ति पर निर्भर करेगा। परन्तु परिवृत्ति के प्रभाव को कभी कभी आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया जाता है। किन्तु एक व्यक्ति, जिसका मानसिक निर्माण उसे दूसरो के अधिकारो पर आक्रमण करने को बाध्य करता है, वह प्रत्येक अवस्था मे वैसा ही करेगा, फिर चाहे कोई भी कानून उसे रोकने वाला क्यों न हो। शिक्षा और भय से ऐसे अपराधियों मे बहुत अन्तर तो लाया जा सकता है किन्तु अधिक प्रयास से। इस प्रकार के उपायों से तो उन्हीं को सरलता से प्रभावित किया जा सकता है जो परिवृत्ति के कारण ही अपराधी बने हो। जन्मत: अपराधी व्यक्ति परिवृत्ति से बनते नही परिवृत्ति को बनाते है। कोई व्यक्ति अपराधियों के संसर्ग मे जाता ही क्यो है ?—अन्य क्यों उस प्रकार की परिवृत्ति में नही जाता और कभी कभी फँस जाने पर भी उसमे खप नही पाता ?—यह बात कम महत्वपूर्ण नही है। एक अपराधी-जिस सुविधा से एक अपराध- पूर्ण परिवृत्ति मे पहुँच जाता है यह अपनी अन्तर्निहित अथवा शरीर-रचना मे विकसित अपराधी प्रवृत्ति के कारण ही। जेनेटिक शरीर–निर्माण न केवल व्यक्ति की अपनी परिवृत्ति चुनने की योग्यता ही होता है प्रत्युत न मिलने पर उसे बनाने के लिए बाध्य भी करता है। यह ठीक है कि एक विशेष समाज-व्यवस्था में ऐसे व्यक्तियो को अपनी परिवृत्ति बनाने और खोजने मे अधिक सुविधा रहती है और दूसरी मे कम, किन्तु यह व्यवस्था उसे अपराधी बनाने की एक मात्र उत्तरदायी नही कही जा सकती। इसका अर्थ यह नहीं कि अपराधी को कम अपराधी नही किया जा सकता या उसे बिल्कुल ठीक नही किया जा सकता, किन्तु जब तक आप उसके अन्त: शरीर को नही बदलते तबतक उसे स्वस्थहृदय (Sound Minded) नही बना सकते और इस प्रकार उसमे से अपराध-वृत्ति निर्मूल नही कर सकते।

ऐसे कुछ निश्चित कारण और प्रमाण दिये जा सकते है, जिनमे कि वंशानुक्रम में प्राप्त कमियाँ स्वभावत: ही व्यक्ति को अपराध में प्रवृत्त करती है। एक निर्दय क्रूरता और अविचार-पूर्ण हिंसावृत्ति, जो कि शिजोफ्रेनिया (Schizophrania) के कारण व्यक्ति में उत्पन्न हो जाती है, बड़ी सुविधा से उसे अपराधी बना सकती है। अस्वस्थ मानसिक-स्थिति वाला व्यक्ति (Psychopathic), जो कि स्वत: ही चिड़चिड़ा है, प्राय: ही यह समझलेता है कि समाज ने उसे बहुत सताया है और उसकी

इस अस्वस्थता का उत्तरदायित्व उसी पर है। क्योंकि वह स्वभावतः ही चिड़चिड़ा और असामाजिक होता है इससे उसे प्राय. ही इसकी पुष्टि में ठीक प्रमाण मिलते रहते है, क्योकि उसके साथी उससे बोलना तक पसन्द नही करते और न उसकी कभी सहायता ही करते हैं। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि वह समाज से बदला लेने का तर्क लेकर अपराध में प्रवृत्त हो जाता है। इपिलेप्टिक (Epilaptics) प्रायः ही हत्या इत्यादि अपराधों में फंस जाते है। वास्तव मे दुर्बल हृदय व्यक्ति थोड़ी सी प्रतिक्रिया या उकसाहट से ही इतने अधिक अवश और आवेग-पूर्ण हो उठते है कि उनके लिये अपने आपको रोक सकना कठिन हो जाता है—वे अपने पर ऐसी किसी प्रतिक्रिया को होने से रोकने मे असमर्थ हो जाते है। यदि वे इस आवेग की तीव्रता का व्यय न करले तो कभी २ यह दिनों तक उनमें बन रहता है और अन्त मे और भी अधिक स्नायविक दुर्बलता के रूप में परिणत होता है। इसलिये यदि वे कुछ विवेक रखते भी हों तो भी वे उसका उपयोग करने में असमर्थ रहते है और क्रमशः अधिक निर्बल होते जाते हैं। अनेक अपराधियों के अध्ययन से देखा गया है कि उनमें काफी संख्या दुर्बल-हृदय व्यक्तियों की ही होती है, जब कि उससे भी बड़ी संख्या उन व्यक्तियों की होती है जिनके मस्तिष्क का विकास अपनी आयु के अनुसार बहुत कम हो पाया होता है। शल के अनुसार, ऐसे ४७० व्यक्तियो का अध्ययन करने के पश्चात् पाया गया कि उनमे से केवल ३० प्रतिशत तो बिल्कुलही स्पष्ट रूप से दुर्बल हृदय व्यक्ति थे, जब कि ७० प्रतिशत व्यक्ति अविकसित बुद्धि वाले थे। यद्यपि हम निश्चित रूप से नही कह सकते कि बुद्धि से उसका अभिप्राय शरीर वैज्ञानिक बुद्धि है या सामाजिक; जो भी हो, सभवतः कम बुद्धि का अर्थ अदूरदर्शिता और कम मानसिक योग्यता (Mental capacity) ही होना चाहिये जिसका परिणाम कम से कम इस रूप मे दुर्बल हृदयता होता है कि वह अपना मानसिक सन्तुलन ठीक नही रख पाता और न आवेग (Emotion) की अवस्था में तदीय क्रिया के परिणामों को समझने में ही समर्थ होता है। वेश्याएं और अन्य अपराधी भी, जिनमें आत्म हत्या करने वाले भी सम्मिलित हैं, प्रायः ही इस प्रकार मानसिक रोगों और मानसिक दौर्बल्य के शिकार होते है। ५०० वेश्याओं के वंशानुक्रम का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि उनके परिवारों में अधिकतर व्यक्ति मानसिक अस्वास्थ्य (Psychopathy) और (Insanity) (Oligophrania) अल्कोहल-सेवन तथा आत्महत्या इत्यादि से पीड़ित रह चुके थे। युग्म लड़कों में अपराधवृत्ति का अध्ययन करते हुये

इस विचार की और भी अधिक पुष्टि हो चुकी है कि अपराध की जड़ भी बहुत कुछ मनुष्य की शरीर-रचना या जेनेटिक सिस्टम मे ही निहित है। इस प्रकार के एक अध्ययन मे पाया गया कि युग्मजों के दस युगलो में सभी युगल अपराधी थे, जबकि एक अन्य अध्ययन में युगल का केवल एक सदस्य अपराधी था। दो सहजात युगलों के अध्ययन मे दोनों ही अपराधी थे जबकि एक अन्य अध्ययन मे १५ ऐसे युगलो में प्रत्येक का केवल एक ही सदस्य अपराधी था। स्पष्टतः ही यह अपराध परिवृत्ति के महत्व की स्थापना करता है, किन्तु यह अन्तर वास्तविक न होकर केवल प्रतीयमान है, क्योकि इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि इसमे परिवृत्ति भी एक (Factor) है, यह नही कि जेनिक सिस्टम नही है। संभव है कि शेष व्यक्ति अज्ञात अपराधी हों, क्योकि ऐसे अनेक 'अच्छे' व्यक्ति देखे जा सकते है जो समाज में काफी प्रतिष्ठित है, वे वास्तव में ही समझदार भी है किन्तु फिर भी छोटी मोटी वस्तुओ की चोरी, हस्त मैथुन, गुप्तद्वेष-भावना इत्यादि मे प्रवृत्त होते है। यह केवल इसलिये कि वे 'बड़े' दोषों में अपनी प्रतिष्ठा के कारण या सामाजिक चेतना के कारण प्रवृत्त नही हो सकते। 'सामाजिक चेतना' शब्द यद्यपि यहाँ विचित्र प्रतीत होगा, क्योंकि छोटी मोटी चोरियो के लिये भी यह लागू होता है, किन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योकि छोटी चोरियों को वे बुरा समझते हुये भी उससे अपने आप को रोक नही पाते और धीरे धीरे उनके लिये अभ्यस्त हो जाते है। यह भी हो सकता है कि युगलों मे ज्ञात अपराधी व्यक्ति शरीर-रचना से अपराधी न हो कर केवल परिवृत्ति के कारण ही अपराधी बने हों और इससे दूसरे उससे बच गये हों।

इससे, और अन्य भी अनेक उदाहरणो से हम यह आसानी से समझ सकते है कि कैसे जेन-सिस्टम और शरीर-वैज्ञानिक प्रकृति अपराध-वृत्तियों को प्रेरणा दे सकती है। इसका प्रमाण हम ऐसे परिवारो में और भी स्पष्टता से प्राप्त कर सकते है जिनमे अपराध-वृत्ति एक पेशा ही बन चुकी हो। Dugdale के एक अध्ययन के अनुसार, एक परिवार मे अपराध-वृत्ति कुल-क्रमागत थी। उसने इस अपराधी परिवार पर अपना अध्ययन १८७५ में समाप्त किया। उसके पश्चात् १९१५ में इस्ट ब्रुक ने इस परिवार पर फिर से अध्ययन प्रारंभ किया। इन दो अध्ययन-कालों के अन्तर में उस परिवार में संख्या के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर नही हुआ। इसके २१०० व्यक्तियों में से ३७८ वेश्याएँ थी, १८१ अल्कोहल सेवन के अपराधी थे, १७० परोपजीवी अथवा भिखारी, १२९ सामान्य अपराधों में और १८१

घोरअपराध वृत्तियों मे व्यस्त तथा ८६ कुत्सित तथा गंदे साथियों और स्थानो पर रहने वाले थे। इस परिवार के लगभग आधे व्यक्ति दुर्बल हृदय के थे और घोर अपराधियों में आधे से कही अधिक व्यक्ति काफी दुर्बल हृदय के थे। वास्तव मे, इस्टब्रुक के अनुसार तो इन सभी व्यक्तियों में किसी न किसी सीमातक मानसिक दौर्बल्य वर्तमान था। इस परिवार की आदि स्रोत-स्त्री एक वेश्या थी और इसका पति जंगल-विभाग मे नौकर एक डच था, संभवतः ये दोनों ही मानसिक दौर्बल्य से पीडित थे। इसी प्रकार, मै व्यक्ति गत रूप से तीन भाइयो को जानता हूँ जिनके माता-पिता का पता नही था, किन्तु सभवत. माता एक मुसलमान के साथ घर से भाग गई थी और बच्चे भी उन्ही के पास चले गए थे। कुछ ही दिनो के पाश्चात् आर्य समाज को उनका पता लगने पर वे मुकदमा कर के लौटा लिये गए और एक शिक्षण-संस्था मे भेज दिए गए। तब उनमे सबसे बड़े लड़के की आयु दस वर्ष से कुछ कम थी जब कि छोटा लगभग ५ वर्ष का रहा होगा। ये तीनो भाई आकृति मे काफी भिन्न थे। इनमे पहले का मुख जब कि कुछ चौड़ा और माथा चपटा था, बिचले का मुँह तीक्ष्ण और माथा कुछ चौड़ा था, छोटे का मुँह कुछ गोल और कुछ लंबाई मे था। रूप में तो इनमे बहुत काफी अन्तर था। जब ये लड़के शिक्षण सस्था मे आये तब से मुझे उन्हें देखने का अवसर मिला है। उनमे बड़ा लड़का काफी क्रोधी (crazy), लड़ाका और चोर तथा सिगरेट पान करने वाला था, जबकि बिचला कुछ अपेक्षाकृत भला यद्यपि गुस्सैल था, छोटा तब अभी स्पष्ट नही था। बड़े लड़के को सुधारने के काफी प्रयास किये गए, किन्तु वह ठीक नही किया जा सका और लगभग ६ वर्ष तक उस शिक्षण संस्था में रह कर एक दिन भाग गया। अब वह मिलट्री मे है और अनेक बार अपने मित्रों के यहाँ से छोटी मोटी वस्तु चुरा कर ले जाता रहा है।

बिचला लड़का प्रायः प्रायः काफी भला रहा, वह कुछ सुन्दर भी था (बड़ा भी सुन्दर था)। कुछ ही दिनो मे वह पढ़ने मे भी होशयार हो गया और संगीत में सबसे आगे बढ़ गया। वह सितार तो सबसे अच्छी बजाता था। किन्तु दुर्भाग्यवश एक व्यक्ति ने उससे सेक्सुअल संबंध स्थापित कर लिये और कुछ समय बाद वह उसे वहाँ से भगा ले गया। तब लड़के की आयु १२-१३ रही होगी। इस बीच में ही उसे किसी सेठ ने अपने लड़के के रूप में स्वीकार कर लिया था। अस्तु वह कुछ देर तक उसी कामुक व्यक्ति के साथ रहा, किन्तु, संभवतः २½ वर्ष के बाद वह उसके चंगुल से छूट आया और अपने अभिभावक सेठ के पास पहुँच गया। सेठ ने उसे स्वीकार कर

लिया और अब वह कलकत्ता में उसके व्यापार का बड़ी योग्यता से सचालन कर रहा है।

तीसरा और सबसे छोटा लड़का अभी उस शिक्षण संस्था में ही है। वह लगभग अपने बड़े भाई के समान ही बना है। अब वह फौज में भर्ती होने का प्रयास कर रहा है। गत वर्ष उसे आयु छोटी होने से अस्वीकार कर दिया गया था, इस वर्ष वह भर्ती हो जाने की आशा करता है।

इन तीनो भाइयों में पूर्ण निश्चय के साथ कहा जा सकता है, कि अन्तर परिवृत्ति जन्य नहीं था। इसका प्रमाण बिचला लड़का है। बिचले लड़के के भिन्न होने का कारण यह भी हो सकता है कि उसके पिता का उस पर प्रभाव हो (हम उसके पिता के बारे में कुछ नही जानते) अथवा उस पर माता का प्रभाव न हो सका हो, वास्तव में इन लड़कों के बौद्धिक स्तर और स्वभाव में भी काफी अन्तर है। आवेग का स्तर, आचरण और व्यवहार की प्रकृति तथा बौद्धिक स्तर सभी कुछ आपस मे भिन्न थे। जब कि सबसे बड़ा और छोटा लड़का कभी भी संगीत मे अच्छे नहीं हो सके, बिचला उस संस्था भर में सबसे अच्छा रहा।

इसी प्रकार एक अन्य परिवार की दो शाखाओं को भी इसकी पुष्टि में रखा जा सकता है जिसका प्रवर्तक पिता (Progenitor) एक किन्तु माताएं भिन्न-भिन्न थीं। इस व्यक्ति (पिता) ने पहले किसी दुर्बल हृदय लड़की से अवैधानिक सभोग के द्वारा एक पुत्र उत्पन्न किया और उसके पश्चात् किसी अन्य स्वस्थ लड़की से शादी करली। परिणाम-स्वरूप दो वंशावलियाँ चल पड़ीं। इनमे से एक—दुर्बल हृदय लड़की की शृंखला—में जबकि अनेक मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति पाये जा सकते हैं वहां दूसरी की वंशावली में सभी के सभी व्यक्ति स्वस्थ है। पहली की सन्तानों में स्वस्थ व्यक्तियों के होने का कारण यह है कि आगे जिन व्यक्तियों से इन शृंखला के स्त्री पुरुष शादियाँ करते रहे उनमें से कई एक स्वस्थ भी रहे होंगे। इससे इस शृंखला के स्वस्थ व्यक्ति हमारे वंशानुक्रम-प्राप्ति के सिद्धान्त का खंडन नहीं करते।

इसी प्रकार वंशानुक्रम में विवेक शीलता और स्वस्थ हृदयता जैसे अच्छे गुण भी प्राप्त किये जा सकते है और इसका बहुत बड़ा महत्व है, किन्तु ऐसे किन्हीं भी परिक्षणों में काफी सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि अनेक बार इस प्रकार के सद्‌गुण या दुर्गुणों का कारण परिवृत्ति भी हो सकती है। जैसे, मर्फी (Murphy) के अनुसार, अमेरिका के स्कूलो मे हब्शी

और यूरोपियन लड़को की बुद्धि-परीक्षा ली गई; जिन प्रान्तों मे हब्शी विद्यार्थियों के लिये पृथक-स्कूल थे, और उन्हे यूरोपियनो से नीचा समझा जाता था उन स्कूलों के विद्यार्थी यूरोपियनों से इस परीक्षा मे बहुत पीछे थे, किन्तु जिन प्रान्तों मे हब्शियों के साथ समान व्यवहार होता था और सब जातियो के विद्यार्थी इकट्ठे ही स्कूलों मे पढ़ते थे, वहा समान सुविधाएं मिलने के कारण सभी जातियों के विद्यार्थी सामूहिक रूप से समान थे।* (व्यक्ति-भिन्नता तो सदैव रहती ही है, और वशानुक्रम का अध्ययन भी व्यक्तियों या विशेष वशो पर होता है—समूह पर नही, समूह पर उस समूह की आनुवशिक या जातीय उत्तराधिकार की योग्यता का अध्ययन होता है)। इस प्रकार, परिवृत्ति भी व्यक्ति के निर्माण मे एक कारण हो सकती है। किन्तु इससे वास्तव में हमारे उपर्युक्त कथन का खडन नही होता और न किसी प्रकार की अन्य संभावना ही उमे फीका करती है, क्योकि मर्फी के प्रयोगो का उद्देश्य जातीय स्तर को नापना है किन्तु हम व्यक्तियों का अध्ययन कर रहे है। शल के अनुसार ४१ उत्तमश्रेणी के बुद्धिमान लड़को में से केवल दो ऐसे थे जिनका कोई निकट संबंधी उत्तम श्रेणी का बुद्धिमान नहीं था। इसी प्रकार, एक अन्य प्रयोग में एक जौड़े की बुद्धि परीक्षा की गई। दोनों को आयु के आठवें मास से ही न केवल बिल्कुल पृथक् रखा गया था प्रत्युत उनकी शिक्षा-दीक्षा भी सर्वथा भिन्न हुई थी। उनमें से एक व्यापार कालिज में पढ़ी थी और इस प्रकार की कुछ नौकरियाँ भी कर चुकी थी जबकि दूसरी अध्यापिका थी। इसके बावजूद इनकी आकृति प्रायः प्रायः समान थी और बुद्धि-परीक्षा मे भी ये प्रायः प्रायः बराबर ही थी, किन्तु अपने सामान्य व्यवहार और रहन सहन मे ये एक दूसरे से काफी भिन्न थीं, जिसका कारण उनकी परिवृत्ति को कहा जा सकता है। इसी प्रकार एक अन्य जौड़े की समानता के लिये कहा गया है कि न केवल उसके दोनों व्यक्तियों की आकृति और स्वभाव मे ही पूर्ण समानता है प्रत्युत उन्होने एक ही समान पुरुषों से विवाह करवाया है, उनके एक ही जैसे कुत्ते है और एक ही जैसे वे कपड़े और भोजन पसंद करती है। इससे भी अधिक समता का एक उदाहरण हमने पिछले निबंध के प्रारंभ में दिया था। किन्तु अनेक प्रयोगों मे ऐसी स्पष्ट समता कभी कभी प्राप्त नहीं होती, और कभी कभी तो आकृति में भी कुछ अन्तर आ जाता है। यदि ध्यान से देखा जाए तो यह कोई आश्चर्य

---

* यद्यपि अनेक वैज्ञानिक इससे सहमत नही है और उनके प्रयोगो के अनुसार, इन स्कूलों में भी यूरोपियन अफ्रीकनो से अधिक कुशल हैं।

की बात नहीं है, क्योंकि किसी के समान होने का अर्थ प्रत्येक प्रक्रिया में समान होना नही है, प्रत्युत स्तर में समान होना है, कभी कभी इसमे भी स्पष्ट समानता नहीं पाई जाती, जिसका कारण संभवतः यह हो सकता है कि उन दोनों के समान जेंज ने समान शरीर का निर्माण नही किया। कभी कभी आकृति मे पूर्ण समता होने पर भी संभव है दो भाइयों का बौद्धिक स्तर बिल्कुल समान न हो। संभव है उनकी आकांक्षाएं और स्वभाव भी कुछ भिन्न हों—उस अवस्था में संभवत· इसका कारण यह होगा कि उनके ग्रंथि-जेन और मस्तिष्क-जेन समान विकसित नही कह सके। अन्य भी अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे संभव है वे दोनों युग्म-भाई न होकर केवल सहोत्पन्न भाई हों, संभव हैं वह भिन्नता जेनिकन ण होकर परिवृत्ति संबंधी हो, और सबसे अधिक, संभव है उनके मन भौतिक (physical) परिवृत्ति भिन्न होने से, भोजन भिन्न होने से, भिन्न रूप में विकसित हुए है।

जब हम किसी भी प्रकार से वंशानुक्रम में प्राप्त (Hereaitary) विशेषताओं के बारे मे कुछ कहते है तब हमें यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि यह समता या भिन्नता प्रक्रियात्मक न होकर प्रक्रिया के स्रोतों मे निहित है। जेन स्वयं न प्रक्रिया है और न प्रक्रिया के स्रोत हैं, प्रत्युत प्रक्रिया स्रोतों के उन्नायक अथवा आधार है, यह हम इस निबंध के प्रारंभ में ही देख आए है। और ये प्रक्रिया-स्रोत किस प्रकार प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं, यह हमने पहले निबंध में देखा था। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रक्रिया अनगढ पदार्थ के समान इन प्रक्रिया-स्रोतों में निहित रहती हैं, जब कि वह रूप ग्रहण परिवृत्तिकी सापेक्षता में, व्यक्ति की सुविधानुसार करती है। स्पष्ट ही परिवृत्ति भी इस प्रकार एक निर्णायक तथ्य (Factor) है, किन्तु पर्याप्त सापेक्ष। एक व्यक्ति जिसमें गोनाड्ज़ का प्रवाह अपेक्षा कृत अधिक तीव्र है, निश्चितरूप से ही अधिक कामी होगा और अपनी आवश्यकतानुसार अपनी परिवृत्ति खोजने के लिए संघर्ष करेगा, किन्तु संभव है एक व्यक्ति उतना कामी न हो और परिवृत्ति उसे अधिक कामी बना दे। इसी प्रकार प्रकृत्या एक अधिक कामी व्यक्ति भी अपनी इस प्रवृत्ति की अपेक्षा कम काम-प्रवृत्त हो सकता है। इस प्रकार हम इससे सहमत नहीं है कि परिवृत्ति व्यक्ति की एक मात्र नियामक है।

किन्तु वंशानुक्रम को केवल माता पिता तक सीमित नही रखना चाहिए, जैसा कि प्रायः किया जाता है, इसमें मेंडिलियन से छंटनी (Segregation) और पुनरुद्भव तथा जेंज़ का भिन्न क्रम में होना

इत्यादि भी बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेते है । उदाहरणार्थ आईस्टीन की महानतम प्रतिभा को सामान्य श्रखला में नहीं देखा जा सकता।

किन्तु सामान्यत. लोग, जिनमे कभी कभी लेखक भी योग दे देते है, वंशानुक्रम में प्राप्त प्रवृत्तियों के बारे में समझते है कि वे वैसी की वैसी ही प्रक्रिया रूप में प्राप्त होती है, जैसे-"एक संगीतज्ञ का पुत्र भी संगीतज्ञ ही होता है" इत्यादि। यह गलत है, संभव है एक संगीतज्ञ का पुत्र एक संगीतज्ञ न होकर कवि हो, सभव है वह केवल एक भावुक प्रेमी हो और यह भी संभव है कि वह बिल्कुल सामान्य व्यक्ति हो। यदि एक संगीतज्ञ का पुत्र भी संगीतज्ञ होता है तो वह केवल इसलिए कि उसे शैशव से ही उस परिवृत्ति में रहने का अवसर मिला होता है और शैशव से ही उसे इस ओर लगाया जाता है। उसे स्वयचुनाव का अवसर नहीं मिलता यह ठीक है कि यदि उसका वंश अपनी संगीत की योग्यता के कारण संगीतज्ञ रहा है तो उसमे भी ऐसे जेन होंगे जिनके कारण वह संगीत में दूसरों से आगे बढ़ जाएगा। किन्तु एक संगीतज्ञ या कवि का पुत्र वैज्ञानिक या दार्शनिक भी हो सकता है जिसके कारण हम पिछले निबध में और कुछ इस निबंध में भी देख आए है।

यद्यपि इस प्रकार के अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ है किन्तु एक निश्चित और वैज्ञानिक निर्णय पर पहुँचने का यही एक मात्र रास्ता है। इसलिए किसी भी मानसिक योग्यता के लिए हमें यह मानकर ही चलना चाहिए कि इसके कुछ भौतिक-रासायनिक आधार हैं और यह केवल उनकी विशेष अभिव्यक्ति मात्र है। तोते को कुछ प्रयास से मनुष्य की भाषा के शब्द बोलना सिखाया जा सकता है ओर इन शब्दों के प्रयोग की एक विशेष प्रणाली भी सिखाई जा सकती है जिसे कि निर्धारित प्रभाव (Conditioned Effect) कहा जा सकता है, जैसे तोता किसी के आने पर कहे चलो चलो' इत्यादि किन्तु कबूतर या कुत्ते को यह कभी नही सिखाया जा सकता--यद्यपि कुत्ता काफी बुद्धिमान पशु है। संभवतः इसके दो कारण हो सकते है -प्रथम तो कुत्ते या कबूतर के मुँह में वह योग्यता न हो और दूसरे उसके मस्तिष्क में ऐसा कोई विशेष विभाग न हो। नहीं तो कोई कारण नहीं कि वे क्यों तोते के समान बोल न सकें। तोता भी इन शब्दों के अर्थ कभी नहीं समझ सकेगा जब की मनुष्य बड़ी सुविधा से समझ सकता हैं और इसका कारण केवल यही है कि उनके मस्तिष्क में इसकी योग्यता है। योग्यता अयोग्यता को हम जेनिक कह सकते है।

किन्तु कुछ वैज्ञानिक, यद्यपि अधिकतर पुराने—व्यक्तित्व-निर्माण या प्रक्रिया निर्धारण में परिवृत्ति को अत्यधिक महत्व देते है, यहाँ तक कि वे प्रयोग-अप्रयोग के लामार्कियन सिद्धान्त को भी इसमें खींच लाते है। वे अपने पक्ष में ऐसे व्यक्तियो का उदाहरण देते हैं जो शैशव से ही पृथक् रखे जाने पर बोल तक नही सकते। संभवत. यह तो कोई भी नहीं कहता कि भाषा उसी प्रकार सहजात है जैसे भूख, सहजात तो भाषा सीखने की योग्यता है। किन्तु वे कहते है कि यह योग्यता भी शैशव से निरन्तर परिवृत्ति मिलने के कारण ही मनुष्य में विकसित हो जाती है, यदि उसे वह परिवृत्ति न मिले तो न केवल उसमे तत्संबंधी योग्यता ही नहीं आ पाती प्रत्युत् उसके तदीय यंत्र भी अविकसित रह जाते है। इसके पक्ष में वे एक फ्रेंच वैज्ञानिक इटार्ड(Itard)के एक प्रयोग का उदारहरण देते हैं। उसने एक ऐसे लड़के पर अपने परीक्षण किये जो ग्यारह वर्ष की आयु में जंगल से पकड़ा गया था। वह बिल्कुल पशु के समान था, उन्ही के समान भीरु और जंगली। उसके शरीर की परीक्षा करने से ज्ञात हुआ कि उसके शरीर के प्रक्रिया यंत्रों का ठीक विकास नहीं हुआ था—ज्ञान तंतु, प्रक्रिया तंतु (motar) मस्तिष्क तंतु और अन्य भी कुछ यंत्र ठीक तरह से विकसित नहीं हो पाए थे। इटार्ड ने लड़के को पांच वर्षों तक शिक्षित करने का अविरत प्रयास किया, किन्तु वह उसे उस सीमा तक शिक्षित नहीं कर सका जितनी उससे आशा की जा सकती थी। वह अपने पूर्ण प्रयास के बाद भी उसे शब्द स्पष्ट रूप से बोलना नही सिखा सका, यद्यपि वह सामान्य लिखी भाषा समझ सकता था और उसी के द्वारा अपनी आवश्य-कताएँ अभिव्यक्त कर सकता था। सब मिलाकर, लड़का सामान्य स्तर तो क्या उसके समीप भी नहीं लाया जा सका, यद्यपि उसे उत्तम-तम परिस्थितियां प्रदान की गईं। इस उदारहण से प्रायः सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है कि परिवृत्ति, और वह भी शैशव के प्रारंभ से, कितनी अधिक प्रभावशाली हो सकती है। किन्तु इस उदाहरण से हम किसी भी परिणाम पर नहीं पहुँच सकते, क्यों कि इसमें यह तो स्वीकार किया गया ही है कि उस का स्नायु तंतुवाय पर्याप्त विकसित नहीं था, और इस बारे में यह कहना कि उसके विकसित न होने का कारण उसका अप्रयोग है—हमें उपयुक्त नहीं जान पड़ता। जैसा कि हम पिछले निबंध में देख आए हैं, इसका कारण केवल यही कहा जा सकता है कि उसके कुछ जेंज् किसी कारण से या तो गौण रह गए अथवा अपना ठीक विकास नहीं कर पाए, जेंज के क्रिया व्यापार में परिवृत्ति कितनी प्रभावशाली हो सकती है, इस विषय में हम पिछले निबंध

में काफी विस्तार से लिख आए है। इस लड़के के उदाहरण मे यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है—यह हम नीचे एक और उदाहरण से देखेगे।

एक १७ वर्ष का लड़का न्यूरंबर्ग के बाज़ार मे पागलो की तरह घूमता देखा गया। वह प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में केवल एक ही बात कहता था—मेरा पिता एक फौजी था, मै भी वही बनूगा। उसका जन्म और वश उसके लिए भी एक रहस्य था। उसके लिए कहा गया कि वह किसी अत्यन्त समृद्ध परिवार का सदस्य था और उनके शत्रुओ के द्वारा वह शैशव से ही अँधेरी गुफा में बंद कर दिया गया था। ट्रैडगोल्ड (Tredgold) ने उसे रख लिया और सिखाना-पढ़ाना आरम्भ किया। थोड़े ही समय में उसने बड़ी तीव्रता से प्रगति करनी आरम्भ कर दी। यद्यपि वह सामान्य स्तर पर नही लाया जा सका किन्तु वह इस योग्य हो गया कि अपना दैनिक-जीवन ठीक प्रकार से चला सके। तब उसे एक कचहरी में कार्य पर लगा दिया गया। वहाँ वह ठीक तरह से अपना कार्य करता रहा। कुछ वर्षो के पश्चात् उसे एक व्यक्ति यह कह कर कही दूर निर्जन में ले गया कि वह उसे उसकी उत्पत्ति का रहस्य बताएगा और वहाँ उसे छुरा घोप कर मार डाला गया।

उसका पोस्ट मार्टम करने पर पाया गया कि उसका मस्तिष्क सामान्य से छोटे आकार का था और उसके विभिन्न भाग ठीक प्रकार से विकसित नहीं हुए थे। ट्रैडगोल्ड के अनुसार, यह उसके अप्रयोग के कारण था, जो कि उसके प्रारम्भ से ही बंदी होने से उस पर ठूँसा गया था। उसके अनुसार, मस्तिष्क के छोटा होने का कारण यह हो सकता है कि दीर्घ एकान्तवास और अप्रयोग के कारण उसके मस्तिष्क के कोष विकसित नही हो पाए, जिससे उसका मस्तिष्क छोटा रह गया। किन्तु ऐसा मान लेने के लिए जैसे ठोस आधार की आवश्यकता है, वह उसने प्रस्तुत नहीं किया, उसके विरुद्ध कुछ ठोस तर्क अवश्य प्रस्तुत किये जा सकते है—प्रथम तो, जब उसके शरीर के अन्य भागों और अंगों का विकास अप्रयोग के बावजूद ठीक हुआ तो केवल मस्तिष्क का विकास ही ठीक क्यो नहीं हुआ? दूसरे, उसकी खोपड़ी की आपेक्षाकृत मोटी थी—जिसका अर्थ है कि उसके मस्तिष्क-कोष के अविकसित रहने का कारण कुछ और है, क्योंकि खोपड़ी के मोटा रहने न रहने का मस्तिष्क के प्रयोग-अप्रयोग से कोई संबंध नही है। इसलिए यह अधिक तर्क-सम्मत प्रतीत होता है कि मस्तिष्क के अविकसित रहने का कारण किसी प्रकार के प्रयोग-अप्रयोग को न समझ कर किसी अन्य कारण की खोज की जाए। इस उदाहरण से परिवृत्ति के महत्व के बारे में चाहे कुछ भी कहा जाए, इससे कम से कम यह प्रमाणित

हो जाता है कि पहले लड़के के भाषा न सीख सकने और सामान्य स्तर से बहुत-अधिक कम रहने का कारण प्रयोग-अप्रयोग या परिवृत्ति नहीं है, क्योंकि दूसरा लड़का पहले से छः वर्ष अधिक आयु से प्रारम्भ करके भी न केवल ठीक भाषा तथा रहने-रहने" की ठीक रीति ही सीख सका प्रत्युत् वह सामान्य मनुष्य की तरह कचहरी मे कार्य भी करने लग गया। यदि किसी स्वस्थ बच्चे को इसी प्रकार सामाजिक-संपर्क से वंचित रखा जाए तो हम अपने पिछले अध्ययन के आधार पर सहज ही यह कल्पना कर सकते है कि वह ठीक और पूरे मनुष्य के समान अपना विकास करेगा। जहाँ तक सामाजिक रीति-नीतियों को जानने का सबंध है, वह उस ज्ञान से अवश्य ही वंचित होगा क्योंकि मनुष्य और शिपेंजी जैसी विकसित जातियां अपने जीवन में बहुत कुछ सीखती है, बचपन से ही वे अपनी जातीय प्रवृत्तियो से अभिज्ञ नहीं होती है। जैसा कि हम अगले निबंध में देखेगे, एक जन्मान्ध मनुष्य दृष्टि-शक्ति प्राप्त हो जाने पर जहाँ दृष्टिगत संबंधों (Visual Relations) को महीनें तक भी ठीक प्रकार से स्थापित नहीं कर पाता वहाँ चूहा कुछ घंटों में और कृमि बिना एक क्षण के विलंब से ही अपने जातीय स्तर पर दृष्टिगत संबंधो को जान लेता है। स्पष्टत: ही इसका एक मात्र कारण शारीरिक विकास का स्तर है। जब कि कृमि अपने जीवन को एक निर्धारित यंत्र के समान बिताता है, विकसिक प्राणी बहुत कुछ अपनी शिक्षा और इस प्रकार स्वतत्र इच्छा शक्ति (Free will) के अनुसार बिताते है, मनुष्य मे विचारणा (Intellect) होने से, इसमें और भी स्वतंत्र हो सकत है क्योंकि वह क्रमश. विकास करता है। किन्तु यह शिक्षा जिस व्यक्ति को प्राप्त होती है उसकी योग्यता और पात्रता का प्रश्न बहुत अधिक महत्व पर्ण है, जिसे हम पीछे इस निबंध में और प्रथम तथा द्वितीय निबंधों में काफी विस्तार से देख आए है।

यद्यपि मनुष्य को एक दम उसी स्तर पर शरीर-विज्ञान का विषय नही बनाया जा सकता जैसे कृमियो या पक्षियों को बनाया जा सकता है, किन्तु उसके वे सब प्रक्रिया यंत्र और स्रोत तथा नियामक अन्तत: उसी प्रकार शरीर-विज्ञान के विषय है जैसे कृमियों के। यदि उसकी बहिर्वाहिनी धमनिया (Centrifugal nerves) ठीक कार्य करना बद कर दे तो वह देखते हुए भी उसकी अनुभूति नहीं कर सकेगा, सुनते हुए भी उसको प्रक्रियात्मक रूप नही दे सकेगा—इत्यादि। उसके मस्तिष्क का केवल एक भाग अपसारित किये जाने पर भी उसकी सम्पूर्ण विचारणा (Intellect) समाप्त की जा सकती है। इसलिये उसमे और अन्य प्राणियों में अन्तर पहिले शरीर-वैज्ञानिक है और फिर उसके परिणाम स्वरूप प्रक्रियात्मक भी। मनुष्य मे, बाह्य

प्रभाव को केन्द्र तक ले जाने वाला अन्तर्वाही स्नायु तन्तु वाय (Centripetal Nervous System) और प्रतिक्रिया को बाहर लाकर शरीर को कार्य में प्रवृत्त करने वाला बहिर्वाही स्नायु तंतु वाय (Centrifugal Nervous system) न केवल असंख्य स्नायुओं से बुने असंख्य कोषों वाले केन्द्र (मस्तिष्क) से ही बंधा है, प्रत्युत अपने आप में भी असंख्य उलझी हुई स्नायुओं और कोषो का जाल है, जिससे कोई भी प्रतिक्रिया भीतर अनेक पथों में उलझ कर चुनाव का विषय हो जाती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के मस्तिष्क में विभाग भी बहुत अधिक है जो विभिन्न प्रक्रियाओ के नियंत्रण के लिए विशेष विकास कर चुके है (इसका अर्थ केवल यही है कि वे विभिन्न और विशिष्ट प्रक्रियाओं के लिए पृथक पृथक प्रयुक्त होते है) जैसा कि प्रथम निबंध के अन्त में दिए मस्तिष्क के चित्र से भी देखा जा सकता है। स्नायुओं के विस्तृत जाल और मस्तिष्क के अधिक योग्य होने से ही मनुष्य में कोई भी प्रतिक्रिया उस प्रकार निर्धारित रूप से क्रियान्वित नहीं होती, और इस लिए मनुष्य प्रत्येक कार्य केवल अभ्यास वश या आन्तरिक प्रेरणा (Internal Stimuli) से नहीं करता। यांत्रिक प्रक्रिया (Reflex action) में और वैचारिक प्रक्रिया मे अन्तर जान लेने पर हम यह भी सहज जान लेंगे कि मनुष्य के और पशु के व्यवहार में या प्रवृत्ति और विचारणा मे क्या अन्तर है। यात्रिक प्रक्रिया में केन्द्रानुगामिनी उकसाहट केन्द्र के द्वारा एक दम केन्द्रापगामिनी स्नायुओं मे पहुँचा दी जाती है और पेशियों इत्यादि में खिचाँव के द्वारा प्रक्रिया में परिणत हो जाती है। किन्तु मनुष्य के विशाल मस्तिष्क का कार्यालय इस क्रम को बहुत कुछ बदल देता है–उसमें बाहर के स्नायुओं पर होती हुई कोई भी उकसाहट केन्द्रापगामिनी स्नायुओं के कोषों और फिर पेशियों को प्रभावित करने की अपेक्षा पहले बुद्धि या मस्तिष्क ततुओं में उलझती है और वहाँ व्यक्ति के चेतन चुनाव का विषय होकर केन्द्रापगामिनी स्नायुओं में प्रविष्ट होती है। इस उलझन से कैसे लाभ पहुँचता है ? यह निश्चतरूप से कहना कठिन है, फिर भी यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि मस्तिष्क के अग्र भाग के ज्ञानतंतुओं के कोष जो कि केन्द्रानुगामिनी स्नायुओं के और रोलेंडिक प्रदेश (Rolandic Area) के प्रक्रियात्मक कोषों को मिलाने वाले तंतुओं के मोड़ों पर रहते हैं और बाहर से आने वाली उकसाहट को स्नायुओं के प्रक्रिया यत्र के किसी भी ऐच्छिक पथ की ओर प्रेरित करते है, जिससे प्रतिक्रिया निर्धारित न होकर व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर हो जाती है, जितने अधिक से अधिक

होंगे और जितनी अधिक देर ये प्रतिक्रिया ग्रहण कर प्रक्रिया यत्रों को संचालित करने वाली स्नायुओं तक पहुँचने में लगाएंगे, उतने ही अधिक और विविध पथ उस प्रतिक्रिया के क्रियान्वित होने के लिये खुल जाएंगे और परिणामतः चुनाव की संभावनाएं बढ़ जाएंगी। क्योंकि प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय अपने प्रत्येक प्रभाव को मष्तिष्क-केन्द्र तक भेजती है, और क्योकि सभी केन्द्रीय स्नायुतंतु और मीडुला ओब्लोंगांडा (Medulla Oblonganda) अपने प्रतिनिधि इसमे रखते है इससे यह एक पूर्ण केन्द्र है, जिसमे उकसाहट किसी भी एक या दूसरे प्रतिक्रियात्मक स्नायुयंत्र के विभाग में चुनाव के अनुसार, न कि पूर्व निर्धारित रूप से स्वतः ही, पहुँचती है। इस प्रकार मष्तिष्क या बुद्धि-यंत्र प्राप्त उकसाहट का विश्लेषण करता है और बाहर जाने वाली उकसाहट के लिये रास्ते का और दिशा का तथा मात्रा का निर्णय करता है, इसलिये मनुष्य का प्रायः कोई भी व्यवहार या कार्य ऐसा नहीं है जो उसके जर्म मे प्रविष्ट होकर उस प्रकार आनुवशिक हो जाए जैसे कृमियों इत्यादि में होता है।

यद्यपि यह मस्तिष्क की केवल यात्रिक प्रक्रिया का कुछ विवरण है, उसकी सजीव प्रक्रिया (कि कैसे वह किसी प्रक्रिया का चेतन चुनाव करता है) के बारे में अभी तक हम बहुत कम जानते है। वैज्ञानिक आगे कभी जान सकेंगे, यह केवल अनुमान की बात है। तो भी हम इन यत्रों की अन्य प्राणियों से तुलना करके और विभिन्न प्रदेशों को अपसारित कर यह जान सकते है कि इ सका प्रक्रिया यंत्रों पर कैसा और कितना नियंत्रण है।

इस प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व केवल शारीरिकता से कुछ अधिक कहा जा सकता है, यद्यपि यह 'कुछ अधिक' एक दम इस शारीरिकता पर ही आश्रित है। अब हमे इस 'कुछ अधिक' और व्यक्तित्व का निर्णय करना है, जिसके लिये हमने यह भूमिका तैयार की है।

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग हम प्रायः अहम् (Ego) और आचरण या प्रक्रिया के एक सम्मिश्र के अर्थ में करेंगे। अहम् को जेनेटिक उत्तराधिकार, उससे विकसित शारीरिक प्रकृति और परिवृत्ति (Environment) का एक सम्मिश्र कहा जा सकता है और आचरण व्यक्ति का वह व्यवहार विशेष है जिसे हम इस सब की क्रिया-प्रति-क्रिया की प्रक्रियात्मक योजना कह सकते है। हम अहम् को किसी ऐसे अन्तर्मन के रूप में स्वीकार नहीं कर रहे जो किसी प्रकार की अपदार्थिक चेतना है, जैसा कि बर्गसां मानता है

(Matter and Memory), और न फ्रायड के समान कोई ऐसा रहस्य ही जिसकी अनेक तहों (Conscious, Subconscious Unconscious) में व्यक्ति उलझा रहता है। फ्रायड का मन भी वास्तव में एक रहस्यमय अपदार्थिक वस्तु है, जिसे उसने कभी भी स्पष्टतः नही बताया। (Lectures by Freud)

मनुष्य की प्रवृत्तिया और शोक, आल्हाद तथा प्रेम द्वेष इत्यादि भावनाएँ या मानसिक परिस्थितियां भी बहुत कुछ मनुष्य के शारीरिक संस्थान और स्नायविक व्यवस्था पर निर्भर करती है, क्योंकि, जैसा कि हम पीछे भी कह आए हैं, मनुष्य का स्वभाव और व्यवहार तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण तक बहुत अधिक उसके हार्मज इत्यादि पर और अन्ततः जेज़ पर अवलंबित है। इसलिए जब हम किसी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते है, तब हमारे सम्मुख इन स्थितियों के कारण का अथवा स्रोतों का, तथा उपमा रूप में, पशुओ की प्रवृत्ति का भी, एक चित्र रहना आवश्यक है, यद्यपि इन मानसिक प्रवृत्तियों के स्रोतों को कभी भी हम मानसिक अनुभव का विषय नही बना सकते। अस्तु, यदि हम इनकी प्रकृति को ठीक तरह से समझ सके तो हम मानसिक प्रक्रियाओं की प्रकृति को भी ठीक तरह से समझ सकते है, क्योकि यह शारीरिक प्रकृति ही बहुत कुछ मानसिक क्रियाओं का निर्धारण करती हैं।

किन्तु कुछ वैज्ञानिक प्रवृत्ति (Instinct) से एक प्रकार के यांत्रिक अभ्यास को अधिक महत्व देते है। ये वैज्ञानिक हमारी साधारण से साधारण और सहज से सहज प्रवृत्ति को भी अभ्यास जन्य मानते है। उदाहरणतः होल्ट हमारी हथेली के खुलने तथा बन्द होने तक के व्यापार को अभ्यास जन्य मानता है। उसके अनुसार, शैशव मे निरन्तर किसी वस्तु को पकड़ने का प्रयास हमें इस व्यापार में अभ्यस्त कर देता है और इस प्रकार हथेली की खुलने-बन्द होने की उकसाहट (Stimuli) पकड़ने के साथ संबद्ध हो जाती हैं। इसी प्रकार अन्य प्रक्रियाओ को भी अभ्यास के साथ जोड़ने के कितने ही विद्वानो ने प्रयास किये हैं। किन्तु आज हम जानते हैं कि हमारी प्रक्रियाओं और प्रवृत्तियों का एक बहुत बड़ा भाग हमारी शरीर-रचना से निर्धारित होता है। हाथ वाले उदाहरण में ही पूछा जा सकता है कि पकड़ने वाले में किसी वस्तु को पकड़ने की प्रवृत्ति ही क्यों हुई ? फिर, वह पकड़ने में हाथ से ही क्यों प्रवृत्त हुआ ?—पैरों या अन्य कही से क्यों नही ?—यह सब आकस्मिक नहीं है। जैसे देखने की प्रवृत्ति होने पर आँखें

प्रवृत्त होती हैं, जैसे काम प्रवृत्ति होने पर तदीय इंद्रियां क्रियाशील होती हैं, और इनमें एक निश्चित और अनिवार्य संबंध है, उसी प्रकार पकड़ने की प्रवृत्ति और हाथ के उसको क्रियान्वित करने में प्रवृत्त होने में भी एक निश्चित कारण-कार्य संबंध है। इसी प्रकार, किसी उत्तेजना या अनुभूति में हम जो पेशियों मे एक खिचाव सा अनुभव करते है, वह इसलिये नही कि हमारी पेशियां इस प्रकार खिंचाव के लिए हमारी हँसने, रोने या अनुभव करने इत्यादि की क्रियाओं से अभ्यस्त होने के कारण वैसी होती है और इसलिए इनमें का खिंचाव तदीय प्रक्रिया और तदीय अनुभूति को उकसा देता है, प्रत्युत् यह कि यह प्रक्रिया रक्त के रासायनिक रसों और ग्रंथि रसों के संतुलन (Endocrine balance) तक मे होने वाले परिवर्तनों के साथ बँधी है। इस प्रकार के परिवर्तन में एड्रेनल (Adrenal) ग्रंथि के मध्य भाग से उत्पन्न होने वाले रस रक्त के प्रवाह में तीव्रता, हृदय की धड़कन में वेग इत्यादि लहर प्रसार (Sympathetic Reaction) को उकसाते है और स्वयं भी इनके साथ शरीर पर उसी प्रकार की उकसाहट के लिये प्रभाव डालते है। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि शरीर में ग्रंथि-रसों की आनुपातिक क्रिया और आवेगात्मक (Emotional) तथा वासनात्मक (Appetitive) अभिव्यक्तियों में निकटतम सबंध है। एक बार प्रयोग के लिए अधिक और कम भीरू चूहे पकडे गए और पृथक् ही पाले गए तथा उनकी सन्तानोत्पत्ति को उनके अपने अपने गोत्रों तक ही सीमित रखा गया। तीसरी-चौथी पीढी में ही उनकी शल्य-परीक्षा करने पर देखा गया कि अधिक डरपोक चूहों की ऐड्रेनल, थाइराइड, और पिच्यूइटरी इत्यादि ग्रंथियां अन्य चूहों से कही अधिक बढ़ी हुई थीं और वे पहले से कही अधिक भीरू थे, जब कि दूसरा वर्ग बिल्कुल ठीक था। इस प्रकार आवेग और शरीर-रचना तथा वंशानुक्रम (Heredity) कितने अधिक परस्पराश्रित है, हम अनुमान कर सकते है। इस 'बुद्धिमान' मनुष्य के लिए भी यही सत्य है। मै एक व्यक्ति को जानता हूँ, जो काफी समझदार और सज्जन है, किन्तु वह अँधेरे में अकेले जाने से बहुत डरता है, वह कहता है कि मै जानता हूँ वहाँ कुछ नहीं है, फिर भी नही जा सकता। उसकी पत्नी में यह रोग नहीं है, उसके कुछ बच्चे इससे एकदम मुक्त है, कुछ उतना ही डरते है और कुछ कम डरते हैं। इस प्रकार ये रस-स्राव करने वाली ग्रंथियां (Endocrine glands) एक ओर रक्त में अपने रस छोड़ कर उसमें रासायनिक परिवर्तन संभव करती हैं और दूसरी ओर केन्द्रीय स्नायुतंतुओं

और अन्य भी स्नायुतंतुओं पर प्रभाव डालती है। इस सब के आधार पर यह सुविधा से कहा जा सकता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व भी बहुत कुछ उसकी शरीर-रचना पर निर्भर करता है। मनुष्य भी अन्य साधारारण से साधारणतम पशुओं के साथ ही, उन्ही के स्तर पर खड़े होकर अपने सुख-दुख, भूख-प्यास और अभाव-आकाक्षाएँ इत्यादि अनुभव करता हैं। जो इसमें अन्य पशुओं से विशेषता है, जिसे कि यहाँ हम देखेंगे, वह भी इसकी शरीर-रचना के कारण ही।

इस विशेषता को एक शब्द में कहा जा सकता है—'निर्वैयक्तिकता' या साधारणीकरण अथवा वस्तु-विशेष की अपेक्षा वस्तु-सामान्य के सबधों का विधान। ये शब्द ऐसे हैं जिनके बारे में देर से कुछ न कुछ लिखा जाता रहा है और आज तक इस संबंध में एक बहुत बड़ा साहित्य तैयार हो गया है। हम यहाँ इनके विस्तार में न जाकर संक्षेप में इनकी व्याख्या भर करेंगे।

इन तीनों ही शब्दों को यहाँ हम एक अन्य नाम देंगे—विचारणा (Intellect)। विचार या अनुभूति से भिन्न निर्विशिष्ट और Abstract ज्ञान है—ज्ञान को बिलकुल साधारण अर्थ में लेते हुए—नवीन संबधों को स्थापित करने तथा पूर्व कल्पित संबंधो में नवीन संबंधो को अन्तर्हित करने का गुण है। प्यार या दुख का इस विभाग मे स्वयं एक अनुभूति के रूप में कोई मूल्य नहीं, इनका मूल्य यहाँ ठीक उसी रूप में है जो मूल्य गणितज्ञ के लिए १–२–३ या ५३ का होता है। इसमें मोहन की एक विशेष अनुभूति और क्रिया, जिसे हम प्यार कहते है, केवल सोहन की एक विशेष अनुभूति और क्रिया की एक दूसरी आवृत्ति है जो हम में एक ऐसे संबंध ज्ञान को जन्म देती है जो अपनी निर्वैयक्तिकता और निर्विशिष्टता के कारण विशेषों (Particulars) से स्वतंत्र और असंपृक्त है। "मोहन सुशीला से प्यार करता है" इसमें स्वयं मोहन की अनुभूति से कोई संबंध न हो कर, जो अपने आप में एक और अद्वितीय है, केवल सोहन और श्यामा की एक विशेष क्रिया के पुनः होने का संकेत है जिसमे उन विशेष व्यक्तियों या उनकी क्रियाओं से कोई सम्बन्ध न होकर केवल इस और उस का संबंध ज्ञान है। बर्गसां इसे एक दूसरे ढंग से कहता है—"हम अपनी अभिव्यक्ति शब्दों के द्वारा करते है और किसी घटना को दैशिक प्रतीकों (Spacial terms) के द्वारा समझते है। शब्दों की उपयोगिता केवल उनके निवयक्तिक और निर्विशिष्ट प्रयोगों में ही है। एक शब्द कुत्ता 'एक ही जैसी' सहस्रों घटनाओं का ज्ञान देता है

और इसी से उसका किसी से भी संबंध नहीं है। देश केवल ज्यामितिक बिन्दुओं की समष्टि मात्र है—अर्थात् हम किसी वस्तु को केवल उसकी अवस्थाओं के रूप में देखते और समझते है,—मै कुत्ते का मुँह आदमी के लगा सकता हूँ, इसी प्रकार एक ऐसे तिकोन की कल्पना कर सकता हूँ जिस के कोने २७० या ३६० डिग्री के हों इत्यादि। वास्तव में मनुष्य की प्रत्येक 'नवीन' कल्पना इस तथ्य को प्रमाणित करती है जिससे कि उसके किसी वस्तु को 'जानने' की प्रकृति का भी अनुमान किया जा सकता है। पशु के लिए प्रत्येक वस्तु या घटना अथवा अवस्था एक निश्चित और वैयक्तिक तथा अद्वितीय है, एक पक्षी के लिए एक घोसला तीन पृथक् दैशिक स्थितियों में तीन पृथक्, भिन्न या अद्वितीय वस्तुएँ है। मनुष्य के लिए इससे भिन्न प्रत्येक घोंसला अपनी किसी भी ऐसी विशेषता से रहित केवल एक विचार है, शब्द है। विचारणा की इस प्रकृति को निम्न कविता और भी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत कर सकती है—

Let x denote beauty, Y manners well bred,
z fortune (this last is essential)
Let L stand for love—Our philosopher said
Then L is a function of x, y and z
of the kind that is known as potential.
Now integrate L with respect to dt
(t stands for time persuasion)
Then, between proper limits, tis easy to see
The definite integral marriage must be
(A very concise demonstration).

By Prof. W.J.M. Rankine, quoted by Eddington in the Philosophy of Physical Science from 'Songs and Fables.

इस कविता को हम विचारणा की निर्वैयक्तिक प्रकृति का एक अच्छा उदाहरण कह सकते हैं। इसका अर्थ यह नही कि हम अपने या दूसरों के सुख दुख का अनुभव नहीं कर सकते, किन्तु यह एकदम दूसरी बात है, जिसका विचारणा से कोई संबंध नही। एक भयपूर्ण चीख को सुनकर हम भी भयभीत हो सकते हैं और यह एक दम उसी स्तर की प्रतिक्रिया है जिस स्तर की पशुओ में होती है, इसे हम सहानुभूतिक ज्ञान (Sympathetic knowledge) भी कह सकते है। किन्तु हम इसकी क्षीणतम अनुभूति के बिना भी

इसका स्मरण कर सकते हैं, जब कि पशु में इसका 'स्मरण' केवल उसी प्रकार की अनुभूति के रूप में ही हो सकता है।

अपनी इस विशेषता के कारण मनुष्य जहा अपनी आकाक्षाओ और वासनाओं को घपला देता है और अपने 'वास्तविक' जीवन से अनेक बार अनुपस्थित रहता है वहाँ वह ऐसा एक सामान्य और सामाजिक स्तर बना लेता है जो उसकी अपनी शारीरिक वासनाओं को कुछ दूर तक प्रभावित करता है। यह उसकी एक नवीन परिवृत्ति है जो अन्य प्राणियो के लिए प्रायः नहीं है।

संभवतः यही घपला फ्रायडियन मन का निर्माण करता है, और यही ऐड्लर की हैल्यूसीनेशन (Hallucination) की कल्पना को जन्म देता है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य में कुछ ऐसी वासनाए भी उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें हम 'सामाजिक' वासना का नाम देंगे, जैसे अधिकार भावना और यशोलिप्सा इत्यादि। ऐड्लर और जुंग इत्यादि वैज्ञानिक (समाज-वैज्ञानिक) इन्हें इतना महत्व देते है कि इन्हें ही मानव-मनकी एक मात्र प्रेरक वृत्ति मानते हैं, जैसे फ्रायड काम को मानता है। इस संबंध में हम अन्यत्र लिख आये है यहाँ हमें केवल यही कहना है, कि यद्यपि हम इन वृत्तियों को इतनी प्रधानता नही देते, किन्तु ये महत्वपूर्ण है, इसमे संदेह नहीं। इतना महत्व न देने का कारण हमारे पिछले संपूर्ण अध्ययन से ही देखा जा सकता है। किन्तु जो भी महत्व इसका है, उससे जहां एक ओर समाज का व्यक्ति के मानसिक निर्माण मे महत्व ज्ञात होता है, वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति का सदैव समाज से विद्रोही होना भी प्रमाणित होता है।

वास्तव में ये सामाजिक वासनाएं अन्ततः व्यक्ति की उन शारीरिक वासनाओं की तृप्ति की पूरक भर है जिनका अस्तित्व उसे सदैव अपनी तृप्ति के लिये पुकारता रहता है। सभवतः समाज का निर्माण ही मनुष्य में उसके इस स्वार्थ का परिचायक है, अथवा कम से कम आज उसके लिए समाज का यही महत्व है। फ्रायड जिस प्रवृत्ति (Instinct) को वासना-तृप्ति के प्रयास (ढंग) की प्रवृत्ति कहता है, वही व्यक्ति में समाज के प्रति उसके दृष्टिकोण या व्यवहार को बनाती है। इसलिये व्यक्ति का दृष्टि कोण समाज की ओर सदैव व्यक्तिगत स्वार्थों से

*व्यष्टि और समष्टि-प्रतीक--फर्वरी-मार्च १९५२।

ही निर्धारित हो सकता है। यद्यपि इससे समाज और व्यक्ति के स्वार्थों मे निरन्तर चलने वाले अन्तर्विरोध का समर्थन होता है, क्योंकि समाज का अस्तित्व व्यक्ति के आत्म समपर्ण से ही सुरक्षित रह सकता है जब कि व्यक्ति समाज को केवल व्यक्तित्व-साधना के लिए ही स्वीकार करता है। किन्तु यह एक अनिवार्य सत्य है जिसका प्रमाण प्रारम्भ से आजतक व्यक्ति और समाज मे चला आता हुआ सघर्ष स्वय है।[१]

किन्तु, जिस किसी भी तरह से हो, यह तो स्वीकार करना पड़ेगा ही कि व्यक्ति पर 'सामाजिक वासनाएं' अपनी पूर्ति के लिए निरन्तर दबाव डालती रहती हैं; दूसरे, उसकी शारीरिक वासनाएं भी केवल समाज में ही ठीक तरह से सन्तुष्ट हो सकती हैं, फिर चाहे वे किसी तरह से क्यों न हो, इस लिए उसके व्यक्तित्व निर्माणमे भी समाज का बहुत बड़ा महत्त्व है—यह महत्व प्रक्रियात्मक योजना की दृष्टि से भी है और इस दृष्टि से भी कि विचारों का सामाजिक सम्मिश्र उस पर शैशव से हावी रहती है। इसके अतिरिक्त, समाज भौतिक परिवृत्ति का भी निर्माण करता है-एक अर्थाभाव से पीड़ित व्यक्ति के लिए यह बड़ा कठिन है कि वह उतना ही अपनी अन्तर्निहित योग्यताओ (Capacities) का विकास कर सके जितना संपन्न व्यक्ति कर सकता है। आईस्टीन यदि किसी भारतीय अछूत के घर उत्पन्न होता और ग्रामवृद्ध उसको पढ़ता देखकर उसपर आक्रमण कर देते तो वह कभी भी आईस्टीन नही बन सकता था। इसी प्रकार व्यक्ति पर सामाजिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है। डारविन यदि सौ वर्ष भी पहले उत्पन्न हुआ होता तो भी सभव था कि वह बिकासवाद के सिद्धान्त की खोज न कर पाता।

किन्तु डारविन की विकास वाद की खोज या आईस्टीन का सापेक्षता वाद के सिद्धान्त का आविष्कार उनके व्यक्तित्व से कोई बड़ा सम्बन्ध नही रखती, इस लिए किसी भी समाज मे उपयुक्त परिस्थितियाँ मिलने पर आईस्टीन या डारविन वही होते जो वे अब हैं, उनका वैसा व्यक्तित्व होना उनके जेंज, जेज के विकास और उपयुक्त सामाजिक परिस्थियो के त्रित्व पर निर्भर करता है यद्यपि इनके महत्व का अनुपात काफी भिन्न-भिन्न है। सभी जानते है कि अनेक व्यक्ति निर्धन परिवारों मे जन्म लेकर भी अपने लिए परिस्थितियो का स्वयं निर्माण कर लेते हैं, यद्यपि इस के लिए काफी अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है।

१व्यक्ति और समाज-अजन्ता, सितम्बर १६५६।

REFERENCES

1. *Dobzhansky* T. .. Genetics and Origin of Species.
2. *Goldschmidt* . Phenogenetics (New York.)
3. *Shull* .. Heredity. (New York)
4. *Sinnot and Dunn* .. Principles of Genetics (New York)
5. *Sympson* .. Meaning of Evolution (New York)

३—प्रवृत्ति की प्रकृति

पिछले निबन्धों में हमने जो कुछ भी कहा, उसे इस निबन्ध की भूमिका कहा जा सकता है, क्योंकि हमने वहाँ शरीर के उन व्यवहारो के कारणों को देखने का प्रयास किया है जो हमे प्राणी के 'मन' के अस्तित्व का बोध कराते है। इसके साथ ही, दूसरे निबन्धों मे हमने उन व्यवहारों की प्रकृति के विषय में भी किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयास किया है, जो कि अत्य-धिक विवादास्पद है। इस निबन्ध मे हम प्राणी-व्यवहार का केवल समान्य विवरण मात्र देंगे और ऐसे व्यवहारों या प्रवृत्तियों को देखेगे जिन्हें हमने या तो पिछले निबन्धों में देखा नही और या उन निबन्धों के बताए कारणों पर पूरे नही उतरते। कुछ व्यवहार तो ऐसे है जो एक दम अकारण और विचित्र प्रतीत होते है, कुछ व्यवहार ऐसे भी हैं जो मनुष्य की शब्दावली में केवल समझदारी पूर्ण ही कहे जा सकते है, किन्तु उन प्राणियो की अन्य प्रवृत्तियें का अध्ययन सिद्ध करता है कि वे व्यवहार भी उसी प्रकार रिजिड और प्रवृत्यात्मक हैं जिस प्रकार ऐसे अन्य व्या- पार होते है।

प्राणी-व्यवहार या प्रक्रिया के हम तीन भेद कर सकते है—प्रवृत्यात्मक अभ्यास-जन्य और विचारणात्मक (Intellectual or In-telligent)। इन तीनो मे भेद करने से पूर्व अथवा इनकी परिभाषा देने से पूर्व हम इनका एक एक उदाहरण देगें—पुँस्कोकिल का वसन्त ऋतु के अंतिम दिनों में काम पीड़ा से व्याकुल होकर गाना अथवा मैंटिस (Praying Mantice) का मैथुन के पश्चात् मैथुन-साथी (नर) को खा जाना प्रवृत्या-त्मक व्यवहार कहा जा सकता है; घोड़े का टागे मे जुत कर आखें बन्द होने पर भी ठीक रास्तों पर चलते जाना अभ्यास जन्य प्रक्रिया है जब कि बन्दर और शिंपेजी का भोज्य पदार्थ के अधिक ऊचे स्थल पर पड़े होने पर किसी सहायक वस्तु को नीचे रख कर अथवा अपने साथी के कन्धों पर चढ़ कर ऊपर कूदना विचारणात्मक व्यवहार कहा जा सकता है। स्पष्टतः इन तीनों प्रकार के व्यवहारों मे काफी बड़ा अन्तर है। विशेषतः पहले और तीसरे तथा दूसरे और तीसरे में। इस भेद को हम कुछ इस प्रकार रख सकते हैं—जब कि प्रवृत्यात्मक व्यवहार सहज है वहां अभ्यास जन्य व्यवहार अभ्यास के पश्चात् सहज बना लिया जाता है। इन दोनों में प्राणी प्रायः मशीन के समान कार्य

करता है। इसे इस प्रकार भी रखा जा सकता है कि यह व्यवहार केवल क्रिया रूप में ही जन्म लेता है, उससे पूर्व प्राणी को उसका कुछ अनुभव नही होता जबकि तीसरे मे प्राणी क्रिया को क्रियान्वित करने से पूर्व उसकी रूप रेखा अथवा योजना बनाता है, अर्थात्, विचारणात्मक क्रिया पहले मानसिक रूप में अथवा एब्स्ट्रेक्ट रूप में जन्म लेती है और तब क्रिया रूप मे परिणत की जाती है। इस प्रकार विचारणात्मक क्रिया एक सूक्ष्म विचारणा का अनुवाद मात्र होती है। मनुष्य मे यह विचारणा इतनी अधिक विकसित अवस्था में पहुच चुकी है कि उसका क्रिया से आज अनिवार्य सम्बन्ध भी नही रहा—मनुष्य सम्पूर्ण ससार भर को मानसिक रूप मे रख सकता है, किसी भी अनस्तित्व की कल्पना कर सकता है, कोई भी योजना बना सकता है और उसे क्रियान्वित होने से रोक सकता है। जैसे—वह गधे के सिर वाले मनुष्य की कल्पना कर सकता है, एक विशाल महल को एक धान्य कण मे कल्पित कर सकता है, वह सम चतुर्भज गोल की या २७° अथवा ३६° डिग्री के त्रिकोण की कल्पना भी कर सकता है और देवदत्त मे गधे का बिल्कुल भी विचार किए बिना गधेपन का आरोप कर सकता है, इत्यादि।

प्रवृत्ति को सहज और यात्रिक प्रक्रिया कहने से हमारा अभिप्राय केवल यही है कि प्रवृत्ति, चाहे उसे केवल शरीर-रचना की भौतिक और रासायनिक परिस्थितियो का परिणाम कहा जाए, चाहे केवल बाह्य विषयों के साथ उसके प्रक्रियात्मक संबन्ध का और चाहे किसी सजीव प्रेरणा का, प्राणी को विशेष भौतिक-रासायनिक और बाह्य परिवृत्ति सम्बन्धी परिस्थितियाँ यन्त्र के समान विशेष क्रिया-व्यापार में नियोजित करती है। ल्लायड मोर्गन प्रवृत्ति की परिभाषा करते हुए कहता है—"प्रवृत्ति हम कुछ ऐसी प्रक्रिया को कह सकते है जो अपने प्रथम प्रवर्तन मे, पिछले सभी अनुभवों से स्वतन्त्र हो। जो व्यक्ति के लाभ और जाति की सुरक्षा मे सहायक हो सकती हो, जिसका आविर्भाव जाति के सभी सदस्यों के समान प्रयास द्वारा हुआ हो और जो अनुभव के आधार पर संशोधित होती रहती हो।" स्पष्टतः ही यह परिभाषा बहुत कुछ अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोनों ही दोषो से दूषित है। प्रवृत्ति को पिछले अनुभवों से स्वतंत्र कहने का क्या अभिप्राय है जब कि वह स्वयं ही कहता है कि 'जो अनुमव के आधार पर संशोधित होती रहती हो ?' यद्यपि यह एक सीमा तक उन प्रवृत्तियों के लिए ठीक भी है जो अभ्यास से अपनी पूर्णता के लिए सहायता लेती है जैसे चलना-उड़ना इत्यादि, किन्तु-यहाँ शब्द संशोधन है, जो कि प्रवृत्ति में कम या अधिक लचक और परिवर्तन की संभावना को बल देता है और इस प्रकार प्रवृत्ति और अनुभव

को स्वतन्त्र नही रहने देता। अथवा, कम से कम यह स्वीकार करता है कि प्रवृत्ति को समझदारी के समान ही बदला भी जा सकता है। इसके अतिरिक्त जाति के लाभ या सुरक्षा के लिए होना भी प्रवृत्ति पर कोई शर्त नही ह, ऐसी कितनी ही प्रवृत्तियों के उदाहरण हम दूसरे निबन्ध मे दे आए है जो जाति या व्यक्ति के लिये अपकारक है। प्रवृत्ति सभी व्यक्तियों में यद्यपि समान रूप से पाई जाती है, और यह बात उसकी यांत्रिकता को और भी अधिक प्रमाणित करती है, किन्तु प्रवृत्ति के विकास का जातीय स्तर पर होना प्रवृत्ति का कारण नही है, प्रवृत्ति तो केवल व्यक्ति से सम्बन्ध रखती है, यद्यपि वह संपूर्ण जाति में समान रूपसे और निरपवाद रूप से पाई जाती है। जैसे, प्रवास की प्रवृत्ति कोयल की संपूर्ण जाति में पाई जाती है, किन्तु यदि किसी भी व्यक्ति की परिवृत्ति में तापमान और प्रकाश को बदल दिया जाय तो वह प्रवास नही करेगा; इसी प्रकार, यदि किसी पक्षी की परिवृत्ति मे तापमान और हार्मज को बदल दिया जाय तो वह घोंसला नही बनाएगा। इस प्रकार प्रवृत्ति को एक ऐसा जातीय-व्यापार कहा जा सकता है जो व्यक्तिगत स्तर पर विकसित होता है। किन्तु हम मोर्गन के इस कथन को एक दम गलत नही समझते, क्योंकि यदि प्रवृत्ति व्यक्ति की शरीर रचना मे निहित है तो जेनिक आदान-प्रदान के द्वारा वह जातीय संपत्ति भी हो जाती है। किन्तु हमें प्रवृत्ति की लैश्ली द्वारा की गई परिभाषा अधिक उपयुक्त जान पड़ती है; वह रीफ्लेक्स और प्रवृति में भेद करते हुए कहता है—"रीफ्लेक्स सहज रूप से शरीर की अन्त: प्रकृति से निर्धारित ऐसा व्यवहार है जिसका नियमन ज्ञान तंतुओं का एक विशेष विभाग करता है और जो पेशियों के खिचाव के रूप मे पहले से ही निर्धारित किया जा सकता है। प्रवृत्यात्मक व्यवहार रीफ्लेक्स से कुछ अधिक है, यद्यपि इसमें रीफ्लेक्स-प्रक्रिया भी अन्तर्निहित रहती है किन्तु इसे सदैव किसी विशेष उकसाहट से नियमित नहीं कहा जा सकता, प्रत्युत इसे बाह्य आवश्यकता (Perceptual lack) अथवा अभावानुभूति के द्वारा अनुप्राणित कहा जा सकता है। प्रवृत्यात्मक व्यवहार पेशियो के खिंचाव का एक पूर्व निर्धारित अनुक्रम मात्र नहीं है, किन्तु यह एक पूर्व-ज्ञात (Predictable) व्यापार है।" किन्तु यह परिभाषा भी पूर्ण नही है, क्यो कि यह केवल उन प्रवृत्तियो को प्रवृत्तियाँ स्वीकार करती है जो बाह्य उकसाहट अथवा केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय में उकसाहट से उत्पन्न होती है; किन्तु, जैसा कि हम अपने प्रथम निबन्ध मे देख आए है, शरीर की रासायनिक परिस्थितियाँ भी प्रवृत्ति को उत्पन्न करने में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण कारण है। तो भी लैश्ली की परिभाषा मोर्गन के समान अस्पष्ट नही है।

हम यहां प्रवृति की परिभाषा बनाने की उलझन में पड़ना नही चाहत, प्रवृत्ति के कारणों के सबन्ध में हम पीछे काफी विस्तार से देख ही आए हैं, यहां हम केवल लैश्ली की परिभाषा को उनके साथ और जोड़ लेते हैं। इन कारणों के आधार पर संभवत: सभी प्रवृत्तियों की, अथवा कम से कम अधिकांश प्रवृत्तियो की व्याख्या की जा सकता है। किन्तु हम यहाँ सामान्यत: विवरण ही अधिक देना चाहेंगे।

प्रवृत्ति की संभवत: सबसे बड़ी विशेषता है उसमें लचक का अभाव और सहजता (ऑटोमेटिज्म) जिससे अनेक बार वह आश्चर्य जनक रूप से कौशल पूर्ण प्रतीत होती है, किन्तु वह कौशल या चातुर्य ने होकर केवल एक यांत्रिक व्यापार है जो या तो प्राणी की शरीर-रचना की प्रेरणा है अथवा ऐसा प्रक्रियात्मक-व्यापार जिसका कारण ज्ञात नही। अनेक वैज्ञानिक ऐसी प्रक्रियाओं या प्रवृतिओ को भी प्रवृत्ति रूप मे ही वंशानुक्रम मे प्राप्त मान लेते ह, उदाहरणत: काडाव (Cadow) पक्षियों की प्रवास की प्रवृत्ति को वंशानुक्रम मे प्राप्त गृह की मधुर स्मृति समझता है। किन्तु ऐसी 'मधुर' कल्पनाओं में हम यहाँ व्यर्थ ही नही उलझेंगे, जो या तो प्रयोग सम्म नही है अथवा जो अधिक रहस्यमय हैं। सभवत: प्रवृत्ति की परिभाषा जानने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि विभिन्न प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाए। इसके लिए हम, यद्यपि कम प्राणियों मे प्राप्य किन्तु टिपिकल प्रवृत्ति, कृमियों के समाज-निर्माण को पहले लेंगे।

जैसा कि हम सब जानते है, मधुमक्खियाँ एक छत्ते में इकट्ठी रहती हैं। चीटियाँ भी एक बस्ती मे इकट्ठी ही रहती है; इनका इकट्ठा ही भोजनालय होता है, इकट्ठा ही भंडार-घर होता है और इकट्ठ ही बच्चे होते है, इस प्रकार इनमें एक व्यक्तिगत स्वार्थ से भिन्न सामूहिक स्वार्थ भी है, जिसे कि हम समाज निर्माण का नाम देते है। यह समाज कैसे और क्यों अस्तित्व में आया, इस बारे में हम कुछ भी अनुमान करने मे असमर्थ हैं।

एक कृमि—समष्टि एक प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया है, इससे उसमे एक पूर्ण रिजिडिटी है। इस समाज की सामूहिकता अथवा सामाजिकता पूर्ण है। हम उसे गुणित-इकाई (मल्टीपलयूनिटी) भी कह सकते है जिसमें व्यक्ति सामाजिक इकाई का केवल अंश मात्र है, स्वत: वह कुछ भी भिन्न नहीं है। अथवा इस समष्टि को एक ऐसी सावयव इकाई (ऑर्गेनिक यूनिटी) कहा जा सकता है, जिसमें व्यक्ति एक ऐसा अंग मात्र है जो एक सजीव प्रेरणा से अथवा एक ऐसे नियम की अनिवार्य बाध्यता से, जो उसके स्नायुतंतुवाय के निर्माण में ही निहित हैं, एक निश्चित व्यापार को

क्रियान्वित करने के लिए एक साधन मात्र है। इन समष्टियों में जनन-व्यापार भी या तो एक ही व्यक्ति करता है, अथवा कुछ थोड़े से निश्चित व्यक्ति ही करते है, और शेष उस छत्ते की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं (जैसे भोजन इकट्ठा करना, बच्चों को पालना और छत्ते की रक्षा करना इत्यादि) को बड़े सुचारु रूप से पूरा करते है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये सब व्यक्ति एक निश्चित और अविभाज्य प्रक्रिया-योजना की पूर्ति के साधन भर हो। एक ही की सन्तान होने से सब मक्खियों की एकता और भी पूर्ण हो जाती है। यदि इस समष्टि की उपमा एक संगतरे से दी जाए, जिसके विभिन्न भागों को उसका छिलका एक बनाए हुए है तो अनुचित न होगा, क्योकि मक्खियों के इस बहुत्व पर भी एक अदृश्य छिलका विद्यमान रहता है। उनका अपने छत्ते के निर्माण की प्रक्रिया का रूप बड़े रोचक ढंग से इस पहलू को सामने लायेगा। यह तो सभी जानते है कि मधुमक्खियो का छत्ता कितना कलापूर्ण होता है। डारविन इसका वर्णन करते हुए कहता है "यह एक ध्यान देने की बात है कि एक चतुर कारीगर अपने हथियारों की पूर्ण कलात्मकता और माप तौल की पूर्ण सम्यक्ता के साथ भी इस प्रकार का सन्तुलित और सुघड़ मोम का छत्ता बना सकना बहुत कठिन कार्य पायेगा, किन्तु उसे अँधेरे मे कार्य करती हुई विभिन्न मक्खियों का एक झुण्ड बना लेता है। डारविन ने परीक्षण के रूप में एक मोम का टुकड़ा छत्ते में फेंका और थोड़ी देर बाद पाया कि उसको दोनों ओर से और सभी कोठरियों में बराबर काटा गया था, उसकी प्रत्येक कोठरी एक जैसी थी।" डारविन आगे कहता है—इस विषय मे कुछ भी अनुमान करना उलझन को और भी बढ़ाने जैसे प्रतीत होता है कि कैसे ये छत्ते बनाए जाते है, कैसे बहुत सी मक्खियां एक साथ और एक ही समय मे एक पूर्ण योजना से इस प्रकार कार्य करती है।

एक मक्खी एक कोठरी में थोड़ी देर कार्य करके दूसरी में चली जाती है और फिर उसके स्थान पर दूसरी आ जाती है और इस प्रकार बीसियों मक्खिया एक ही छत्ते को पूरा करने मे भाग लेती है,, मानों सब एक ही प्रक्रिया-योजना की विभिन्न पहलू भर हों। इससे स्पष्ट है कि मधुमक्खियों की समष्टि में व्यष्टियां केवल एक खंड या अग मात्र हैं। डारविन इसका कारण बताने का प्रयास करते हुए कहता है—"क्यों कि प्राकृतिक चुनाव (Natural selection) व्यष्टि के जीवन की परिस्थिति के अनुसार व्यष्टि के लाभ की दृष्टि से धीरे धीरे एकत्रित या घनीभूत होते हुए प्रभाव के द्वारा आकृति या प्रवृति के क्रमिक परिवर्तन में होता है, इसलिए स्वभावत:

ही यह पूछा जा सकता है कि कैसे एक दीर्घ कालिक और धीरे धीरे होता हुआ कोष-निर्माण की प्रवृत्ति का यह विकास सभी व्यष्टियो मे वह कलात्मक पूर्णता प्राप्त कर सका जो हम अब इनमे पाते हैं, और कैसे यह इनके पूर्वजों मे सभी व्यष्टियो के लिए इस प्रकार लाभ दायक रहा होगा ?" यहाँ डारविन प्राकृतिक चुनाव और आत्म सुरक्षा को इसका कारण बताता है, किन्तु पहला जहां केवल नकारात्मक पहलू है वहाँ दूसरी ऐसी कल्पना जिस के लिए कोई प्रमाण नही है। प्राकृतिक चुनाव हमे यह नही बताता कि सामाजिक प्रवृत्ति का विकास क्यों हुआ, इससे केवल यह ज्ञात होता है कि इस प्रवृत्ति से रहित व्यक्ति या जातिया विनष्ट हो सकती हैं; और इसके लिए भी कोई प्रमाण नहीं है।

अस्तु, मधुमक्खियों के समान ही चीटियों की बस्ती भी बहुत अधिक सुनियोजित होती है। इस समष्टि मे ऐसे विचित्र व्यवहार भी पाए जाते है, जिन्हे बहुत से वैज्ञानिक बुद्धिमत्ता पूर्ण अथवा युक्त-युक्त व्यवहार समझते रहे, किन्तु ऐसी किसी संभावना की गुजाइस वास्तव मे नही है। चीटी-बस्ती मे श्रम-विभाजन मधुमक्खियो से अधिक विविधता पूर्ण और बस्ती की सुचारुता के लिए अधिक लाभ-कर पाया जाता है। इनमें भोजन की खोज मे प्रयाण करने वाले सैनिक दस्ते, बस्ती की रक्षा के लिए सैनिक दस्ते, बच्चों तथा रानियो के पालन के लिए नर्सें, सर्दार, कोषाध्यक्ष इत्यादि सभी पृथक् पृथक् होते हैं। सैनिक चींटियों का एक दस्ता सदैव द्वार पर सावधान रहता है कि कहीं शत्रु उन पर अचानक आक्रमण न कर दे। ये चीटियाँ अनेक बार लाखों की संख्या मे भोजन की खोज में अपने सर्दारो की अध्यक्षता में बाहर निकलती हैं और उनके तैयार किए रास्ते पर चलती हैं। प्रायः कभी ऐसा नहीं देखा गया कि ये चीटियाँ अपने नेताओं की आज्ञा का भंग करें। एक बार निकारगा मे मिस्टर बेल्ट ने एक बड़ा विचित्र दृष्य देखा। चीटियो की एक बहुत बड़ी सेना गाड़ी की लाइन पार कर रही थी। जब भी गाड़ी निकलती, हज़ारो चीटियां कुचली जातीं। थोड़ी देर बाद बैल्ट ने देखा कि उस स्थान पर एक भी चीटी न थी, यह सेना अब लाइन के नीचे से रास्ता बना कर निकल रही थी। बेल्ट ने इस रास्ते को बन्द करा दिया। इस पर चीटियो के सर्दारो ने खतरा अनुभव किया और एक दम ठहर जाने की आज्ञा सभी पक्तियों मे दे दी गई। चींटियां घंटो उसी अवस्था में खड़ी नवीन आज्ञा की तब तक प्रतीक्षा करती रहीं जब तक कि नया रास्ता तैयार नही हो गया और आगे बढ़ने की आज्ञा नही मिल गई। इसी प्रकार की सुचारुता इनकी बस्तियों की व्यवस्था में भी

पाई जाती है। जब कभी कोई खतरा उत्पन्न हो जाय तब प्रहरी–चीटी प्रत्येक अन्दर आने वाली चीटी की तलाशी ले कर उसे अन्दर जाने देती है, जिससे किसी शत्रु-बस्ती की चीटी अन्दर आकर अशान्ति उत्पन्न न कर दे। इसी प्रकार बच्चों के निवास, भोजन इत्यादि का प्रबन्ध भी बड़ा समझदारी पूर्ण इन बस्तियों में पाया जाता है। (Cheesman)

इस प्रकार के व्यवहार स्पष्टत. समझदारी पूर्ण या विचारणात्मक प्रतीत होते है, क्यो कि द्वार पर आने जाने वाले की जाच का अर्थ है कि शत्रु अपने कुछ सदस्यो को सिखा कर उस बस्ती में भेजते है और वे सदस्य बड़ी चतुराई से धोखा दे कर अन्दर घुसने का प्रयास करते है। किन्तु ये केवल कल्पनाएँ है और इसका कोई प्रमाण नही है कि ऐसा होता ही है। आज अधिकतर वैज्ञानिक चीटियों मे किसी बुद्धिमत्ता या समझदारी की बात स्वीकार नही करते।

अस्तु, मधुमक्खियो मे यह श्रम विभाजन इतना नही पाया जाता, इनमे केवल एक रानी होती है, शेष सभी मजदूर होती है और सभी सब कार्यो को करती है। मधु-संचय के लिए जाते हुए ये मक्खियाँ एक विशेष व्यवहार करती है। जब वे छत्ते मे खाली बैठी हुई शहद इकट्ठा करने के लिये बाहर निकलने की प्रतीक्षा करती है तब एक मक्खी अपने नृत्य से उन्हे कार्य पर चलने के लिए संदेश देती है। तब वे सब एक निश्चित दिशा मे निश्चित दूरी तक जाती है, जिसका सकेत नर्तकी अपने नृत्य द्वारा करती है, और उन फूलो की खोज करती है जिनकी सुगध नर्तकी अपने साथ लाई होती है। वे शहद चूसती है और उन फूलों के स्थान का अध्ययन करके घर लौट आती है। (Tinbergen) चीज मैन के अनुसार चीटिया अधिक समझदार होती है, जब कि मधु-मक्खियो की समझदारी प्रवृत्ति तक ही सीमित है। उसके अनुसार, चीटियो की कुछ जातियो का मेरूदण्ड काफी विकसित है जिससे उनमे वितर्क की सभावना की जा सकती है। वह इसका श्रेय बहुत कुछ दास प्रथा को भी देता है। कुछ चींटियो की जातियाँ तो ऐसी है जो स्वयं भी कार्य करती है और दास भी रखती है, किन्तु बहुत सी ऐसी जातियाँ भी है जो पूर्णत. अपने दासो पर ही आश्रित है, यहाँ तक कि ये अपना खाना तक स्वयं नहीं खा सकती। उनके दास उनके लिए न केवल भोजन-सग्रह करके ही लाते हैं, वे चबाते भी स्वयं ही है और उसे पचने योग्य बनाकर उन के मुँह में डाल देते है। (Darwin) चीज़मैन इन जातियों की चीटियों को सबसे अधिक वितर्क शक्ति से युक्त समझता है, क्योंकि, उसके अनुसार, "इन्हे कोई कार्य विशेष नही करना होता, सिवाय किसी अन्य को

दास बनाने के, इसलिए ये अधिक बौद्धिक विकास कर सकती है"। ऐसा प्रतीत होता है, चीजमैन ने अपनी कल्पना के बल पर ही यह सब कुछ कह डाला है, नहीं तो इसमें कोई भी संगति और युक्ति-युक्तता नही है। जैवी क्षेत्र (biological field) मे जिस प्राणी को जितनी अधिक समस्याओ का सामना करना पड़ेगा उसमे, अपनी शारीरिक योग्यता के अनुसार, उतनी ही अधिक 'समझदारी' होगी। जहाँ तक चीटियो का सम्बन्ध है, इनमे शारीरिक योग्यता इतनी कम होती है कि किसी प्रकार की समझदारी की कल्पना व्यर्थ है। उदाहरणतः दासो पर जीवित रहने वाली ये चीटियाँ ही इतनी अधिक रिजिड होती है कि सामने भोजन पडा होने पर भी स्वय खा नही सकती जब तक कि उनके दास चबाकर उनके मुह मे न डाल दे। यहाँ तक कि वे भूखी तक मर जाती है चाहे उनका भोजन उनके सामने ही क्यो न पड़ा हो। यह नहीं कि वे स्वय खा नही सकती, प्रत्युत यह कि एक प्रवृत्ति से निर्धारित, वे नही खाती। इसलिए स्वय दास प्रथा ही उनमे समझदारी का खडन करती है।

ये सामाजिक कृमि पूर्णत अपने समाज के लिए ही होते है, उससे भिन्न इनके अस्तित्व की कल्पना व्यर्थ है। इसमे कुछ भी आश्चर्य की बात नही है, क्योंकि इनकी यह प्रक्रिया शरीर रचना मे निहित है, इसीसे इनमें समाज भी उतना ही आवश्यक है जितना भूख लगने पर भोजन। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह प्रवृत्ति उनके स्नायुततुवाय मे ही निहित हो, क्योकि चीटी यदि किसी प्रकार पृथक् भी पाली जाए तो भी वह अपनी सन्तान के साथ अथवा अन्य चीटियों के साथ समाज बना लेगी और उसकी बस्ती का प्रबन्ध ठीक ही होगा। वास्तव मे कृमियो की किसी भी प्रक्रिया में पूर्व कल्पना निहित नही होती बल्कि एक निश्चित आन्तरिक धकेल या बाह्य उकसाहट की बाध्यता से ये कृमि एक निर्धारित प्रक्रिया करते है। सामाजिकता या समष्टित्व को भी यहाँ इसी प्रकार अन्त.प्रेरणा से ही निर्धारित कहा जा सकता है, और कुछ नही।

इन सभी छत्तों और बस्तियों में एक छोटे से राज्य परिवार को छोड़ कर शेष सभी केवल मजदूर या दास होते हैं। ये मजदूर उसी जाति के अपने ही सदस्य होते हैं जिसके छत्ते में वे होते है,. दासों के समान अन्य जाति के नही होते। ये मजदूर सब के सब, निरपवाद रूप से बांझ मादाएं होती है जिन्हे केवल छत्ते या बस्ती के लाभ के लिए ही बांझ बनाया गया होता है। यदि इन्हे बडी आयु मे भी राज्य परिवार का भोजन दिया जाय तो भी ये गर्भधारण कर सकती हैं। इस प्रकार ये केवल भोजन की भिन्नता से ही

राज्य परिवार से भिन्न की जाती हैं। किन्तु कुछ चीटियाँ, जैसे ड्राइवर और एनोम्ना दो भिन्न प्रकार की चीटियो को उत्पन्न करती है जो कि सामाजिक आवश्यक्ताओ को और भी कुशलता से पूरा कर सकती है। इनमे एक सन्तान दूसरी से चार से पाँच गुणा तक आकार में बड़ी होती है। यद्यपि इस जेनेटिक योग्यता का कारण सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति नही है, किन्तु यह योग्यता उन्हें अधिक कुशलता पूर्ण समाज निर्माण मे समर्थ अवश्य करती है।

ये सब समाज व्यवस्थाए बहुत विचित्र है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इनमे कुछ या सभी केवल शिशु-पालन के लिए ही हों। जैसे मधुमक्खियों की सभी जातियाँ मैथुन ऋतु के पश्चात् या तो नरों को मार ही डालती है या उन्हें छत्ते से बाहर धकेल देती हैं। सम्भवतः इसका 'उद्देश्य' भोजन की खपत को कम करना है क्योकि नर कोई भी कार्य छत्ते के लिए या भोजन संग्रह के लिए नही करते, वे केवल खाली बैठे खाते है। इसी प्रकार मधुमक्खियों की कुछ जातियां अंडों से बच्चे निकल आने पर, उनके लिए आवश्यक भोजन इत्यादि जुटा कर छत्ते से निकल जाती है और आत्म हत्या कर लेती है—प्रायः अनशन करके।

जैसा कि हम पीछे भी कह आए हैं, इन बस्तियों का जीवन पूर्णतः मज़दूरों के श्रम पर अश्रित है। रानी मक्खी केवल सन्तानोत्पत्ति ही करती है, उसका बस्ती की व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप या भाग नही होता। कुछ जातियों में तो रानी कोठरी में कैद तक होती है, वह उसमें से निकल ही नही सकती। किन्तु बंबल जाति इसकी अपवाद है। यद्यपि इस जाति मे भी एक छत्ते में एक ही रानी होती है किन्तु उनसे भिन्न यह रानी छत्ते के प्रबन्ध का नियत्रण स्वय करती है।

कृमियों में दास वृत्ति संभवतः जन्म जात नही है, ये दास प्रायः पकड़े जाते है और इस वृत्ति के लिए बाध्य किये जाते है, बाद में ये स्वयं ही इसे स्वीकार कर लेते हैं। एक बार डारविन ने एफ० गुइनी चींटी और एफ० फुस्का दास जाति को कृमियो को लड़ते देखा। एफ० सेंगुइनी ने बड़ी निर्दयता से अपने इन छोटे छोटे शत्रुओं को मार भगाया और उसके बच्चों को दास बनाने के लिए पकड़ने का प्रयास किया, किन्तु वे इसमें सफल नहीं हो सकी। इसी प्रकार एक बार और डारविन को एक शिला के पीछे, एफ० फ्लावा और एफ० सेंगुइनी को एक दूसरे के समीप बस्तियों में देखने का अवसर मिला। एफ० सेंगुइनी चीटी फ्लावा को बहुत कम ही दास बनाती देखी गई है। डारविन ने इन दोनों बस्तियों को छेड़ा और उन्हें लड़ा

दिया ! युद्ध मे उसने देखा कि चीटियो ने एक दम एफ० फुस्का के बच्चो को एफ० पलावा मे पहचान लिया और चुन लिया, क्योंकि ये अपेक्षाकृत अच्छे दास होते हैं। इसके पश्चात् वे ऐफ० पलावा का मुकाबिला किए बिना ही मैदान छोड़ कर भाग गई। इससे स्पष्ट है कि अनेक जातियों को अपने दास प्राप्त करने के लिए उस जाति से युद्ध भी करना पड़ता है और उनके बच्चे प्राप्त करने पड़ते है, जिससे वे उन्हें हानि न पहुँचा सकें। दास-प्रथा चीटियों मे ही पाई जाती है। इनके ये दास इनकी बस्तियो मे बचपन से ही रहकर इनके पूर्ण आज्ञा-पालक बन जाते है। अब न तो ये उत्पात ही करते हैं और न विश्वास-घात ही। कुछ जातियो मे तो दास ही बस्तियो के सर्वेसर्वा होते है, क्यो कि इन जातियो की सभी चीटियां सुस्त और परोपजीवी होती हैं।

जैसा कि हम अभी पीछे कह आए है, राज्य परिवार के और मज़दूर वर्ग के सदस्यो मे अन्तर केवल भोजन का अन्तर है, जिससे उनकी शरीर-रचना मे भी अन्तर आ जाता है। यद्यपि सभी प्रकार के भोजन मजदूर ही जुटाते है किन्तु राज्य परिवार को दिए जाने वाले भोजन का उपयोग वे स्वय नही करते, वे श्रम की महत्ता (Dignity of labour) को अच्छी प्रकार से समझते हैं। अनेक बार राज्य परिवार मे किसी मज़दूर सदस्य को ग्रहण करने की आवश्यक्ता होती हैं। तब उसे राज्य परिवार को दिया जाने वाला भोजन ही दिया जाता है और वह शीघ्र ही उस भोजन से राज्य परिवार में रहने योग्य हो जाती है। अब वह सन्तानोत्पत्ति भी कर सकती है और निष्क्रिय तथा आलस्य पूर्ण जीवन भी बिता सकती है। मधुमक्खियो के छत्ते में भी यह प्रथा पाई जाती है। इनमे यद्यपि राज्य परिवार के अडों मे और मज़दूर वर्ग के अडो मे (दोनों प्रकार के अडे एक ही रानी मक्खी एक ही साथ देती है) कोई आकार गत अन्तर नही होता, जैसा कि अन्य अनेक कृमियों में होता है, किन्तु राजकीय अंडों के लिए कमरे यहां भी दूसरो से बड़े होते है। भोजन भी मजदूर बच्चों को राजकीय बच्चों से निम्न कोटि का मिलता है, जिससे वे मज़दूर बनें, जिससे न तो उन्हें राज्य परिवार की सी सुविधाओ और आराम-चैन की इच्छा हो और न मैथुन व्यापार की वासना। भोजन का अन्तर मिटा कर वर्ग भेद भी समाप्त किया जा सकता है, किन्तु यह केवल बचपन की अवस्था मे ही संभव है, बाद में नही। किन्तु सफेद चीटियों में यह परिवर्तन किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। यह आश्चर्य की बात है कि यह सब तब होता है जब कि राज्य परिवार को मज़दूरों के श्रम पर ही आश्रित रहना होता है। नियम का यह कड़ा पालन और राज्य-परिवार के प्रति यह सम्मान की भावना वास्तव में

प्रवृत्ति मात्र है, किसी प्रकार की भावना या विचारणा नही, सभवत इसी से यह 'पूर्णता' इनमे भी पाई जा सकती है।

कैटर-पिल्लर की कुछ उपजातियों मे परिवार प्रथा तो विद्यमान है किन्तु समाज व्यवस्था नहीं है। कैटर-पिल्लर परिवार के सभी सदस्य अपने परिवार के निवास के लिए मिल कर छत्ते का निर्माण करते है। इगलैड के ऐगार कैटर-पिल्लर तो काफी बड़े-बड़े घर बनाते है। इसी प्रकार एक मनोरंजक कृमि एम्बिया भी है। इन कृमियो की बस्ती एक दूसरे के साथ सटा कर बने हुए प्रायः पंक्तिबद्ध कमरो के रूप में बनी होती है। पत्तों पर पलने वाले कृमियों (जैसे एफिड्ज.–जिनकी उपजातियों मे से कुछ एक को चीटियां शहद गाय के रूप मे पालती है) मे भी समाज व्यवस्था कैटर पिल्लरों से कुछ अधिक विकसित होती है, क्योंकि इनमे भी एक रानी होती है जिसके शासन मे ये सब अनुशासित रहते है।

एक छत्ते या बस्ती के कृमि प्रायः एक ही मादा की सन्तान होते है, क्योंकि उपजाऊ मादा सन्तान केवल उन अंडों में से ही उत्पन्न होती है जो अंडे रानी अपने जीवन में अन्तिम बार देती है। उसके पश्चात् बस्ती उजड़ जाती है और नवीन बस्ती का निर्माण होता है। जिन बस्तियों में अनेक मादा मक्खियाँ भी उत्पन्न होती है वहाँ भी वे गर्भवती होनें पर अपनी अलग बस्ती बसा लेती है। रानी को यद्यपि एक बार बच्चे उत्पन्न कर पूर्ण विश्राम का अवसर मिल जाता है किन्तु इससे पूर्व उसे भी आवश्यक कार्य करना पड़ता है।

कृमियों के अतिरिक्त पक्षियों में भी कुछ समाज व्यवस्था पाई जाती है, यद्यपि इनका यह समाज उतना विकसित और व्यक्ति पर उतना हावी नही होता। कुछ चिडियों की उपजातियों में समाज व्यवस्था अन्य जाति के पक्षियों से अधिक विकसित हैं। कौओं और कबूतरों में भी समाज व्यवस्था कुछ सीमा तक पाई जा सकती है, कौओं में अपेक्षा कृत अधिक व्यवस्था है। संभवतः इस का कुछ कारण यह है कि इससे इन्हे कुछ सुरक्षा मिलती है। कौओं में एक दूसरे की सहायता की प्रवृत्ति तो सभी जानते है। चिड़ियों में तो यह और भी अधिक लाभदायक है। किन्तु इन पक्षी-समाजों या समष्टियों में वैसी कोई व्यवस्था नहीं है जैसी कृमियों की समष्टियों मे पाई जाती है। सामान्यतः निर्बल पक्षियों की जातियों में समाज-व्यवस्था अधिक है और इसका सीधा कारण हम दे सकते हैं—शत्रु से रक्षा। इसका दूसरा कारण, और शायद पर्याप्त बड़ा कारण, भोजन की खोज भी

है। संभवतः, उन्हें स्वभाव से भी अकेला रहना उतना पसंद नही। इसका कारण बच्चों से प्यार भी हो सकता है। किन्तु सबसे प्रमुख और 'मौलिक' कारण भोजन की खोज और सुरक्षा की भावना है। शत्रु से बचने के मामले में सहयोग के काफी उदाहरण पाये जा सकते है। पक्षियो की अनेक सामाजिक जातियो में शत्रु को देखने पर खतरे के संकेत के लिए अनेक प्रकार की ध्वनियाँ मिलती है। यद्यपि इस प्रकार ध्वनि करना समाज के लाभ मे है किन्तु स्पष्टतः इसमें व्यक्ति को हानि पहुँच सकती है। इसके अतिरिक्त भय होने पर भी आवाज करना वैसे ही खतरनाक है। किन्तु झुड मे होने पर यह सावधानी-सूचक ध्वनि व्यक्ति के लिए उतनी खतरनाक नही, क्योकि तब वह झुड में सभी की सहायता से ही बच सकता है। टिटमोस की जाति में बाज को देखने पर इसी प्रकार झुन्ड के सभी व्यक्ति खतरे की आवाज करते है और साथ ही साथ बचाव का प्रयास भी करते है। यदि यह झुन्ड कही बैठा हुआ हो तो खतरे की आवाज पर सब चुप होकर और ठिठक कर पास के आश्रयो में छिप जाते है। यूरोपियन स्टार्लिंग जब झुन्ड रूप में सामान्य अवस्था में उड़ रहे होते है तो उनकी पंक्तियाँ बिखरी हुई सी होती है और वे एक दूसरे से कुछ दूरी पर उड़ रहे होते है, किन्तु ज्यों ही वे बाज को देख लेते है, प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से प्रायः सट जाता है और अब ये आश्चर्य जनक रूप से व्यवस्थित होकर बड़ी तीव्र गति से गोलाकार रूप में चक्कर काटने लगते है। टिन्बर्जन के अनुसार, बाज के शिकार करने के ढंग को देखते हुए स्टार्लिंग की यह प्रति-क्रिया और उपाय एक दम उपयुक्त प्रतीत होता है। उसके अनुसार, बाज उड़ते हुए पक्षी पर आक्रमण करते हुए प्रायः १५० मील प्रति घन्टा की तीव्र गति से सर्राता हुआ झपटता है। उसकी यह तीव्र गति स्टालिगों के लिए इस प्रकार लाभदायक हो जाती है कि वे झुन्ड रूप में तीव्र गति से गोलाकार चक्कर काटते हुए उसके लिए टकरा जाने का खतरा उतपन्न कर देते है। इतनी तीव्र गति से अपने शिकार पर कूद कर वह तभी टकराने से बच सकता है यदि वह पहले अपने सशक्त पंजे उसके मारता है तो। किन्तु बड़ी तीव्र गति से चक्कर काटने से एकाकार हुआ यह झुन्ड उसके लिये यह असंभव कर देता है। इससे यह बाज इन पर इस प्रकार आक्रमण नहीं करता, तब वह केवल अव्यवस्थित से आक्रमण करता है और प्रयास करता है कि कोई व्यक्ति इस झुन्ड में से टूट आए। यदि उनमें कोई निर्बल या बच्चा होता है और वह टूट जाता है तब तो बाज उसे पकड़ने में समर्थ होजाता है किन्तु यदि वह इसमें सफल नहीं होता तो उसका प्रयास विफल जाता है। टिन्बर्जन के अनुसार और भी अनेक

पक्षियों की जातियों ने बाज से बचने के लिए इसी उपाय को अपनाया है।

किन्तु बहुत सी जातियो मे मिलकर शत्रु पर आक्रमण करने की भी प्रवृत्ति है । यह आक्रमण प्राय: इस प्रकार किया जाता है — कोई एक व्यक्ति खतरे की सूचना एक विशेष प्रकार की ध्वनि करके देता है, इस पर सभी व्यक्ति उसके साथ सट जाते है और एकत्रित हो कर शत्रु पर आक्रमण करते है । झुण्ड का इसके अतिरिक्त यह लाभ भी है कि शत्रु को देखने और उसको सूचना देने के लिए अधिक आँखें हो जाती है , क्यों कि शत्रु प्राय: बहुत ही सावधानी से छिप कर आकस्मि आक्रमण करने का प्रयास करता है । कुछ पक्षी, जैसे कौए, काली चीड़िया इत्यदि अपने शत्रु को प्राय: ही तंग करके भगा देते है–विशेषत. बिल्ली इत्यादि को, किन्तु कुछ पक्षी केवल चिल्ला कर ही रह जाते है ।

पक्षियों मे इस प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य प्रक्रियाओं और पहलुओं में भी सामाजिकता के कुछ चिह्न पाए जाते है, एक जाति के सभी व्यक्ति प्रवास के समय इकट्ठ हो जाते है । कुछ पक्षियो मे नर, और ऐसों की संख्या काफी अधिक है, एक ऋतु मे एक ही या निश्चित दो-तीन मादाओं से ही संबध बनाता है और उसके साथ घोंसला बनाने तथा शिशु पालन का कार्य करता है । कुछ जातिया मे तो यह प्रवृत्ति और भी विकसित मिलती है, उदाहरणत: कौओं की एक विशेष जाति जेकड़ॉ में व्यक्ति गत प्यार और विद्वेष की भावना पर आधारित सामाजिक संबंध भी पाए जाते है । इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी बस्ती के अधिक शक्तिशाली और अत्याचारी साथी से बचता है, और उनसे सपर्क बढ़ाने का प्रयास करता है जिनके साथ विश्रब्ध भाव से रहा जा सकता है । सशक्त व्यक्ति का सभी आदर करते है और उससे घबराते है । मादा व्यक्ति यहां भी शासित है जैसे मनुष्यो में । यदि कोई निम्नश्रेणी की मादा उच्चश्रेणी के नर के साथ संबंध स्थापित करने मे सफल हो जाती है तो बस्ती के सभी पक्षी उसका भी आदर करने लगते है । इस जाति में प्राय: प्रत्येक व्यक्ति–नर एक ही मादा से आजीवन संबंध रखता है, किन्तु उसके मर जाने र अथवा किसी अन्य कारणों से औरों को भी स्वीकार कर सकता है । (Larenz)

इस सामाजिकता की प्रवृत्ति को हम एक टिपिकल प्रवृत्ति कह सकते है, विशेषत: कृमियों में, क्यों कि उनमें यह प्रवृत्ति और इसके साथ जुड़ी हुई अन्य प्रवृत्तियाँ परिणाम में सामान्यत: चाहे कितनी लाभ दायक हों, पूर्णत: रिजिड है, वे स्वत: चालित (Automobile) मशीन के समान अन्तर या बाहय उकसाहट से प्रेरणा पाकर तदीय प्रक्रिया को क्रियान्वित

कर देते है। उदाहरणतः, चींटियां अपने नेताओं से बनाए गए गंध-पथ पर अंधा धुंध चली जाती है, किन्तु यदि उसमे थोड़ा सा भी विक्षेप डाल दिया जाए अर्थात् यदि उस रास्ते के छोटे से भाग को पोंछ कर छोड़ी गई गंध को साफ कर दिया जाए, तो वे एक दम झमेले मे पड़ जाएँगी और अपने रास्ते से या तो भटक जाएगी अथवा आकस्मिक रूप से उसे प्राप्त कर सकेंगी। इसी प्रकार दास वृत्ति के लिए भी कहा जा सकता है। जो चीटिया पूर्णतः या जिस भी अंश तक दासों पर निर्भर करती है वे उसी सीमा तक उनके अभाव में पीड़ित भी होंगी, किन्तु उनकी यह निश्क्रियता और दासों के विशेष स्पर्श की उकसाहट के साथ उनकी प्रक्रियात्मक योजना इतनी रिजिडिटी से जुड़ी हुई है कि वे भोजन सामने पड़ा होने पर भी नही खा साकतीं, अथवा उस भोजन का अर्थ उनके लिए भोजन नही रहता। उनके लिए भोजन एक प्रक्रियात्मक व्यापार है, इसके अतिरिक्त उनके लिए कोई वस्तु भोजन (भोजन का स्वतंत्र विचार नहीं। जहाँ तक जेकडा का सबंध है, हमे ऐसा प्रतीत होता है कि लारेंज् का यह वर्णन कुछ अधिक रगीन है, उसमें अपनी कल्पना का समावेश काफी प्रतीत होता है, अन्यथा एक पलीत्व एक सीधा सा प्रवृत्यात्मक व्यापार है।

इस यांत्रिक प्रक्रिया (प्रवृत्ति) के और भी कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं और प्रवृत्ति को ठीक तरह सें समझने के लिए यह आवश्यक भी है कि हम अधिक से अधिक उदाहरणो को देखें।

आँटलायन इस यंत्रीकरण और रिजिडिटी तथा परिवृत्ति के साथ संबंध का एक बहुत उपयुक्य उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह कृमि प्रायः सूखी रेता और सूखी मिट्टी मे ही रहना पसंद करता है। यह अपने भोजन के लिए चीटियों तथा अन्य इसी प्रकार के छोटे कृमियो को एक विशेष ढ़ंग से पकड़ता है। इन कृमियों को पकड़ने के लिए यह एक विशेष प्रकार का गोलाकार सुराख सा ज़मीन में बनाता है, जो ऊपर से कुछ चौड़ा और नीचे की ओर क्रमशः छोटा होता जाता है। पहले वह किसी सूखी मिट्टी की जमीन पर एक तरफ गोल रेखा बनाता है और तब सिर से तीव्र गति से मिट्टी बाहर की ओर फेंकते हुए पीठ की ओर से भीतर पैठता रहता है। इस क्रिया व्यापार के समय यदि किसी ऐसे रोड़े इत्यादि को वह बाधा रूप में पाए जो इसके शरीर से बड़ा हो और जिसे यह सामान्य क्रिया से न हटा सकता हो, तो यह एक ओर से इसके नीचे जा कर इसे धकेल धकेल कर बाहर फेंक देता है। यह कर लेने पर यह पुनः अपने कार्य पर लौट आता है। यदि कोई छोटा रोड़ा या अन्य कोई वस्तु बीच

में आ जाती है तो वह अपनी हँसिये के समान डाढ़ों पर तौल कर पूरे जोर से बाहर फेंक देता है। जब यह गोलाकार बिल आधा बन जाता है तब यह बीच से कुछ चपटे आकार का होता है किन्तु बाद में यह कृमि इसे नीचे से सूक्ष्म और ऊपर से बड़े, ज्यामिति के त्रिशंकु के समान बना लेता है और उसमे अपना शरीर मिट्टी मे छिपाए केवल मुँह बाहर निकाले अपने शिकार की प्रतीक्षा मे बैठा रहता हैं। यदि इस गोलाकार मे कोई रोड़ा या कुछ मिट्टी पड़ जाए तो वह वही से बैठा ही उसे बाहर निकाल फेकता है। किन्तु यदि यह मिट्टी किसी भोज्य कृमि के साथ लुढ़ककर आई हो तो यह तुरन्त उसे हटा कर बड़ी चतुराई से उसे अपने क्रूर जबड़ों मे ले लेता है।

आँटलायन सदैव अपना घोसला या शिकार-मंच रेतीली अथवा सूखी मिट्टी वाले तथा वर्षा से सुरक्षित स्थान पर बनाता है, यद्यपि उस स्थान पर धूप का होना आवश्यक है। इससे यह प्रायः किसी वृक्ष की बड़ी मोटी शाखा के नीचे होता है। ऐसा स्थान रेतीली ढलानों मे, नदी के रेतीले किनारों पर या जगलो के किनारो पर अधिक सुविधा से प्राप्त हो जाता है, ऐसे स्थानों पर चीटियां और दूसरे कृमि भी काफी मात्रा में उपलब्ध हो सकते है।

यह छोटा सा कृमि अपने जीवन-व्यापार के ठीक संचालन के लिए कैसे ठीक स्थानों को खोज लेता है, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है यद्यपि बहुत सीधा भी। प्रथम तो वह उत्पन्न ही ऐसे स्थानों पर होता है, क्यों कि उसकी माता के लिए भी ऐसे ही स्थान सुविधा जनक होते है, किन्तु यदि वे कहीं अनुपयुक्त स्थान पर भी उत्पन्न हो जाए तो भी वे थोड़ा बहुत भटकने के बाद अपनी जाति के लिए सुविधा जनक स्थान को खोज लेते है। यह कार्य यद्यपि प्रथम दृष्टि में आश्चर्य जनक प्रतीत होता है, किन्तु यह समझ लेने पर कि इन प्राणियों का जीवन निरन्तर अपनी परिवृत्ति की भौतिक-रासायनिक परिस्थितियों के साथ ऐसे ही बँधा हुआ है जैसे उनके अन्तः-शरीर की भौतिक रासायनिक परिस्थितियों का आपस में सीधा संबंध है तब यह कोई आश्चर्य की बात नही रहती। वे एक निश्चित कार्य-कारण सबध में बँधे कार्य करते हैं, मनष्य के समान वे अपनी 'स्वतत्र मानसिक सत्ता' मे नही रह सकते। इसीसे आँटलायन को जब तक अपनी शारीरिक मांग के अनुसार परिवृत्ति प्राप्त नही हो जाती तब तक वह असुविधा और अकुलाहट का अनुभव करता हुआ निरन्तर उपयुक्त को खोजने के लिए दौड़ता है। इस खोज के लिए उसे किसी भी प्रकार की पैतृक-स्मृति बाध्य नही

करती प्रत्युत् असुविधानुभूति की अकुलाहट की यांत्रिक प्रेरणा ही बाध्य करती है। यह एक ऐसी ही अचेतन क्रिया है जैसे मनुष्य सरदी मे पास पड़े हुए किसी भी ओढ़न को बिना उसका विचार किये ही ऊपर ओढ़ लेता है अथवा नीद मे पड़ा हुआ मनुष्य गर्मी लगने पर स्वयं अनजाने ही कपड़ा उतार देता है। इसी प्रकार ऑटलॉयन सामान्यतः अपना उपयुक्त स्थान खोज लेता है। प्राकृतिक परिवृत्तियो में वह सामान्यतः २५°से ३०° सेन्टीग्रेड तापमान मे सबसे अधिक क्रिया शील और सुविधा में होते है। यदि नवोत्पन्न बच्चे अपने आप को प्रच्छाय, पकिल या पथरीले स्थानो मे पाते है, तब वे सूर्य की किरणों का स्पर्श पाते ही उपयुक्त स्थान की खोज मे प्रकाश किरणो की ओर दौड़ पड़ते है। जब वह एक उपयुक्त सूखी, गर्म रेतीली जमीन प्राप्त करता है तभी यह शिशु आँट-लायन अपना शिकार स्थान खोदने लगता है। यदि यहाँ काफी शिकार प्राप्त हो जाय तो वह वही रहना प्रारंभ कर देता है, किन्तु यदि शिकार पर्याप्त न हो तो वह उस स्थान को छोड़ कर दूसरे की खोज करता है। इस प्रकार उसे किसी प्रकार की स्मृति या 'अतिरिक्त-प्रवृत्ति' निर्धारित नही करती प्रत्युत् उसकी शारीरिक आवश्यक्ताएँ ही उसे नियोजित करती है। संभव है किसी प्रकार की स्मृति भी उसे प्राप्त हो, जो कि उसके प्रवृत्यात्मक व्यवहार मे देखी जा सकती है—जैसे, वह एक विशेष प्रकार का ही शिकार-गृह या मच बनाता है जो कि संभवतः इस प्रकार उसकी शरीर रचना मे निहित न हो, किन्तु इन प्राणियों मे आश्चर्यजनक रूप से एक व्यवहार के लिए जो रिजिडिटी पाई जाती है उससे ऐसा प्रतीत होता है, यह भी किसी न किसी रूप में शरीर-रचना में ही निहित प्रवृत्ति होगी जो कि विशेष बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियो के उत्पन्न होने पर क्रियान्वित हो जाती है।

इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण दिये जा सकते है। यहाँ हम फेबर द्वारा प्रदर्शित कैटरपिल्लरों के एक समूह का उदाहरण देंगे जो कि भोजन की खोज में जा रहे थे। ये कैटरपिल्लर चीड़ के वृक्षों पर एक बड़ी बस्ती के रूप में रहते है और भोजन के लिये छोटी छोटी यात्राएं करते है। इन यात्राओ में ये बिल्कुल एक दूसरे के पीछे, एक सिलकन सूत्र की रेखा पर, जो कि उनका लीडर बनाता है, चलते है। एक बार फेबर इस बस्ती के भोजन-यात्रा पर निकलने पर उसे एक बड़े पत्थर के चारों ओर इस प्रकार घुमाने मे सफल हो गया कि एक पूरा और अटूट चक्कर बन गया। अब यह झुंड उसी चक्कर मे चलने लगा और पूरे एक सप्ताह तक इसी चक्कर मे चलता रहा। एक भी कैटरपिल्लर इस चक्कर को तोड़ कर भोजन और विश्राम खोजने के लिए बाहर निकलने मे समर्थ नहीं हो सका। अन्त मे

आठवें दिन अचानक ही कुछ व्यक्ति उस चक्कर से निकल पड़े और वह सूत्र टूट गया, जिससे वे उस मुसीबत से छूट सके। (रसल द्वार विहेवियर ऑफ एनिमल्ज से उद्धृत)

एक भारतीय चींटी बार्बारुस अपने घोंसले से आठ इंच पर मिट्टी का ढेर लगाती है। इस पर वह प्राय. बीजों के छिल्लक भी फेंकती है। एक बार हिंग स्टोन ने इस जाति का घोंसला एक दीवार मे देखा। उसने सोचा कि चींटियाँ घोंसले के मुंह से ही छिल्लक इत्यादि नीचे गिरा देंगी, किन्तु उसने देखा कि यह उसका गलत अनुमान था। चींटियाँ इन छिलकों को आठ इंच नीचे तक लातीं और वहाँ से उन्हें छोड़ देतीं, उसी प्रकार सावधानी से मानो ढेर पर रख रही हों। यह व्यापार महीनों तक इसी प्रकार चलता रहा। वे अपनी सामान्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त कुछ नही सीख सकीं।

इसी प्रकार प्रवृत्ति की रिजिडिटी प्राणियों के किसी विशेष वस्तु के प्रति विशेष-व्यवहार अथवा प्राणी के बाह्य विषय के साथ प्रक्रियात्मक सम्बन्ध में भी पाई जा सकती है—कोई जाति-विशेष किसी विषय विशेष से अथवा किसी रूप विशेष से एक विशेष प्रकार का ही सम्बन्ध क्यों रखती है, उसका उसके लिए वही विशेष अर्थ क्यों है, अन्य क्यों नही ? इसके मुख्यतः दो कारण हो सकते हैं—प्रथम तो यह कि वह किसी विशेष वस्तु से किसी विशेष मानसिक स्थिति में ही संम्पर्क में आयी हो और वह वस्तु उसी रूप में उसके लिए अर्थ रखती हो, और दूसरा यह कि प्राणी अपनी अन्तरनुभूति से ही उसका विशेष अर्थ समझता हो ! पहले का उदाहरण बिल्ली के लिए चूहे का अर्थ भोजन होना हो सकता है और दूसरे का उदाहरण नर थ्रीस्पाइंड स्टिक्कल बैक का केवल लाल पेट वाले स्टिक्कल बैक पर आक्रमण करना हो सकता है। यदि चूहे को बिल्ली के सम्पर्क में पहली ही बार ऐसे लाया जाय कि बिल्ली उससे डर जाए तो बिल्ली के लिए चूहे का अर्थ भोजन न हो कर भयद वस्तु होगा, किन्तु कठिनाई यह है कि चूहा बिल्ली को देख कर भागता है, इसलिए वह उससे, सम्भव है, सदैव डरती न रहे, किन्तु यदि प्रारम्भ से चूहे को उसके लिए स्नेह की वस्तु बना दिया जाए तो उसके लिए सभी चूहों का अर्थ स्नेह की वस्तु हो सकता है। थ्रीस्पाइंड स्टिक्कल बैक मै मथुन ऋतु में नर पर आक्रमण करता है। इसी प्रकार इंगलिश रोबिन भी नर रोबिन के लाल पंख देखकर उस पर आक्रमण कर देता है। किन्तु सम्भवतः उसका अर्थ उसके लिए भी उसी प्रकार निश्चित नहीं हुआ जैसे बिल्ली के लिए चूहे का होता है। इसमें सम्भवतः उसके अपने पेट का लाल होना भी उसे अपने प्रति-द्वन्दी का यह विशेष अर्थ समझने मे कारण

होता है। किन्तु उसके लिए कोई प्रयोग-सम्मत प्रमाण नहीं दिया जा सकता है, यह केवल सम्भावना भर है। किन्तु पहले के लिए यदि कही प्रमाण नहीं भी है तो इसे पूर्णतः तर्क संम्मत संभावना तो कहा जा सकता ही है।

प्रायः सभी प्रवृत्तियाँ किसी न किसी प्रकार से इन दोनों के अन्तर्गत आ सकती है। किन्तु कुछ प्रवृत्तियां ऐसी भी होती है जो उतनी स्पष्ट रूप से प्रक्रियात्मक अथवा इस प्रकार किसी विशेष से संबद्ध नही होतीं, जैसे हमने पीछे कैटर पिल्लरों का एक लाइन में चलने का उदाहरण दिया था। इसी प्रकार आॅट लाँयन का अपने शिकार-मंच को खोजना भी इसका उदाहरण कहा जा सकता है। आँट लायन के लिए यहाॅ इस प्रकार से नहीं कहा जा सकता कि रेत का उसके लिए अर्थ है शिकार-मंच बनाना, क्योंकि एक बार शिकार मंच बन जाने पर वह वैसी अन्य स्थिति मिलने पर भी उसे नही बनाएगा। इस प्रकार कुछ व्यवहारों को केवल अन्तः प्रेरणा का परिणाम भी कहा जा सकता है। इस प्रकार की प्रक्रियाओ के कारणों को हम प्रथम निबध में पर्याप्त विस्तार से देख ही आए है, इससे हम यहाँ दूसरी प्रकार की प्रवृत्तियों के उदाहरण ही अधिक देंगे।

अस्तु, हैरिङ्गल के नवोत्पन्न शिशु माता-पिता की चोंच पर अपनी चोंच लगा कर उनसे भोजन माँगते है। माता-पिता अपने गले की थैलियो में सँजोंया हुआ भोजन नीचे उगल देते है और फिर थोड़ा-थोड़ा भाग उठा कर उनके मुँह में डालते है। थोड़ी भूल्तियों के पश्चात् शिशु भोजन ग्रहण कर लेता है और इसे निगल लेता है। हैरिन्गल की चोच कुछ पीली होती है और निचली चोंच के अग्र भाग में एक लाल बिन्दु सा होता है। अब बच्चे के सम्मुख ठीक उसी रंग की चोंच वाली एक लकड़ी की विकृत सी आकृति रखी गई। शिशु में बड़ी उत्सुकता से उससे भोजन ग्रहण करने की प्रक्रिया देखी गई, किन्तु जब उसके सम्मुख बिलकुल ठीक आकृति की एक ऐसी लकड़ी की मूर्ति प्रस्तुत की गई जिसकी निचली चोंच पर लाल बिन्दु नही था तो वह एक दम उलझन में पड़ गया। आगे फिर इसी बिन्दु को लेकर और भी प्रयोग किये गए। बच्चा इन लकड़ी की आकृतियों में किसी भी रंग के बिन्दु वाली आकृति के प्रति अधिक परिचय-भावना प्रकट करता था। इन सभी आकृतियों की चोंच का वही रंग रखा गया था जो गल (Gull) की चोंच का होता है, इससे स्पष्ट है कि बच्चे का प्रक्रियात्मक व्यवहार सबसे अधिक चोंच के बिन्दु पर केन्द्रित है।

प्रायः ही प्राणियों में देखा गया है कि उनका प्रक्रियात्मक संबंध बाह्य विषय के किसी एक पहलू के साथ ही रहता है जब कि शेष उससे उपेक्षित

रहता है, किन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि प्राणी विशेष के लिए एक वस्तु का केवल एक इंद्रिय विषय के रूप में महत्व है और दूसरी का दूसरे इन्द्रिय-विषय के रूप मे। इससे भी अधिक, एक ही वस्तु या विषय के विभिन्न पहलुओं के विभिन्न इन्द्रियों के साथ संबन्ध है और एक पहलू एक इंद्रिय का विषय हो कर दूसरे के लिए विषय नहीं रहता। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते है कि मनुष्य या विकसित प्राणियों के समान उनकी विभिन्न इन्द्रियों के विषय मस्तिष्क केन्द्र मे सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। यदि मनुष्य एक व्यक्ति की केवल आवाज ही सुनता है, वह दुबारा भी उसकी आवाज़ से ही उसे पहचान सकेगा किन्तु यदि किसी की वह आवाज़ उसकी आकृति के देखने के साथ सुनता है तो कभी भी उसकी आवाज़ श्रोता में उस व्यक्ति की दृष्टिगत स्मृति को भी उत्पन्न कर देगी। किन्तु बहुत से प्राणियो में यह शक्ति नहीं है। ब्रयूकनर के अनुसार घरेलू मुर्गी अपने बच्चों की भय-पूर्ण पुकार सुनकर तुरन्त उसकी रक्षा के लिए दौड़ेगी, किन्तु यदि उसके बच्चे उसके सामने ही चुपचाप तड़प रहे हों तो उसमें कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न नही होगी। उसने एक बच्चे को एक बार उठाकर किसी अदृश्य स्थान पर रख दिया, मुर्गी उसकी पुकार सुनते ही उसकी रक्षा के लिए व्याकुल हो उठी, जब कि एक शीशे के बर्तन मे उसके सामने तड़पता बच्चा उसका बिल्कुल भी ध्यान आकर्षित नहीं कर सका। इसी प्रकार, चींटी अपने बच्चों को केवल सूंघकर पहचान सकती है, देखकर नहीं। चीटी के लिए कहा जा सकता है कि उसके लिए संपूर्ण संसार ही केवल घ्राणेंद्रिय का विषय है। इसी प्रकार अन्य बहुत से उदाहरण दिये जा सकते है—लेसियों केम्या जाति की कुछ तितलियों में मादा केवल तभी नर के लिये मैथुन-विषय हो सकती है जब उसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्नहो, ग्रेलिंग जाति की तितलियों में नर केवल अपना सुगंधित अंग खोल कर ही मादा के लिए मैथुन-विषय हो सकता है अन्यथा नहीं। स्टिक्कलबैक में नर मादा के लिए लाल पेट और एक विशेष प्रकार के नृत्य के साथ ही मैथुन विषय हो सकता है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार इपिफिग्गर जाति की टिड्डियों में केवल गाता हुआ नर ही मैथुन विषय हो सकता है। यदि एक नर उसके बिल्कुल समीप भी हो और मैथुन के लिए प्रस्तुत हो, तो भी वह दस गज की दूरी पर गाते हुए नर की ओर भागेगी, अपने समीप वाले नर की परवाह नहीं करेगी। (Tinbergen)

इस प्रकार की प्रक्रियाएं संभवतः इसलिए ऐसी है कि ये प्राणी दो भिन्न इंद्रियों की स्मृति का स-संबंध स्थापित नहीं कर पाते,

प्रतीत होता है कि इनके लिए विशिष्ट इन्द्रिय-विषय विशिष्ट प्रक्रिया के साथ इस प्रकार बंधा होता है कि उसके प्रस्तुत होते ही उस प्रक्रिया के लिए जितनी वासना और शक्ति उसके पास होती है वह क्रियान्वित हो जाती है। इस प्रकार इन प्रवृत्यात्मक प्राणियों के लिए संपूर्ण विश्व विभिन्न प्रक्रियाओं का समूह मात्र है जो प्रक्रियाएं एक दूसरे से स्वतंत्र अस्तित्त्व रखती है। मादा ग्रेलिंग के लिए दो स्थितियो मे एक ही नर दो भिन्न विषयों के रूप मे है, उसके लिए वह एक ही विषय नहीं जिसके विभिन्न पहलू हो सकते है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि जैसे मनुष्य के लिए एक देवदत्त विभिन्न रूपों में भी वही देवदत्त है वैसा प्रवृत्यात्मक प्राणियों में नही है। हम कह सकते हैं कि देवदत्त खाता है, देवदत्त सोता है, देवदत्त पढ़ता है इत्यादि, ऐसा इन प्राणियों के लिए नही है।

उदाहरणत: कृष्ण-शिर गल को लें। इसके लिए अपना ही अंडा विभिन्न स्थितिओं में विभिन्न प्रक्रियाओं का विषय है, अथवा वह उसके लिए भिन्न भिन्न विषयों के समान है। यदि पक्षी अंडा सेने वाला (Broody) है और अंडा घोंसले मे पड़ा है तो उसके लिए यह सेने का विषय होगा। यदि घोंसले में कोई ऐसी वस्तु भी रख दी जाय जो गोल हो और लगभग उसी आकार और बनावट की हो, फिर चाहे उससे काफी भिन्न भी प्रतीत होती हो, पक्षी उस पर उसी प्रकार बैठेगा जैसे अपने अंडे पर बैठता है। यदि उसके घोंसले में लौटने पर उसके अडे में छेद हुआ है तो उसके लिए वह कुछ पीने की वस्तु हो जाता है, चाहे बच्चा काफी बन चुका हो। इसी प्रकार किसी दूसरे पक्षी के घोंसले में पड़ा अंडा भी उसके लिए कुछ पेय पदार्थ ही होता है फिर चाहे वह उसका अपना ही अंडा क्यों न हो। यदि उसका अंडा उसके घोंसले के बिल्कुल समीप पड़ा हो तो उसके लिए वह कुछ घोंसले मे लौटाने की वस्तु होता है—प्रत्येक गल के लिए अंडे का लौटाने की वस्तु होना उसके घोंसले से एक से डेढ़ फुट तक के अंतर पर पड़े होने पर ही हो सकता है, उससे बाहर वह केवल उपेक्षा का विषय ही हो सकता है—पक्षी के लिए उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार एक और भी उदाहरण इस 'प्रक्रियात्मक सम्बन्ध परिवर्तन' का दिया जा सकता है। ब्रोक (Brock) ने पागारूस पक्षी के सागर्शिया पारासिटिका (Sagartia parasitica) के साथ प्रक्रियात्मक सम्बन्ध का अध्ययन करके बड़ा मनोरंजक चित्रण प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार सामान्य अवस्था में पागारुस पक्षी गास्ट्रोपोड को अपने गृह के रूप में वर्तता है और इस पर सागर्शिया के पौधे लगाता है। यदि ये पौ` इस पर

से हटा दिये जॉय और पागारुस भूखा न हो तो वह पुनः उन्हें उस पर चिपका देगा किन्तु भूख लगने पर वे उसके भोज्य द्रव्य होंगे। यदि पागारुस को घर बनाने के लिए गास्ट्रोपोड न मिले तो वह सार्गशिया को दबा कर घर के समान वर्तता है। इस प्रकार सार्गशिया उसके लिए उसकी विभिन्न आवश्यकताओं के समय विभिन्न प्रक्रियात्यक सम्बन्ध रखता है।

यह उदाहरण पिछले उदाहरणों से विपरीत है, क्योकि वहाँ एक ही विषय विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न विषयों के रूप में प्रतीत होता है और इसमें एक ही विषय एक ही स्थिति मे भिन्न भिन्न वासनाओं में भिन्न भिन्न विषयो का पर्याय होता है। वास्तव में प्रक्रियात्मक सम्बन्ध को निर्धारण करने में दोनों ही पहलू महत्व पूर्ण हैं।

यह प्रायः निश्चित ही है, जैसा कि हम दूसरे निबंध में भी विस्तार से देख आए है, कि कोई भी प्रक्रिया या प्रवृत्ति चाहे किसी समय प्राणी के लिए उपयोगी होने से ही उसके द्वारा अपनाई गई हो किन्तु बाद में वह केवल एक याँत्रिक व्यापार मात्र रह जाती है। ये 'उपयोगी' प्रवृत्तियाँ तब भी चलती रहती है जबकि उस जाति की परिवृत्ति बिल्कुल परिवर्तित हो चुकी हो और उस परिवृत्ति में यह उपयोगी प्रवृत्ति हानिकारक हो। उदाहरणतः कठफोड़ा अपने भोज्य बीज वृक्षों की फटनों में सग्रह करता है और अभाव के दिनों में उनका उपयोग करता है। टेलीफोन की तारों के लिये खंभे लगने पर उस ने उन बीजों को उन खंभों की दरारों में भी रखना प्रारम्भ कर दिया। जिस ऋतु में (सितंबर-अक्तूबर में) यह बीजों का संग्रह करता है उन दिनों इनकी दरारें खूब खुली होतीं है किन्तु ये वर्षा होने पर बहुत तंग हो जाती हैं, जिससे यह पक्षी इन बीजों का अभाव के दिनो (सर्दी) में उपयोग नहीं कर पाता, क्योंकि तब बीज सड़ जाते है। इस तरह वे प्रति वर्ष करते है और प्रति वर्ष हानि उठाते है। इसी प्रकार कुछ कठफोड़े एक टूटे फूटे सूने घर मे रहते थे। वे अपने भोज्य बीज एकत्रित कर उस घर की दरारों में रख देते थे, किन्तु दरारे गहरी होने से वे बीज भीतर चले जाते और उनकी पहुँच के बाहर हो जाते। इस पर भी यह पक्षी प्रति वर्ष उसी प्रकार हानि सहता रहा, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया।

इसी प्रकार राईडप्लोवर अपने अंडे सागर या नदी के किनारे की पथरीले कंकड़ों की जमीन में देता है जहाँ पर कि ये देखे न जा सकें। किन्तु जब यह पक्षी अपने अंडे घास में भी देता है तो भी यह अपने घोंसले को पत्थरों से ढँक देता है। इस प्रकार वह तब भी अपनी उस प्रवृत्ति को नहीं छोड़ता जबकि उसका कोई भी उपयोग नही होता। (Ritter)

इसी प्रकार एक मछली केवल उन्हीं प्राणियों को खाती है जो कि उसकी नीचे की ओर तैर रहे हों। यह प्रायः रात को शिकार करती है। यह अपने गले के नीचे लटकते तंतुओं से अपने शिकार के होने का अनुमान करती है और शिकार के होने पर वह उस पर आक्रमण करती है, किन्तु यदि शिकार उसके ऊपर हो तो उसको देखने पर भी वह शिकार नहीं करती। यदि इसका शिकार उसे ऊपर से छू भी जाए तो भी वह उसे नही पकड़ती। इतना ही नही, अनेक बार तो यह अपने शिकार के ऊपर होने पर उससे बुरी तरह से डरती भी है जब कि उसके नीचे आते ही उस पर आक्रमण करती है। इसी प्रकार कुछ मछलियां शिकार के नीचे होने पर उनको नहीं देखतीं जब कि ऊपर आते ही उन्हें पकड़ने को दौड़ती हैं।

प्रवृत्ति के लिए सामान्य लोगों से लेकर बड़े बड़े दार्शनिक और वैज्ञानिक तक अनेक बार यह सोचने की भूल करते हैं कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो अतिप्राकृतिक रूप से समझदारी पूर्ण और अपनी सफलता में अथवा लक्ष्य बेध में अचूक है। यह एक बड़ी भूल है जो कि ऊपर दिये उदाहरणों से देखा जा सकती है। यह ठीक है कि प्रवृत्ति प्रायः एक विशेष ढङ्ग से एक विशेष परिवृत्ति में बहुत अधिक 'अचूक' होती है किन्तु थोड़े से भी परिवर्तन से यह एक नितान्त मूढ़ता पूर्ण व्यापार हो जाती है, और प्राणी तब भी मशीन के समान उसी प्रकार व्यवहार करता रहता है। पक्षियों के नवजात शिशु अपनी माता को झट प्रवृत्ति से ही पहचान लेते हैं किन्तु वे उतनी ही अधिक भूलें भी करते हैं, उदाहरणतः कोई उनकी माता के समान आवाज़ करके उन्हें अपने पीछे लगा सकता है, यहाँ तक कि काफी बड़े बच्चे भी, जो उड़ तक सकते है, उनकी माता के समान आवाज करने पर भागे आते हैं और बोलने वाले के ऊपर आकर बैठ जाते हैं। छोटे बच्चों को तो केवल उंगली दिखा कर अथवा किसी वस्तु से छूकर बहकाया जा सकता है, वे तुरन्त चिल्लाने लगते हैं और भोजन के लिए मुह खोल देते हैं। बर्गसां ने प्रवृत्ति की अचूकता और अति प्राकृतिक समझदारी पर इतना बल दिया है कि आश्चर्य होने लगता है कि इतना बड़ा दार्शनिक भी इतनी भावुकता से क्यों बातें कर रहा है। किन्तु वास्तव में उसका वाइटलिज़्म का समर्थन उसकी इस बड़ी कमी का उत्तरदायी है। वह 'क्रीयेटिव इवोल्यूशन' में फेबर को उद्धृत करते हुए एम्मोफीलिया की अपने बच्चों के लिए ताजा भोजन जुटाने के लिए कैटरपिल्लर के एक विशेष ढंग से डंक मारने की प्रवृत्ति की अचूकता का बड़े उत्साह से वर्णन करता है। किन्तु ड्रेवर के अनुसार—

"डा० और श्रीमती पैंकहैम ने दिखाया है कि ऐम्मोफीलिया का कैटरपिल्लर के डंक मारना एक दम अचूक नहीं है, जैसा कि फेबर कहता है। प्रथम तो उसकी डंक मारने की संख्या सदैव एक सी नहीं होती, इसके अतिरिक्त कभी कभी कैटरपिल्लर पूरी तरह से आहत नहीं होता और कभी कभी यह पूरी तरह से मर जाता है। इस प्रकार कभी कभी कैटरपिल्लर के न आहत होने से भी ऐम्मोफोलिया के बच्चों को उसके हिलने डुलने से कोई हानि नहीं पहुँचती और न उसके मर जाने पर उसके मांस के सूख जाने से ही कोई हानि पहुँचती है।" इसी प्रकार हम एक और उदाहरण ड्रेवर से उद्धृत करेंगे, वह कहता है–

"लोमेचूसा मक्खी का बच्चा चींटियों के बच्चों को खाता है, जिसके कि घोंसले में वह पलता है। फिर भी चीटियां लोमेचूसा के बच्चों को उतनी ही सावधानी से पालती हैं जितनी सावधानी से अपने बच्चों को। इतना ही नहीं, बड़ी जल्दी वे जान लेती हैं कि महमान बच्चों को उसी प्रकार पालना और खिलाना बच्चो के लिए घातक होगा जैसे अपने बच्चों को, इस प्रकार वे उन्हें पालने और खिलाने के ढंग भी शीघ्र ही खोज निकालती है।" 'एनेलेसिस ऑफ माईंड' से उद्धृत)

इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि कैसे प्रवृत्तियाँ न केवल अचूक ही नहीं होती प्रत्युत् किसी जैवी उद्देश्य से भी प्रायः रहित होती हैं, ऐसी प्रवृत्तियाँ प्राय: प्रक्रियात्मक सम्बंध से ही विकसित होती है, ऐसा हमारा विचार है। इन मूर्खता-पूर्ण और चूकने वाली प्रवृत्तियों के हम थोड़े से और उदाहरण देकर इस प्रकरण से आगे बढ़ेंगे।

प्रेगमैटिस अपना घोसला बनाने में बड़ी चतुराई का परिचय देती है, क्योंकि यह वहाँ घोंसला बनाती है जहाँ पहचाना न जा सके। किन्तु यदि मैथुन ऋतु मे गर्भाधान नहीं किया गया तो भी यह अपना घोंसला बनाती है और कभी कभी तो दो से तीन तक घोंसले बना डालती हैं, जिनमें वह खाली अंडे देती है, जिनसे बच्चे उत्पन्न नहीं होते। इतना ही नहीं, कुत्ते जैसे समझदार प्राणी भी प्रक्रियात्मक संबंध से या अन्तर्वासना से प्रेरित होकर भूलें करते हैं। उदाहरणत: एक बार एक कुत्ती के गर्भ-भ्रम (Pseudo Pregnency) हो गया और छाती में दूध उतर आया। वह अब बच्चों के लिए इधर-उधर रोती फिरती रही। वह इतनी व्याकुल थी कि जहाँ कहीं उसे कोई बोरी का टुकड़ा या ऐसी वस्तु भी दिखाई पड़ती वह उसे बच्चा समझ कर उसकी ओर दौड़ती। अन्त में वह कोठे के ऊपर पहुँची और भूसे के कोठे में उसने बच्चों के लिए गुफा सी बनाई। तब उसे चूहे के कुछ बच्चे दिये गए और उसने बड़ी ही उत्सुकता से उनका स्वागत किया और उन्हें

अपनी छाती के समीप ला कर दूध पिलाने का प्रयास किया। वह उन्हें बहुत देर तक चाटती रही। तब उसे वहाँ से हटाने का प्रयास किया गया, किन्तु वह स्वीकार न करना चाहती थी। जब उसे किसी प्रकार हटने के लिए राजी किया गया, उसने उनको भूसे से बड़ी सावधानी और प्यार से ढँक दिया। इस प्रकार यह सुविधा से कहा जा सकता है कि कृमि, पक्षी तथा मछलियाँ इत्यादि बड़ी रिजिडिटी से अपनी प्रक्रियात्मक योजना को मशीन के समान क्रियान्वित करते हैं; स्तनपायी यद्यपि उनकी अपेक्षा कम रिजिड होते है, किन्तु वे भी अपनी अन्तर्वासनाओं को व्यय करने के लिए यंत्रवत् ठीक या गलत क्रियाएं करते हैं।

जो प्राणी अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं जैसे बन्दर, शिम्पांजी इत्यादि, यहां तक कि कुत्ता, हाथी और गाय इत्यादि भी, उनमें प्रवृत्ति अधिकतर अन्तःशारीरिक वासाओं की धकेल और आत्मव्ययी प्रक्रियाओं के रूप में ही अधिक पाई जाती है, किन्तु वे अपने प्रक्रियात्मक व्यापारों मे उतने रिजिड नही हैं। बन्दर और शिम्पांजी तो अपेक्षा कृत बहुत ही कम रिजिड होते है। इनमे काफी से अधिक समझदारी और अतएव नवीन परिस्थितियों को नवीन ढंग से स्वीकार करने की शक्ति रहती है। किन्तु जो शारीरिक वासनाएं है, उनसे ये भी उतने ही बाध्य हैं जितने अन्य प्राणी, किन्तु यहाँ भी इनमे यह भिन्नता है कि ये आत्मव्ययी प्रक्रिया मे काफी स्वतंत्र हो सकते हैं। उदाहरणत शिम्पांजी जहाँ कुत्ते इत्यादि के समान मादा की पीठ पर चढ़ कर और पिछली टांगें जमीन पर टिका कर भी मैथुन की व्ययशील प्रक्रिया करता है वहाँ कभी-कभी पिछली टांगों पर कुछ झुक कर खड़े होकर मादा को अपनी बाहों मे कस कर भी मैथुन करता है। मादा भी पहले व्यापार में जहाँ अपनी पिछली टांगों को कुछ खोल कर अपना भग उद्घाटित करती है वहाँ दूसरे में अपनी बाहें नर के गले मे डालकर पिछली टांगों से उसके नितबों के समीप आलिंगन करती है। इसी प्रकार, बन्दरों को यदि मादा मैथुन व्यापार के लिए न मिले तो वे किसी नर से ही मैथुन कर लेते है। इसी प्रकार खाने के लिए भी बन्दर को ऐसी वस्तु खिलाई जा सकती है जिसे वह प्रकृति में नहीं खाता।

मनुष्य मे प्रवृत्ति और शिक्षा बहुत अधिक घपला-सा बन गई हैं, किन्तु वह भी अन्ततः अपने मानसिक निर्माण में बहुत कुछ उसी प्रकार प्रवृत्तियों का दास है जैसे कोई भी अन्य प्राणी। उसमें न केवल अपनी वासनाओं की दासता ही है प्रत्युत् वह बहुत दूर तक प्रक्रियात्मक संबन्ध में भी प्रवृत्यात्मक हो जाता है। उदाहरणत. प्रेम को लें--एक व्यक्ति अपनी प्रेमिका को बहुत

प्यार करता है, वह उसे सबसे अधिक सुन्दर लगती है, उसको देखते ही अथवा उसका विचार आते ही उसकी वासनाएं जग जाती है इत्यादि, यह क्यो ? क्यों उसे दूसरी कोई लड़की, उसकी प्रेयसी से अधिक सुन्दर होने पर भी, यह आकर्षण नहीं दे पाती ? यह केवल संयोग पर निर्भर है । इस संयोग का कारण यह होता है कि उस व्यक्ति का उस विषय (प्रेयसी) के साथ एक प्रक्रियात्मक संबन्ध स्थापित हो गया रहता है । इसका मुख्य कारण यह भी होता है कि वह अपने किसी मधुर क्षण (Life of the moment) में उसको इस प्रकार देख सका होता है और उसमें अपनी तृप्ति की ऐसी आशा से आप्लावित हो चुका होता है कि वह क्षण उसके हृदय में स्थायी हो जाता है, लाभग उसी प्रकार जैसे बिल्ली के हृदय में चूहे का भय। इस प्रकार उसके लिए वह लड़की परी हो जाती है। उनमें और किसी प्रकार का आध्यात्मिक संबन्ध नहीं होता । यदि ऐसा ही अवसर उसे किसी भी अन्य लड़की के साथ मिलता तो वही उसके लिए प्रेयसी हो जाती । इस प्रकार अनन्त काव्यों की स्रोतस्विनी प्रेयसी केवल मनुष्य की प्रक्रियात्मक प्रवृत्ति की परिणाम है । इसी प्रकार मनुष्य के किसी भी अकारण प्यार, अकारण द्वेष इत्यादि की अन्य क्रियाओं में भी देखा जा सकता है । "वह व्यक्ति यद्यपि बहुत अच्छा है पर पता नहीं क्यों उसे देखते ही मेरा खून खौल उठता है" इत्यादि बातें हम प्रायः ही सुनते हैं और ये उसी प्रकार प्रक्रियात्मक संबंध की सूचक हैं।

किन्तु मनुष्य इसमे अपेक्षा कृत काफी कम रिजिड है और अपने अधिकांश व्यापारों में तो काफी समझदार भी । जहाँ तक वासनात्मक धकेल (Appetitive push) का सम्बन्ध है, मनुष्य में वह उसके प्रक्रियात्मक संबन्ध तथा सामाजिक परिवृत्ति से बहुत अधिक प्रभावित होती है। कुछ दूर तक सामाजिक परिवृत्ति भी मनुष्य में प्रक्रियात्मक रिजिडिटी के रूप में ही होती है, जैसे सदाचारी (इसका अर्थ प्रत्येक का अपना होता हैं) रहने का विचार उसमें उसकी मानसिक योजना (Mental desposition) के रूप में निहित हो जाता है और दुराचार करते हुए उसको कुछ भद्दा और विचित्र लगता है। इस प्रकार यदि कहा जाय कि उसकी वासना उसकी विचित्र प्रक्रियात्मक-योजना से बहुत अधिक प्रभावित होती है; तो अधिक उचित होगा ।

संभवतः फ्रायड के स्वप्न विज्ञान के आधार में मनुष्य की इसी शारीरिक वासना और उसके मन की प्रक्रियात्मक योजना का घपला ही है। कम से कम जागृत अवस्था मे तो यह घपला काफी अधिक प्रभावशाली होता है।

सोते समय प्रक्रियात्मक योजना वासना पर संभवतः कुछ इस प्रकार प्रभाव डालती है कि जब किन्ही भौतिक रासायनिक कारणों से प्रसुप्तावस्था में कोई वासना जन्म लेती है (मान लो वह भोजन की वासना है) तब व्यक्ति की वह वासना एक विशिष्ट प्रकार के स्वप्न को जन्म देगी, जैसे वह व्यक्ति अपनी विशेष वासना के समान एक विशेष भोजन को अपनी प्रक्रियात्मक योजना के अनुसार जुटाएगा और उसे अपनी विशेष प्रक्रियात्मक योजना के अनुसार खायेगा। जैसे, एक ऐसा व्यक्ति, जिसने कभी छुरी-कांटा नहीं देखा, स्वप्न में कभी छुरी-काँटे से नहीं खाएगा।

मेरे विचार में स्वप्न का कारण किसी न किसी प्रकार की शारीरिक उकसाहट ही होती है। मान लीजिए किसी व्यक्ति को किसी ऐसी परी का स्वप्न आता है जो प्रतिक्षण दैत्य और परी बारी-बारी बनती है, इसका भी कारण किसी प्रकार की अन्तः शारीरिक उकसाहट या अव्यवस्था को ही कहा जा सकेगा। हम प्रायः ही ऐसे रोगियों की देखते है जो अपने चारों ओर भूत-प्रेत देखते हैं और डरते है। इसका कारण प्रायः यह होता है कि अग्र-मस्तिष्क निर्बल पड़ जाता है और पृष्ठ मस्तिष्क की तथा स्नायुतंतुवाय की क्रियाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता। किन्तु क्यो किसी व्यक्ति को भूत और किसी को शेर दिखाई पड़ते है, सभी को एक जैसी आकृतियां दिखाई नही पड़तीं ? इसका कारण विशिष्ट स-सम्बन्धो उकसाए जाना है, जो कि शरीर वैज्ञानिक तथ्य है। यह तो प्रायः सभी ने अनुभव किया होगा कि यदि सोते समय दिल पर या छाती पर हाथ आ जाय तो अनिवार्य रूप से डरावने स्वप्न आते है। इसी प्रकार यदि किसी कारण से मस्तिष्क निर्बल पड़ जाय तो भी विचित्र विचित्र स्वप्त आते हैं और व्यक्ति प्रायः बड़-बड़ाने लगता है और कभी-कभी स्वप्न में चलने भी लगता है।

इससे भी आगे बढ़ कर यदि यह कहा जाय कि व्यक्ति एकांत में बैठे क्यों एक विशेष स्मृति की आवृत्ति कर रहा है दूसरी की क्यो नही, अथवा क्यों वह अचानक किसी गीत की पंक्ति गुन गुनाने लगा है दूसरे की क्यों नहीं ? फ्रायड ने इस प्रश्न को भी उठाया है, किन्तु वह मन को एक रहस्यमय गुहा मानता था। उसके कारण उसके विश्लेषण से हम सहमत नही हैं। उसने यद्यपि इस प्रश्न का वहाँ कोई उत्तर नहीं दिया किन्तु हम उसके उत्तर का अनुमान कर ही सकते है। हमारे विचार मे, इस प्रकार किसी विशेष अभावानुभूति का होना, किसी विशेष स्मृति का होना, अथवा किसी विशेष गीत को गुनगुनाना किसी प्रकार की केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय मे उत्पन्न उकसाहट के ही कारण कहा जा सकता

है। इन्हें क्रॉटज़िग (Kratizig) के शब्दों मे वेक्यूमएक्टिविटीज़ भी कहा ज सकता है। लॉरेंज के अनुसार केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय स्वयं भी अनेक ऐसे आवेगों को जन्म देता है जो प्राणी को किसी व्यापार मे प्रवृत्त करते है। संभवतः मस्तिष्क तंतुओं और मस्तिष्क के रासायनिक स्थलो मे भी उकसाहट विशेष व्यापारों को जन्म देती है।

इस प्रकार मनुष्य भी बहुत दूर तक प्रवृत्ति (वासना और प्रक्रियात्मक योजना) तथा स-संबंधों से ही परिचालित होता है। परिवृत्ति से उसका संबंध यद्यपि बिलकुल प्रवृत्यात्मक ही नही है, जैसा कि हम पिछले निबध में देख आए है, किन्तु फिर भी वह कुछ प्रवृत्तिमय भी है।

पिछले अध्याय में हम प्रवृत्ति और विचारण में कुछ अन्तर कर आए है, किन्तु यह विचारणा कभी भी मनुष्य मे पूर्ण नही हो सकती—कारण स्पष्ट है:—क्योंकि वह अपने शरीर से पूर्ण स्वतन्त्र नही हो सकता।

REFERENCES

1. *Bergson. H.* .. Creative Evolution, (New York)
2. *Cheesman* .. Chapters from Every day doings of Insects. (London)
3. *Darwin* .. Migration of Birds (London)
4. *Darwin* .. Origin of Species (London)
5. *Freud* .. Introductry lectures on Psychoanalyses (London)
6. *Hebb. D. O.* .. Integration of Behavior (New York)
7. *Russell. B.* . The Analyses of mind (London)
8. *Russell E. S* . Behavior of Animals (London)
9. *Tinbergen* .. The Study of Instinct (London)

६—शरीर और मन

शरीर और मन के प्रश्न को लेकर हमने पिछले निबंधों मे मन के शरीर से स्वतन्त्र अस्तित्व न होने के पक्ष मे विभिन्न शरीर-वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत किये है। उन से यह प्रमाणित हो सकता है कि शरीर "मानसिक" घटनाओं का कारण है यद्यपि यह प्रमाणित नही होता कि मन मानसिक घटनाओं का कारण नही है। इसके अतिरिक्त कल्पना, स्मृति और विश्वास इत्यादि, विशुद्ध रूप से मानसिक कहे जाने वाले व्यापारों के स्वरूप पर भी हमने इन निबन्धों में विचार नहीं किया, जो कि मन के स्वरूपज्ञान के लिए आवश्यक है। यहाँ हम इन पहलुओं पर संक्षेप में विचार करेंगे।

मन की भौतिकता या अतिभौतिकता के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की निर्णयात्मक बात कहे बिना हम शरीर और मानसिक-प्रक्रियाओं या घटनाओं की पृथक्-पृथक् श्रेणियाँ बना सकते है। जब कि कल्पना, स्मृति और वितर्कना को मानसिक घटनाएँ कहा जा सकता है, आवेगों और स्नायविक-व्यापारों (रीफ्लेक्स एक्शंस) को हम भौतिक-शारीरिक घटनाएँ कह सकते हैं। आग का भौतिक स्पर्श और शरीर में जलन की प्रतिक्रिया स्वरूप सम्बन्धित अंग और फिर सम्पूर्ण शरीर का अव्यवस्थित स्फुरण एकदम शारीरिक घटनाएँ हैं जब कि इस घटना की कल्पना मानसिक घटना है। कल्पना में हम आग देख सकते है; उसका स्पर्श कर सकते है और यदि यह कल्पना पर्याप्त बलवती है, जैसे स्वप्न में, तो जलन की पीड़ा का अनुभव भी कर सकते हैं, किन्तु इस से शरीर जलेगा नहीं, इस स्वप्न के भंग होने पर किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होगी। इस प्रकार कल्पना निश्चित रूप से अग्नि-स्पर्श की भौतिक घटना से बहुत भिन्न है। यदि हम भौतिक पदार्थो के अस्तित्व को अपने से स्वतन्त्र मान लें, तो हम इन दो घटनाओं में कारण-सम्बन्धों की भिन्नता के आधार पर पार्थक्य कर सकते हैं। किन्तु यदि हम वेदान्तियों या कार्टे-सियनों के समान अपने से पृथक् किसी भी भौतिक अस्तित्व को अस्वीकृत कर दें तो हमारे लिए कल्पना और भौतिक घटना अथवा 'यथार्थ घटना' में अन्तर करना संभवतः असंभव हो जाएगा। इसी से ह्यूम कल्पना और

वास्तविक घटना में केवल तनाव का अन्तर ही मानता है। क्योंकि वह कारण-सम्बन्धों को केवल नियमित अनुक्रम-मात्र स्वीकार करता है। इससे अग्नि-स्पर्श की अनुभूति और कल्पना में कोई कारणता-जन्य अन्तर नहीं रह जाता, क्योंकि अग्नि-स्पर्श केवल नियमित-पूर्वगामी घटना-मात्र है जिस पर पश्चगामी घटना का होना दैशिक या कालिक-क्रम से निर्भर नही है किन्तु कारणता की यह कल्पना हमारे विचार में कुछ संगत नहीं है, जैसा कि हम अन्तिम निबन्ध मे देखेंगे और इसी से कल्पना और 'वास्तविक घटना' में भी ह्यूम का स्वीकृत अन्तर मान्य नही है। 'तनाव का अन्तर' स्वयं स्पष्ट परिभाषा नहीं है, क्योंकि कोई सीमा-रेखा निश्चित नही की जा सकती जिससे इधर की ओर तक तनाव होने पर एक घटना को कल्पना कहा जाए और उसको लाँघने पर वह वास्तविक घटना बन जाए। फिर स्वप्न या सन्निपात में कल्पनाएँ उतनी ही या उससे भी अधिक बलवती होती है जितने सामान्य आवेग या स्नायविक क्रियाएँ। इसलिए कल्पना को तनाव की कमी के आधार पर अग्नि-स्पर्श की वास्तविक घटना से पृथक् नही किया जा सकता। इन दोनों की कारण-शृंखलाओं के प्रारम्भ के आधार पर ही इनमें अन्तर किया जा सकता है और उसी आधार पर उन्हें 'भौतिक और मानसिक' कहा जा सकता है। इसी प्रकार स्मृति के लिये भी। स्मृति, जिस रूप में वह सामान्यतः समझी जाती है, किसी अतीत वास्तविक घटना की मानसिक पुनरावृत्ति है। स्मृति की घटना और भौतिक घटना को हम कुछ इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—जब कि भौतिक घटना की कारण-शृंखला के छोर उस से एकदम पूर्व की घटना—शरीर और अग्नि का स्पर्श—में निहित है; स्मृति की कारण-शृंखला का एक स्वतन्त्र छोर किसी दैशिक-कालिक रूप से विच्छिन्न पूर्व की घटना मे विद्यमान होता है। शीशे का टूटना या आग के स्पर्श से जलन की पीड़ा और शीशा टूटने या जलनानुभूति की स्मृति इनके उदाहरण हो सकते हैं। इसी प्रकार कुछ विशुद्ध शारीरिक घटनाएँ भी हो सकती हैं। सभी प्रकार की स्नायविक क्रियाएँ शारीरिक व्यापार है। छींकना, पलक-झपकना इनके उदाहरण हो सकते हैं। किन्तु बहुत-सी शारीरिक घटनाएँ मानसिक घटनाओं से अनुगमित होती हैं। जैसे, सेंसेशंज और आवेग। वास्तव में सेंसेशंज और मानसिकता इतनी समवेत रहती हैं कि उन्हें पृथक् करना कठिन कार्य है। तो भी इन्हें कुछ इस प्रकार समझा जा सकता है—आग का स्पर्श और उसकी पीड़ा से हाथ का हटना दो घटनाएँ हैं, इनमें हाथ के हटने से पूर्व की घटना प्रायः सेंसेशन है, हाथ का हटना स्नायविक व्यापार और उसके पश्चात् मानसिकता बीच में आ जाती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की दृष्टि सेंसेशन है किन्तु उसका

सुन सकता हूँ और यदि इस पर मैं आरी चलाऊँ तो यह कट जाएगा, आग में डालने पर इस से लपटें उठेंगी और यह राख हो जाएगा और इसका एक भाग काट कर यदि किसी के सिर में मारा जाए तो वह एक विशेष प्रकार से व्यवहार करेगा इत्यादि। मेज़ अपने आप में कुछ भी हो और उसके ज्ञान की मेरी प्रकृति कैसी भी हो, हम यहाँ यह मानने के लिए सहमत होते हैं कि हमारे मेज के ज्ञान की कारण-शृंखला उस दैशिक विन्दु से प्रारम्भ होती है, जहाँ मेज़ है। इसके विपरीत हमारी कल्पना की मेज़ के हमारे ज्ञान की कारण-शृंखला बाह्य मेज़ से कोई सम्बन्ध नही रखती। बर्ट्रंड रसल कहते है—"चेतना और विचारों का कार्य यह है कि ये हमे देश या काल में सुदूर के विषयों से सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ करते है" यही बात कल्पना के लिए भी कही जा सकती है।

अब हमारे पास कल्पना की अतिभौतिकता के दो प्रमाण है—प्रथम तो अतिभौतिक कारणता के प्रारंभिक छोर के रूप मे और दूसरा अतिभौतिक कारणता के अन्तिम छोर के रूप में—अर्थात् कल्पना की उत्पत्ति मे एक स्वतन्त्र कारण के रूप मे, एक अतीत घटना बिना किसी दैशिक और कालिक संबंध के वर्तमान घटना-स्मृति को उत्पन्न करती है और दूसरे यह स्मृति वर्तमान स्मृति-चित्रों के ज्ञान मे पर्यवसित न होकर दैशिक और कालिक रूप से सुदूर विषयों के ज्ञान में पर्यवसित होती है। किन्तु स्मृति-कारणता और स्मृति-ज्ञान की व्याख्या कारण-सिद्धान्त की सामान्य भौतिक प्रणाली से भी की जा सकती है। उदाहरणतः सूई की चुभन सेंसेशन है जिसकी कारण-शृखला का प्रारंभ उस दैशिक विन्दु से होता है जहाँ सूई की नोक है। किन्तु उसी प्रकार की चुभन अनेक बार हमारे शरीर में सुई बिना भी होती है, और यदि सुई बहुत धीरे से छुई जाय तो बहुत संभव है हम इन दो चुभनों में अन्तर ही न कर पाएँ। इसी प्रकार नाक के भीतर कुछ स्पर्श करने से छींक आती है और किसी आन्तरिक कारण से भी छींकें आ सकतीं है और यदि किसी सोए हुए व्यक्ति के नाक मे धीरे से स्पर्श किया जाये तो वह इन दो कारणों मे अन्तर नहीं कर सकेगा। अब यहाँ स्पष्ट है कि चुभन और छींक रूप घटनाओं की कारण-शृंखला का प्रारम्भ कहीं से भी हो सकता है और इन दोनों ही अवस्थाओं में हम इन्हें सेंसेशन या स्नायविक व्यापार कहेंगे। इसलिए केवल दैशिक स्तर पर कारणता की भिन्नता कल्पना सेंसेशन में अन्तर नहीं कर सकती। इस प्रकार मेरी मेज़ की कल्पना और मेज़ की पर्सेप्शन में उस अवस्था में कोई अन्तर नहीं हो सकता यदि अन्तर केवल कारण-शृंखला के प्रारभ की दैशिक स्थिति को लेकर ही है—यदि इस दैशिक स्थिति के अन्तर का केवल इतना

अभिप्राय है कि कल्पना-मेज की कारण-शृंखला का मूल उसी प्रकार शरीर के किसी भाग में है जैसे सूई की बिना चुभन की पीड़ा की कारण-शृंखला का हमारे शरीर के भीतर ही है।

किन्तु कल्पना की मानसिक कारण-शृंखला से अभिप्राय ऐसे दैशिक और कालिक अन्तर से नही है, यद्यपि हमारे विचार मे अन्तर केवल यही है। कल्पना या स्मृति की विशेषता दैशिक और कालिक स्तर पर सुदूर के विषयों से कारण-सम्बन्ध में है, और वास्तव मे यह विशेषता विचारों की न हो कर कल्पना और स्मृति की है।

अब हमे देखना यह है कि क्या दैशिक और कालिक-रूप से विच्छिन्न घटनाओ में कारण-सम्बन्ध संभव है ? यहाँ हम इस प्रश्न को केवल प्राकरणिक रूप से ही देखेंगे। इस सम्बन्ध में विशेष विचार हम इस पुस्तक के अन्तिम निबन्ध में करेंगे। इसे देखने के लिए हम अपने एक मित्र का स्मृति-चित्र लेंगे। अब यह ठीक है कि मेरे मित्र का स्मृति-चित्र उसके दैशिक और कालिक स्तर पर मुझसे दूर होने पर भी मुझे उसका ज्ञान करवाता है। किन्तु, हमारे विचार में, यह घटना मित्र के मेरे पर्सेप्शन से आधारभूत रूप से भिन्न नहीं है, अथवा यह कि इस स्मृति-चित्र की कारण-शृंखला का आरंभ किसी सुदूर पूर्व की घटना से नहीं होता, जैसा कि रसल कहते हैं। रसल की स्मृति की व्याख्या को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—"वर्तमान उकसाहट अ एक पूर्व घटना घ की सहायता से वर्तमान स्मृति-चित्र स को जन्म देती है और यह स्मृति स घ का ज्ञान न हो कर केवल घ के साथ समता रखती है और उसमें एक प्रकार की परिचितता की अनुभूति होती है।" स्मृति की इस व्याख्या में स के कारण रूप मे ध और अ दो स्वतन्त्र कारणों को रखा गया है जबकि ध का अस्तित्व वर्तमान में नहीं है। हमारे विचार में कारणता का यह रूप भौतिक विश्व में कहीं देखने में नही आता, जैसा कि हम अन्तिम निबन्ध में देखेंगे। किसी भी घटना ध का कारण केवल – १ + घ ही हो सकता है और कोई भी कारण – २ + घ, – १ + ध, के माध्यम से ही ध का कारण हो सकता है। अथवा – २ + ध केवल एक अनुक्रम में शृंखला है जो – १ + घ से एकदम पूर्व या उसका कारण है और इसी प्रकार – १ + ध ध का कारण है। यद्यपि – १ + ध के अस्तित्व के लिए – २ + घ अनिवार्य है और इस प्रकार ध के अस्तित्व के लिए भी अनिवार्य है, किन्तु – १ + ध अकेली ही घ के अस्तित्व के लिए काफी है, यदि हम इसे – १ + ध के बिना भी प्राप्त कर सकें। इस प्रकार, यदि स्मृति को भी हम एक भौतिक घटना स्वीकार करें तो

उसका कारण अ और एक अतीत घटना ध न होकर अ और मस्तिष्क की एक परिवर्तित स्थिति म होगी। यह परिवर्तित स्थिति उस पूर्व घटना ध की मुद्रा (Trace) है जो घटना के घटित होने के समय मस्तिष्क में मुद्रित हो गई थी। स्मृति-कारणता की ये दो कल्पनाएँ क्रमशः निम्न प्रकार से चित्रित की जा सकती हैं।
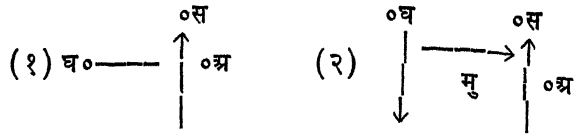
यहाँ प्रथम ग्राफ में अतीत घटना ध रहस्यमय रूप से वर्तमान उकसाहट अ के साथ स्मृति को उत्पन्न करती है, जो वर्तमान घटना है। ध और अ के बीच कोई दैशिक और कालिक सम्बन्ध नहीं है सिवाय नियमित अनुक्रम संबंध के, जिसे कि रसल कारणता कहते हैं। इसके विपरीत दूसरे चित्र में ध म को जन्म देता है अथवा अतीत घटना मस्तिष्क में मुद्रण का कारण बनती है जो कि मस्तिष्क की एक परिवर्तित स्थिति-मात्र है और इस प्रकार वर्तमान उकसाहट वर्तमान मुद्रण के साथ स्मृति का कारण बनती है। यहाँ म और अ स की सद्यः पूर्ण की कारण घटनाएँ हैं।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि मुद्रा की हमारी कल्पना के क्या आधार हैं? जहाँ तक हमारा वर्तमान ज्ञान हमें बताता है, अभी तक मस्तिष्क में ऐसी किन्हीं मुद्राओं का अस्तित्व हमें पता नहीं है। इसलिए मुद्रा की कल्पना की वकालत को न्याय्य कैसे कहा जा सकता है?—विशेषतः उस अवस्था में जबकि स्मृति-चित्रों के सम्बन्ध में हमारी सहज अनुभूति हमें यह विश्वास प्रदान करती है कि हमारी स्मृति का कारण स्मृति घटना है और स्मृति में हमारा ज्ञान उस घटना का ही है। इस प्रकार सहज अनुभूति हमें रसल से भी अधिक 'स्मृति की मानसिकता' की ओर ले जाती हैं। इसके अनुसार ध न केवल अ के साथ स्मृति का कारण ही बनता है। प्रत्युत् यह भी कि ध अ मिलकर ध के ही स्मृति-ज्ञान को जन्म देते हैं, इस कल्पना को हम निम्न प्रकार से चित्रित कर सकते हैं—
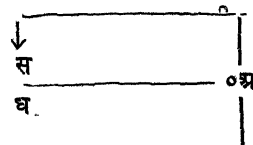
यह कल्पना हमारी भाषा में भी मूलित है। जैसाकि—"मुझे खूब याद है, जब

हम वहाँ मिले थे" से स्पष्ट है। किन्तु इन कल्पनाओं को स्वीकार करने का अर्थ है एक सर्वथा भिन्न प्रकार के कारण-सम्बन्धों की कल्पना करना जिनकी सम्भावना का कोई आधार नही है। भौतिक विश्व में हम केवल दो ही प्रकार से कारण-सम्बन्धों को जानते है (१) या तो किसी घटना के सम्पूर्ण स्वतंत्र कारणों को घटना से सद्यः पूर्व की घटनाओं मे केन्द्रित होना चाहिए, (२) अथवा यदि कोई कारण सद्यः पूर्व के क्षण में केन्द्रित नही हो सकता तो उसे कार्य-घटना के घटित होने तक श्रृंखला में सहानुगमित होना चाहिए।

जहाँ तक मुद्रा-सिद्धान्त का सम्बन्ध है, उसकी पुष्टि में कुछ तर्क दिये जा सकते है। हम जानते हैं कि मस्तिष्क मे से यदि विशेष प्रदेशों को घायल कर दिया जाए तो हमारी विशेष स्मृति-शक्ति जाती रहती है और यदि उन्हें ठीक कर दिया जाए तो स्मृति पुनः लौट आती है। इसलिए उन प्रदेशों को स्मृतियों के स्थान या आधार कह सकते है और सम्भावना कर सकते है कि उनमें अत्यन्त सूक्ष्म स्मृति-मुद्राएँ होंगी जो घटनाओं के घटित होने के पश्चात् उन प्रदेशों में उसी प्रकार चिह्नित हो जाती होंगी जैसे ग्रामोफोन-रेकार्ड में ध्वनियाँ मुद्रित हो जाती है। यह आवश्यक नहीं कि मुद्रण किसी ज्ञात ढंग से होता हो, संभव है इस मुद्रण का कुछ अज्ञात ढंग हो। यदि हम यह स्वीकार कर लें तो, स्मृति-चित्रों की उत्पत्ति के लिए अतीत घटना का घटित होना आवश्यक नहीं है, यदि उसके बिना भी हमारे मस्तिष्क में वैसी मुद्राएँ मुद्रित की जा सकें तो भी हम उचित उकसाहट के होने पर स्मृतिचित्रों को उसी परिचित के साथ देखेंगे और उसी प्रकार हमें उनके पहले घटित हुए होने में विश्वास होगा। मुद्रा-सिद्धान्त के पक्ष में स्वप्नों को भी उदाहृत किया जा सकता है। अब मान लीजिए कि मैंने सांड़ के सींग और शेर के दाँतों वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में न कभी सोचा है और न कभी सुना है, किन्तु इन तीनों प्राणियों को देखा है। अब रात को सोते हुए अचानक मेरा हाथ हृदय पर टिक जाता है जिससे रक्त की स्वच्छन्द गति में बाधा पड़ती है और परिणामतः मुझे भयानक स्वप्न आता है। यह निश्चित है कि इस प्रकार छाती पर हाथ आ जाने पर अवश्य ही भयानक स्वप्न आएगा। अब संभव है, इस स्वप्न में मैं एक ऐसा प्राणी देखूं जो साँड़ के सीगों और शेर के दाँतों वाला मनुष्य हो। सामान्य भौतिक नियमों के अनुसार इसकी व्याख्या यह दी जा सकती है कि रक्त के दबाव ने मस्तिष्क के उन प्रदेशों को सक्रिय कर दिया जो भय-आवेग के आधार हैं और निद्रा के कारण हमारे मस्तिष्क के वे प्रदेश निष्क्रिय रहें जो आवेगों का नियंत्रण करते हैं, इससे मस्तिष्क में आकृतियों के अधार-प्रदेश अनियंत्रित रूप से सक्रिय हो उठे और परिणामतः

उक्त प्रकार की आकृति हमें स्वप्न में दिखाई दी। स्वप्न में एसोसियेशन भी बड़े सजीव रूप में क्रियाशील होती है। जागृति में भी हम में किसी मनुष्य को भयानक रूप में मुँह खोल कर काटते देख कर शेर की कल्पना घटित हो सकती है और भिड़ते देखकर साँड़ की, वही कल्पना, निद्रा में अधिक सशक्तता के साथ घटित हो सकती है। वैसे मनस्कारणता (Mnemic-causation) के पक्षपाती इस प्रकार के स्वप्नों की व्याख्या-निम्न प्रकार से कर सकते है—
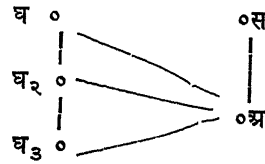
इस ग्राफ मे १, २, ३ घटनाएँ साँड़, मनुष्य और शरीर के दर्शन की घटनाएँ हैं जो उकसाहट अ के साथ स्मृति स का कारण बनती है। प्रथम दृष्टि में यह सम्भावना उतनी ही उचित प्रतीत होती है जितनी प्रथम संभावना, किन्तु वास्तव में यह संगत नही है। इसका कारण यह है कि ये तीन घटनाएँ अतीत में अपने आप में स्वतन्त्र घटनाएँ थीं। मनस्कारणता के अनुसार इन की स्थिति केवल कालिक ही हो सकती है और इसीलिए इसे एक ही क्षण में अविभाज्य रूप से समाहित होना चाहिए। अथवा बर्गसां के शब्दों में—"It is embraced in an intuition of mind," or "The whole of it is grasped instantaneously." और इस प्रकार ऊपर इनका पुनरुद्भव ऐसा नही होना चाहिए कि इनके कुछ अंश विशेष एक में समाविष्ट कर लिए जाएँ और विशेष अंश छोड़ दिये जाएँ। अब मान लीजिए, मैंने एक साँड़ को किसी मनुष्य पर आक्रमण करते देखा है और भय का अनुभव किया है। यहाँ दो घटनाएँ मुझ में घटित हुई है और एक की स्मृति दूसरे के बिना सभव है। किन्तु यदि यह घटना मनस्कारणता सम्बन्धी है तो इसका दैनिक अस्तित्व घटना की समाप्ति के साथही समाप्त हो जाता है और यह एक अविभाज्य, पूर्ण तथा एक साथ ही पूर्ण प्रस्तुत (Instantaneous) होती है, इसलिए इन घटनाओं को एक साथ अ से इस प्रकार सम्बद्ध नहीं होंना चाहिए कि ये अपनी कुछ ऐसोसिएशंज को छोड़ दें और घटना के कुछ अंगों को छोड़ दें और एक दूसरी में इस प्रकार मिल जाएँ जो कि उनकी मानसिक विशेषता के प्रतिकूल हो। हमारे विचार में ऐसी कोई घटना अथवा मानसिक विशेषता नहीं होती। बर्गसां एक कविता कण्ठ करने के उदाहरण से स्मृति के शारीरिक और मानसिक रूपों में भेद समझाते

हुए कहते है कि "कविता के शारीरिक स्मरण में हम कविता की जितनी बार आवृत्ति करते है उसमें हम क्रमशः प्रथम से अन्तिम शब्द तक उसी प्रकार पहुँचते हैं जैसे हम उसे कण्ठ करते हैं। प्रत्येक आवृत्ति मे एक नवीनता होती है क्योंकि हमारा अभ्यास अधिक होता जाता है। किन्तु इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसमें है कि इस में घटना का क्रम और काल की अवधि वही रहती है। इसके विपरीत प्रत्येक आवृत्ति की पृथक् स्मृति शारीरिक स्मृति नहीं है। इनका चित्र स्मृति में एकदम चिह्नित हो जाता है। क्योंकि अपनी परिभाषा के अनुसार ही प्रत्येक पृथक् पाठ प्रत्येक पृथक् स्मृति-चित्र चिह्नित करता है। यह मेरे जीवन में एक घटना के समान है, इसकी विशेषता इसमें है कि यह कालिक सापेक्षता (Date) के साथ रहती है, अतएव पुनः घटित नहीं हो सकती।" यहाँ रसल और बर्गसां में एक बात में मतैक्य और दूसरी में मत-भिन्नता है। मतैक्य कालिक सापेक्षता की स्वीकृति में है अथवा कालिक सापेक्षता को मानसिक स्मृति की एक अनिवार्य विशेषता मानने में है, जब कि मतभेद इस बात में है कि बर्गसाँ उस घटना को शरीर के स्थान पर मन में मुद्रित मानते है और इस प्रकार शरीर और मन में क्रिया-प्रतिक्रिया (Interaction) के सिद्धान्त को स्वीकार करते है जब कि रसल अतीत घटना को अतीत में ही रख कर उसको कुछ अव्याख्येय सा रूप दे देते है। किन्तु दोनों ही के अनुसार घटना को 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' (इंस्टेटेनियस) होना चाहिए जो कि उसे आदत और शारीरिकता से स्वतन्त्रता देने के लिए आवश्यक है।

किन्तु हमारे विचार में स्मृति के इन दो रूपों में भेद मौलिक नही है। मान लीजिए, राम का स्मरण मुझ मे घटित होता है। रसल इसे इस अवस्था में सच्ची स्मृति मानने को प्रस्तुत नहीं है यदि यह स्मृति कालिक-सापेक्षता युक्त नहीं है, अर्थात् यह राम के किसी पहलू विशेष को उसके घटित होने के काल विशेष के साथ यदि मुझमें घटित नही करती। किन्तु इस स्मृति में 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' होने की विशेषता है। इसमें किसी निश्चित क्रम और निश्चित कालावधि (ड्यूरेशन) की आवश्यकता भी नहीं है—दूसरे शब्दों में यह आदत-स्मृति नही है और किसी भी अवस्था में इसे कविता-पाठ की उस मानसिक स्मृति से पृथक् नहीं किया जा सकता जो प्रथम-द्वितीय-तृतीय के सापक्ष कालिक-सम्बन्ध की स्मृति से स्वतन्त्र पाठ की सामान्य स्मृति है। वास्तव में कविता कंठ करने और कविता-पाठ की किसी एक घटना की स्मृति मे इतना ही अन्तर है कि एक हमारे स्नायु-यन्त्र के निम्न या स्थूल स्तरों से संबन्ध रखती है और दूसरी उन्नत या सूक्ष्म स्तरों से। इनमें एक

अन्तर और भी है जो अन्तर सामान्यतः दृष्टि-विषयों और श्रोत्र-विषयों में होता है। एक में विषय को हम एक साथ देख सकते है और दूसरे में क्रमशः, और जैसा कि हम अभी देखेंगे, इनकी स्मृति भी इसी प्रकार होती है। कविता कंठ करने और कविता-पाठ की किसी घटना विशेष की 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' स्मृति में भी यह अन्तर है कि जहाँ एक को हम क्रमशः ग्रहण करते " दूसरे को एक साथ ही समवेत रूप में, ग्रहण कर लेते हैं।

इस विवेचन मे इतना आगे बढ़ कर हम एक बार फिर पीछे की ओर लौटते हैं,—यदि मस्तिष्क के प्रदेश विशेष स्मृति-विशेषों के आधान होते हैं और इन प्रदेश-विशेषों की अनुपस्थिति स्मृति विशेषों की अनुपस्थिति का कारण बनती है तो उन प्रदेशो के पुनः ठीक हो जाने पर भी वे स्मृतियाँ नही लौटनी चाहिएँ जो पहले इन प्रदेशों में मुद्रित थीं। मान लीजिए, मैंने एक पुस्तक पढ़ी है और उसकी स्मृति मुझमें इस रूप में विद्यमान है कि मै उसका शब्दों में विवरण दे सकता हूँ, पुस्तक को देखकर पहचान सकता हूँ इत्यादि। अब मस्तिष्क के किसी भी प्रदेश के अपसारण के पश्चात् मै पुस्तक को नही पहचान सकता और पृष्ठ भाग के अपसारण के पश्चात् पाठ का शाब्दिक विवरण नहीं दे सकता; अब इन प्रदेशो के ठीक होने पर मुझ मे केवल उस पुस्तक को पुनः पढ़कर उसी प्रकार उसकी स्मृति प्राप्त करने की शक्ति तो लौटनी चाहिए किन्तु पूर्व घटना की स्मृति क्योंकर लौटनी चाहिए ? इस प्रकार हमारे प्रथम तर्क को हमारे ही विरुद्ध प्रयुक्त किया जा सकता है। स्वप्नो से भी निश्चित रूप से यह प्रमाणित नही होता कि स्मृति का आधार मस्तिष्क ही है। क्योंकि यदि स्वप्नों का कारण शारीरिक भी हो तो भी उनकी उत्पत्ति मानसिक हो सकती है और इस कारण-शृंखला में शरीर केवल एक कीर मात्र हो सकता है। इस प्रकार, इन प्रमाणों से हम किसी परिणाम पर नही पहुँच सकते।

किन्तु स्मृति की शारीरिकता अथवा उसकी कारणता की भौतिकता के पक्ष में कुछ और तर्क दिए जा सकते है: हम यह तो जानते ही हैं कि मस्तिष्क के प्रदेश-विशेषों के अपसारण से स्मृति-विशेष की शक्ति जाती रहती है, जैसा कि हमने प्रथम भाग के प्रथम निबन्ध के अन्तिम पृष्ठों में देखा था। हम यह भी जानते हैं कि एफेसिया और एग्नेसिया (Aphasias and Agnesias) के कितने ही विभिन्न भेद है जिनमें स्मृति विभिन्न प्रकार से स्खलित होती है। हम यह भी जानते है कि स्मृति के बहुत से प्रकार केवल मनुष्य में ही पाए जाते है। एम्नेसिक-एफेसिया के एक प्रकार में मनुष्य जाति-प्रत्ययों का ज्ञान खो बैठता है, जब कि वह, यदि उसे बता दिया जाए'

तो किसी विशेष विषय की जाति-संज्ञा याद रख सकता है। उदाहरणतः, ऐसा रोगी पुस्तक पढ़ सकता है किन्तु उसका अन्य पुस्तकों से सम्बन्ध नहीं जान सकता और यदि उसे बता दिया जाए कि 'यह पुस्तक है' तो वह उस विशेष पुस्तक के लिए यह नाम याद रख सकता है, यदि उसे कुछ और पुस्तकें देकर बता दिया जाए कि 'वे पुस्तकें है, तो वह उनके लिए याद रख सकता है कि 'वे सब मिला कर पुस्तकें हैं' इत्यादि। जाति-प्रत्ययों का ज्ञान सम्भवतः अत्यन्त निम्नस्तरीय चेतना के प्राणियों में भी पाया जाता है, किन्तु जैसा कि उनके व्यवहार से स्पष्ट है, उनका यह ज्ञान चेतन प्रकृति कोग्नीटिव-नेचर का न होकर प्रवृत्त्यात्मक प्रकृति का होता है। यदि हम यह मान लें, जैसा कि मानना उचित ही है, तो इन निम्न-स्तरीय चेतना के प्राणियों में हम स्मृति के उस रूप को स्वीकार नही कर सकते जिसे रसल मानसिक स्मृति (नेमिक) कहते हैं; दूसरे शब्दों में, जीवन के इतिहास के अधिकांश युगों में स्मृति नाम के गुण का कोई अस्तित्व नहीं है। किन्तु जाति-प्रत्ययों का 'ज्ञान' है और मनुष्य में भी यह 'ज्ञान' विशेष-समृद्ध आदत या अभ्यास से अधिक कुछ नही है, जैसा कि रसल मानते हैं। इस प्रकार हमारा जाति-प्रत्ययों का ज्ञान, जिसमें स्मृति आधार-भूत तत्त्व है एक शारीरिक घटना है।

इसी प्रकार, मान लीजिए मैं किसी से मिलने जा रहा हूँ। जाने से पूर्व मुझे कहा जाता है कि मैं आते हुए कुछ सामान खरीदता लाऊँ, और ठीक जाने के समय मुझे वह वस्तु न लाने को कह दिया जाता है। अब अनेक बार ऐसा होता है कि जहाँ से मुझे वह सामान खरीदना था उस स्थान से आगे निकल आने पर हाथ कुछ 'अभाव अनुभव' करता है, जैसे पहले इसमे कुछ उठाया हुआ था, जो अब नहीं है। कुछ सोचने पर ज्ञात होता है कि मैं वह सामान खरीद कर नही लाया जो लाना था, और तब क्रमशः ध्यान आता है कि वह मुझे न लाने को कह दिया गया था। किन्तु थोड़ा आगे चलने पर फिर उसी प्रकार अनुभव होता है और तब फिर उसी प्रकार क्रमशः उसका समाधान करना पड़ता है। यदि रास्ता कुछ लम्बा है और ध्यान किसी अन्य चिन्तन में मग्न है तो इसकी आवृत्ति अनेक बार हो सकती है। यहाँ यह स्पष्ट है कि मैंने वह सामान इस प्रकरण में पहले नहीं उठाया था, यह भी स्पष्ट है कि मैं उसे कहीं खो भी नहीं आया था। अतः हाथ के मस्सल्ज् के अभ्यस्त होने का प्रश्न यहाँ नहीं उठता। यहाँ केवल मैंने कुछ सामान लाने के लिए आदेश प्राप्त किया था और चेतन रूप से यह विचार भी नहीं किया कि मैं वह

सामान किस प्रकार थैले में उठा कर लाऊँगा, यद्यपि यह ठीक है कि पहले जब भी कभी वह सामान मै लाया हूँ, उसी प्रकार थैले में लाया हूँ जैसे उस दिन मेरा हाथ उसका अभाव अनुभव करता है। अब इसकी व्याख्या मनस्का-रणता से इस प्रकार की जा सकती है कि अतीत घटना-आदेश किसी वर्तमान उकसाहट के साथ कारणरूप में सयुक्त होकर मेरे हाथ में स्फुरण को उत्पन्न करता है । किन्तु यह व्याख्या एकदम जबरदस्ती है । इस विवरण में दो बातें स्पष्ट हैं—(१) आदेश कुछ एसोसियेशंज के साथ वस्तु जतलाने की पूर्व क्रिया के साथ मस्तिष्क में संदुक्त हो गया और (२) हाथ के मस्सल्ज़ के अभ्यस्त न होने पर भी मस्तिष्क के किसी भाग में यह एसोसियेटिड घटना इस प्रकार मूलित हो गई कि इसे हम 'मस्तिष्क के प्रदेश-विशेष का अभ्यस्त होना' कह सकते हैं। अब हम अभ्यास के कुछ निम्न स्तरों की संक्षिप्त समीक्षा के पश्चात् स्मृति के उस पहलू को देखेंगे जिसे रसल और बर्गसां विशुद्ध स्मृति कहते है ।

मान लीजिए, मै एक कमरे में कुछेक बार जाता हूँ और इस प्रकार उस कमरे से, उसकी समस्तता के साथ, मेरा परिचय हो जाता है। मेरे उसकी व्य-वस्था से अभ्यस्त होने पर उस व्यवस्था में कुछ सामान्य-सा परिवर्तन कर दिया जाता है । अब जब मै उस कमरे में आता हूँ तो अनुभव करता हूँ जैसे कमरे में कुछ परिवर्तन हुआ है—कमरा 'वही नहीं है।' संभव है, मैं जोर देकर परिवर्तन की प्रकृति को जान सकूँ और संभव है, न भी जान सकूँ। पीछे प्रकृति और विचारणा के अध्ययन में हमने बन्दर के सम्बन्ध में दिखाया था कि उसके खाने के कमरे में नीले के स्थान पर लाल कपड़ा बदल देने पर वह उस कमरे को पहचान नही सका था । इसके विपरीत, एक कबूतर पर मैंने प्रयोग कर देखा था कि उसकी स्मृति में केवल दिशा की सापेक्षता का ही महत्त्व है । मैंने एक कबूतर का घोंसला उसके पूर्व स्थान से लगभग २० इंच की दूरी पर रख दिया और उसके स्थान पर एक बिल्कुल भद्दा-सा घोंसला बनाकर उसमें मुर्गे के दो अंडे रख दिये । इसके बावजूद दम्पति पूर्वस्थानीय घोंसले पर ही बैठे और मुर्गे के बड़े-बड़े अंडे सेते रहे । मैंने आस-पास रंग बदल कर भी बहुत देखे, किन्तु उन्होंने किसी और चीज की परवाह नहीं की । अन्त में मैंने उनके आने-जाने के रास्ते को उलट कर देखना चाहा, किन्तु वे आते उसी रास्ते से थे जो रास्ता उनका निश्चित था, मैंने उसे बन्द रखना प्रारम्भ किया किन्तु वे दूसरे रास्ते से, जिससे मै उन्हें बाहर जाने को बाध्य करता था, नहीं अन्दर आते थे। हमारे विचार में इन तीनों स्मृतियों में

मौलिक अन्तर नहीं है, हम इस स्मृति-ज्ञान को मसलज्ञान (नॉलेज ऑफ मसल्ज़) भी कह सकते हैं।

इसी प्रकार हमारे जाति-प्रत्ययों के ज्ञान की व्याख्या भी की जा सकती है। मान लीजिए, मैं एक कुत्ते को देखता हूँ और जानता हूँ कि—यह कुत्ता है। अब मेरे इस कुत्ते के ज्ञान की क्या प्रकृति है ? हम प्रायः कुत्ते को चार प्रकार से जानते हैं—'कुत्ता' शब्द से, कुत्ते की आवाज से, दृष्टि से, और एक सीमा तक, उसके स्पर्श से भी। इनमें पिछले तीन प्रकार से ज्ञान स्पष्ट रूप से एसोसियेशन या आदत के कारण है। अब प्रथम प्रकार का ज्ञान अधिक स्पष्ट रूप से, कहा जा सकता है, विशुद्ध स्मृति से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि कुत्ता शब्द कहने से हमारे मस्तिष्क में कुत्ते का चाक्षुष, या स्पर्श सम्बन्धी अथवा उसकी ध्वनि का चित्र जागृत होगा। यहाँ हम 'कुत्ता' शब्द को उकसाहट कह सकते हैं, चित्र-विशेष की स्मृति की घटना और कुत्ते के हमारे किसी पूर्व दर्शन को, जिस कुत्ते के जिस भी रूप का चित्र हमारे सम्मुख आता है, स्मृति-कारणता (Mnemic causation)। किन्तु रसल यहाँ भी स्मृति-कारणता को स्वीकार नहीं करते, वे कहते है—"अगली स्टेज यह ज्ञान (Recognition) है। इसे दो अर्थों में लिया जा सकता है, प्रथम—जबकि एक वस्तु न केवल परिचित ही मालूम पड़ती है प्रत्युत् हम जानते भी है, हम बिल्लियों और कुत्तों को जानते हैं, जब हम उन्हें देखते हैं। यहाँ हम पर पिछले अनुभव का निश्चित प्रभाव रहता है किन्तु आवश्यक रूप से अतीत का वास्तविक ज्ञान नहीं होता। जब हम बिल्ली को देखते है, हम जानते है—यह बिल्ली है, क्योंकि हमने पहले बिल्लियाँ देखी होती है, किन्तु हम उस विशेष समय को याद नहीं करते जब कि हमने किसी बिल्ली विशेष के पहलू विशेष को देखा हो। इसलिए बिल्ली' शब्द से हमारी बिल्ली की स्मृति एसोसियेशन की आदत से अधिक नहीं होती। वह विषय-विशेष, जिसे हम देख रहे हैं, बिल्ली शब्द के साथ एसोसियेटिड होता है अथवा बिल्ली की आवाज के श्रोत्रिय-चित्र से सम्बद्ध होता है।" इससे स्पष्ट है कि रसल केवल अतीत घटना के चित्र को ही स्मृति नहीं समझते और इस प्रकार यह चित्र अपने आप में स्मृति-कारणता से कोई सम्बन्ध नहीं रखता और यह भी कि स्मृति-चित्र का कारण शरीर में ही निहित है। हमारे इस परिणाम का कारण स्पष्ट है:—रसल बिल्ली शब्द से बिल्ली के चाक्षुष चित्र की उत्पत्ति को स्मृति-कारणता के रूप में स्वीकार नहीं करते, जिसका अर्थ है कि बिल्ली का चाक्षुष चित्र, जिसमें किसी अतीतता की अनुभूति या ज्ञान सन्निविष्ट नहीं रहता—की उत्पत्ति हमारे मुद्रण-सिद्धान्त के अनुसार होटी है, दूसरे शब्दों में, इस कारणता की प्रकृति

एकदम भौतिक है। अब रसल स्मृति-कारणता की पुष्टि में केवल एक विशिष्टता सुरक्षित रखते हैं, वह है अतीत घटना की स्मृति के साथ-साथ उसकी अतीतता का ज्ञान भी रहना। बर्गसा भी स्मृति की मानसिकता के पक्ष में इस विशेषता को विशेष प्रमुखता देते हैं। रसल कहते हैं—"मान लीजिए, आप मुझे पूछते है कि मैंने प्रातराश में क्या खाया था। मानलें कि इस बीच मैंने अपने प्रातराश के सम्बन्ध मे कुछ नही सोचा, और जब कि मै प्रातराश कर रहा था, मैंने उस सम्पूर्ण घटना को शब्दों में भी नही सोचा। इस केस में मेरी पूर्व घटना की स्मृति सच्ची स्मृति होगी, अभ्यास-स्मृति नहीं। यहाँ याद करने की प्रक्रिया मेरे प्रातराश के स्मृति-चित्रो से युक्त होगी और इन चित्रों के साथ मुझमे एक विश्वास-भावना होगी जो कि स्मृति-चित्रों को कल्पित चित्रों से पृथक् करेगी।" यहाँ रसल, वाट्सन इत्यादि बिहेव्यरिस्टों के विचारों और स्मृतियों इत्यादि को भाषा की आदत (Language Habit) कथन करने से प्रातराश की घटना को उन सब निषेधों से विशिष्ट कर देते हैं जिन से उसकी मानसिकता की रक्षा हो सकती है। किन्तु जैसा कि मैंने पीछे सामान लाने के आदेश और निषेध का उदाहरण दे कर दिखाया था, केवल सामान लाने का आदेश, जिसके घटित होने पर मैंने कोई बात नहीं सोची, उस सम्पूर्ण योजना से सम्बद्ध हो गया जो कि सामान लाने का आदेश पालन करने की अवस्था में क्रियान्वित होती। यही बात प्रातराश के लिए भी सत्य है। प्रातराश की क्रिया के घटित होने पर वे सम्पूर्ण एसोसियेटिड क्रियायें भी स्वतः ही उसी प्रकार घटित हो जाती हैं, जैसे घड़ी में चाबी देने पर उसके सब पुर्जे सक्रिय हो उठते हैं। अब मान लीजिए, मै प्रातराश करते समय उस सम्पूर्ण घटना को शब्दों में भी सोचता जाता हूँ और बाद में पूछने पर मैं उसका विवरण दे देता हूँ। क्या प्रातराश की घटना को उस या किसी और अन्तर में शब्दों में सोच लेने पर वह भाषा की आदत हो जाएगी और न सोचने पर वह मानसिक स्मृति होगी ? मान लीजिए, प्रातराश की घटना को शब्दों में सोचने के पश्चात् मुझ मे भाषा-स्मृति जाती रहती है, तब मुझे प्रातराश की घटना को याद नहीं कर सकना चाहिए ? जबकि यह बात नहीं होती। मान लीजिए, हमारे ये सब तर्क गलत हैं, उस अवस्था में भी रसल की कल्पना अन्तर्विरोध-पूर्ण है। रसल ने जब प्रातराश करते समय या उसके बाद उस घटना को शब्दों में नहीं सोचा, अब जब मै उनसे प्रातराश के सम्बन्ध में शब्दों में पूछता हूँ तो उन्हें उस घटना का स्मरण नहीं होना चाहिए। क्योंकि प्रातराश शब्द केवल उन्हीं एसोसियेशंज् को जागृत कर सकता है जो इस शब्द से सम्बद्ध हों। मेरे प्रातराश शब्द कहने पर उन्हें केवल

तभी प्रातः के प्रातराश का स्मरण होना चाहिए यदि प्रातराश के समय इस शब्द का प्रयोग हुआ हो तो। यदि इस शब्द के प्रयोग के बिना भी प्रातः की प्रातराश की घटना का स्मरण होता है तो वह इसीलिए कि (१) प्रातराश की घटना घटित होने के साथ ही अपनी उन सब एसोसियेशंज से मस्तिष्क मे में संयुक्त हो गई थी जो प्रतिदिन की प्रातराश की घटनाओं के कारण मस्तिष्क में विद्यमान हैं और (२) प्रत्येक प्रातराश की नवीन घटना उसी प्रकार, एक जातीय-घटना है जिस प्रकार कोई भी नवीन पुस्तक जाति-वस्तु है। इसलिए-रसल की मानसिक स्मृति की यह व्याख्या भ्रान्त है। रसल आगे स्मृति चित्र को संकेत कहते हैं और हमारी चेतना का विषय स्मृतिचित्र को न मान कर उस अतीत विषय को मानते है, स्मृतिचित्र जिसका संकेत है। वे कहते हैं "स्मृति-चित्र उसी प्रकार अतीत विषय का संकेत है जिस प्रकार सेंसेशन उकसाहट विषय का और हमारी चेतना-स्मृति में उसी प्रकार अतीत विषय की चेतना होती है जैसे सेंसेशन में उकसाहट विषय की।" यह प्रश्न ज्ञान-मीमांसा से सम्बन्ध रखता है और हमारे वर्तमान प्रसंग मे यह विवाद अनावश्यक होगा, और सब से बड़ी बात यह है कि हमें भय है कि हम इस वाक्य को ठीक तरह से नहीं समझ रहे हैं, क्योंकि रसल, जैसा कि हमने पीछे देखा था, केवल कारण को ही मानसिक (Mnemic) मानते हैं परिणाम (स्मृति-ज्ञान) को नहीं। और यह संभव प्रतीत नहीं होता कि रसल जैसा महान् दार्शनिक इतनी छोटी भूल करेगा। इसलिए उचित होगा कि हम रसल की आलोचना के प्रसंग में केवल स्मृति-कारणता तक ही सीमित रहें और स्मृति-ज्ञान के सम्बन्ध में प्रथम वाक्य को ही उनका अभिप्रेत समझें।

जैसा कि हम देख रहे थे, केवल अतीतानुभूति के आधार पर स्मृति को मानसिक और शारीरिक कहना अनुचित है, क्योंकि इस अनुभूति से स्थिति में कोई आधारभूत अन्तर नहीं पड़ता। मान लीजिए, मेरे सामने कोई कुत्ता नहीं है और अचानक बैठे-बैठे मेरे मस्तिष्क में कुत्ते का चित्र जागृत होता है जो कि किसी विशेष का न होकर साधारण का है, तो भी वह एक चित्र है जो कि किसी उकसाहट के कारण मस्तिष्क में जाग्रत हुआ है, उसमें कोई शाब्दिक या चाक्षुष एसोसियेशन भी नहीं है किन्तु साथ ही साथ अतीतता की अनुभूति भी नहीं है। अब रसल के अनुसार यह स्मृति चित्र नहीं होगा। साधारण अर्थ में भी यह स्मृतिचित्र नहीं होगा। मान लीजिये, इस चित्र की हम शारीरिक कारणता के अनुसार व्याख्या करते हैं, क्योंकि इस में अतीतानुभूति नहीं है जो कि तभी हो सकती थी यदि यह चित्र अपने साथ किन्हीं अन्य अतीत घटनाओं की एसोसिएशन लिए होता, अर्थात् यदि वह किसी विशेष कुत्ते के विशेष काल

का चित्र विशेष होता। किन्तु तब केवल अतीतानुभूति के कारण स्मृति-विशेष की भौतिक-कारणता के सिद्धान्तानुसार व्याख्या क्यों नहीं की जा सकती? अब जोंज़ को ले। मान लीजिए, मै जोंज को याद कर रहा हूँ। अब उसकी स्मृति उसकी किसी मुद्रा-विशेष की भी हो सकती है और मुद्रा-सामान्य की भी हो सकती है और दोनों ही स्मृतियों में अतीतानुभूति नहीं भी हो सकती। जोंज़ से सामान्य प्रतिनिधि चित्र को यदि स्मृति-कारणता के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह चित्र जोंज़ विशेष का चित्र नहीं हैं प्रत्युत इस घटना-समूह का सामान्य प्रभाव मात्र जिसे मै जोंज़ कहता हूँ, तो जोंज विशेष का चित्र भी स्मृति-कारणता के अन्तर्गत नही आ सकता, क्योंकि इस सामान्य और विशेष की स्मृति मे केवल दो प्रकार से ही अन्तर हो सकता है और इन दोनों अन्तरों से जोंज़ विशेष की स्मृति स्मृति-कारणता के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं करती, यह अंतर इस आधार पर होगा कि (१) जोंज़ सामान्य की स्मृति में एसोसियेटिड घटनाएँ उसी शृंखला मे से होंगी जिसे मैं जोंज़ कहता हूँ और ये किसी अतीत विशेष से सम्बन्ध न रखकर अतीत सामान्य से सम्बद्ध होंगी, इसके विपरीत जोंज विशेष की स्मृति में एसोसि-येटिड घटना के रूप में जोंज के उस पहलू-विशेष का अतीत काल-विशेष में मुझपर प्रभाव तथा वह दैशिक परिस्थिति होगी जिसमें वह पहलू-विशेष घटित हुआ था। दूसरे (२) वह पहलू विशेष वही या वैसा ही होगा जिस प्रकार उस समय मैंने उसे देखा था, जबकि जोंज़ सामान्य पर यह बात लागू नहीं होती। हमारे विचार में रसल का जोंज सामान्य के स्मृति-चित्र को भौतिक कारणता के अन्तर्गत रखने का यही अभिप्राय हो सकता है। जैसा कि वे कहते है—"जब हम एक बिल्ली देखते है, हम जानते हैं कि यह एक बिल्ली है क्योंकि हमने पहले भी बिल्लियाँ देखी हैं, किन्तु उस समय हम किसी विशेष अवसर का स्मरण नहीं करते जब कि हमने कोई बिल्ली देखी होती है। पहचान, इस अर्थ में एसोसियेशन की आदत से अधिक कुछ नहीं है।" यहाँ एसोसियेशन से अभिप्राय है किसी समान वस्तु को देखकर वैसी ही समान वस्तु का स्मरण होना जो कि अतीत घटना होने पर भी अतीतता का विश्वास लिए हुये नहीं है। इसी से रसल मानसिक स्मृति के उदाहरणरूप में प्रातः प्रातराश की घटना को प्रस्तुत करते है। उस प्रकरण में वे आगे कहते हैं कि "इस स्मृति में अतीतता का विश्वास किसी एसोसियेशन की आदत के कारण नहीं हो सकता।" किन्तु अनेक बार ऐसी एसोसियेशन किसी अतीत घटना-विशेष की स्मृति की कारण भी हो सकती है जिसमें अतीततानुभूति भी हो और जिसमें स्मृति के सभी लक्षण जिन्हें रसल स्मृति-कारणता के लिए

आवश्यक मानते हैं। रसल स्वयं एक अन्य निबंध में पीटस्मोक की गन्ध से किसी अतीत नगर यात्रा की स्मृति का उदाहरण देते हैं। इससे भी अधिक सूक्ष्म उदाहरण हो सकता है—बादलों की धूप इत्यादि के कारण किसी अतीत की स्मृति हो आना। स्मृति-कारणता के अनुसार अतीत नगर यात्रा की घटना पीटस्मोक की गन्ध के साथ अतीत घटना की स्मृति का कारण होगी और इसी प्रकार इसके उदाहरण में भी। इस के पक्ष में दो तर्क दिये जाएँगे, (१) पीटस्मोक की गन्ध के एसोसियेटिव घटना होने पर भी नगर यात्रा की सम्पूर्ण घटना और पीटस्मोक में कोई समता नहीं है जैसे, बिल्ली वर्तमान और बिल्ली अतीत में है।(२) इस स्मृति के साथ विशेष नगर-यात्रा, जो कि अद्वितीय घटना है, की स्मृति ही होती है और उसमें अतीतता की अनुभूति विद्यमान रहती है। इसे हम एक और उदाहरण से स्पष्ट करेंगे—'दूध का जला छाछ फूंक फूंक कर पीता है, दूध से जले व्यक्ति के छाछ फूंक-फूंक कर पीने में दोनों प्रकार की 'स्मृति' हो सकती है—(१) छाछ देखकर दूध से जलने की घटना की स्मृति के बिना ही छाछ से भय आना और (२) छाछ को देखकर दूध से जलने की घटना-विशेष की स्मृति होना। सामान्यतः प्रथम प्रकार की घटना बच्चों और मनुष्येतर प्राणियों में होती है और दूसरी प्रकार की मनुष्य मे। इन में प्रथम को शारीरिक और द्वितीय को मानसिक कहा जा सकता है। यही बात पीटस्मोक से नगर-यात्रा की स्मृति के सम्बन्ध मे कही जा सकती है। किन्तु बादलों की धूप से किसी अतीत की स्मृति हो आना स्वतंत्र व्याख्या की अपेक्षा रखता है। मान लीजिए, संध्या समय कुछ हल्के बादलों के कारण धूप का एक विशेष सुहावना रंग देख कर मुझे एक मधुर अभावानुभूति होती है और किसी स्मृति-चित्रका ज्ञान नहीं होता। इस स्थिति को निम्न प्रकार से चित्रित किया जा सकता है—
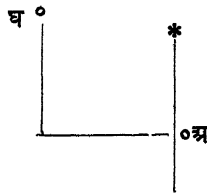
इस ग्राफ में हम घ और अ के अन्तर के सम्बन्ध में कोई धारणा नहीं बनाते। अब ऐसी स्थिति अनेक बार होती है, जैसा कि 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में अभिशप्त दुष्यन्त बीणा पर अपनी पत्नी को गाते सुन कर कहते हैं—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः......इत्यादि।

अब यह अभावानुभूति निश्चित रूप से किसी पूर्व घटना और वर्तमान उकसाहट का परिणाम है किन्तु इसमें कोई निश्चित अतीतानुभूति नही है और न किसी घटना-विशेष की स्मृति ही है। मान लीजिए, कुछ जोर देने पर अथवा मस्तिष्क को ढीले छोड़ने पर मुझे किसी अतीत घटना-विशेष की नही, प्रत्युत अतीत समय-सामान्य की स्मृति हो आती है जबकि मै, कहें, "किसी विद्यालय के होस्टल में रहता था। उन दिनों भी कभी-कभी संध्या के समय इसी प्रकार की धूप होती थी, शायद मै कुछ अच्छा भी अनुभव करता था किन्तु कोई अभावानुभूति तब इस प्रकार उद्‌बुद्ध नहीं हुई थी।" अब इस स्मृति में अतीतानुभूति तो होगी किन्तु स्मृति घटना-विशेष की न होकर घटना-सामान्य की होगी। यह उकसाहट एक सहयोगी कारण के रूप में किसी अतीत घटना नहीं घटनाओं को साथ लिए होगी। इसमें एक और तत्व का अभाव भी होगा जोकि मानसिक कारणता के लिए आवश्यक हैं, वह है यह विश्वास कि—"ऐसा पहले हुआ था।" इस विश्वास को रसल सबसे अधिक ठोस प्रमाण मानते हैं मनस्कारणता के होने का। इस स्मृति में यह विश्वास न होने का कारण यह है कि जबकि मुझमें अभावानुभूति उत्पन्न हुई, मुझमें कोई स्मृति-चित्र स्वतः उत्पन्न नहीं हुआ और जब हुआ तो वह इस प्रकार, मानों कल साथ ही विविध चित्र घूम गए हों और इस चित्र-विशेष के उपस्थित होने पर प्रतीत हुआ हो कि "यह अच्छा है, सुहावना है" और इस प्रकार अभाव की कुछ पूर्ति हुई हो। इस अवस्था में ऐसा प्रतीत नही होता जैसे कि इस धूप-दर्शन का उस अतीत घटना-सामान्य से कोई सम्बन्ध है और वह घटना सामान्य विद्यालय के होस्टल की सांझ—की स्मृति ऐसी स्पष्ट भी नहीं होती कि उसके लिए कहा जा सके, "हाँ, वह ऐसा ही था" सिवाय उसके उन पहलुओं के जिनका उस अभावानुभूति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसे हम और स्पष्ट करेंगे—'मान लीजिए मै संध्या के समय नियमानुसार भ्रमण को जाता था।' यह घटना सामान्य घटना है और इसकी जब कभी सामान्यतः स्मृति आती हैं तो मुझे कुछ भी विशेष आकर्षक इसमें दिखाई नहीं पड़ता, किन्तु जब कभी बादलों के धूप-दर्शन के साथ इस सैर की स्मृति होती है तो मुझे इस स्मृति में विशेष सुख मिलता है, किन्तु यह सुख इस भ्रमण के चित्रों के ज्ञान के साथ नहीं प्रत्युत उस अस्पष्ट मनःस्थिति के साथ होता है जिसकी कोई स्पष्ट अनुभूति या ज्ञान मुझे अब नहीं होता। इस उदाहरण की व्याख्या की सार्थकता को हम एक और उदाहरण से स्पष्ट करेंगे और इस प्रकरण को आगे बढ़ाएंगे। हमने बिल्ली के वर्तमान दर्शन या 'बिल्ली' शब्द के श्रवण से बिल्ली के सामान्य चित्र की उत्पत्ति का उदाहरण

पीछे दिया था और देखा था कि किस प्रकार रसल इसे मनस्कारणता के अन्तर्गत स्मृति नहीं मानते। अब हम इस उदाहरण को थोड़े से परिवर्तन के साथ रखेंगे और पिछले उदाहरण के साथ मिलायेंगे। मान लीजिए, मै उत्तरी-ध्रुवप्रदेश में चला जाता हूँ जहाँ मै कभी बिल्ली नहीं देख पाता। किसी दिन अचानक मै कोई ऐसा शब्द सुनता हूँ अथवा ऐसा दृश्य—कहीं बर्फ में देखता हूँ जो 'बिल्ली' शब्द से अथवा बिल्ली की आकृति से किसी न किसी प्रकार मुझे मिलता प्रतीत होता है, अथवा और भी ठीक शब्दों में, वह शब्द या चित्र मुझमे बिल्ली की स्मृति उत्पन्न करता है। यह स्मृति ठीक उसी प्रकार क्रमश: उत्पन्न हो सकती है जैसा बादलों के धूप-दर्शन से विश्वविद्यालय-होस्टल के सांध्य भ्रमण की स्मृति और इसमें वैसी ही अतीततानुभूति भी अनिवार्य रूप से होगी जैसी पिछले उदाहरण में, क्योंकि बिल्ली अब मेरे लिये एक ऐसा प्राणी होगा जिसे मै वर्तमान में नहीं देखता, इसमें स्मृति घटना-विशेष की न हो कर घटना-सामान्य की होगी, चाहे वह घटना सामान्य ऐसी हो कि मुझे इससे अपने घर की बिल्ली की ही स्मृति आए, और इसके साथ एक मधुर अभाबानुभूति भी होगी।

अब इस अन्तिम उदाहरण से स्पष्ट है कि केवल बिल्ली को बहुत दिनों से न देख सकने के कारण 'बिल्ली शब्द का सम्पूर्ण प्रकरण ही बदल गया और इस प्रकार 'बिल्ली' शब्द एसोसियेशन की आदत का कारण न होकर रसल की मनस्कारणता का कारण हो गया। किन्तु वास्तविकता यह है कि केवल कुछ और एसोसियेशंज़ के बदल जाने के कारण हमारी आदत का सम्पूर्ण प्रकरण भी बदल जाता है और कोई अन्तर नहीं पड़ता। जहाँ बिल्ली सामान्यत: मै देखता हूँ वहाँ उसे चाहे मैं वर्ष भर न भी देखूं तो भी 'बिल्ली' शब्द मुझमें उन अनुगामी घटनाओं से एसोसियेटिड नहीं होगा जिनसे ध्रुव प्रदेश मे पहुँचने पर केवल दस-दिन का बिल्ली का पार्थक्य एसोसिएटेड होगा। यह ऐसा ही है जैसे दिल्ली से मेरठ जाने पर मुझे दिल्ली से एक वर्ष का पार्थक्य भी इतना सुदीर्घ प्रतीत नहीं होगा जितना दिल्ली से साइबेरिया जाने पर दस दिनों का पार्थक्य भी सुदीर्घ प्रतीत होगा। इसलिए बिल्ली शब्द से बिल्ली का किन्हीं भी एसोसियेशंज़ के साथ स्मृति-चित्र केवल एसोसियेशन की आदत है और इसी प्रकार धूप-दर्शन और पीटस्मोक के उदाहरणों के लिए भी।

मनस्कारणता की असभवता एक दूसरी युक्ति से भी दर्शायी जा सकती है—यह है स्मृति-ज्ञान की व्याख्या के द्वारा। अब तक हमने केवल स्मृति के

कारणों की अमनस्कता को स्वतन्त्र रूप से देखा है, अब हम स्मृति-चित्रों के ज्ञान की अमनस्कता दर्शाकर उसके द्वारा स्मृति कारणों की अमनस्कता दर्शायेंगे।

स्मृति-ज्ञान की तीन संभव प्रकृतियाँ हो सकती हैं। इन तीनों को निम्न प्रकार से चित्रित किया जा सकता है—
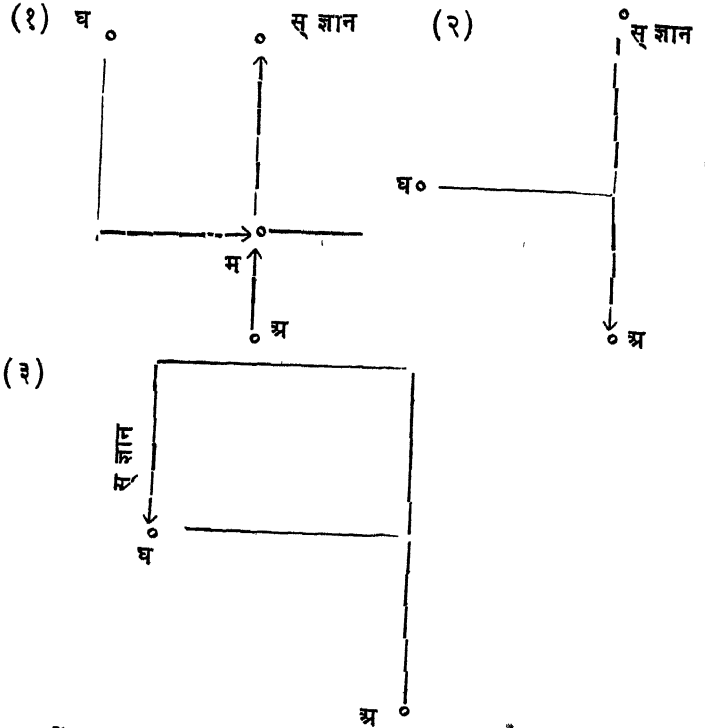
इनमें प्रथम चित्र के अनुसार अतीत घटना मस्तिष्क में मुद्रा अंकित करेगी जो कि मस्तिष्क में विद्यमान रहेगा और उकसाहट के साथ हमारे मस्तिष्क में ऐसी घटनाओं को जन्म देगा जो उसी प्रकार से मस्तिष्क में चित्र उत्पन्न करेगी, जिस प्रकार बाह्य वस्तुओं से हमारा चाक्षुष सम्पर्क मस्तिष्क में चित्रों को उत्पन्न करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जहाँ तक हमारा विचार है, कल्पना-चित्रों की उत्पत्ति के लिए मस्तिष्क के उन प्रदेशों का क्रिया में आना आवश्यक है जो तत्संबंधी इन्द्रियों के सम्पर्क-जन्य चित्रों की उत्पत्ति के कारण होते है। इस प्रकार प्रथम चित्र की कारण-श्रृंखला में सद्यःपूर्व की घटना ही उत्तर की कारण होती है जोकि भौतिक कारणता के अनुकूल है। इसमें हमारा ज्ञान उसी प्रकार नव्यों-

त्क्रान्त (इमर्जेंट) होता है जिस प्रकार रंग या ताप, और यह ज्ञान उन घट-नाओं से सम्बद्ध होता है जो कारण-शृखला मे उसके सद्यः पूर्व की और सहानुयायिनी भी होती है। दूसरे चित्र के अनुसार स्मृति-ज्ञान वे घटनाएँ जो अपने साथ ये विश्वास लिए होती हैं कि ज्ञात विषय उस घटना के ही समान है जिन के ये संकेत अथवा चित्र हैं, किन्तु ये सकेत अथवा चित्र स्वय क्या है ? यदि ये मस्तिष्क में घटित होती हुई कुछ भौतिक घटनाएँ हैं, तो इनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? रसल इसका उत्तर देते हैं—क्योंकि अतीत घटना भी उन कारण-शृंखलाओ में से एक है जो मस्तिष्क की स्मृति-कालीन घट-नाओ को जन्म देती है। किन्तु रसल यह स्वीकार करते है कि अतीतघटना का अस्तित्व वर्तमान में नही है। इस प्रकार स्मृति का का कारण जहाँ मान-सिक है, स्मृतिज्ञान स्वय एक भौतिक घटना है। अब, यहाँ एक और उलझन उत्पन्न हो जाती है—स्मृतिज्ञान के दो स्वतत्र कारणों में एक उकसाहट है और दूसरा पूर्व घटना जिसका परिणाम हमारी स्मृति-ज्ञान की घटना होती है। अब ज्ञान एक वर्तमान घटना है, यह रसल मानते हैं और यह भी मानते है कि यह ज्ञान पूर्व घटना का नही होता प्रत्युत उसमें सहकारी कार्य के रूप में यह विश्वास रहता है कि वर्तमान स्मृति-चित्र पूर्व घटित घटना जैसा ही है अथवा उसी का चित्र है। तो हमारा यह ज्ञान किस वस्तु का ज्ञान है ? स्वभावत: स्मृतिचित्र का। अब प्रश्न यह है कि ये स्मृतिचित्र क्या है ? ये पूर्व घटना नहीं है, यह निस्सदेह है, तो यदि ये पूर्व घटना की प्रति-लिपि ही है, तो हम इनकी पूर्व घटना से समता के बारे में निश्चित कैसे हो सकते है ? हमारा यह ज्ञान सर्वथा एक नवीन घटना है। इस समाधान के लिए पूर्व घटना को भी उतना ही हमारे 'वर्तमान' ज्ञान का विषय होना चाहिए जितना और जिस प्रकार 'पूर्व घटना के वर्तमान संकेत है' अन्यथा समता के सम्बन्ध मे कुछ नही जान सकते। इसके उत्तर में रसल दुहरे स्मृति-चित्रों की कल्पना करते है, एक वे जिन्हें हम जानते हैं और दूसरे वे जिन से हम ज्ञात-चित्रों का मिलान करते है (१) किन्तु इससे समस्या सुलझती नही प्रत्युत् बुरी तरह से उलझ जाती है और उपहासास्पद भी हो जाती है क्योंकि तब उन चित्रों का मिलान करने के लिए भी और दूसरे चित्र चाहिएँ ? इस समस्या को हम कुछ और स्पष्टता से समझने का प्रयास करेंगे। मान लीजिए, मुझमें लय का स्मरण होता है।* सम्भवत: इस स्मरण के सूक्ष्मतम (अथवा अस्पष्ट से अस्पष्टतम) रूप में घटित होने पर भी

* क्रिया का इस प्रकार प्रयोग कर्ता से सम्बद्ध हमारी धारणाओं से बचने

हमारे मस्तिष्क और कंठ के सम्बन्धित प्रदेश हल्के से व्यापारित होते हैं। मेरे विचार मे, इसके बिना मुझमे यह स्मरण घटित नहीं हो सकता। अब मान लीजिए मै वह लय गुनगुनाता हूँ किन्तु अभ्यास न होने से उसकी स्वर-साधना ठीक नही होती। चाहे मै काफी बार प्रयास भी कर लूँ कि मेरी यह स्वर-साधना शायद ठीक न हो। किन्तु इसके साथ-साथ मुझ मे ठीक लय का ज्ञान भी होगा, मै गलत लय गुनगुनाने पर भी इस ज्ञान से युक्त होऊँगा कि लय की साधना ठीक नही है और यदि कोई उस समय ठीक गुनगुनाता है तो मै झट पहचान लूँगा कि यह ठीक है। अब रसल कहेगे कि मुझ में लय की स्मृति एक कल्पना-चित्र है जिसे मै जानता हूँ और इसके अतिरिक्त एक और चित्र भी है जिससे मैं ज्ञात चित्र की सम्भवता असम्भवता का ज्ञान प्राप्त करता हूँ। किन्तु हमारे विचार मे यह अवसम्भावित है। यह कहा जा सकता है कि लय की स्मृति मस्तिष्क और कण्ठ के सम्बद्ध प्रदेशों के व्यापार के अतिरिक्त और कुछ नही है और इसमे कठ उतना ही आवश्यक है जितना मस्तिष्क और यह उस गुनगुनाहट से जरा भिन्न नहीं है जिसे मै स्वयं या समीपवर्ती सुन सकता हूँ। और ठीक गा सकना अभ्यास पर निर्भर है और इसी प्रकार गुनगुनाहट से पूर्व की लय की स्मृति की सम्भवता भी अभ्यास पर निर्भर करती है। किन्तु गुनगुनाहट से पूर्व की लय-स्मृति को सम्यक् प्रकार से दुहरा सकना उतना अभ्यास-साध्य नही है जितना गुनगुनाहट को ठीक तरह से दुहरा सकना। अब यह सभव है कि मस्तिष्कप्रदेश के एक भाग में, जहाँ परमाणु अधिक स्वतत्र और सक्रिय हो, लय की मौलिक घटना अधिक ठीक प्रकार से चित्रित हुई हो, अथवा वे उस लय को चित्रित करने में उससे कही कम अभ्यास की अपेक्षा रखते हो जितने कि हमारे कंठ इत्यादि रखते है। हम लय का तब तक स्मरणजन्य ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कंठ भी व्यापारित न हो, क्योंकि लय का हमारा ज्ञान ध्वनियों का ज्ञान है इसी से ठीक न गुनगुना सकने पर हम ठीक को केवल इसी रूप में जानते है कि हम गलत को पहचान सकते हैं। एक सीमा तक यह भी अभ्यास पर निर्भर है—एक व्यक्ति, जिसका सगीत का ज्ञान बहुत अल्प हो अथवा उसने संगीत का काफी श्रवण नही किया हो, वह लय की सूक्ष्म गलतियों को नहीं पकड़ सकता जबकि 'अभ्यस्त कान' झट पहचान लेते हैं। यही बात चाक्षुष चित्रों के लिए भी है। इन चित्रों को भी

के लिए किया गया है। हमारी कारणवाद की व्याख्या के अनुसार कर्ता और क्रिया का यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

तभी हम कल्पित कर सकते है जब हमारा इसका कुछ अभ्यास हो और चाक्षुष-चित्रों के ज्ञान के लिए भी मस्तिष्क के और रेटिना के विभिन्न प्रदेशों को व्यापारित होना पड़ता है, ऐसा मेरा विचार है। लय के उदाहरण मे यह बात एकदम स्पष्ट है क्योंकि वह अधिक स्थूल ज्ञानेन्द्रिय है। स्पर्श के विषय में यह स्थूल कथन और भी स्पष्ट सत्य है। क्योंकि स्पर्श की स्मृति तबतक हो ही नही सकती जबतक वही स्पर्श पुनः न हो। स्पर्श की उष्णता-शीतलता इत्यादि स्मृति के विषय एक तो भाषा की आदत (लेंग्वेजहेबिट) के रूप में बनते है और दूसरे प्रभाव-स्मृति के रूप में इनका स्वयं स्पर्श से कोई सम्बन्ध नही है। चाक्षुष-स्मृति के प्रदेश मनुष्य में बहुत अधिक विकसित है और दूसरे चाक्षुष-स्मृति मे स्पष्ट चित्र आता है। श्रोत्रिय-स्मृति में भी कंठ का अत्यन्त हल्का व्यापार पर्याप्त रहता है जब कि स्पर्श-स्मृति में यह सुविधा नही है। किन्तु अभ्यास की आवश्यकता सब कही है। यदि एक जन्मांध व्यक्ति की आँखे बीस वर्ष की आयु मे ठीक कर दी जाती है तो उसके लिए चाक्षुष-स्मृतियाँ तो दूर, चाक्षुष-विषयों को प्रत्यक्ष पहचानना तक असम्भव होगा और इसके विपरीत, कुशल-चित्रकार में अतीत चाक्षुष-घटनाओ का स्मृतिचित्र दूसरों के बजाय अधिक ठीक घटित होगा। किन्तु सब में ज्ञान-विषय स्मृति-चित्र समधिक धुँधला होता है और संभवतः चित्रकार भी चित्रित करने पर चित्र की सम्यक्ता-असम्यक्ता का ज्ञान किसी और चित्र के साथ मिलान करने पर ही जानता है। किन्तु इस व्याख्या में एक असंगति है—जब हम जानते केवल धुँधले चित्र को ही है तब ठीक-गलत का अनुमान अज्ञात चित्र के आधार पर कैसे कर सकते है ? हमारे विचार मे, इसका समाधान केवल स्मृति को भौतिक कारणता के अनुसार मान कर ही हो सकता है। यदि हम कहें कि स्मृति के विभिन्न शारीरिक स्तर होते हैं, तो अनुचित न होगा, और ये स्तर हमारे शरीर के विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न-मात्रा में मुद्रण की स्पष्टता या सम्यक्ता के आधार पर होंगे। इसके अनुसार कल्पना-चित्र की द्वैतता का आधार यह है कि चित्र मस्तिष्क के किसी भीतरी और अधिक सूक्ष्म प्रदेश में अंकित होता है जो अधिक सुविधा से बाह्य प्रभाव के अनुसार परिवर्तित हो जाता है। यह प्रदेश उकसाहट पाकर उस चित्र या चिन्ह को किसी प्रकार हमारे मस्तिष्क के इन तन्तुओं को प्रसारित करता है जो प्रस्तुत चित्र की सम्बद्ध ज्ञानेन्द्रिय के भीतरी भाग है और इस प्रकार हम स्मृतिचित्रों को जानते हैं। चाक्षुष-स्मृतिचित्रों को हम जब अस्पष्ट रूप से जानते हुए यह भी जानते है कि हमारे मित्र की आँखें ठीक ऐसी ही नहीं हैं तब इसका कारण यह हो सकता है कि मूल-चित्र इस असम्यकता का ज्ञान देता हो, किन्तु चित्र को दृष्टि-

तंतुओं तक प्रसारित करन में अनभ्यास इत्यादि के कारण चूक आ जाती है। इसी प्रकार ध्वनि-चित्रों के लिए भी है। इसको दो प्रकार से प्रभावित किया जा सकता है (१) जैसा कि हमने कहा था, हम अनभ्यास के कारण लय ठीक जब नहीं गुनगुना पाते तब भी उसकी असम्यक्ता को जानते होते है और यह भी कि लय की स्मृति-चित्र के रूप में केवल कंठ को व्यापारित करने पर ही हो सकती। यदि लय की स्मृति और चाक्षुष-घटना की स्मृति मे कोई मौलिक अन्तर नही है तो चाक्षुष-चित्र को भी ज्ञानगत होना चाहिए जब दृष्टि के भीतरी केन्द्र व्यापारित हो। किन्तु लय की स्मृति कंठ मे नही है, यह कंठ को प्रसारित की जाती है, यह इससे स्पष्ट है कि केवल कठ को उकसाकर यह स्मृति उत्पन्न नही की जा सकती। (२) इसका और भी स्पष्ट प्रमाण है किसी ध्वनि का स्मरण न कर सकना। एक मनुष्य एक स्त्री की आवाज याद नही कर सकता यदि मनुष्य की आवाज एकदम भारी है तो, क्योंकि वह उस प्रकार बोल नही सकता। लय की स्मृति नही है, प्रत्युत् ध्वनि के क्रमिक आरोह-अवरोह की स्मृति है। इसलिए किसी भी लय की स्मृति हो सकती है यदि स्मरण करने वाले का कठ कुछ भी अभ्यस्त है किन्तु ध्वनि की स्मृति नही। किन्तु ध्वनि की स्मृति है, यह स्पष्ट है, स्मृति केवल ज्ञान में तभी आती है जब कि वह व्यक्ति पुन: बोलता है और हम जानते है, यह उसी की आवाज है। इस प्रकार स्मृति-चित्र जिन्हें रसल कहते है कि शारीरिक प्रतीत नही होते, पूर्वतः शारीरिक कारणता के अनुसार व्याख्येय है।

किन्तु कल्पना-चित्र एक दूसरी प्रकार के भी होते है जिनमें उस व्यक्ति का कर्तृत्व पाया जाता है जिसके मस्तिष्क में ये चित्र घटित होते है। काव्य में अलंकारों का आधार भी यही कल्पनाएँ है। कहा जाता है कि ये हमारे मस्तिष्क में मुद्रित नहीं होते—शेखचिल्ली के पोते-पोतियाँ कभी नही हुई थी और न उसका कोई भवन ही था। मेरी प्रेयसी कभी क्वीन एलिजाबेथ के सहासन पर भी नही बैठी। कहा जा सकता है कि यह प्रक्रिया यांत्रिक नही और इसमें मन का कर्तृत्व पाया जाता है। इसी प्रकार हम मे अनेक ार विचार घटित होते है और बहुत बार हम स्वयं विचार करते है। कहा जा सकता है प्रथम प्रकार की घटनाओं में कारण-शृंखला का आदि का छोर मन के साथ सम्बद्ध होता है और कहा जाता है कि इन घटनाओं की व्याख्या मन का अस्तित्व अस्वीकार कर नही की जा सकती।

जहाँ तक मन के अस्तित्व का प्रश्न है, उसको इस प्रकार अस्वीकार नही किया जा सकता, किन्तु इन घटनाओं मे ऐसा कुछ नही है जिसकी

व्याख्या शारीरिक स्तर पर न की जा सके। दूसरी और महत्वपूर्ण बात कारण-संबन्धों की व्याख्या है जो मन के अस्तित्व की पुष्टि नही करती।

मानसिकता के समर्थक तर्क करते है कि हम प्रायः दो विरोधी स्थितियाँ देखते है जिनमें मन शरीर पर व्यापारित होता है और शरीर मन पर व्यापारित होता है अथवा नही होता। 'एक व्यक्ति विचार करता है कि उसका अमुक कार्य करना अधिक लाभप्रद्र होगा और वह उसके अनुसार कार्य करता है।' इसमें मन शरीर को व्यापारित करता है। दूसरी स्थिति वह है जब कि उसे भूख लगती है और वह खाना खाना चाहता है। अथवा, उसे छीक आती है और वह छीक देता है। इनमें प्रथम और द्वितीय स्थिति मे विद्यमान अन्तर दो भिन्न स्थितियो अथवा कारणसम्बन्धों की सूचना देता है। किन्तु जैसा कि ब्रॉड कहते है—"हम उन स्थितियों में अकर्तृत्व (पेसिवपार्सक्सीलेंस) का अनुभव करते है जब कि एक शारीरिक व्यापार, जोकि चेतना से युक्त नही होता, ऐसे शारीरिक व्यापार मे परिणत हो जाता है जो एक विशेष प्रकार की चेतना से युक्त होता है और उस अवस्था में कर्तृत्व (एक्टिव पार्एक्सीलेस) का अनुभव करते है जब कि एक शारीरिक व्यापार, जोकि चेतना-युक्त होता है, उन शारीरिकों को प्रेरित करता है जो चेतना-युक्त नही होते।"

मन के चेतन-अचेतन प्रत्ययों के लिए भी ऐसी व्याख्या दी जा सकती है—हम अनेक बार किन्ही अचेतन इच्छाओं और अचेतन-विचारो से प्रेरित कार्य करते है, इस अचेतन प्रक्रिया को मन का ठीक प्रमाण माना जाता है, फ्रायड का अचेतन मन भी एक ऐसा चैम्बर हाउस है जिसमे दमित वासनाएँ विद्यमान रहती है। साइकोएनेलेसिस में प्रयोग करने वाले जिस प्रकार से बात करते है उनसे भी कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है, जैसे कि मन शरीर से कोई पृथक तत्व हो, किन्तु साइकोएनेलेसिस के प्रयोगो की व्याख्या यदि कुछ इस प्रकार दी जाए कि—शारीरिक घटनाएँ जो कि सामान्यतः चेतना से युक्त होती है, जब चेतना से युक्त नहीं होतीं तब हम उन्हें अचेतन मानसिक घटनाएं कह सकते है। इसलिए अचेतन मानसिक घटनाओ का अंतस्संघर्ष विभिन्न शारीरिक व्यापारों का ऐसा अन्तस्सघर्ष है जोकि चेतन मानसिक व्यापारों को प्रभावित करता है। अब रोगी इस प्रकार प्रभावित कुछ मानसिक घटनाओं की शृंखला को देखता है और वह दूसरी किसी भी ऐसी चेतन मानसिक घटनाओं को नही जान पाता जोकि परिवर्तित घटनाओ का कारण हो सकती हों। मान लीजिए, उस रोगी का डाक्टर मन के अभौतिक अस्तित्व में विश्वास नहीं करता, उस अवस्था में वह केवल ऐसे शारीरिक व्यापार की कल्पना करेगा (१) जोकि ऐसी किसी भी मानसिक घटना से सहानुगमित नही है

जिसे कि रोगी जानता हो (२) किन्तु जो उसी सामान्य प्रकृति की है जिस प्रकृति की वे शारीरिक घटनाएँ है जोकि चेतन मानसिक व्यापार से अनुगमित है ।

इस प्रकार उन घटनाओं की, जिनके लिए समझा जाता है कि वे मनके शरीर के सम्पर्क मे आने पर उत्पन्न होती है, व्याख्या भी विशुद्ध रूप से मन के अभौतिक अस्तित्व को अस्वीकार करके की जा सकती है। किन्तु शरीर और मन अथवा शरीर (भूततत्व) इतना भौतिक नही है जितना सामान्यतः उसे समझा जाता है । इस प्रकरण को हम अगले निबध में उठाएँगे और देखेंगे कि किस प्रकार शरीर (पदार्थ) और मन का एक मे समावेश किया जा सकता है ।

७—कारणवाद और स्वतन्त्रेच्छा का प्रश्न

मनुष्य की इच्छाएं, कार्य और विचार किन्हीं बाह्य या आन्तरिक नियमों से शासित होते हैं अथवा वह इनसे एक दम स्वतन्त्र है, यह प्रश्न बहुत प्राचीन है और इस संबंध में बहुत अधिक कहा सुना जा चुका है। तो भी यह प्रश्न अब भी उतना ही उत्तर सापेक्ष बना है जितना पहले कभी भी था। इस प्रश्न के इतना विवादास्पद होने का मुख्य कारण इसका हमारी धारणाओ और विश्वासों का विषय होना है। सामान्यतः साधारण मनुष्य स्वतन्त्रेच्छा के पक्ष मे ही रहे है, यद्यपि धार्मिक विश्वास ईश्वर को, सब कुछ के साथ, हमारी इच्छाओं का भी नियन्ता मानता रहा है। दर्शन के क्षेत्र म यान्त्रिकतावादी (Mechanists), स-सम्बन्धवादी (Associatonists) और सोद्देश्यतावादी (Teleologists) अपने-अपने ढंग से घटनाओं के निर्धारित होने में—सृष्टि के प्रथम क्षण में अन्तिम क्षण के लिखे होने में, विश्वास करते रहे है। किन्तु जितनी सरलता से इस प्रश्न को सुलझाया जाता रहा है, प्रश्न उससे कही कठिन है। सामान्यत. यह प्रश्न कारण-कार्य संबन्ध की प्रकृति से सबद्ध है और इस प्रश्न पर आधुनिक भूत विज्ञान और गणित ने सर्वथा नवीन ढग से प्रकाश डाला है—पदार्थ और शक्ति (Force) सम्बन्धी सिद्धान्तों के समान ही इस सिद्धान्त की व्याख्या में भी आज आधार भूत अन्तर है।

इस का अर्थ यह नही कि पदार्थ, शक्ति और कारणता जैसी समस्याओं के सम्बन्ध मे सब वैज्ञानिक और दार्शनिक एकमत हैं, इन मे कभी कभी काफी मतभेद है, किन्तु फिर भी इन विभिन्न मतों को सामान्यतः दो श्रेणियों मे रखा जा सकता है। इनमें एक वे है जो प्राचीन दृष्टि कोण की सरल व्याख्याओ को मान कर चलते हैं, और दूसरे वे है जो नवीन व्याख्याओं को ठीक मानते है। उदाहरणतः डिनेमिक्स मे करण-कार्य की प्रकृति को ले कर विद्वानो में गंभीर मत भेद है। बहुत से विद्वान डिनेमिक्स को वरणात्मक (Descriptive) मानते है, जब कि प्राचीन प्रणाली के अनुगामी यह स्वीकार करते है कि डिनेमिक्स में केवल अनुक्रम (Sequence) ही निर्देशित नहीं होते प्रत्युत् कारण-कार्य सम्बन्ध भी निर्धारित होते है। इस विवाद के आधार में सामान्यतः शक्ति सम्बन्धी विवाद है, जिसके सम्बन्ध में हम आगे देखेंगे, यहाँ

हम केवल इतना ही कह कर आगे बढ़ते हैं कि शक्ति का सम्बन्ध गति और पेशियों इत्यादि के तनाव से है और गति तथा पेशियों के तनाव की व्याख्या प्राचीन प्रणाली से नही की जा सकती। गति (Acceleration) केवल एक गाणितिक अनुक्रम-संस्थापन है और पेशीय-तनाव एक ऐसी अवस्था है, जिसे अविछिन्न परिवर्तन अथवा प्रक्रिया कहा जा सकता है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इनकी व्याख्या कारण-कार्य की प्राचीन परिभाषा के अनुसार नही की जा सकती।

इसी प्रकार कारण-कार्य की प्राचीन परिभाषा को क्वाटम सिद्धान्त ने एक दूसरी दिशा से चोट पहुँचाई है। क्वामसिद्धान्त से पूर्व भूतविज्ञान में निर्धारिततावाद Determinism का बोल बाला था, जिसका कारण परमाणु के विषय मे भ्रान्त धारणा का होना था। इस सम्बन्ध मे हम पिछले निबन्ध में विस्तार पूर्वक देख आए है। यह मान लिया गया था कि विश्व एक सार्वभौमिक नियम मे शृंखलित और निर्धारित है—काय कारण में पहले से ही निहित रहता है और प्रत्येक क्षण वही होता है जो उसे होना होता है। इसलिए भूत और भविष्यत् केवल हमारे ज्ञान की सीमाएं है, अन्यथा भविष्य उतना ही प्रत्यक्ष और निश्चित है जितना भूत। आज भी बहुत से ऐसे व्यक्ति है जो इस दृष्टि कोण को एक मात्र वैज्ञानिक दृष्टि कोण मानते है। जेम्ज-जीज भी, जो बीसवी शताब्दी के महान् भूत वैज्ञानिकों में से एक था, निर्धारिततावाद Determinism के इस सिद्धान्त का बड़ा समर्थक था। उस का विचार था कि ईश्वरीय प्रतिभा किसी भी भावी क्षण पर होने वाली घटना का पूर्व कथन कर सकती है, यदि उसे 'वर्तमान' की संपूर्ण स्थिति का ज्ञान हो, इस प्रकार उसके लिए अखण्ड काल हस्तामलकवत् होगा।

किन्तु ऐसा मान लेने में कुछ आधार भूत कठिनाइयाँ है—ज्योतिषी हमें गिन कर बता सकते है कि आज से कितने वर्ष-मास-दिन और क्षण पहले सूर्य ग्रहण लगा था और भविष्य मे कब लगेगा। वह प्रत्येक क्षण की सूर्य-चन्द्र इत्यादि की सापेक्ष स्थिति को बता सकता है, किन्तु क्या यह कारण-कार्य सम्बन्ध ज्ञान है? क्या कोई भी क्षण अ किसी भी दूसरे क्षण ब के होने को निश्चित् करता है? क्या यह केवल उसी अर्थ में परिसंख्या (Number) नहीं है जिस अर्थ में कोई भी गति एक परिसंख्या मात्र है—भौतिक यथार्थ नहीं? दूसरी कठिनाई ज्ञान-मीमांसा से सम्बन्ध रखती हैं—चन्द्र ग्रहण को हम केवल अपनो दृष्टि गत संवेदो Visual-

Stimulations के रूप मे ही जानते हैं, और पृथ्वी इत्यादि की, वर्तमान ग्रहण में, सापेक्ष स्थिति का हमारा ज्ञान उतना ही आनुमानिक होता है जितना सुदूर अतीत या सुदूर भविष्य की किसी भी घटना का हमारा ज्ञान होता है। इसी प्रकार डिनेमिक्स मे, ज्ञान की परिभाषा के अनुसार, कोई भी घटना दूसरी घटना के होने मेंउस से अधिक उत्तरदायी नही हो सकती जितनी दर्पण मे एक छाया दूसरी छाया को धकेलने अथवा ठहरान इत्यादि मे उत्तरदायी हो सकती है।

कारण-कार्य संबधी इन आधार भूत प्रश्नो पर पुनः लौटने से पूर्व हम कुछ अन्य पहलुओं पर विचार करेंगे। जैसा कि हमने पीछे देखा था, जेम्ज़-जीज़ भूत विज्ञान मे निर्धारकतावाद का पक्षपाती है, और ज्योतिष मे वास्तव मे किसी भी भावी क्षण को निर्धारित किया जा सकता है, जैसा कि हमने चन्द्र ग्रहण के सम्बन्ध मे कहा है। किन्तु यह निर्धारितता जितनी पूर्ण ज्योतिष और बड़े पिडों के व्यवहार में है उतनी छोटे पिंडों या परमाणुओ के व्यवहार मे नही। परमाणु का व्यवहार और तत्सम्बन्धी ज्ञान अत्यअधिक रहस्यमय है, और ऐसा वह रहेगा, किन्तु यह समझना हमारी एक दम भूल है कि हम इससे अधिक किसी अन्य पिड के सम्बन्ध में जानते हैं। परमाणु को हम उसके रेडियेशन के द्वारा जानते है और इसी प्रकार तारों को भी हम उनकी किरणों के द्वारा ही जानते है। किन्तु परमाणु के घटक (Composit) एलेक्ट्रन की गति के निर्धारण मे हम उस पूर्णता तक नहीं पहुँच सकते जिस पूर्णता तक तारों की गति के निर्धारण में पहुँच सकते है। जैसा कि इडिंगटन 'कहता है—"लेपलेस की आदर्श ईश्वरीय प्रतिभा बड़े से बड़े ज्योति- पिड़ों से लेकर छोटे से छोटे परमाणुओं की भावी स्थिति (Position) का निर्धारण कर सकती है। तो इसके लिए हमें छोटे से छोटे कण एलेक्ट्रन को परीक्षण के लिए लेना चाहिए। मान लीजिए कि एलेक्ट्रन को एक दम साफ रास्ता दिया जाता है (जिससे वह किसी अज्ञात टकराव से बच रहे) और हम उसकी वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में वह सब जानते है जो जानना आवश्यक है। हम एक क्षण के पश्चात उसकी स्थिति को कितनी निश्चितता से बता सकते है ? उत्तर है कि पूर्ण निश्चित और आदर्श स्थिति में हम उसकी स्थिति को डेढ इंच के अन्दर-अन्दर बता सकते है, इससे कम नहीं। यह समीप से समीपतर है जो हम लेपलेस की आदर्श प्रतिमा से संभावना कर सकते है। यह गलती बहुत बड़ी गलती नहीं है जब कि हम जानते है कि

एक क्षण में इलेक्ट्रन ने १००० मील या इससे भी अधिक तय कर लिया हो सकता है।

"किन्तु यह अनिश्चितता और भी अधिक गंभीर होगी यदि हमें यह जानना हो कि एक इलेक्ट्रन एक ऐसे छोटे पिंड, जैसे परमाणु गर्भ, से टकराएगा या नही।"

इडिंगटन आधुनिक भूत विज्ञान में चांस और अनिर्धारिततावाद के सबसे बड़े समर्थकों में से एक हैं और वास्तव में 'संभाव्यता का सिद्धान्त' (Law of Probability) उनके लिए एक बहुत बड़ा चेलेंज है जो कारण-वाद को पुरानी निर्धारिततावादी प्रणाली पर प्रतिष्ठिति करते है। आज परमाणु विज्ञान (Micro Physics) अनिर्धारिततावाद अथवा संभाव्यता के सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित है न कि निर्धारिततावाद के सिद्धान्त पर। यद्यपि महान वैज्ञानिक आईंस्टीन बलपूर्वक इस सिद्धान्त का विरोध करता है और मानता है कि कोई भी विज्ञान ऐसे अस्थिर आधार पर स्थापित नही होना चाहिए, और वह बहुत देर से सापेक्षता सिद्धान्त (Relativity Theory) को परमाणु विज्ञान पर भी लागू करने का प्रयास कर रहा है किन्तु, अभी तक उसे इसमें सफलता नही मिली। उसके विचार में अनिर्धारिततावाद अतर्क सम्मत है: "विज्ञान में हम केवल इस विचार के साथ ही आगे बढ़ सकते है कि कोई आधार-भूत सिद्धान्त और एक निश्चित कारण-कार्य सम्बन्ध विश्व की घटनाओं मे विद्यमान है।"

जहाँ तक इडिंगटन का सम्बन्ध है, वह जीज़ और लेपलेस से अधिक दृढ़ आधार पर प्रतीत होता है, क्योंकि यदि विश्व की घटनाओं में कारण-कार्य सम्बन्ध विद्यमान है तो भी वह उस प्रकार का नहीं है जैसी कल्पना वे करते है।

इसका अर्थ यह नही कि भविष्य ज्ञान असंभव है, किन्तु अभी तक ऐसा कहने के लिए कोई प्रमाण नही है कि भविष्य निर्धारित अथवा पूर्व-ज्ञेय हो सकता है। किन्तु उतना ही यह कहना भी कठिन है कि भविष्य निर्धारित नही है और उसका पूर्व कथन नही किया जा सकता। हमारे विचार में, कारण-कार्य सम्बन्ध का होना घटनाओं के निधारित होने को अवश्यम्भावी नहीं बना देता। आज हम कोष विभाजन (Cell devision) के कुछ निश्चित समय के पश्चात विकसित होने वाले प्राणी के लिंग के सम्बन्ध में बता सकते है, यह बहुत सभव है कि किसी समय हम यह कोष-विभाजन के एक दम

पश्चात् अथवा वपन (fertilization) के ही पश्चात् यह बता सकेंगे, किन्तु यह एक दम असंभव प्रतीत होता है कि हम किसी भी समय यह भी बता सकेंगे कि उत्पन्न होने वाला प्राणी जीवन में कितने कदम चलेगा अथवा उसकी मृत्यु कब और किन कारणों से होगी।

किन्तु हम उस प्राणी के लिंग के सम्बन्ध मे किस प्रकार जानेंगे? यह प्रश्न कारणवाद को समझने में विशेष महत्व पूर्ण है। यदि हम किसी बिन्दु अ१ पर काल क१ में किसी धटना घ१ को जानते हैं तो कारण-सम्बन्ध में संबद्ध किसी भावी घटना घ२ को जानने की सभावना का क्या आधार हो सकता है? रसल के अनुसार कारणता वह सिद्धान्त है जिसके द्वारा हम पर्याप्त काल बिन्दुओं अथवा क्षणों पर पर्याप्त घटनाओं के ज्ञान द्वारा नवीन एक या अनेक काल बिन्दुओं पर एक या अनेक घटनाओ को अनुमित कर सकते है। मान लीजिए कि इस सिद्धान्त के द्वारा यदि हम घ१ के संपर्क में काल क१ पर आते है, घ२ के काल क२ पर घ३ के क३ पर तो हम घ१—१ को क१—१ पर अनुमित कर सकते है। "यह कारण वाद की गाणितिक व्याख्या है, भौतिक विश्व मे इस व्याख्या का क्या आधार है? मान लीजिए हमारा प्राणी का लिंग ज्ञान घ१ है जिसे हम क१ पर जानते है और प्राणी की लिंगोत्पत्ति $घ_न$ जो कि $क_न$ पर घटित होती है। अब इस घन का अनुमान हमें किसी भी काल बिन्दु क२ क३ क४·····–१कन पर हो सकता था। इस प्रकार यदि $घ_र + १ \overset{=}{>} घ_२$ और यदि काल क२ सुविधापेक्ष (Arbitrary) है, सिवाय इसके कि क२ + १ क२ के पश्चात् ही आता है, तो हम मूल घटना से किसी भी काल बिन्दु पर कुछ घटनाओं को अनुमित (Infer) कर सकते है।" किन्तु प्राणी का लिंगानुमान घ१ क१ पर तभी हो सकता है यदि पहले से ही हमने घ१ और घ२ में सम्बन्ध की चरितार्थता को देखा हो। एक बार इस सम्बन्ध को देख कर हम आगे उनकी पुनरावृत्तियों को जान लेते है। इस प्रकार का कारण वाद विशेष का साधारणीकरण है जो अत्यन्त स्थूल आधारों पर होता है। साधारणीकरण की स्थूलता से अभिप्राय केवल यही है कि जब कि हम साधारणीकरण में समान कारण—समान कार्य की कल्पना को मान कर चलते है, कभी भी वही कारण दोबारा अस्तित्व में नहीं आता और इसी लिए कभी भी वही कार्य पुन: घटित नहीं होता। इसलिए भौतिक विश्व मे कारण से कार्य का अनुमान एकदम श्रद्धा पर निर्भर होता है और कार्य का उसी प्रकार घटित होना, जैसा वह अनुमित होता है कम या अधिक संभावित ही होता है निश्चित नहीं। चाहे व्यवहारिक रूप से, अनुमित

कार्य की उत्पत्ति निश्चित ही होती है—उदाहरणतः प्रत्येक चेतन मनुष्य को सूई चुभोने पर पीड़ा का अनुभव निश्चित रूप से होगा—किन्तु सिद्धान्ततः इसे प्रायः निश्चित अथवा बहुत अधिक संभाव्य ही कहा जा सकेगा। (इडिंगटन)

कारणवाद को इस रूप में प्रस्तुत करना कि 'कार्य अपने कारण का अनिवार्य परिणाम है' भ्रांति जनक प्रतीत होता है। यह भ्रांति 'वही कारण वही कार्य' की उक्ति से प्रेरित प्रतीत होती है। किन्तु कोई भी कारण कभी भी 'उसी प्रकार' घटित नही होता, किसी भी घटना की कभी ठीक पुनरावृत्ति नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक घटना उस आयोजन का अविभाज्य अंग बन जाती है जो कि नवीन घटना के घटित होने का आधार प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, यह कल्पना अत्यन्त अव्याप्ति दोष पूर्ण भी है, इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, क्योंकि यह अनुमितियों (Inferences) के विस्तृत क्षेत्र को आवृत नही करती, जब कि कारण सिद्धान्त एकदम अनुमान पर आधृत है।

जैसा कि हमने पीछे कहा था, डिनेमिक्स मुख्यतः विवरणात्मक है, इसका अभिप्राय यह है कि इसमें शक्ति की कल्पना के लिए अब कोई स्थान नही है। गति भौतिक वास्तविकता न होकर मात्र एक संख्या है। इसी प्रकार हमने आगे 'पदार्थ और मन' निबन्ध में देखा है कि ऐटम (परमाणु) भी एक वस्तु न होकर मात्र एक प्रक्रिया (Process) है। किन्तु अनुमान का आधार यह विश्वास है कि वर्तमान भूत से और भविष्यत् वर्तमान से निर्धारित होता है। हमारे विचार से यह विवरण-सिद्धान्त के विपरीत भी नहीं है यदि इसकी व्याख्या कुछ उसी प्रकार की जाए तो। जैसा कि हमने अगले निबंध में देखा है, दो समयों पर 'चाँद' को वही मानने का आधार कारणता सिद्धान्त ही हो सकता है, अन्यथा चाँद कभी भी वही नहीं होता, इसी प्रकार क१ पर भावी घटना घ२ को अनुमित करना कारणता सिद्धान्त के अनुसार ही संभव है। किन्तु कारण-कार्य सम्बन्ध का पूर्ण विश्लेषण प्रायः असंभव है। कारणता की प्रक्रिया विभिन्न घटनाओं से प्रेरित होकर देश और काल में कार्यों (Effecte) के सरल योग के साथ व्यापारित होती है। इसी प्रकार वर्तमान का भी भूत की अधिक सरल घटनाओं में विश्लेषण किया जा सकता है। और इस प्रकार यदि हम वर्तमान से भविष्यत् को अनुमित कर सकते हैं और वर्तमान भूत की अधिक सरल घटनाओं में विश्लेषित किया जा सकता

हैं तो यह समझना काफी सरल हो जाता है कि कैसे कारण और कार्य का सम्बन्ध देश और काल मे दो घटनाओं की सहानुयायिता (Successive correlation) का सम्बन्ध है। प्रकृति में प्रत्येक वस्तु निरन्तर परिवर्तन की 'अवस्था' मात्र है, इसलिए जिसे हम घटना कहते है वह भी मात्र एक धारा या प्रक्रिया मात्र रह जाती है। थीयरी ऑफ क्वाटा (स्तोक-सिद्धान्त) यद्यपि हमें बताती है कि नैरन्तर्यता केवल प्रतीति है, यथार्थ नहीं, यदि ऐसा है तो हम सिद्धान्तत. ऐसी घटनाओ को प्राप्त कर सकेंगे जो धारा (Process) नहीं है, किन्तु उस अवस्था मे भी कोई घटना पूर्वानुगामी अथवा पश्चानुगामी घटना का 'कारण' नही हो सकती। किन्तु हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए विच्छिन्नता उपयोगी नही है और न वह अभी तक पूर्णतः प्रमाणित ही है। किन्तु किसी भी अवस्था में कारण-कार्य सम्बन्ध के रूप में हम केवल मात्र एक दिशा की ओर निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया को जानते है। मान लीजिए मै एक तारे को देखता हूँ, सामान्यत कहा जाएगा कि तारे को मेरे देखने के कार्य का कारण तारा है, किन्तु मेरे देखने और तारे-एक भौतिक विषय-के बीच में कारणों की असीम श्रृंखला है जिसमें मेरी पुतली (रेटीना) इत्यादि में होता हुआ स्फुरण भी एक भाग है। इस सारी प्रक्रिया अथवा धारा में हम किस बिन्दु को कार्य और किसे कारण कह सकते है? हम यहाँ मान लेते है कि तारा वह बिन्दु है जहाँ से कारण श्रृंखला व्यापारित होती है (जैसा कि हमने अगले निबन्ध मे मान लिया है), किन्तु श्रृखला मे कार्य-कारण के विभाजन का, जिसमें कारण-कार्य के अस्तित्व को बाध्य करता है, कोई अर्थ नहीं रह जाता। इस प्रकार "भूत वैज्ञानिक सिद्धान्त यह नहीं कहेगा कि अ ब से अनुधावित होता है, प्रत्युत् यह कि एक कण (Particle) प्रस्तुत परिस्थितियों में कैसी गति प्राप्त करेगा, अर्थात् यह हमें बताता है कि कैसे प्रस्तुत कण की गति प्रत्येक क्षण में बदल रही है"—दूसरे शब्दों मे, प्रत्येक नवीन घटना अपनी पूर्वानुगामी घटना को समावृत करती चलती है अथवा प्रत्येक पूर्वानुगामी घटना पश्चानुगामी घटना में समाहित होती चलती हैं। बर्ट्रेंड रसल इस तथ्य को बड़ी सुन्दर उपमा देकर प्रस्तुत करते हैं, वे कहते है—"यह कहना कि परमाणु की अवस्थिति है (It persists) उतना ही सार्थक है जितना यह कहना कि ट्यून की अवस्थिति है। यदि ट्यून पाँच मिनट समय लेती है, हम यह नहीं मानते कि यह कोई एक वस्तु है जो इस सम्पूर्ण समय में अवस्थित रहती है, प्रत्युत यह कि यह स्वरों का एक अनुक्रम है जो इस प्रकार संबद्ध ह कि इसमें एक प्रकार की एकता है। "अब हम एक स्थूल

उदाहरण समस्या को चित्रित करने के लिए देंगे—यदि हम दूध में थोड़ा दही डालते हैं और इसे उपयुक्त परिवृत्ति प्रदान करते है, यह घोल कुछ समय के पश्चात् दही बन जाएगा। अब हम बाद की घटना—दही से पहली घटना—दूध में दही मिलाना-अनुमित (Infer) कर सकते हैं जो कि कारणों की एक शृंखला (Train) से पश्चानुगमित हुई होगी, और यह उतना ही स्वाभाविक है जितना दूध में कुछ दही डालकर हम दही जमने की घटना, जो कि एक कारण शृंखला से पूर्वानुगमित हुई होगी, की आशा करते है। परन्तु कोई भी इस विचार को पसंद नहीं करेगा कि दूसरी घटना (दही जमना) ने पहली घटना और कारणों की शृखला को घटित होने के लिए बाध्य कर दिया था, इसी प्रकार पहली घटना ने भी अनुगामी कारण शृंखला और दही जमने की घटना को बाध्य नहीं किया, यह केवल आरोह या अवरोह (Ascending or Descending) दिशा का सख्यानुक्रम है। जहाँ तक अनुमान का प्रश्न है, वह एक सीमा तक सदैव पूर्वानुगामी अथवा ब से अ की ओर उन्मुख होता है, क्योंकि जब तक एक बार दूध में दही पड़ने की आकस्मिक घटना को फलित होते हुए देख नहीं लिया जाता, हम इन दो घटनाओं के सम्बन्ध को नहीं जान सकते, अर्थात हम सदैव कारण-कार्य सम्बन्ध को दही से दूध अथवा दही घोलने की प्रथम घटना को अनुमित करने के में जानते हैं, और कारण कार्य सम्बन्ध की प्रकृति की यह विशेषता है कि हम यह नहीं कह सकते कि पहली घटना में आगे की कोई भी घटना पूर्व निश्चित (Prefigured) होती है । इस प्रकार यह न केवल पूर्वोन्मुख ही है प्रत्युत इसमें एक प्रकार की विषयीता (Subjectiveness) भी आ जाती है, क्योंकि हम उस अवस्था में भी कार्य मे कारण अथवा ब में अ को समाहित नहीं देख सकते और न ब से अ तक की शृंखला के सम्पूर्ण बिन्दुओं को कभी गिन ही सकते है। रसल कहते है—

"कारण सिद्धान्त से मेरा अभिप्राय किसी भी ऐसी सामान्य प्रतिज्ञा से है जिसके द्वारा एक घटना का होना दूसरी घटना या घटनाओं से अनुमित किया जा सकता है।" उदाहरण के रूप में बिजली की चमक और कड़क में अथवा आग और धूएं में संबंध को प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस स्थापना के पश्चात् अब हमें एक बार फिर अपने 'दूध से दही' को उदाहरण पर लौटना चाहिए। इस प्रकरण में संख्या और

रेखा की प्रकृति (Property) को समझना विशेष रूप से उपयोगी रहेगा। अब हम यह अच्छी प्रकार से जानते है कि दो घटनाओं, अथवा दो संख्याओं अथवा दो विन्दुओं मे असंख्य अथवा असीम घटनाओं, सख्याओं अथवा बिन्दुओं का अनुक्रम विद्यमान है, और हम कभी भी प्रथम से द्वितीय तक 'प्रत्येक' बिन्दुको गिनते हुये नही पहुँच सकते; घटनाओं अथवा बिन्दुओ की व्याख्या कुछ दूसरे ढंग से भी की जा सकती है जहाँ घटनाएं अथवा क्षण कुछ कालिक परिमाण रखते है, और रसल ने यह (our knowledge of the External world) में लिखा भी है, परन्तु हमारे प्रस्तुत उद्देश्य के लिए उसकी आवश्यकता नही है। इसलिए कोई भी गणितज्ञ दो घटनाओ के बीच के अन्तर को नही माप सकता और इस प्रकार एक दम बाद (Immediate Next) को घटना को नही प्राप्त कर सकता। वह किन्ही दो बिन्दुओ को चुन लेता है जो उसे सुविधा जनक प्रतीत हो। किन्तु ठीक यह है कि हम ब को तब तक नही जान सकते जब तक कि वह वास्तव विषय (Actual Data) नही हो लेता। पुराने दार्शनिक, जो 'वही कारण वही कार्य' की बात कहते रहे है, यद्यपि उसमे साधारणोकरण ही है, किन्तु साधारणीकरण मे जो आधार भूत विशेषता है उस पर ही इसमे सबसे गंभीर आघात होता है, क्योंकि 'वही' शब्द विशेष के लिए है। ईश्वरीय प्रतिभा वाला गणितज्ञ भविष्य निर्धारण मे समर्थ समझा जाता है—कि वह प्रत्येक परमाणु की गति और दिशा (Velocity) तथा स्थिति (Position) का पूर्व निर्धारण कर सकता है, जैसे ज्योतिषी तारों का करते है, किन्तु यदि यह संभव भी हो, तो भी यह गणित वस्तुओ की अंतर्निहित प्रकृति के बारे मे कुछ नही बताता। इलेक्ट्रन एक क्षण के पश्चात् किस बिन्दु पर होगा बताना इससे एक दम भिन्न है कि उसका कब बिस्फोट होगा। यदि हम यह मानले कि परमाणु का आज दस बजे विस्फोट उसमें कल या करोड़ वर्ष पूर्व विद्यमान था, जिसे मानने के लिए हमारे पास कोई कारण नही है, तो यह एक दम उसकी गति और स्थिति के ज्ञान से भिन्न है।

"परमाणु का विस्फोट हमें कारण-कार्य सम्बन्ध के एक अन्य पहलू से परिचित कराता है, 'इस विस्फोट को हम वि$_\alpha$ प्रतीक देते है जो कि परमाणु विशेष का अन्तर्निहित गुण है। अब यहाँ कठिनाई यह है कि हम इस वि$_\alpha$ का ज्ञान कब प्राप्त करते है ? उस समय जब कि वि$_\alpha$ का कोई अस्तित्व नहीं होता ?" यदि हम विस्फोट से वि$_\alpha$ का परमामाणु विशेष में होना स्वीकार करते है तो यह अतीतोन्मुख विश्लेषण के रूप में ठीक है, किन्तु तब

हम यह भी अनुमित कर सकते है कि आज दस बजे वि० होने की विशेषता इस परमाणु विशेष मे सैदव रही होगी, और अनुमान को केवल अतीतोन्मुख होने से ही संशयास्पद और हास्यास्पद नहीं कहा जा सकता। आज दस बजे विस्फोट का परमाणु विशेष में पहल से ही विद्यमान होना अथवा उसकी अवश्यंभाविता का यह अभिप्राय नही है कि यह वि० कोई ऐसी घटना थी जिसने आगे की धटनाओ को घटित होने के लिए बाध्य कर दिया प्रत्युत् यह कि यह परिवर्तन की ऐसी दिशा थी जो क्रमिक गत्यात्मकता मे विकसित हो रही थी। यह है जिसे हम किसी वस्तु की अन्तर्निहित विशेषता अथवा गुण कहते है। ब्रिजमैन (Bridgeman) कहता है कि "हम एक सरल घटना अ को सरल घटना ब से कारण-कार्य रूप मे सबद्ध नही प्राप्त करते, परन्तु उस आयोजना की संपूर्ण पृष्ठ भूमि उस मे समाविष्ट होती है जिसमे कि घटनाए घटित होती है। इस लिए कारणता एक सापेक्ष कल्पना है क्योकि यह उस सपूर्ण आयोजना को ही आविष्ट करती है जिसमे कि घटना अस्तित्व मे आती है।" किन्तु इस आयोजना मे वह कारण-कार्य सम्वन्ध को जिस प्रकार प्रस्तुत करता है वह उचित प्रतीत नही होता, वह कहता है—"अ और ब के बीच का सम्बन्ध एक असम (Asymitricle) सम्बन्ध है जो कि इस की परिभाषा मे ही निहित है। जहाँ कारण एक सुविधापेक्षी और बदलने वाला (Variable) तत्व है, कार्य वह है जो उस के अनुगत होता है। इस के अतिरिक्त अ एक से अधिक घटनाओ का कारण हो सकता है और घटनाओ की एक पूर्ण शृखला को जन्म दे सकता ह।" यहाँ कार्य को एक निश्चित और अन्तिम मान लिया गया है, जो कि भ्रान्ति पूण है, क्योकि कार्य भी उतना ही सुविधापेक्षी और बदलने वाला (Variable) तत्व है जितना कारण। मान लीजिए कोई घटन घ[१] घ[२] की कारण है और घ[१] आरबिट्रेरी है, अब घ[२] को हम कैसे जानेगें और किस घ[२] को कार्य कहेगे? घटना घ[२] को घटित होने में कुछ न कुछ समय लगेगा ही, चाहे वह कितना ही थोड़ा क्यों न हो और उस अवस्था में घटना की कुछ प्रथमावस्था और अन्तिमावस्था भी होगी, और इसी प्रकार घ[२] की भी। तो यहाँ हम किसे कारण कहे और किसे कार्य? यहाँ हमें कारण और कार्य का सुविधापेक्षी चुनाव नहीं करना होगा? इसी प्रकार कार्य के 'एक' और 'निश्चित' होने के लिए भी। मान लीजिए हम एक पत्थर शीशे पर मारते हैं और वह टूट जाता है। यहाँ वह पत्थर की चोट शीशे के टूटने, आवाज होने, शीशे के नीचे गिरने और टूटने

और आवाज करने तथा विशेष केसों में, शीशे के स्वामी के क्रुद्ध होने इन सब की कारण हो सकती है। वास्तव में यहाँ भी एक कार्यों की श्रृंखला है और हम सुविधापेक्षी कार्य का चुनाव करते हैं।

यहाँ एक और समस्या उठ खड़ी होती है, हम घ१ और घ२ के बीच कैसे विभाजन कर सकते हैं? क्या इन के बीच कोई कालिक अन्तर होता है? रसल कहते है—होता है। उन के अनुसार "क्योंकि कोई भी दो घटनाएँ एक दम एक दूसरे के पश्चात् नहीं हो सकती, इसलिए कछ सीमित काल क दो कारण-कार्य घटनाओं के बीच अवश्य होना चाहिए। यद्यपि यह कुछ अलध्य कठिनाइयां उत्पन्न करता है।" वे इस की पुष्टि करते हुए कहते है—"यह स्पष्ट है कि प्रथम घटना के घटित होने का कोई समय होगा। इसलिए कारणता को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना चाहिए : यदि घटना घ१ काल क१ पर घटित होती है तो यह घ^{२} से अनुगमित होगी।" कारणता एक सार्वभौमिक नियम के रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत की जाएगी "यदि कोई घटना घ१ विद्यमान है तो घ२ भी उपस्थित होगी और इस अनुक्रम सम्बन्ध का यह नियम होगा कि जब भी घ१ अस्तित्व में आती है घ$_{२}$ उस के पश्चात् अस्तित्व में आती हैं। किन्तु इससे पहले कि हम इसे कुछ निश्चितता देते हैं, हमें यह अवश्य निश्चित रूप से कहना चाहिए कि कितने काल बाद घ$_{२}$ घटित होगी। इस लिए निम्न सिद्धान्त उद्भूत होता है।

"किसी भी घटना घ१ के उपस्थित होने पर घ$_{२}$ का अविर्भाव होता है और यह इस प्रकार कि जब भी घ१ घटित होती है घ^{२} काल क के पश्चात् उसका अनुगमन करती है।"

किन्तु हमारे विचार में घ^{१} और घ^{२} को किसी क से विभाजित करना अतर्क सम्मत है; इसका अर्थ यह भी है कि घटनाएँ स्वतंत्र इकाइयाँ है, जो कि न केवल इसलिए गलत मालूम पड़ता है क्योकि ऐसी घटनाएँ कार्य-घटनाओं का कारण नहीं हो सकेंगीं प्रत्युत इसलिए भी कि इस प्रकार हम प्रत्येक वस्तु अथवा श्रृंखला को इस काल क पर अनस्तित्व मानेगे। जहाँ तक दूसरी आपत्ति का प्रश्न है, हम यहाँ इस पर विचार नहीं करेंगे, यहाँ हम केवल पहली आपत्ति पर ही अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। अब मान लीजिए, प्रत्येक घटना स्वतंत्र इकाई है और दो घटनाएँ क से पृथक्कृत है—तो क्या प्रथम घटना प्रारम्भ से अन्त तक एक समान रहती है? यदि उसमें कुछ अन्तर आता है तो वह अपने रूप में एक प्रवाह है इकाई नहीं, अथवा उसमें

पुनः क से विभाजित छोटी घटनाएँ हैं। किन्तु जैसा कि ह्वाइट हेड ने प्रमाणित किया है, और जिसे रसल स्वयं प्रशसित करते है, घटनाएँ इन्फेनेटेसिमल (असीमल्प) नही होतीं, उनकी कुछ कालिक सीमा होती है। दूसरे, यदि वह इकाई (Entity) भी है तो वह किस प्रकार दूसरी घटना की कारण हो सकती है ? उसका प्रथम भाग कारण होगा या अन्तिम या संपूर्ण ? यदि संपूर्ण-जैसा कि इकाई के लिए होना आवश्यक है, तो वह दूसरी घटना की कार्य किस प्रकार होगी ? क्या दूसरी घटना वहाँ पहले से ही विद्यमान होगी और पहली घटना केवल उसको व्यापारित कर देगी ? यदि वह पहले से ही नहीं होगी तो एक इकाई दूसरी का कारण कैसे बनेगी ? और उसके पहले से वहाँ होने का अर्थ है, किसी भी नवीन घटना का न होना। इसके अतिरिक्त घ[१] जिसकी सीमा क से पहले ही समाप्त हो जाती है उस घ[२] का कारण कैसे हो सकती है जो क के पश्चात् प्रारम्भ होती है ? और फिर प्रारम्भ और अन्त का प्रश्न भी निरर्थक है क्योंकि घटनाओं का कारण-कार्य होना वैसा ही है जैसे पंक्ति में कुछ गोलियाँ पिरो कर किसी बच्चे को कहना कि वह गिने। यहाँ प्रत्येक बाद वाली गोली की क्रम-सख्या अपने से पहले वाली की क्रम संख्या पर निर्भर करेगी और इसी अर्थ में एक घटना दूसरी की कारण होगी। इस प्रकार काल क को घ[१] और घ[२] के बीच रखना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। हमारे विचार मे कारण-कार्य सबंध निर्दिष्ट-निरन्तर-अनुक्रम-परिवर्तन (Continuous Successive change towards Certain direction) मात्र है और हम इस अनुक्रम में किन्ही भी दो घटनाओं को सुविधापेक्षया (Arbitrarily) चुन कर कारण-कार्य कह सकते हैं। कारण से कार्य का ज्ञान पूर्णतः अनुमान पर आधारित है, जो कि दूसरे शब्दों में साधारणी-करण है, किन्तु इसीलिए हम कभी भी निश्चित रूप से भविष्य को निश्चित नहीं कर सकते। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्धारिततावाद एक तरह से अस्वीकार्य है, यद्यपि अतर्क सम्मत नहीं है।

किन्तु निर्धारिततावाद को हम एक दूसरे रूप में स्वीकार कर सकते है, जो कि हमारी कारण सिद्धान्त की विश्लेषणात्मक व्याख्या के विपरीत नहीं है। हमने अगले निबंध में देखा है कि एक वस्तु अथवा पदार्थ की एकता आधार भूत कारणता (Intrinsic causality) पर आश्रित है, और हमने इस निबंध में कारण-सिद्धान्त को निर्दिष्ट-निरन्तर-अनुक्रम—परिवर्तन कहा है, जिसका अर्थ है कि कारण कार्य मे एक निश्चित सम्बन्ध है और परिवर्तन निर्धारित रूप में होता है, जिसे हमने वि$_{\alpha}$ के रूप में पीछे देखा

था । हम जानते हैं कि दो युग्मज (Twins) एक दूसरे के समान या बहुत अधिक समान होते हैं, और हम यह भी विश्वास करते हैं कि यदि एक कप दूध दो भागों में बाँट दिया जाए और उसे पूर्णतः समान परिवृत्ति में रख दिया जाए तो वह सदैव समान रहेगा । किन्तु एक कप के दूध के सम्बन्ध में अनुभव के आधार पर कहा ला सकता है। यद्यपि हम एक बार एक विशेष दूध के विकास को, अथवा परिवर्तन क्रम को देख कर दूसरे लगभग वैसे ही दूध के सम्बन्ध मे भविष्य वाणी कर सकते है, किन्तु परमाणु जगत में यह कठिनाई अलंघ्य है। इसी प्रकार अतीतोन्मुख (Retrospetive) सभी प्रकार के अनुमानों में कठिनाई है। "मानलीजिए हम किसी रासायनिक नमक की रासायनिक प्रकृति को जानना चाहते हैं और इसे टेस्ट ट्यूब में डालकर इस पर विभिन्न प्रयोग करते हैं और परिणाम पर पहुँचते है कि यह सिलवर नाइट्रट (Silver nitrate) था। किन्तु हमारे इस प्रयोग के पश्चात यह सिलवर नाइट्रेट नहीं रहा । इस प्रकार जिस गुण (Property) को हम अनूमित करते है वह य होने का गुण नहीं प्रत्युत य 'रहे होने' का गुण है । इस कठिनाई को हम नाईट्रेट का कुछ अंश अपने हाथ में बचा कर रख कर दूर कर सकते है, किन्तु परमाणु जगत मे यह नहीं कर सकते। पोटाशियम में दो प्रकार के परमाणु होते हैं, यह हम जानते हैं, जिनमें एक रेडियो सक्रिय और दूसरा निष्क्रिय होता है । इनमें एक को हम $प^{अ}$ और दूसरे को $प^{न}$ कहते हैं । हम यह भी जानते है कि $प^{अ}$ का विस्फोट होना है और हम उसको पहले से ही बता सकते है । किन्तु हम विस्फोट के काल के संबंध में कुछ नहीं जानते, सिवाय इसके कि यह लगभग एक अरब वर्ष तक किसी भी समय होगा । अब यदि हम देखते हैं कि यह काल क पर फटता है तो हम परमाणु को अतीतोन्मुखी विशेषण $प^{क}$ दे सकते हैं—यह मानते हुए कि इसमें काल क पर फटने की विशेषता सदैव विद्यमान थी।" (इडिंगटन)

यहाँ कठिनाई वास्तविक है, और जैसा कि इडिंगटन बताता है भूत विज्ञान या गणित के अनुसार यह विशेषता परमाणु में पूर्व प्रत्यक्ष नहीं होती, इस लिए निर्धारिततावाद के लिए कोई स्थान नहीं है, किन्तु यदि हम कारण-सिद्धान्त और निर्धारिततावाद को घपला नहीं देते, तो हमारे लिए इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं है । मैं फूल सूंघता हूँ, एक निश्चित आशा के साथ कि परिणाम घ्राणेन्द्रिय की केन्द्रानुगामिनी और केन्द्रापसारिणी धमनियों में अनुगत होगा, संभव है कि फूल सूँघने की वाह्य क्रिया

और सुगन्धि के अनुभव के बीच कोई अन्य धटना घटित हो कर उसको रोक दे, किन्तु इस व्याघात से पूर्व एक शृंखला प्रारंभ हो चुकी होगी और हमारा अभिप्राय उस शृंखला से ही है, उस की अनुभूति या ज्ञान में परिणति से नही । अनेक बार यह छोटी सी बात समझने मे भूल कर दी जाती है । रसल कहते है कि 'यदि कारण कुछ है ही तो उन्हे उनके कार्यों (Effects) से सीमित काल व्यवधान के द्वारा पृथक् किया जाना चाहिए ही । इस प्रकार कारण-कार्यो को उत्पन्न करता है जब कि वह स्वयं समाप्त हो चुका होता है।' वह एक उदाहरण भी अपने इस कथन को स्पष्ट करने के लिए देते है—'मान लो, हम एक आना भार बताने वाली मशीन मे डालते है और हमारे भार का एक टिकट ऊपर आ जाता है, किन्तु यहाँ घ[१] और घ[२] मे एक निश्चित व्यवधान है, और संभव है कि उसी समय कोई बंम्ब विस्फोट इस व्यवधान में गिर कर घ[२] के कार्य को चरितार्थ होने से रोक दे ।' किन्तु यहाँ स्पष्ट है कि कारण और कार्य का चुनाव सुविधापेक्षी (Arbitrary) है क्यो कि कारण शृखला आना फेंकने से कही पहले मशीन को देखने और इच्छा करने से प्रारम्भ हो चुकी होती है और इस की समाप्ति कहां होती ह, यह नही कहा जा सकता, क्योंकि टिकट निकल आनें के पश्चात् टिकट मिलने वाले की विचार धारा की एक शृखला प्रारम्भ हो सकती है । सच तो यह है कि कार्य शृंखला का प्रारम्भ भी इसी प्रकार और भी अधिक विस्तृत हो सकता है, सम्भव है वह व्यक्ति दुर्भाग्य शाली हो और कुछ दिनो से मशीन में आना फेक कर अपने भाग्य की परीक्षा के लिए लालायित हो, किन्तु उसके पास इसके लिए एक आना न हो । इस प्रकार हमें कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हम कारण और कार्य के बीच किसी व्यवधान की कल्पना करें जब कि कारण-कार्य इस प्रकार एक दम ऐच्छिक या सुविधापेक्षी है ।

जैसा कि हम ने पीछे भी देखा था, हम कारण और कार्य को ऐच्छिक रूप ही चुन सकते है, क्योंकि हम संपूर्ण कारण-शृंखला को नहीं देख सकते, इस लिए कारण से कार्य का ज्ञान सैदव पहले देखे हुए, समान सम्बन्धों के ज्ञान पर निर्भर करता है, हम इस ज्ञान को अन्वय के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त Laws of psycological Association का ही एक रूप कहें तो भी उपयुक्त ही है । हम बिजली (तड़ित) की चमक देख कर गर्जन की प्रतीक्षा करते हैं । यद्यपि यह एक भौतिक व्यापार है, और संभव है हम गर्जन को कभी नहीं सुन सकें, क्योंकि संभव है इस बीच में ही

शेर की गर्जन अथवा और कोई व्याघात इसको रोक दे, किन्तु हम पीछे तड़ित और गर्जन को अनुक्रम मे देखते रहे है, इस लिए हम अनजाने ही उसकी प्रतीक्षा करते है, यद्यपि इस विश्वास के साथ कि यह एक निश्चित भौतिक नियम है। कोई संदेहवादी यदि तड़ित की चमक देख कर गर्जन के अस्तित्त्व मे तब तक सदेह करता है जब तक वह भी हमारे शरीर में एक कारण-शृंखला को जन्म नहीं दे देती तो वह उपहासास्पद नहीं है, क्योंकि संभव है विशेष चमक गर्जन से अनुगत ही न हुई हो, क्योकि यह उस किसी भी तड़ित-चमक के समान नहो थी जिसे हम पहले देखते आए होते है, किन्तु जितने ही अधिक ऐसे सम्बन्ध हम देखते है उतनी ही अधिक मनोवैज्ञानिक अनुमान की भौतिक न्याय्यता दृढ़ होती जाती है । हमारे चार्वाक दार्शनिक न्याय के अनुमान प्रमाण को गलत बताते हुए यही तर्क देते थे कि किसी ने सारे धूम्र और अग्नियो को नहीं देखा और इसीलिए किसी के पास धूम्र को देख कर अग्नि के सद्भाव के अनुमान की कोई न्याय्यता नही है, किन्तु इस तर्क के ठीक होते हुए भी इस सम्बन्ध को स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि यद्यपि यह चाहे सब कालों में अवश्यम्भावी नही हो, यह बहुत अधिक सभाव्य अवश्य होगा।

किन्तु धूम्र-अग्नि सम्बन्ध या तड़ित-गर्जन-सम्बन्ध कारण सिद्धान्त के बहुत उपयोगी उदाहरण नही हो सकते, क्योकि ये कभी भी हमारी इन्द्रियों की दिग्भ्रान्ति के कारण हो सकते है, हम ओस को धूम्र समझ सकते है और बिना किसी तड़ित-चमक के आकाश मे चमक देख सकते है, फिर भी सामान्य अवस्थाओं में इस प्रकार के अनुमान न केवल उपयोगी और स्वाभाविक ही है प्रत्युत न्याय्य भी हैं क्योकि इस प्रकार से अनुमानो के आधार में साधारणी-करण की प्रक्रिया क्रियाशील होती है और कारण-कार्य सम्बन्ध का आधार साधारणी करण ही है, अन्यथा विशेष घटनाओं में अथवा विशेषों (Perticulars) मे इस सिद्धान्त को लागू करने का कोई अर्थ नहीं है। यहाँ इडिंगटन प्रश्न कर सकते है कि साधारणी-करण में आप की क्या न्याय्यता है जब कि आप वही कारण वही कार्य (Same cause same effect) के विचार का विरोध करते है ?' मै अपने अत्यधिक आदरणीय दार्शनिक से निवेदन करना चाहूँगा कि साधारणीकरण किसी भी तरह से विशेषों में पूर्ण समता का समानार्थक नहीं है और न कभी विशेषों में पूर्ण समता होती ही है। यहाँ फिर साधारणी करण ही है किन्तु विशेषों के सम्पूर्ण युगलों में समता के अर्थ में नहीं प्रत्युत विशेषों की सम्पूर्ण श्रेणी के सम्बन्धों मे समता के अर्थ में। यह है

जो कारण सम्बन्ध में समता से अभिप्रेत होना चाहिए। मान लीजिए मै एक फर्लाङ्ग से एक वाली बाल मैच देख रहा हूँ। पंद्रह मिनट समय मे मै प्रत्येक हिट को ध्वनि से अनिवार्य रूप से अनुगमित देखता हूँ। अब मान लीजिए कि मै इसके पश्चात एक हिट के बाद ध्ननि नही सुनता। इस विक्षेप के अनेक कारण हो सकते हैं—सभव है हिट इतनी धीमी हो कि ध्वनि हमारे श्रवण के सम्पर्क में न आई हो, सम्भव है ध्वनि-लहरो को वायु के किसी तीव्र झोंके ने हम तक न पहुँचने दिया हो, सम्भव है कोई अन्य ध्वनि हिट की ध्वनि से अधिक तीव्र हो और सम्भव है कि हमारी श्रोत्रेन्द्रिय के सम्पर्क मे ध्वनि-लहरों के आने पर भी मस्तिष्क केन्द्र का विशेष भाग किसी और क्रिया में संलग्न हो और आल्फेक्टरी (Olfactory) धमनी में व्यापारित कारण-शृंखला उस केन्द्र को क्रिया शील न कर सकी हो। इसी प्रकार सम्भव है कि विषय और ज्ञान ततुओं के मध्य-स्थित अन्तराल मे किसी घटना के कारण हम हिट को देख न सके किन्तु उसकी ध्वनि सुन ले, बाह्य अन्तराल या व्यवधान के निर्बाध होने पर हमारी मानसिक अनुपस्थिति इसका कारण हो सकती है, ऐसी अवस्था में हम यदि हिट से ध्वनि अथवा ध्वनि से हिट को अनुमित करते है तो यह न्याय्य है और कारणवाद के सिद्धान्त के अनुकूल है, (१) क्योंकि ऐसी अवस्था में हम अनुमान करते हैं कि यह किसी मध्यस्थ व्यवधान के कारण था (२) क्योंकि साधारणी करण का आधार घटना विशेष न होकर सम्बन्ध-विशेष की प्रकृति है। इनमें प्रथम उत्तर ज्ञान मीमांसा से सम्बन्ध रखता है, जिसकी कुछ चर्चा हमने अगले निबन्ध में की है। क्या इस अनुमान का अर्थ किसी भी प्रकार से निर्धारिततावाद या 'वही कारण-वही कार्य' हो सकता है? नहीं, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि मै हिट-ध्वनि सम्बन्ध का साधारणी करण कर रहा हूँ, जिसका विशेष हिट और ध्वनि से कोई सम्बन्ध नही है। इस प्रकार कारणता अपनी पूर्ण न्याय्यता रखती है, चाहे रसायण शास्त्री भविष्य वक्ता न भी हो सके।

जहाँ तक नेपलेस की ईश्वरीय प्रतिभा का प्रश्न है, जो विश्व की एक क्षण पर सम्पूर्ण स्थिति या अवस्था को जान लेने पर भविष्य के किसी भी क्षण पर विश्व की अवस्था को जान सकती है, हमें इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित या अन्तिम बात कहने की आवश्यकता नही है, हमारे लिए जिस बात का महत्व है वह यह है कि क्या भूत या भविष्यत हमारे लिए उसी प्रकार ज्ञेय हो सकते है जिस प्रकार वर्तमान? जहाँ तक कारणवाद का

सम्बन्ध है, उसके लिए भूत और भविष्यत मे कोई अन्तर नही है । हम यह निश्चय के साथ कह सकते है कि "दो समान वस्तुएं समान परिस्थितियों मे रखने पर भूत और भविष्त मे सदैव समान रहेगी, जब भी हम उनका परीक्षण करें।" यहाँ हम जीज और लेपलेस से उसी आदर का दावा कर सकते है जो वे अपने ईश्वर के लिए रखते है, किन्तु यहाँ हम गाणितिक नियमो से पूर्व निर्धारित ब का पूर्व कथन नही करते है, प्रत्युत दो समानान्तरों के बीच एक सम्बन्ध की प्रकृति बता रहे है।

कारण से कार्य और कार्य से कारण को अनुमित करने की प्रवृत्ति विज्ञान और अनुभव दोनो मे बद्ध मूल है । भूत वैज्ञानिक तारो की किरणो के रगो से उनकी बनावट को अनुमित करते है, जेनेटिस्ट जेन (Gen) को उसकी अभिव्यक्ति से अनुमित करते है, और यदि एक कदम और आगे बढ़ा जाए तो, हम अस्तित्व मात्र को विभिन्न शारीरिक कारण शृखलाओं से अनुमित करते हैं। उस व्यक्ति से, जो विशेष केसों में प्रमाण की माग कर रहा हो, हम उसके जन्म का प्रमाण-पत्र मांग सकते है, उसकी पैतृकता को ही चेलेंज किया जा सकता है। इसमे संदेह की कोई गुंजाइश नही है कि एक मनुष्य का पिता मनुष्य ही हो सकता है, इसलिए यद्यपि पूर्ण साधारणीकरण चाहे कुछ केसो में संभव न हो, और हमारे यंत्र परमाणु के व्यवहार मे काफी अनिश्चितता दर्शाते है, तो भी (संभाव्यवाद के समर्थकों से शब्द उधार लेते हुए) यदि हम यह स्वीकार करते है कि उपर्युक्त प्रकार का निर्धारितता वाद बहुत अधिक सम्भाव्य है तो यह अनुचित नही होगा । इस प्रकार हम एक ओर इडिंगटन की आपत्तियों को रास्ता देते है और दूसरी ओर कारण सिद्धान्त का समर्थन कर सकते हैं, क्योकि कारण-कार्य संबधों को स्वीकार करके हम आवश्यक रूप से भविष्य वक्ता होने का दावा नही करते, किन्तु दूसरी ओर यदि एक बार किन्हीं विशेष रासायनिक क्रियाओं के कारण दूध फट जाता है, हम बड़ी सुविधा से यह अनुमान कर सकते है कि वैसी ही अवस्थाओं में यह पुनः फटगा । यह 'वही कारण-वही कार्य' को स्वीकार करना नही है, यह "समानान्तर परिवर्तन" के नियम को स्वीकार करना है । भूगर्भ वैज्ञानिक जब शिलाओं का काल निश्चय करते है और भूत वैज्ञानिक जब थर्मोडिनेमिक्स के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो वे इसी नियम के अनुसार कार्य करते है।

× × ×

हमारे विचार में, अब हम कारण संबंधों के बारे में कुछ समझ रहे है

ग्रौर इसके प्रकाश में स्वतंत्रेच्छा की समस्या का अध्ययन हम कुछ अधिक वैज्ञानिक दृष्टि कोण से कर सकते है। हम यह मानने में सहमत हैं कि विश्व की घटनाओं में कुछ नियमित कारण-संबंध है। इसलिए हम सुविधा पूर्वक इस परिणाम पर पहुँच सकते है कि वैज्ञानिक-भौतिक-विश्व में स्वतंत्रेच्छा जैसी कोई चीज नही है। कोई भी परमाणु अपना रास्ता, अपनी इच्छानुसार चुनने में स्वतंत्र नही है, क्योंकि यहाँ कोई विकल्प संभव प्रतीत नहीं होता, इसका व्यवहार कुछ निश्चित नियमों के अनुसार शासित होता है।

किन्तु इस सिद्धान्त को लागू करने में तब कुछ कठिनाई प्रतीत होती है जब हम पदार्थ की एक दूसरी श्रेणी के सपर्क मे आते है, जिसे हम जीवित पदार्थ कहते हैं। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है जब यह परीक्षण मनुष्य पर किया जाए। यह बड़ी सुविधा से प्रमाणित किया जा सकता है कि मनुष्य किन्हीं बाहरी शक्तियों अथवा नियमों के आधीन अपनी इच्छाओ के शासित होने को स्वीकर नही कर सकता, वह अपनी स्वतत्रेच्छा से कार्य करना पसंद करेगा। इसलिए स्वतत्रेच्छा को प्रायः सभी स्वीकार करते है। यदि यह सत्य है तो पदार्थ और मन अथवा निर्जीव पदार्थ और जीवित पदार्थ में अन्तर के क्या आधार हो सकते है ? क्या इनमें कुछ आधार भूत अन्तर है अथवा यह केवल जीवित पदार्थ के घटक तत्वों के मिलन की विशेषता मात्र है ? यदि हम दूसरे अभ्युपगम को स्वीकार करते है तो इस का अभिप्राय है कि जीवित पदार्थ के परमाणु भी उसी प्रकार कारण-सिद्धान्त के विषय है, क्योंकि वे जड़ पदार्थ के परमाणुओ से भिन्न नही है। इस प्रकार, मनुष्य या पशु किसी की भी स्वतत्रेच्छा का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। किन्तु इडिंगटन सम्भाव्यता के सिद्धान्त (Law of Probability) के धुँधले प्रकाश मे स्वतत्रेच्छा की पुन: स्थापना के लिए टटोलते है। वे कहते है "यदि हम अपने शरीरो के क्रिया-व्यापार को ऐंसे कुछ मस्तिष्क केन्द्र के परमाणुओं की खूंटी क्रिया से संबद्ध करते हैं जिन का व्यवहार पूर्ण निर्धारित नहीं है, तो समस्या सरल हो जाती है क्योकि स्वतत्र-परमाणु व्यवहार मे बहुत अधिक अनिर्धारितता रखते है। मेरा अपना दृष्टि कोण है कि 'चेतना का केन्द्र निर्जीव सिस्टम से इस बात में भिन्न हैं कि यह अपने व्यवहार में अत्यधिक ।अनिर्धारितला या स्वतंत्रता रखता है—केवल अपनी उस प्रकृति के कारण, जो एक दम पदार्थ से भिन्न है, जिसे हम अहम् (Ego) कह सकते है।"[१]

---

[१] New Pathways in Science.

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि इडिंगटन अपनी कल्पनाओं को उस से कहीं अधिक ढील दे रहे है जितनी वैज्ञानिकता की सीमा में उपयुक्त हो सकती है। अभी तक कोई भी ऐसे प्रायोगिक या तार्किक (Logical) आधार हमारे पास नहीं है जिन से यह प्रतीत होता हो कि सजीव पदार्थ अथवा 'चेतना-केन्द्र' के परमाणु इडिंगटन की इच्छानुसार कार्य करते हों, अर्थात् जो अपने व्यवहार में अधिक अनिर्धारितता प्रदर्शित करते हो। एक वैज्ञानिक के लिए यह बहुत अधिक है कि वह केवल कल्पित सभावनाओं के आधार पर आत्मा या चेतना की वकालत करे। यहाँ इडिंगटन यह प्रमाणित करते है कि कोई अपदार्थिक तत्व—चेतना अपनी स्वतंत्रेच्छा की चरितार्थता के लिए परमाणुओं की अनिर्धारित प्रकृति का लाभ उठाती है। किन्तु यह अन्तर्विरोध-पूर्ण है, जैसा कि इडिंगटन स्वय अन्यत्र कहते है। और दूसरा दोष आधार भूत है जो कि ऐसे सब दर्शनों में मूलित हैं जो किसी भी प्रकार की द्वैतता का समर्थन करते है। वैसे इडिंगटन अपने आप को सम्भवत: द्वैतवादी नहीं मानते। द्वैतवादी दार्शनिक पदार्थ और चेतना के किसी मिलन-बिन्दु की कल्पना करते है। जिस पर कि हम (कोई तीसरा अस्तित्व ?) चेतना का अनुभव करते है। किन्तु यह एक दम अस्पष्ट, कल्पित और निरर्थक है, क्योंकि यदि चेतन कोई ऐसी वस्तु है जो पदार्थ से एक दम स्वतंत्र है, और जैसा कि इसे होना भी चाहिए, और इसी प्रकार पदार्थ भी, तब चेतना और पदार्थ का कोई सम्मिलन बिन्दु नहीं हो सकता, और यदि पदार्थ और चेतना एक दूसरे के लिए गम्य है तो वे तब क्या होंगे जब एक दूसरे से पृथक् होंगे ? और फिर वे क्या नियम है जिन के अनुसार वे मिलते हैं ? यदि चेतना पदार्थ के बिना भी चेतन है तो वह पदार्थ के सम्पर्क मे क्यों आती है ? यदि वह पदार्थ के संपर्क के बिना चैतन्य को चरितार्थ नही कर सकती, तो वह चेतना कैसे कही जा सकती है ? यदि उसके संपर्क से निर्जीव पदार्थ सजीव होता है, तो क्या चेतना कोई ऐसी रासायनिक शक्ति रखती है जिस से निर्जीव पदार्थ में कुछ विशिष्ट रासायनिक क्रियाएँ घटित हो कर उसे सजीव बना देती है ? ये ऐसे प्रश्न हैं जो सदैव उत्तर-रहित रहे है। क्योंकि 'चेतना' कुछ ऐसा तत्व है जो पदार्थ नही है और पदार्थ में कुछ ऐसे गुण है जो चेतना में नही हैं इसलिए चेतना पदार्थ को अनुभव नहीं कर सकती और पदार्थ कभी चेतना के लिए अनुभूति नहीं रख सकता। जीवित पदार्थ के परमाणुओं में अधिक निर्धारितता की कल्पना भी अन्तर्विरोध पर्ण है, जिसे इडिंगटन ने स्वयं अन्यत्र स्वीकार किया है। वे कहते है—"अभ्युपगम अ का दोष इसमें था

कि यह अ-ससंबन्ध अथवा चास के सिद्धान्त के साथ, जीवित पदार्थ के व्यवहार को भूत विज्ञान के सामान्य नियमों से निर्धारित स्वीकार करती थी और फिर आगे फिर नान् चांस फैक्टर—इच्छा से उसे निर्धारित अथवा शासित मानती थी, किन्तु हम व्यवहार को एक साथ ही चांस और नॉ-चांस अथवा ससम्बन्ध और अ-स-सम्बन्ध (Correlation and Non correlation) से निर्धारित नही मान सकते ।'(फिलासफी आँफ फिजिकल साईस)

यह उद्धरण बताता है कि कैसे वैज्ञानिक आज तर्क शास्त्री बन रहे है, और यह विज्ञान के लिए एक शुभ-चिह्न है, किन्तु यहाँ इडिंगटन बहुत आगे बढ़ गए प्रतीत होते है । यहाँ यह स्पष्ट है कि इडिगटन ने दूसरे उद्धरण मे आधार भूत असंगति को कुछ धुँधला कर दिया है, किन्तु वास्तव असंगति उसी प्रकार विद्यमान है । यह ठीक है कि अभ्युपगम अ अन्तर्विरोध पूर्ण है, किन्तु अभ्युपगम ब केवल भाषा के मार्जन से संगत नही हो जाती । यद्यपि उनके परिणाम तर्क संगत है किन्तु फिर भी वे ठीक नही भी हो सकते, क्योकि वे ऐसे आधारों पर आधृत है जो अतर्क सम्मत और भ्रान्त है । इडिगटन का दूसरा उद्धरण वास्तव मे पहले से कही अधिक अभ्युपगमिक है । यह समझना कठिन है कि जीवित पदार्थ के परमाणुओं को इडिंगटन किन आधारो पर लॉ ऑफ नॉन् चांस से शासित मानते है, जब कि वे भूत विज्ञान में लॉ ऑफ प्रॉबेबिलिटी अथवा लॉ आँफ चास का घोर समर्थन करते है ।

जहाँ तक भूत विज्ञान का सम्बन्ध है, आईस्टीन तीव्रता से, विज्ञान में चांस फैक्टर का विरोध करते है । वे कहते है—"अनिर्धारितावाद पूर्णत अतर्क सम्मत कल्पना है.... .यदि मै कहूँ कि परमाणु का औसत जीवन मान इस अर्थ में अनिर्धारित है कि वह कारण-सम्बन्ध से स्वतंत्र है, तो मैं एक दम मूर्खता पूर्ण बात कर रहा हूँ।" और दूसरे क्वांटम्फिजिक्स में संभाव्यता का सिद्धान्त (Law of Probability) भी परमाणुओं को मटर गश्ती के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र नही प्रदान करता, वह अनिश्चितता इतनी निश्चित और आनुपातिक है और उसको भी समाप्त करने की इतनी सभावनाएं है कि उससे किसी प्रकार की अटकल बाजी व्यर्थ है । यही कारण है कि इडिगटन ने जीवित पदार्थ के परमाणुओं के लिए या तो पूर्ण स्वच्छन्दता की मांग की अथवा पूर्ण निश्चितता की, जिससे तथा कथित चेतना उनसे अपनी स्वतंत्रेच्छा के अनुसार काम ले सके ।

+ + +

जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, हम कारण से कार्य या कार्य से कारण का निर्धारण नही कर सकते क्योंकि घ$_1$ और घ$_2$ केवल इस अर्थ में कारण-कार्य हैं कि ये हमारी सुविधा-सापेक्ष है, अन्यथा कोई कारण नही कि इनके बीच का कोई भी क्षण या बिन्दु (Point and instant) क्यों कारण-कार्य नही कहा जाए। और यदि हम यह मान लेते है तो यह स्पष्ट है कि हम घ$_1$ और घ$_2$ के बीच की बिन्दु-शृंखला को नही गिन सकते, क्योंकि यह असीम है। यह आवश्यक नही कि हम इन बिन्दुओं को बिन्दु या क्षण कहें (यदि बिन्दु या क्षण विवादास्पद शब्द है) हम इन्हें मात्र अवस्थाएं भी कह सकते है। इन अवस्थाओ की असीमता को भी चेलेंज किया जा सकता है, जैसा कि असीमल्प (Infinitesimal) को लेकर दार्शनिकों मे विवाद है, किन्तु अवस्था को एक काल्पनिक अस्तित्व मानते हुए हम उसकी परिभाषा कुछ इस प्रकार कर सकते है—अ' अ'' अ''' . . . . अ^{न} यदि एक घटना घ^1 है तो अ' से अ^{न} तक यह विभिन्न अवस्थाओं मे से हो कर गुजरी है और कोई भी दो अवस्थाएं अपने से छोटी अवस्थाओ का समूह है। इसलिए हम इन आनुक्रमिक (Successive) अवस्थाओं को न जान सकने के कारण अ' पर अ^{न} का और अ^{न} पर ब का निर्धारण नहीं कर सकते। इसलिए साधारणीकरण की व्यापकता को मानते हुए हम कारण-कार्य संबंध ज्ञान की प्रकृति को फिर दुहराएगे :—दो सर्वथा समान क्रम समान परिस्थितियों में सर्वदा समान अवस्थाओ मे से बीतेंगे, यदि कभी इनमे भिन्नता उत्पन्न हो जाती है तो इसका कारण उन अन्तर्निहित विशेषताओं को समझा जाएगा, जो इन स्पष्ट रूप से समान क्रमो मे विद्यमान होने पर भी ज्ञात नही थी, और यह भूत विज्ञान के लिए उतना ही सत्य है जितना जेनेटिक्स [Genetics] के लिए। यहाँ हमें एक बात स्पष्ट करनी चाहिए: कि हमारा इस साधारणीकरण का अर्थ रसल के उस साधारणीकरण से सर्वथा भिन्न ह जिसे वह "अनुक्रम की नियमित आवृत्ति" Observed Uniformities of Sequence कहते है।

अब हमारे लिए मुख्य समस्या इन सबंधों को जीवित पदार्थ और मन

"Indeterminism is quite an illogical concept ... if I say that the average life span of such an atom indeterminaet in the sense of not being caused then I am talking non-sense.

पर लागू करना रह जाती है। हमने 'पदार्थ और मन' निबंध में जीवित और जड़ पदार्थ तथा मन में एकता का प्रतिपादन किया है, इसलिए यहाँ पुनः उस प्रश्न को उठाने की आवश्यकता नही है, किन्तु कारण-कार्य संबंध को लेकर इस प्रश्न पर हमे पृथक् विचार करना होगा।

जैसा कि हमने देखा था, इंडिगटन जीवित पदार्थ के सम्बन्ध में सोचते हुए मस्तिष्क-केन्द्र मे भिन्न प्रकार के परमाणुओं की और फिर अहम् या चेतन-तत्व की कल्पना पर पहुँच जाते है। इसका मुख्य कारण उनकी दृष्टि का बहुत अधिक विकसित जीव-मनुष्य पर केन्द्रित होना है। किन्तु यदि हम मन और जीवित पदार्थ की प्रकृति पर वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पहले छोटे प्राणियों और जेन अथवा कोष [Gene or cell] को ले तो भ्रान्ति की सम्भावनाएं बहुत कम रह जाएंगी। मनुष्य पर दृष्टि केन्द्रित करके मन के संबंध में बहुत सी ऐसी धारणाएं और दर्शन प्रणालियां विकसित हुई हैं, जो हमारे विचार में निराधार है। एक बार मेरे एक मित्र ने कहा कि "सम्भवतः केंचुए और मिट्टी मे कोई आधार भूत अन्तर नहीं है, किन्तु मनुष्य और केचुए में आधार भूत अन्तर प्रतीत होता है।" सम्भबतः उस समय वह सहज-भावना से उत्प्रेरित होने के कारण ही ऐसा कह रहा था, नहीं तो वह प्रायः ही कहा करता है कि मनुष्य और एक कोष वाले प्राणियों में कोई आधार भूत अन्तर न हो कर केवल 'समय' का अन्तर है। किन्तु बर्गसाँ यह मानते हुए भी कि मनुष्य और अमोयबा में केवल समय का अन्तर है, काल [Time] की परिभाषा को रहस्यमय बना देते हैं और द्वैतवाद की वकालत करते है। यह आश्चर्य की बात है कि जब कि वे विकास पर काल को लागू करते हैं तब अमोयबा और मनुष्य में मौलिक अन्तर नही करते, किन्तु जब आत्मतत्व की वकालत करने लगते हैं उस समय अपने विचार की पुष्टि के लिए जो तर्क देते हैं वे केवल मनुष्य के उलझन पूर्ण व्यवहार पर ही केन्द्रित रहते है। जड़ और जीवित पदार्थ मे भेद बताते हुए वे कहते है—"किन्तु हमने जो तर्क प्रस्तुत किये है उनसे स्पष्ट है कि प्राणी, जिन्हें कि प्रकृति ने व्यष्टित्व प्रदान किया है (Closed off by nature) जड़ पदार्थ से, जिसे हमारा विज्ञान पृथक् [Isolate] कर लेता है, भिन्न है। ये तर्क कम विकसित प्राणियों को दृष्टि में रखते हुए कम ठोस प्रतीत होते है, हम यह स्वीकार करते हैं, किन्तु जब हम ऐसे प्राणियों पर जो कि शैशव से वार्धक्य तक एक निश्चित परिवर्तनक्रम (Transformation) में से हो कर बीतते है, दृष्टि पात करते है, हमारे तर्क अधिक ठोस प्रतीत होते हैं।" (Creative Evolution)

किन्तु जैसा कि हमने देखा है और आगे और भी निश्चित रूप से देखेंगे, ये तर्क ठोस आधार पर नही है। बर्गसा अपनी सुरक्षा का खूब प्रबन्ध करते हैं अवश्य, किन्तु यह किले बन्दी कार्डो के घर से अधिक सुरक्षित नहीं है। वे कहते है काल प्रवाह (Duration) जितना ही अधिक अपने चरण-चिह्नो से जीवित प्राणी को अकित करता है उतना ही अधिक प्राणी मात्र-यंत्रिकता से, जिसे काल सक्षत नही करता, भिन्न होता है।" किन्तु काल क्या है और यह जड़ और 'कम जीवित' को अपने क्षतों से क्यों उपकृत नही करता? और दूसरे, मनुष्य किसी भी तरह से अमोयबा से अधिक व्यष्टित्व पूर्ण (Closed off) नही है। यह ठीक है कि मनुष्य अमोयबा से 'अधिक सजीव' और कम यांत्रिक है किन्तु यह अन्तर केवल उलझन (Complexity) का है। विज्ञान मनुष्य के शरीर को अमोयबा से भिन्न करके नही देखता, उसे बर्गसा के समान काव्यात्मक रहस्यवाद में कोई दिलचस्पी नही है। कुछ कवि वैज्ञानिक पर दोषारोपण करेंगे कि वह फूल को उसकी 'पूर्णता' मे नहीं देखता, जो कि रंगमय, सस्मित और मधुर है और उसे बुरा भला कहेंगे कि वह नीलम पर जड़ित मुक्ताओं जैसे तारकित नभ को एक ऐसा शून्य बताता है जिसमें करोड़ों-अरबों अग्नि-पिड, जो कि पृथ्वी से करोडो गुणा बड़े हैं, घूम रहे हैं। किन्तु क्या यह उसका दोष है?

यह ठीक है कि जीवित और निर्जीव पदार्थ में अन्तर है जो कि जीवित पदार्थ और निर्जीव पदार्थ की अपनी श्रेणियों में पाए जाने वाले अन्तर से अधिक स्पष्ट और भिन्न है, किन्तु यह अन्तर आधार भूत और मौलिक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जेनेटिस्ट और जीव वैज्ञानिक (Biologist) कुछ निश्चित नियमों को जो, कि अमोयबा से मनुष्य तक समान रूप से लागू होते है, प्राप्त करते है और ये नियम भूत विज्ञान और रसायण शास्त्र से मौलिक रूप से भिन्न नही है। जेनेटिक्स में एक्सकिरणों तथा दूसरी कास्मिक किरणों और रासायनिक द्रव्यों के प्रयोग ने और शरीर-विज्ञान में रासायनिक द्रव्यों के प्रयोग ने निश्चित और प्रत्याशित परिणामों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि जीवित पदार्थ और जड़ पदार्थ में कोई आधार भूत अन्तर नहीं है और जीवित पदार्थ के परमाणुओ के नियन्त्रण (Correlation) के लिए किसी आत्म-तत्व की आवश्यक्ता नहीं है।

यह ठीक है कि हम कोष (Cell) के घटन (Compositson) को अच्छी तरह से नही जानते : ज्ञात घटक-तत्वों को ज्ञात परिमाण मे मिला कर हम जीव कोष नही प्राप्त कर सकते(यद्यपि कुछ दिन हुए, अमरीकन रिपोर्टर

में सूचना आई थी कि एक अमरीकन वैज्ञानिक ने प्रयोगशाला में 'पहला प्राणी' तैयार कर लिया है, किन्तु यह सूचना अभी पुष्ट नही है—यद्यपि इसमे कुछ भी आश्चर्य जनक बात नही है) । एक कोष के मुख्यत. तीन भाग होते है—मैम्ब्रेन (बाहरी बारीक पर्दा), साइटोप्लास्म (पर्दे के अन्दर का रासायनिक पानी) और न्यूक्लियस (पानी के बीच मे सेल-केन्द्र) । इन भागो के आगे उप विभाग है । साइटोप्लाग्म और न्यूक्लियस मे हजारो कण होते है, न्यूक्लियस के कणो को जेन कहते है । ये जेन प्रोटीन-कण होते है जो कि तागे के समान वस्तु, जिन्हे क्रोमोसोम (Chromosom) कहते है, लिपटे रहते है । ये जेन ही सामान्यत: जीवन के ज्ञात आधार है । जेन अपनी वैयक्तिक और सापेक्ष (क्रोमोसोमो मे अन्य जेंनो की सापेक्ष स्थिति के अनुसार) विशेषताएँ रखते है । "अक्लेद्य आत्म तत्व युक्त" प्राणी-मनुष्य के और दूसरे विकसित प्राणियों के भी, कोष श्रम-विभाजन (Divsion of labour) के अनुसार विभक्त हो गए है, जब कि अविकसित या बहुत कम विकसित प्राणियो के कोष परिवृत्ति के प्रति प्रतिक्रिया की, तथा अन्य प्रकार की सब विशेषताएँ अविकसित रूप में सजोए रखते है । विकसित प्राणियों मे यह अविकसित कोष चार मुख्य भागों मे विभक्त हो जाता है—जनन कोष, प्रतिक्रिया कोष (Receptor cell), पेशीय कोष (Muscel cell) तथा गेग्लियन सेल (Ganglion cells) । ये कोष आगे अपने कार्य की प्रकृति के अनुसार विभिन्नता रखते है । यद्यपि हम कोष के घटन को आज अच्छी तरह से नहीं जानते, किन्तु जेनेटिस्टों और शल्य वैज्ञानिकों (Anotomists) ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इस सजीव इकाई का व्यवहार उतना ही नियमित और भौतिक है जितना किसी भी निर्जीव पदार्थ का ।

जेनेटिक्स मे रासायनिक द्रव्यो और कॉस्मिक किरणों के प्रयोग बर्गसानियन वाईटलिज्म के लिए कोई स्थान नही रहने देते । यहाँ इडिंगटन आपत्ति करेंगे कि 'यह मात्र सिलेक्टिव साब्जेक्टिविज्म'[1] Selective Subiectivism का ही उदाहरण है, क्योकि उक्त परिणाम हमारे Subjectively equipped यंत्रो पर अंकित प्रतिक्रियाएं मात्र है । इसलिए हमारे प्रयोग

विषयो की तद्गत प्रकृति Objective Nature का उद्घाटन नही करते। इन प्रयोगों से हम केवल ज्ञानेन्द्रियों पर अंकित भाषा को स्मृति और विश्वास इत्यादि से और भी विषयीगत Subjective बना कर पढ़ते है। इसलिए विषयगत पदार्थ ObjectiveReality वह नही है जो हमे परोक्ष या अपरोक्ष सम्पर्कसे प्रतीत होता है।' हम इंडिगटन के साथ पूर्णतः सहमत है, जब वे यह कहते है, किन्तु तब इडिंगटन ही विषयो के तद्गत यथार्थ को जानने का दावा कैसे कर सकते है? विषयो का ज्ञान सदैव अपूर्ण और विषयीगत प्रकृति का ही हो सकता है, हमारे ज्ञान की यह आधार भूत प्रकृति है, किन्तु प्रायोगिक ज्ञान मे यह सुविधा है कि वह सब के लिए सामान्य होता है। और दूसरे, यदि हमारे यंत्र दो विषयो की उपस्थिति मे समान रूप से प्रतिक्रिया करते है हम सुविधा से यह परिणाम निकाल सकते है कि ये विषय उस पहलू मे समान है जिस पहलू को हमारा यत्र अंकित करता है, यद्यपि हम उस पहलू की स्वलक्षण प्रकृति को जान नही सकते। यदि दो गाड़िया समानान्तर पर चल रही हों, तो हम उन की स्पीड को न जानते हुए भी कह सकते हैं कि 'इन दोनो की स्पीड एक ही है।' यही थर्मामीटर और माइक्रोस्कोप से प्राप्त ज्ञान के लिए भी सत्य है। हम गर्मी और सर्दी इत्यादि को उन के स्वलक्षण रूप मे नहीं जान सकते और थर्मामीटर पर अंकित डिग्री हमारी गर्मी की अनुभूति के समान भी नही है, और ये दोनों ही विश्व मे घटित होने वाले उस विशेष व्यापार के समान नही है जिसे हम गर्मी कहते हैं—हम केवल कारण शृंखला के एक छोर को एक विशेष प्रकार से जानते है, जो छोर शृखला की कुछ पीछे की कड़ियो से, जिन्हें हम विषय गत कारण शृंखला की कड़ियाँ कह सकते है, भिन्न प्रकृति का है। इसी प्रकार हमारे ज्ञान और इस छोर की प्रकृति मे भी कोई समता नहीं है, किन्तु यदि थर्मामीटर किन्ही दो क्षणो पर एक ही डिग्री को अकित करता है तो हम कह सकते है कि इन दो क्षणों पर विश्व एक विशेष पहलू मे समान अवस्थाओं में था। इसका अर्थ यह नहीं कि हम केवल प्रायोगिक ज्ञान को ही विश्वसनीय ज्ञान समझते है अथवा इस ज्ञान को उत्तम प्रकृति का ज्ञान समझते है, किन्तु जहाँ तक संभव है, इसे हमारे अप्रायोगिक ज्ञान का आधार होना चाहिए।

नहीं आएंगीं और हम उनका समावेश अपने ज्ञान में नही कर सकेंगे, इस प्रकार हमारा सागर के प्राणियों का ज्ञान सब्जे-क्टिव सिलेक्टिविज्म कहा जाएगा।

बर्गसा विज्ञान और गणित को (वास्तव में सभी प्रकार की विश्लेषणात्मक प्रणाली को) ज्ञान के साधन के रूप में अनुपयुक्त समझता है, और प्रातिभ ज्ञान (Inituition) का समर्थन करता है जो कि प्रकृत्या ही सश्लेषणात्मक है। उसके विचार में कालिक विकास सश्लिष्ट, निरवच्छिन्न और अतएव प्रतिपल नवीन (Noval) है, और इसकी इस नवीनता के सौदर्य का उपभोग प्रातिभ से ही हो सकता है। वह काल की इस निरवच्छिन्नता को ही स्वतंत्रता का आधार बताते हैं। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होना चाहिए कि स्वतंत्रेच्छा का काल की नूतनता और निरवच्छिन्नता (Real duration) से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

मनुष्य को छोड़ते हुए, विकासवाद के जीव वैज्ञानिक सिद्धान्त में कोई भी ऐसो चीज नही है, जो स्वतंत्रेच्छा के बर्गसॉनियन विचार के समीप बैठ सके। अमोयबा और बन्दर के व्यवहार में एक मात्र भिन्नता उनकी परिवृत्ति का उपभोग (Manipulate) करने की सामर्थ्य मे है। पक्षी घोसल बनाते हैं, यह परिवृत्ति का मैनीपुलेशन (Manipulation) है। कभी-कभी ये अपने व्यवहार में बड़े चतुर और बुद्धिमान प्रतीत होते हैं, किन्तु वे कितने अधिक यात्रिक होते हैं, यह बड़ी सुविधा से देखा जा सकता है, यहाँ तक कि बन्दर भी बहुत अधिक यांत्रिक होता है। यह ठीक है कि हम यह निश्चित नहीं बता सकते कि अमुक बन्दर प्रहार करने पर प्रति प्रहार करेगा या भाग जाएगा, किन्तु यह चुनाव उसके भी अहम् की स्वतंत्रेच्छा पर अवलबित नही है, यह उसकी शारीरिक अवस्था और प्रकृति पर निर्भर करता है, जो प्राकृतिक नियमो के अनुसार शासित होते है। पॉवलॉव का निर्धारित प्रतिक्रिया (Conditioned Reflex) का सिद्धान्त और प्रतिलिपि (Trace) का सिद्धान्त भी प्राणी व्यवहार में इसी प्रकार की निर्धारितता की पुष्टि करता है। आज हम मस्तिष्क मे स्मृति-चिन्हों (Traces) और प्राणी व्यवहार के शारीरिक आधारो के संबन्ध में बहुत कम जानते है, इसलिए जेनेटिस्ट और जीव वैज्ञानिक आज सब कुछ विस्तृत रूप में नही बता सकते, किन्तु विशुद्ध तर्क और प्रयोग, दोनो दृष्टियों से, हमारे विचार में, मानसिक प्रक्रिया का आधार शरीर को मानना सुविधा जनक है।

मनुष्य अपनी इच्छाओं में स्वतत्र है, इसे प्रायः सब स्वीकार करेंगे, किन्तु वास्तव में यह भी सदैव यान्त्रिक रूप से ही कार्य करने में प्रवृत्त होता है और जब कभी उसे भिन्न प्रकार से कार्य करना पड़ता

है, वह एक तनाव और भार का अनुभव करता है। जैसा कि हमने पिछले नबंधों 'फिनो जेनेटिक्स और व्यक्तित्व' तथा 'प्रवृत्ति की प्रकृति'—मे देखा है, मनुष्य की अनुभूतियां, विचार और व्यवहार आनुवंशिकता (Heredity) और परिवृत्ति के सामान्य क्षेत्र (Common field) है और वह उससे कही अधिक यान्त्रिक और प्रवृत्यात्मक (Instinctive) ह जितना हम समझते है।

जैवी विकास के कारण और विकसित समाज का सदस्य होने के कारण मनुष्य कुछ ऐसी विशेषताएँ रखता है जिनसे कुछ दार्शनिक उसे ईश्वर से प्रेषित समझने लगे और बर्गसाँ जैसे द्वैतवादी हो गए। बर्गसा ने अपनी 'पदार्थ और स्मृति' (Matter and Memory) पुस्तक में अभ्यास और स्मृति मे बडी योग्यता से अन्तर बताया है, और इस भेद के आधार पर वे द्वैतवाद के सिद्धान्त की वकालत करते है। वे भूमिका में लिखते हैं—"यह पुस्तक पदार्थ और आत्म तत्त्व की यथार्थता को मान कर चलती है और एक निश्चित उदाहरण—स्मृति के आधार पर इनके पारस्परिक संबध को निश्चित करने का प्रयास करती है।"

विशुद्ध स्मृति, रसल जिसे नॉलेज मेमोरी (Knowledge Memory) कहते हैं, की मानसिकता के सम्बन्ध में हम पीछे विस्तार से देख आए है, यहाँ हमें उस सम्बन्ध मे केवल इतना ही कहना है कि यह स्मृति बन्दरों में बहुत कम स्पष्ट होती है, और कुत्ते की श्रेणी के जीवों में यह प्रायः बिल्कुल ही नहीं पाई जाती, वे केवल अभ्यास-स्मृति (Habit Memory) ही रखते है। बर्गसा का विशुद्ध स्मृति का विचारशील (Intellectual) प्राणी-मनुष्य में होने का सुझाव और इसकी अन्य प्राणियों में अनुपस्थिति (यद्यपि वे इसका अभाव अन्य प्राणियों में नहीं बताते, किन्तु एक तो उन्होंने जो उदाहरण दिए है वे मनुष्य के ही है और दूसरे, उन्होंने क्रियेटिव एवोल्यूशन में प्रकृति की व्याख्या करते हुए उसमें स्मृति के अस्तित्व को नही माना) और काल की सृजनशीलता (Creativeness) की प्रवृत्यात्मक प्राणियों में स्वीकृति और विचारणा के साथ उसके विपरीत-भाव की वकालत असम्भव परिणामों पर हमें पहुँचाती है—कि मनुष्य चेतन तत्त्व युक्त होने पर भी (विशुद्ध स्मृति के कारण) स्वतंत्रेच्छा से रहित है और अन्य प्राणी स्वतंत्रेच्छा रखने पर भी आत्म तत्त्व से रहित हैं। इसका अर्थ हुआ कि चेतन तत्व और स्वतंत्रेच्छा एक साथ नहीं रह सकते।

किन्तु यह एक अत्यंत उलझनपूर्ण प्रश्न है जो विस्तृत विवेचन की अपेक्षा

करता है । यहाँ हम इस सम्बन्ध में केवल संक्षिप्त रूप से अपन विचार स्पष्ट करेंगे । हम एक अभ्युपगम (Hypothesis) प्रस्तुत करेंगे, हम कहेंगे कि प्रत्येक मानसिक व्यापार मस्तिष्क- कोषों के यंत्र में विद्युत्-लहरों और शक्ति विस्फोट के रूप में उत्पन्न होता है, इसलिए मानसिकता शारीरिक यंत्र के कार्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिसका अर्थ हुआ कि हमारी इच्छाएं हमारी भौतिक परिस्थितियो से स्वतत्र नहीं हैं । इसलिए हम कह सकते हैं कि दो भिन्न व्यक्ति कभी समान इच्छाएँ नही रख सकते और एक व्यक्ति कभी दो एक जैसी इच्छाएँ नहीं रख सकता । और यह बर्गसाँ की यथार्थ कालिकता (Real Duration) से भी भिन्न नहीं है । इससे हम सुविधा से परिणाम निकाल सकते हैं कि मनुष्य इडिंगटन के सुझाव अ अथवा ब + अहम् की स्वतत्रता के अर्थ मे स्वतंत्र नहीं है और न बर्गसां की रीयल ड्यूरेशन के अर्थ में ही स्वतत्र है । मान ले कि हम एक दम समान प्राणियों को प्राप्त करते है, और मान ले कि यदि हम उनमें से किसी एक पर प्रहार करते है और वह प्रति प्रहार करता है, तो हम यह परिणाम निकालने में पूर्णतः न्याय्य है कि दूसरे ने भी ठीक उसी प्रकार प्रति प्रहार किया होता यदि हम तब उस पर आक्रमण करते, किन्तु यदि दो बिल्कुल एक ही जैसे रास्ते किसी एक ही स्थान को ले जाते है, तो दोनों ओर बराबर चास है कि वे किसी भी एक या दूसरे रास्ते को चुन लें । यद्यपि ऐसे प्रयोग किए नही गए हैं किन्तु प्रायः सभी युग्मज (Twins) अपने व्यवहार मे बहुत कुछ समता प्रदर्शित करते हैं । जैसा कि रसल कहते हैं—हम संभावना करते है, यद्यपि यह सन्देह जनक है, कि मानसिकता और भौतिकता के निश्चित नियम हैं, जिनके अनुसार, यदि सम्पूर्ण पदार्थ की प्रकृति ज्ञात हो (जिसमें कि सम्पूर्ण शरीर और मस्तिष्क भी सम्मिलित है) तो संसार के सम्पूर्ण हृदयों की किसी भी क्षण पर स्थिति अनुमति की जा सकती है ।"

और यह अंकों की असीम शृंखला (इन्फिनिट सीरीज आफ नंबर्ज) के अनुसार होना चाहिए, जैसा कि हमने पीछे देखा था । कारण-कार्य सम्बन्धों की स्वीकृति स्वयं ही यह प्रमाणित नही कर देती कि कारण-कार्य के होने को बाध्य कर देता है और न ही कारण-सम्बन्धों का अर्थ वही कारण वही कार्य ही है, यह केवल दो समीपतम घटनाओं में कालिक और दैशिक सम्बन्ध का प्रतिपादन करता है । कारण सिद्धान्त की इस व्याख्या से इस सम्बन्ध में यह भ्रान्ति दूर हो जानी चाहिए कि कारण कार्य को निर्धारित करता है । कारण शब्द केवल पहली घटना से सम्बन्ध रखता है, जिसके आधार पर पीछे की घटना या घटनाओं का साधारणीकृत अस्तित्व जाना जाता है ।

कारणता की यह व्याख्या हमें चुनाव की स्वतन्त्रता से वंचित नहीं करती, किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि हमारे चुनाव और हमारी अन्तर्निहित (Initial) प्रकृति या अवस्थाओं मे कोई संबंध नहीं हैं। यदि मै पूर्व की बजाए पश्चिम मे जाने का निर्णय करता हूँ, यह मेरी स्वतंत्रेच्छा पर अवलबित है, किन्तु इसका कभी यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि इस घटना की कोई पूर्वगामी घटना (कारण) नहीं थी। केवल इसी अर्थ में इच्छा की स्वतंत्रता का कारणता के साथ समन्वय किया जा सकता है।

× × ×

कारण संबंध की दृष्टि से प्राणी-व्यवहार या मानसिक घटनाओं के बारे में हमने एक साधारण नियम प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार (१) मन शारीरिक यत्र मे घटित होता है, (२) विशेष शारीरिक घटनाओं, जिन्हें हम मन कहते हैं, के अनुक्रम सबध की प्रकृति भौतिक घटनाओं में कारण-कार्य संबन्ध की प्रकृति के समान ही है। यहाँ हम इस संबन्ध में संक्षेप मे विशेष रूप से विचार करेंगे।

मन की भौतिकता, अथवा मन की शरीराश्रितता के पक्ष में हमने अपने विचार पीछे प्रस्तुत किए थे, अत. यहाँ हम पुनः उस समस्या को नही उठाएंगे, यहाँ हम केवल यह देखेंगे कि कैसे इतिहास या अतीत-मानसिक घटनाएं वर्तमान मानसिक घटनाओं पर प्रभाव डालती है, और इस प्रकार इस प्रदेश में कारण-कार्य सबंध की क्या प्रकृति है। हमने पीछे कहा था—"कारण श्रृंखला घटनाओं का वह अनुक्रम है जिसमें उत्तरगामी अवस्थाओं की दिशा संपूर्ण पूर्वगामी अवस्थाओं (Positions) के 'परिवर्तन की दिशा' के अनुसार होती है, और यह कि कारण और कार्य मे दैशिक और कालिक संबंध अनिवार्य है। अब इसे हम मानसिक घटनाओं पर कैसे लागू कर सकते है ? इसके उत्तर में हमने पीछे कहा कि—"दो समान प्राणी समान परिस्थितियों में सदैव समान रहेंगे"—अर्थात् उनकी मानसिक प्रवृत्ति (Mental Desposition) एक सी होगी। अब मान लीजिए एक मनुष्य को एक विशेष सुगंध को सूँघने पर किसी पुरानी घटना की याद हो आती है, यहाँ हम कहेंगे कि वर्तमान उकसाहट (Stimuli) उ, के कारण काल क पर एक अतीत घटना अ का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु उ और अ के संबंध की क्या प्रकृति है ? बर्ट्रंड रसल कहते है—"अ, आ, ई......अतीत घटना वर्तमान उकसाहट के साथ वर्तमान स्मृति स को उत्पन्न करती है। क्योंकि यह सफलतापूर्वक प्रमाणित नही किया जा सकता कि हमारा किसी शब्द विशेष का ज्ञान उस समय भी

हमारे मन में अपना अस्तित्व (Actual existence) रखता है जब कि हम उस शब्द के संबंध में नहीं सोच रहे होते। यह केवल एक गुण विशेष है जिसे हम मन का स्वभाव (Desposition) कह सकते हैं; अर्थात् शब्द का ज्ञान पुनः उत्पन्न किया जा सकता है, जब भी हम इसके संबध मे सोचना चाहें। किन्तु मन का स्वभाव (Desposition) कोई वास्तविक अस्तित्व (Actual existence) नही है, यह केवल स्मृति सम्बन्धी कारण-सम्बन्ध का स्मृति सम्बन्धी पहलू है।☆ इसका अभिप्राय यह हुआ कि वर्तमान घटना, उकसाहट किसी अतीत घटना के साथ एक अन्य वर्तमान घटना, जिसे हम स्मृति कहते है, उत्पन्न करती है और यह वर्तमान घटना स्मृति अतीत घटना ही न होकर केवल उस जैसी होती है। किन्तु ऐसा मान लेने में कुछ कठिनाइयाँ है। यदि अतीत घटना उस समय अविद्यमान रहती है जब कि वह हमारे चेतन व्यापार का विषय नही होती और डिस्पोजीशन वास्तविक (Actual) नही है, तो वर्तमान उकसाहट, जो कि दैशिक और कालिक रूप से उससे सम्बधित नहीं है, के साथ वह स्मृति का कारण कैसे हो सकती है? दूसरे, यदि अतीत घटना का अस्तित्व नहीं है और वह अनुक्रम सम्बन्ध के अनुसार† वर्तमान घटना का कारण है तो भी वर्तमान घटना के अतीत घटना के 'समान' होने का बोध हमें कैसे हो सकता है? तीसरे, यदि अनुक्रम सम्बन्ध में कोई कालिक और दैशिक संपर्क नहीं है तो वर्तमान उकसाहट का स्मृति को उत्पन्न करने के लिए एक या दूसरी घटना के साथ सम्बन्ध होना सांयोगिक होना चाहिए नियमित नहीं। तीसरे प्वाइंट प्रतिपादन को हम रसल के ही एक 'कारण-कार्य' के उदाहरण की व्याख्या कर स्पष्ट करेंगे। वे कहते हैं कि किन्ही भी दो या अधिक मिलों के हूटर यदि नियमित रूप से एक ही समय पर बजते हैं तो वे समान रूप से एक या दूसरी मिल के मजदूरों के कार्य छोड़ने के कारण कहे जा सकते है, जैसे कलकत्ता की किसी मिल का हूटर बम्बई की किसी मिल के मजदूरों की छुट्टी का उतना ही कारण कहा जा सकता है जितना बम्बई की मिल का,

☆"A Desposiion is not Something actual but mentle mnemic portion of a mnemic Causal law"

† बर्ट्रंड रसल की अनुक्रम सम्बन्ध की व्याख्या हमारी अनुक्रम सम्बन्ध की व्याख्या से इस अर्थ में भिन्न है कि रसल इस सम्बन्ध में किसी दैशिक और कालिक संपर्क की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करते, वे केवल अनिवार्य अनुक्रम की आवृत्तियों को ही काफी समझते है। हमारे विचार में यह वास्तविकता से सम्बन्ध नहीं रखती।

यदि दोनों एक ही समय बजें तो। किन्तु हमारे तीसरे प्वाइंट के अनुसार, स्पष्ट रूप से कलकत्ता के हूटर बम्बई के मिल मजदूरो के अवकाश के साथ केवल सांयोगिक रूप से सम्बद्ध है। यह भूल तब और भी स्पष्ट हो जाएगी यदि हम उस हूटर के बजने के संमय लंडन में भोजन करने वाले किसी व्यक्ति के उस कार्य का कारण हूटर को इसलिए बताएं क्योंकि उनमें अनुक्रम सम्बन्ध है। किन्तु हम देखते हैं कि स्मृति के साथ उकसाहट और पूर्व घटना का सम्बन्ध सायोगिक (Accidental) नहीं है। इस प्रकार रसल की स्मृति-कारणता (Mnemic causation) की कल्पना, हमारे विचार में, वास्तविकता से सम्बन्ध नहीं रखती।

तो स्मृति की समस्या की विवेचना हम किस प्रकार करेंगे? हमने पीछे कहा था कि 'प्रत्येक मानसिक घटना हमारे मस्तिष्क तन्तुओं अथवा शरीर के अन्य किसी भाग मे घटित होती है।' यदि हम यह स्वीकार कर ले तो हम वर्तमान स्मृति को भी मस्तिष्क तन्तुओ में घटित मान सकते है, और इस प्रकार स्मृति किसी पूर्व घटना की वर्तमान उकसाहट के साथ आनुक्रमिक पश्चानुगामी घटना न होकर उकसाहट और मस्तिष्क तन्तुओं का कार्य कही जाएगी। स्मृति कारणता के इस लक्षण को हम अब बड़ी सुविधा से कारण संबंध की अपनी व्याख्या पर घटित कर सकते है। इसके अनुसार अतीत घटना वर्तमान घटना के समान ही हमारे मस्तिष्क में घटित होती है और अपना एक चिन्ह उस पर छोड़ जाती है। इस प्रकार घटना का अस्तित्व उस चिन्ह के रूप में हमारे मस्तिष्क मे रहता है—इस प्रकार की भविष्य में कोई भी घटना, जो शरीर वैज्ञानिक अर्थ में अतीत घटना के किसी एक पहलू से कुछ मिलती है अतीत घटना की स्मृति को कुछ जागृत कर देती है, और अतीत का यह जागरण हमारे मस्तिष्क तन्तुओं में उस चिन्ह को व्यापारित कर देता है। एक तरह से यह पाँवलॉव के कंडीशंडरीफ्लेक्स (Conditioned Reflex) से भी मिलता जुलता है। अतीत घटना का यह चिह्न और उकसाहट स्मृति के आनुक्रमिक कारण कहे जा सकते हैं, क्योकि इनका स्मृति ज्ञान के साथ आनुक्रमिक दैशिक-कालिक संबंध रहता है। यहाँ आपत्ति की जा सकती है कि मस्तिष्क मे इस प्रकार के चिन्हों का अस्तित्व मात्र एक कल्पना है, क्योंकि ऐसे चिन्ह किसी ने नही देखे और शरीर को भौतिक मानते हुए उसमें ऐसे चिन्हों को स्वीकार करने में कोई संगति नहीं है, क्योकि भौतिक विश्व में स्मृति जैसी कोई विशेषता हम नहीं देखते।' किन्तु इसकी पुष्टि में कुछ तर्क दिए जा सकते हैं यद्यपि वे अन्तिम (Conclusive) नही कहे जा सकते। (१) कंडीशंडरीफ्लेक्स मे हम अतीत घटना के किसी एक पहलू के घटित होने पर प्राणी को इस प्रकार

व्यवहार करते हुए देखते हैं जैसे शेष संपूर्ण घटना भी घटित हुई हो, यदि कंडीशंडरीफ्लेक्स को शरीर वैज्ञानिक घटना स्वीकार किया जाता है। स्मृति को उकसाने वाले कारण को हम उसी प्रकार अतीत घटना का एक पहलू कह सकते हैं जैसे कडीशंडरीफ्लेक्स मे उकसाहक घटना को। कंडीशडरीफ्लेक्स और स्मृति में अन्तर केवल इतना ही है कि पश्चानुगामी घटना का कार्य प्रथम में बाह्य या द्रष्टव्य है और द्वितीय में आन्तरिक या अद्रष्टव्य। (२) अतीत घटना और वर्तमान उकसाहट के बीच के अन्तर को भरने के लिए और इन दोनों घटनाओ को आनुक्रमिक कहने के लिए किसी ऐसे तत्व की आवश्यकता है जो पूर्ण घटना की चैतन्य अनुपस्थिति के बावजूद इन दोनों (पूर्व घटना और वर्तमान उकसाहट) में एकता स्थापित कर सकें, जिसके आधार पर हम कह सकें कि ये 'एक ही मन की कारण शृंखला की दो कड़ियाँ हैं, जैसे भौतिक पदार्थ की एकता के लिए। (३) यदि मानसिक घटनाएं शरीर से स्वतत्र है तो मस्तिष्कि मे घाव होने पर भी विशेष उकसाहट को स्मृति उत्पन्न करने में समर्थ होना चाहिए, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। (४) यदि मानसिक घटनाएं स्वतंत्र हैं तो सन्निपात इत्यादि मे उन्हें किसी ज्ञात उकसाहट के बिना उत्पन्न नहीं होना चाहिए और उनमें ऐसी अवस्था नही होनी चाहिएं कि वे अव्यवस्थित यंत्र के कार्य जैसी प्रतीत हों। (५) यदि मानसिक घटनाएं शरीर से स्वतंत्र है तो उन्हें शरीर के निष्क्रिय हो जाने पर भी सक्रिय रहना चाहिए अथवा मृत्यु के पश्चात् भी मन को जीवित रहना चाहिए, जो कि नहीं होता अथवा कम से कम जिसके होने का कोई तर्क सम्मत प्रमाण नही हो सकता।

किन्तु मन की शरीराश्रितता के विरुद्ध भी कुछ तर्क दिए जा सकते हैं और इसी प्रकार मन की स्वतंत्रता का पक्ष भी पुष्ट किया जा सकता है, यद्यपि हमारे विचार में ये तर्क विशेष औचित्य नहीं रखते। उदाहरणत: बर्गसां मानसिक स्मृति अथवा यथार्थ स्मृति (Real Memory) के पक्ष में तर्क देते हुए कहते हैं—"पाठ की स्मृति, इस अर्थ में कि हम उसे याद अथवा कंठकिया हुआ कह सकें, सब प्रकार से 'अभ्यास' (Habit) के चिन्ह रखती है। आदत के समान, यह भी उसी प्रयास की आवृत्ति से सीखी जाती है, आदत के समान ही यह भी संपूर्ण क्रिया के पहले विश्लेषण (Decomposition) और फिर संश्लेषण (Recomposition) की अपेक्षा करती है। और अन्त में, किसी भी प्रकार की आदत संबंधी क्रिया के समान ही, यह भी एक यंत्र मे संग्रहीत की जाती है जो कि उपयुक्त उकसाहट से संपूर्ण क्रमश: व्यापारित हो हो जाता है।

"इस के विपरीत, प्रत्येक पाठ-क्रिया की पृथक्-पृथक् स्मृति (जैसे, प्रथम-

बार इस प्रकार पढ़ा गया और द्वितीय बार इस प्रकार) अभ्यास का कोई भी चिह्न नही रखती। इसकी छाया कृत (Image) एक दम मेरी स्मृति पर अकित हो गई थी। यह मेरे जीवन मे एक घटना है, इसका स्वभाव है कि यह एक निश्चित् तिथि रखती है और परिणामत: यह पुनः घटित नही हो सकती। किसी विशेष पठन की स्मृति एक प्रतिनिधित्व है और केवल प्रतिनिधित्व (Representation) है, यह मन की इंच्यूइशन (Intuition) में आलिंगित रहती है जिसे कि मै अपनी इच्छानुसार छोटा-बड़ा कर सकता हूँ। बर्गसां इस स्मृति को 'मानसिक' कहते है और इसे कारण सबंध से स्वतत्र मानते है, क्योकि उनके अनुसार "यह 'छायाकृति' यद्यपि अपने रूप में वही है किन्तु जितनी ही बार हम इसका स्मरण करते है उतनी बार उसकी मूल प्रकृति में अन्तर आता है।" वास्तव मे बर्गसा के कारण सबध के निषेध का आधार उनका इस संबंध को 'वही कारण-वही कार्य' के रूप में समझना है। जहाँ तक उनके आदत और विशुद्ध स्मृति में अन्तर करने का प्रश्न है, उस पर हमें कोई आपत्ति नही है किन्तु हमारा 'चिह्न का सिद्धान्त' (Trase Theory) इसे संगति देने मे उतना ही उपयुक्त है। किन्तु इस पर कुछ और अधिक ठोस आपत्तियाँ भी हो सकती है, जिन्हें ब्रॉड ने बड़ी योग्यता से प्रस्तुत कर उनका उत्तर दिया है। यहाँ हम उनके विचारों को संक्षेप मे प्रस्तुत करेंगे।

मन के शरीराश्रित होने के विरुद्ध कहा जा सकता है कि (१) हम कुछ ऐसे अनुभव करते है जब कि हमें प्रतीत होता है कि हमारा मन हमारे शरीर को व्यापारित कर रहा है, और इसी प्रकार हम कुछ दूसरे अनुभव करते है जिनमे शरीर मन को व्यापारित करता है। इच्छा पूर्वक अपने शरीर को क्रिया में लगाना प्रथम प्रकार के अनुभव का उदाहरण है और किसी नवीन संवेद का घटित होना दूसरे प्रकार के अनुभव का। अब कहा जा जा सकता है कि यह दो प्रकार के 'सक्रिय' (Active) और 'निष्क्रिय' (Passive) अनुभव तब तक नही हो सकते जब तक कि मन का पृथक अस्तित्व न हो। दूसरे प्रकार के अनुभव वास्तव में शारीरिक प्रकृति के हैं, क्योंकि यदि मन शरीराश्रित है तो उसे शारीरिक क्रियाओं में घटित होना चाहिए न कि शरीर को मन के अनुसार घटित होना चाहिए। यह ठीक है कि इन दो अनुभवों में अन्तर है, किन्तु यह ऐसी समस्या नही जिसका उत्तर मन की शरीराश्रितता के अनुसार न दिया जा सके। हम इन दोनों अनुभवों में प्रतीयमान अन्तर की प्रकृति को देखेंगें। इनमें प्रथम एक चेतन व्यापार के साथ प्रारम्भ होकर अन्य मानसिक क्रियाओं से अनुगमित होता है, किन्तु ये क्रियाएँ इच्छा की निरंतरता का अंग

नहीं होती । अनुगमित क्रियाएँ, जो इच्छा के साथ संबद्ध होती है। केवल शारीरिक व्यापार जनित संवेद (Sensations) होती है, अब इसका नवीन संवेदो से मुकाबिला किया जाए, ये पहले से जारी मानसिक व्यापार की निरंतरता से सम्बन्धित नहीं है, यद्यपि ये नवीन मानसिक क्रियाओ को जन्म देती हैं। पहली घटनाएँ, जिनसे यह नवीन सवेद समीपता से सबद्ध है, हमारे शरीर में होने वाली घटनाएँ हैं जो कि अचेतन मानसिक घटनाओं से सहानुगमित नही होतीं । हम उन स्थितियो में निष्क्रियता अनुभव करते हैं जिनमें शारीरिक व्यापार, जो कि चैतन्य से युक्त नही हैं चेतनायुक्त शारीरिक व्यापार में परिवर्तित हो जाता है और हम उस समय सक्रिय (Active par excellence) अनुभव करते है जब कि शारीरिक व्यापार, जो कि चैतन्य युक्त है, चैतन्य रहित शारीरिक व्यापार में परिणत हो जाता है, जो उसकी निरन्तरता (Continuation) मे नही है। सक्षेप मे इसका अभिप्राय यह हैं कि चेतन और अचेतन व्यापार दो भिन्न प्रकार के शारीरिक व्यापार ही है और कभी भी एक दूसरे मे परिणत हो सकता है। इस प्रकार, जिसे हम संवेद कहते है, वह थोड़ी देर के अचेतन शारीरिक व्यापार के पश्चात् चेतन शारीरिक व्यापार—संवेद के ज्ञान (Cognition of Sensation) मे परिवर्तित हो जाता है और इच्छा का ज्ञान अचेतन शारीरिक व्यापार मे परिवर्तित हो जाता है।

कभी-कभी मन के अस्तित्व को अन्तर्ज्ञान (Introspection) से भी प्रमाणित किया जाता है, जिसके अनुसार इस अन्तर्ज्ञान के कारण भौतिक नहीं है। इसका उत्तर भी उसी प्रकार दिया जा सकता है, जैसे ऊपर की आपत्तियों का दिया गया है । छायाकृतियां (Images) उदाहरणत अन्तर्ज्ञान की प्रमाण हो सकती है। मान लीजिए मै कल्पना मे अपने एक मित्र को देखता हूँ। किन्तु वास्तव में छायाकृतियां अन्तर्ज्ञान की उपयुक्त उदाहरण नही है क्योंकि (१) हम जानते है कि हम बाहर किसी वस्तु को आखों से देखे बिना ही केवल विशेष प्रकार से रेटिना को उकसा कर वस्तु विशेष को देख सकते हैं। इसलिए यह बहुत अधिक संभव है, जैसा कि शरीर वैज्ञानिक हमें बताते हैं, कि छायाकृतियां हमारी ज्ञानेन्द्रियों के उन छोरों की उकसाहट के रूप में घटित होती हैं जो मस्तिष्क में अपना प्रतिनिधित्व रखते हैं। इनकी दूसरी विशेषता इनके संवेदों की प्रतिलिपि होने में है, इसी से छायाकृतियों या कल्पनाकृतियों को कारण रूप से (Causally) संवेदों से भिन्न बताते हैं। रसल और हमारी इस कारणता की व्याख्या में वही अन्तर है जो

स्मृति की व्याख्याओं में है। इस सम्बन्ध में हम पिछले निबन्ध में अत्यन्त विस्तार से देख आए हैं।

इस भौतिक और मानसिक की (कारणता के प्रकरण में) व्याख्या के पश्चात् हम कुछ परिणामों पर पहुँचते हैं :—(१) भौतिक घटनाएँ किन्ही संबधों मे घटित होती है। (२) ये सबंध इस प्रकार के नही हैं कि उनके अनुसार किसी एक घटना में सम्पूर्ण विश्व को समाहित किया जा सके। (३) कारण-सबध घटनाओ की वे श्रृंखलाएँ है जिनके अनुसार कोई भी घटना अपनी पूर्वगामी और पश्चगामी घटनाओं की दिशा का संकेत करती है। इन सबधों का आधार देश-काल और इन सबंधों की विशेष प्रकृति है। (४) मानसिक घटनाएँ भी उसी प्रकार कारण संबधो का विषय हैं जैसे भौतिक घटनाएँ (५) इसलिए स्वतन्त्रेच्छा का प्रश्न इस अर्थ मे निरर्थक है कि किसी इच्छा विचार कल्पना अथवा भावना की कोई पूर्वगामी घटना नही है जो कि अपनी पश्चगामी घटना—इच्छा की दिशा का संकेत करती है। (६) यदि कारण सबधों को मानसिक क्रियाओ पर भी भौतिक घटनाओ के समान लागू होना है तो स्मृति की इस रूप में कोई सार्थकता नही है कि वह किसी अतीत घटना की स्वतंत्र प्रतिलिपि है और अतीत घटना किसी रहस्यमय ढग से अनस्तित्व से उकसाहट के साथ मिलकर स्मृति (वर्तमान घटना और पूर्व घटना की प्रतिलिपि) को व्यापरित करती है। प्रत्युत् यह कि अतीत घटना हमारे मस्तिष्क मे चिह्न के रूप में मस्तिष्क की कारण श्रृंखला का एक भाग बन जाती है और एक अन्य कारण के सहयोग से एक नवीन कारण श्रृंखला 'स्मृति-ज्ञान' को व्यापारित करती है। इस प्रकार हमारी मानसिक प्रकृति भी कारण श्रृंखला से स्वतत्र नहीं है और परिणामतः स्वतंत्रेच्छा नही हो सकती। ७) किन्तु कारण श्रृंखला की हमारी व्याख्या के अनुसार मनुष्य की चुनाव शक्ति अक्षुण्ण रहती है।

सहायक पुस्तकें

1. Bergson H. — Creative Evolution, English Ed. 1910 (New York).
2. — Matter and Memory, English Ed. 1910 (London).
3. Bridgeman. — Logic of Modern Physics 1927 (New York).
4. Broad C. D. — The Mind and Its place in Nature 1925 (London).
5. Eddington, S.A. — New Pathways in Science 1920 (Cambridge).
6. — The Philosophy of Physical Science 1949 (Cambridge).
7. Russll, B. — The Analysis of Maid 1921 (London).
8. — Mysticism and Logic 1925 (London).
9. — An out Line of Philosophy 1929 (London).
10. — Our Knowledge of the External World 1020 (London).
11. Bergson, H. — Time and Free will 1920 (London).
12. Bose, D. M. — Living and Non Living (Presedential Address to the 40th Indian Science Congress).
13. Cuhen. — Studies in Philosophy and Science (New York).

८—पदार्थ और मन

एक समन्वित वैज्ञानिक अद्वैतवादी दर्शन

पिछले दो निबन्धों में हमने मन के सम्बन्ध में सामान्य रूप से मानसिक और भौतिक कारणता के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया है और वहाँ हमने लगभग पदार्थवादियों के समान ही मन को भौतिक-द्रव्य का गुण माना है, जबकि लगभग 'मानसिकता वादियो' के समान कारणता की व्याख्या की है । किन्तु 'भौतिक द्रव्य क्या है ?' इस सम्बन्ध में हमने इन निबन्धों में कोई विचार नहीं किया । किन्तु इस सम्बन्ध में निर्णय किये बिना हमारा कार्य अधूरा है । वास्तव मे, वह दार्शनिक दृष्टि से निराधार है, क्योंकि यदि बर्कले के समान यह प्रमाणित किया जा सके कि पदार्थ केवल मानसिक प्रत्यय है, तो हमारा सम्पूर्ण दुर्ग कार्डों के घर के समान गिर जाएगा । अतः यहाँ हमें पहले पदार्थ के स्वरूप पर विचार करना है और देखना है कि किस प्रकार हमारे पिछले निबन्धों के निष्कर्षों का इससे व्याघात नहीं होता ।

जैसा कि हमने पिछले निबन्धों में स्वीकार किया है, विश्व में कुछ घटनाएँ ऐसी है जिन्हें हम निस्सन्देह मानसिक कह सकते हैं । मानसिक इस अर्थ में कि वे सर्व-सामान्य नहीं हैं, अर्थात् उनसे प्रेरित होनेवाली कारण-शृंखला केवल एक ही देश में घटित होती है—जिसे हम एक मस्तिष्क कह सकते हैं । 'शरीर और मन' निबन्ध में हम इस निर्णय पर पहुँचे थे कि कल्पना, स्मृति तथा इच्छा इत्यादि का अन्तर्भाव संवेद (Perception) और अन्वय (Association) में किया जा सकता है । किन्तु संभव है भौतिक पदार्थ तथा मन अथवा भौतिक घटना तथा मानसिक घटनाओं के गुण में अन्तर हो । जहाँ तक कारणता का सम्बन्ध है, हमने पिछले निबन्ध में कारण-शृखला की व्याख्या निगमन के आधार पर की है, जिसका अभिप्राय है कि कारणता का अन्तिम आधार प्रत्यय ही है । इस प्रकार, यह व्याख्या व्याघातपूर्ण हो सकती है—यदि मानसिक घटनाओं का विश्लेषण हम भौतिक घटनाओं में करते हैं तो हमें कारण-सम्बन्धों की व्याख्या अगमन की रीति से मन से स्वतन्त्र करनी होगी, और यदि हम कारण-सम्बन्धों की व्याख्या निगमन के आधार पर करते हैं तो हमें मन का स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करना होगा, प्रत्युत् स्वयं भौतिक घटनाएँ मानसिकता से स्वतन्त्र नहीं हो सकेंगी । इसलिये हमें यहाँ मन का प्रश्न भी पुनः उठाना होगा ।

कल्पना और स्मृति के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमने 'मन और शरीर' निबन्ध में देखा था कि जहाँ तक कारण-सम्बन्धों का प्रश्न है, इनमें तथा सवेद में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु एक अन्तर स्पष्ट है, जिसे हम अन्वयात्मक (Associative) अन्तर कह चुके है। अन्वय मनोविज्ञान में कारण-शृखला के उस भाग को कहते है जो कथित घटना (संवेद) के घटित होने पर सहानुगमित होती है। ये सहानुगामी शृंखलाएँ अतीत सवेदो और सहानुगमित घटनाओं से निर्मित होती है। अब यहाँ 'अतीत घटनाओं' का अर्थ स्पष्ट नही है। 'मन और शरीर' निबन्ध में हमने यह माना था कि अतीत घटनाएँ हमारे मस्तिष्क मे चिह्नित हो जाती है और उचित उकसाहट मिलने पर ये चिह्न क्रियान्वित हो उठते है। इस पर दो आपत्तियां हो सकती है—इसके लिए हमारे पास क्या प्रायोगिक आधार हैं ? और दूसरे, जब कि पदार्थ के सम्बन्ध में हम किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे है तब हम शरीर में 'चिह्नित होने' को कैसे सार्थकता दे सकते है ? जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, उसका उत्तर हमारे विचार में, सहज है.—हम प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर अनुमान करते है—ग्रामोफोन रिकार्ड प्रत्यक्षतः ध्वनि अथवा हमारे उच्चारित शब्दो को न रखने पर भी सूई लगने पर उन्हें प्रदर्शित करते हैं, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि हमारा मस्तिष्क भी इसी प्रकार अथवा किसी अन्य प्रकार से घटनाओं का सचय रखता है। इस सम्बन्ध मे हमने पिछले दोनों निबन्धो मे सविस्तर विचार किया है। जहाँ तक दूसरी आपत्ति का प्रश्न है, उसका उत्तर हम आगे देंगे, किन्तु यहाँ एक तात्कालिक उत्तर दिया जा सकता है—कारण-शृखला का अभिप्राय है 'नियमित-निरन्तर-अनुक्रम-परिवर्तन', जैसा कि पिछले निबन्ध में हम बता आए है। यह अनुक्रम घटनाओं में होता है। प्रत्येक वर्तमान घटना अतीत होती है, अर्थात् वह भविष्य और वर्तमान नहीं रहती, किन्तु यह अस्तित्वहीन हो जाती है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह एक विशेष अर्थ मे 'विद्यमान' रहती है। इसमे तथा वर्तमान और भविष्य की घटनाओं में अन्तर केवल इनकी सापेक्षताओं में अथवा सम्बन्धों में अन्तर होता है। इसी प्रकार, अनुक्रम का यह अभिप्राय नहीं कि प्रत्येक पीछे आने वाली घटना पहली घटना से सम्पूर्णतः भिन्न हो, सभव है पीछे आने वाली घटनाएँ पहली घटनाओं के बिल्कुल ही समान हों—सिवाय सापेक्षताओं की भिन्नता के। इसी प्रकार, कारण शृंखलाएँ एक-साथ ही अनेक भी चलती रह सकती है, जैसे हमारे बोलने से ग्रामोफोन रिकार्ड में एक घटनानुक्रम प्रसारित होता है और दूसरी ओर वायु में ध्वनि लहरें भी प्रसारित होती हैं, और यदि कोई सुनने वाला व्यक्ति भी वहाँ कहीं उपस्थित हो तो बहुत से दूसरे

घटनानुक्रम भी व्यापारित होते हैं। अतः अतीत मानसिक घटना भी अन्य वर्तमान भौतिक घटनाओं के समान सम्बन्ध परिवर्तन के साथ विद्यमान रहती है। अतः चिह्न का अभिप्राय है--घटनानुक्रम, जोकि एक विशेष घटना से व्यापारित होता है और परिवर्तित सम्बन्धों के साथ अथवा एक बढ़ते हुए घटनानुक्रम के साथ विद्यामान रहता है।

इस प्रकार संवेद (Sense Perception), कल्पना तथा स्मृति में अन्तर केवल सम्बन्ध जनित है, न कि मौलिक, मौलिकता से हमारा अभिप्राय गुणों से है—निरपेक्ष और स्वतः प्रमाण। एक विशेष गुण वह है जो वह अन्य किसी भी सन्दर्भ से निरपेक्ष हो कर है; अर्थात् गुण का विश्लेषण नही किया जा सकता, केवल इसके उदाहरण दिये जा सकते है। इस प्रकार गुण की अवधारणा श्रेणी की अवधारणा है। किन्तु भूत विज्ञान गुणो को स्वीकार नही करता, वह केवल गाणितिक मात्राओ को स्वीकार करता है। किन्तु यदि हम गुणो को भौतिक विश्व में स्वीकार नहीं करेंगे तो मनोविज्ञान और भूत विज्ञान का भी समन्वय नही किया जा सकेगा, क्योकि हमारे संवेद गुणात्मक है।

संवेद का सम्भवतः सर्वाधिक निर्विवादास्पद लक्षण हो सकता है—विशुद्ध वर्तमान चाक्षुप अथवा श्रौत अथवा कोई भी ऐंद्रिय घटना। इस घटना मे कोई ऐसा गुण नही है जिसके कारण इसे मानसिक कहा जा सके और भौतिक नही कहा जा सके। यह केवल इस घटना के सबध है जो इसे विलक्षणता देते है। किन्तु इस कारण-शृंखला मे अथवा सम्बन्धो मे भी स्वतः ऐसी कोई विशेषता नही है जिसके कारण इन्हें संवेद मे भिन्न गुणों की कहा जा सके, यह केवल सन्दर्भ की भिन्नता ही है जो इन्हे संवेदो मे पृथक करती है। असंवेदित घटना (जिसे हम भौतिक कहते है और जिसके अस्तित्व को स्वीकार करने के कारण हम आगे देगे) संवेदित घटना से इस अर्थ मे भिन्न है कि संवेदित घटना हमारे मस्तिष्क में घटित होती है, और उस से प्रेरित होने वाली कारण-शृखला एक दम 'व्यक्तिगत' है, जबकि बाह्य घटना से प्रेरित कारण-शृंखला के सम्बन्ध सर्व-सामान्य है। जहाँ तक मानसिक कारणता अथवा स्मृति-कारणता (Mnemic Causation) का संबंध है, उसे हम स्वीकार नही करते, जैसा कि हमने 'शरीर और मन' निबन्ध में स्पष्ट किया है। घूमते ग्रामोफोन रिकार्ड पर सूई लगने की घटना वर्तमान घटना है और उससे उकसाई हुई ध्वनि का सम्बन्ध अतीत से है, किन्तु वास्तव में यह सब वर्तमान घटना है।

किन्तु मन का गुण चैतन्य समझा जाता है। इस प्रकार मानसिक घटनाओं को भौतिक घटनाओ से इस गुण के अधार पर पृथक किया जाता है।

जो शरीर परिवृत्ति पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया करता है, अथवा आन्तरिक या बाह्य घटनाओं के होने की स्मृति रखता है तो हम उसे मानसिक गुण-युक्त कहते हैं। इसप्रकार, जो घटना 'सम्बन्धित अतीत कारण-शृंखला' को नहीं प्रजागरित कर सकती वह घटना मनसिक नहीं कही जा सकती। किन्तु चेतना को सम्बन्धित कारण-शृंखला कहने का अभिप्राय है कि यह मनका मौलिक गुण नहीं है क्योंकि, जैसाकि हमने 'शरीर और मन' निबन्ध में देखा है, स्मृति और संवेद मे अन्तर केवल सापेक्ष सम्बन्ध जनित है। स्वत. सवेद की कल्पना भी गाणितिक सीमा की कल्पना के समान है जिससे हम अनुगामी कारण-शृखला को सर्वथा पृथक नही कर सकते, और दूसरी ओर अनुगामी कारण-शृंखला चेनना को मात्रात्मक (Matter of Degree) बना देती है, क्योंकि एक घटना जितनी ही अधिक सम्बन्धित कारण-शृखला से अनुधावित होगी उतनी ही अधिक वह चैतन्य से ज्योतित कही जाएगी।

इसके अतिरिक्त, चैतन्य को 'किसी विषय के प्रति चेतन होने की क्रिया' समझा जाता है। किन्तु, जैसा कि जेम्ज ने कहा है, यह दर्शन के इतिहास मे एक बहुत पुरानी सुपर्स्टिशन है। यह समझना अत्यन्त कठिन है, कैसे पदार्थ और चेतन होने की क्रिया सम्पर्क में आते हैं। मान लीजिए मै एक मेज़ देखता हूँ। यह एक चाक्षुष घटना है जो मेरे मस्तिष्क में घटित होती है। अब यदि इस घटना को चैतन्य का गुण कहा जाए तो यह अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। चाक्षुष घटना को क्रिया और विषय में विश्लेषित करने का अभिप्राय है चेतना को विषय से पृथ्क मानना। किन्तु यह स्वीकार करना अन्तर्विरोध पूर्ण होगा, क्योंकि यदि क्रिया विषय के बिना संभव ही नहीं है तो चैतन्य क्रिया न होकर अधिक से अधिक एक गुण हो सकता है, और क्योंकि यह गुण विषय के साथ ही उत्पन्न होता है अतः उसे विषय का गुण ही कहा जा सकता है। अतः चाक्षुष या अन्य ऐंद्रिय घटनाओं को विषय और क्रिया अथवा विषय और विषयी में विभाजित करना निरर्थक है।

ऐंद्रिय घटनाओं को मस्तिष्क मे घटित होने वाली धटनाएं कहने का अभिप्राय यह है कि जब मै मेज़ देखता हूँ, उस समय मेज़, जो कि मुझे अपने से कुछ दूरी पर दिखाई देता है, वास्तव में एक घटना समवाय है जो मेरे मस्तिष्क में घटित होता है, और इसी प्रकार का घटना समवाय यदि वहाँ भी हो, जहाँ मैं मेज़ को देखता हूँ, तो भी यह स्थान मेरे मस्तिष्क से बहुत दूर है और मेज़ के मेरे चाक्षुष प्रत्यक्ष का अनिवार्य और सद्यः कारण नहीं है। स्वप्न में दिखाई देने वाला मेज़ स्पष्टतः मेरे मस्तिष्क से बाहर नहीं

होता यद्यपि मुझे वह बाहर दिखाई देता है। स्वप्न म एक अन्धा भी मेज़ देख सकता है। इसी प्रकार जागृति में भी। विक्षत अग वाला व्यक्ति असावधानी में उस स्थान पर, जहाँ पर उसका अग कटा हुआ होता है पीड़ा अनुभव कर सकता है। अब यह ऐंद्रिय घटना क्या है? मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बाह्य विषय के प्रति हमारे मस्तिष्क की यह प्रतिक्रिया है। हमारे पिछले निबन्ध की व्याख्या के अनुसार, एक कारण शृंखला, जो वहाँ से प्रसारित होती है जहाँ हमारा अभ्युपगमित मेज़ है, हमारी आँखों और फिर रेटिना से होती हुई मस्तिष्क में एक रगीन संस्थान के रूप मे परिणत होती है, इसी को हम मेज़ का चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते है। किन्तु मेज़ के चाक्षुष प्रत्यक्ष के लिए कारण शृंखला की सम्पूर्ण लड़ी आवश्यक नहीं है, आवश्यक केवल अन्तिम कड़ी है। मस्तिष्क यहाँ केवल विशिष्ट स्थान का वाचक है, क्योंकि स्नायुओ का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। यहाँ हम कारण शृंखला की कल्पना को भी छोड़ सकते है और कह सकते है कि चाक्षुष घटना एक घटना है जो रंगीन संस्थान के रूप में घटित होती है। यह घटना विशुद्ध संवेद (Sensation) है और इसे क्रिया और विषय मे विभक्त नहीं किया जा सकता। अब इससे प्रेरित कारण शृंखला को हम इसमे आने देते हैं, यह शृंखला कल्पना और स्मृति से निर्मित है। यह स्मृति इतनी सहज होती है कि इसे रिफ्लेक्स के अन्तर्गत लिया जा सकता है, अतः यहाँ भी क्रिया की कोई आवश्यकता नही है। वास्तव में विषय और क्रिया का भेद हमारी भाषा में ही निहित है, जैसे 'राम मेज़ देखता है', यहाँ मेज़ को एक स्वतत्र और काल में निरपेक्ष भौतिक वस्तु (Entity) कल्पित किया गया है, किन्तु, यदि मेज़ चाक्षुष प्रत्यक्ष से स्वतंत्र है भी तो भी वह केवल दैशिक और कालिक घटनाओं की शृखला है, वस्तु नहीं।

जहाँ तक चैतन्य के मन का गुण होने का प्रश्न है, यह एक ऐसा गुण है जो अकेले ही पर्याप्त है। उस अवस्था में हमारे शरीर और इस भौतिक विश्व के होने की कोई आवश्यकता नहीं है, ये केवल इस अस्तित्व के व्यापार भी हो सकते हैं। यह तर्क अकाट्य है, किन्तु इसे पचा सकना कठिन जान पड़ता है। चैतन्य के सापेक्ष गुण होने के विरोध में हम तर्क दे चुके हैं। चैतन्य को सापेक्ष कहने का एक और अर्थ भी हो सकता है—जिस प्रकार फोटो को डिवेलप करने के लिए कुछ रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है और उनके प्रयोग से नेगेटिव में विद्यमान किन्तु अप्रत्यक्ष चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है उसी प्रकार बाह्य विषयों के सम्पर्क से चैतन्य के गुण उद्भासित हो उठते हैं। किन्तु किस प्रकार एक भौतिक घटना मानसिक

घटना के सम्पर्क में आती है और अमानसिक से मानसिक हो जाती है ? मानसिक घटना और अमानसिक घटना के निजी स्वरूपों में क्या अन्तर है ? ये सब प्रश्न इस कल्पना को कठिन बना देते हैं। हमारी व्याख्या के अनुसार, मानसिक घटनाएँ वे घटनाएँ होंगी जो ऐंद्रिय संवेद के रूप में घटित होकर हमारे मस्तिष्क में एक कारण शृंखला को व्यापारित कर देती हैं, जब कि अमानसिक घटनाएँ वे घटनाएँ हैं जो इस कारण शृंखला से अनुप्राणित नहीं होतीं। पिछले दोनों निबन्धों में अचेतन घटनाओं के प्रकरण में हमने इस प्रकार की कुछ घटनाओं के उदाहरण दिये थे, किन्तु सभी अचेतन घटनाएँ भौतिक घटनाएँ नहीं होतीं, इसके लिए कुछ और विशेषताओं की भी आवश्यकता है, जिनके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

पदार्थ क्या है ? इस प्रश्न पर शताब्दियों से विचार होता रहा है, किन्तु विचार अथवा अनुसन्धान की प्रविधि ही भ्रान्ति पूर्ण होने से उसका कोई निश्चय नहीं किया जा सका। पदार्थ को सत् या असत कहने के आधार विशुद्ध रूप से दार्शनिकों की रुचियों पर निर्भर करते थे। किन्तु डेकार्ट तथा जेम्ज ने इस ओर एक नवीन तथा उपादेय प्रणाली का प्रवर्तन किया, जिसका अनुसरण आज तक हो रहा है। डेकार्ड ने देखा कि सम्पूर्ण संवेद्य विश्व उसके प्रत्यय पर निर्भर करता है, और अज्ञेय के अस्तित्व के सम्बन्ध में अपरोक्ष रूप से वह कुछ नही जान सकता। अतः वह केवल अपने प्रत्यय के सम्बन्ध में ही निश्चित हो सकता है, शेष सब भ्रान्त शिक्षा का परिणाम है। प्रत्यक्ष का अस्तित्व निश्चित है क्योंकि उसे प्रत्यक्षतः मैं देखता हूँ और वह मेरा अंग है, इसलिए मेरा अस्तित्व निस्संदेह है– क्योंकि मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।' किन्तु वास्तव में इस वाक्य में भी वह प्रत्यक्ष और निश्चित की सीमा से बाहर जा रहा है। उपर्युक्त वाक्य में 'मैं और सोचना' शब्द सन्देहास्पद है, क्योंकि 'मैं' शब्द जिस मानसिक इकाई की ओर सकेत करता है वह एकदम काल्पनिक है, उसी प्रकार जिस प्रकार मेज़ काल्पनिक है, 'मैं' केवल अनुभवों और संवेदों की कारण शृंखला मात्र है और मन की एकता केवल अनुक्रम की एकता है। इसलिए, जैसा कि हमने पीछे देखा है, किसी कर्ता के होने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार सोचना शब्द भी अविश्लेष्य नहीं है। विचार अनेक मानसिक घटनाओं का समवाय है। जो बात एकदम निश्चित है वह यह है कि ऐंद्रिय घटनाएं घटित होती हैं और वे विशुद्ध रूप से वर्तमान में घटित होती हैं।

डेकार्ट मन और भौतिक पदार्थ को दो स्वतंत्र इकाइयां मानता है। गति तथा आकार को वह भौतिक पदार्थ के मौलिक गुण मानता है जबकि

रंग तथा शीतोष्णता और कठोरता-कोमलता इत्यादि गुणो को प्रतीयमान गुण । किन्तु आज भूत विज्ञान में गुणों का इस प्रकार मौलिक और प्रतीयमान (Primary and secondary) में भेद नही किया जाता, क्योकि तथा-कथित मौलिक गुण उतने ही प्रतीयमान और देश-काल के अनुसार परिवर्त-मान है जितने तथा-कथित प्रतीयमान गुण। यह बात चित्रकार और फोटो-ग्राफर बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। जहाँ तक गति का प्रश्न है, यदि पदार्थ घटनाओं की श्रृंखला मात्र है तो गति का केवल इतना ही अभिप्राय है कि घटनाओं के एक समवाय का अन्य घटनाओं के समवायों के साथ वही दैशिक सम्बन्ध नहीं रहता जो पहले था। मान लीजिए एक घटना समवाय घ^न का अन्य घटना समवायों घ^{न'} के साथ काल क पर सम्बन्ध स है और पुनः काल क' पर स' तो हम कहेगे कि अमुक पदार्थ गतिमान था। इस प्रकार गति केवल सापेक्षता है, मौलिक गुण नही ।

आकार को भूतत्व का गुण इस आधार पर कहा जाता था कि जबकि रंग अथवा उष्णता इत्यादि व्यक्ति भेद के साथ भिन्न-भिन्न है और इसी प्रकार देश भेद के साथ परिवर्तमान है तो आकार में इस प्रकार कोई परिवर्तन नही देखा जाता । किन्तु यह एकदम भ्रान्ति हैं। आकार अथवा रूप मे भी देश अथवा कोण भेद के साथ अन्तर पड़ता है। उदाहरणार्थ, पैसे के चाक्षुष प्रत्यक्ष को लें। उसके पृथ्वी पर पड़े होने पर वह केवल ठीक ऊपर से देखने पर ही गोल प्रतीत होगा, अन्यथा नहीं, और इसी प्रकार जितने ही कोणों और अन्तरों से उसे देखा जाएगा उसके उतने ही भिन्न आकार देखे जा सकेंगे। अब, कुछ लोग पैसे के गोल आकार को उसका वास्तविक आकार कहना चाहेगे, किन्तु यह एक दम अतर्क सम्मत है, क्योंकि इस तर्क के अनुसार किसी विशेष कोण और बिन्दु से प्रतीत होने वाले विशेष रग को भी उसका वास्तविक रंग कहा जा सकता है। इसी प्रकार गोल आकार भी विभिन्न कोणों से विभिन्न परिमाणों का प्रतीत होगा, इनमे किस परिमाण के गोल आकार को पैसे का वास्तविक आकार कहा जाएगा ? अतः दोनों ही अवस्थाओं में निर्णय सुविधापेक्ष (Arbitrary) होगा क्योंकि किसी एक रूप को दूसरे से अधिक महत्व देने के पक्ष में कोई तर्क नही दिये जा सकते। इस प्रकार, रूप और आकार, दोनों हमारे ऐंद्रिय संवेद के विषय हैं और उतने ही मानसिक हैं जितनी कोई भी अन्य घटना हो सकती है ।

हमारा तथाकथिक भौतिक पदार्थों का ज्ञान उनके इन गुणों का ही ज्ञान है। एक चाक्षुष घटना रंग तथा आकार का समवाय है, अथवा रंगीन

आकार है। इसी प्रकार स्पर्श सम्बन्धी घटना तापमान तथा आकार का समवाय है। जब एक चाक्षुष घटना घटित होती है उस समय हम एक रंगीन आकार बाहर देखते हैं, जहाँ कि कुछ कदम चलने के पश्चात् पहुँचा जा सकता है। मान लीजिए इस स्थान पर पहुँचने पर स्पर्श सम्बन्धी घटना भी घटित होती है, उस अवस्था में हम समझते है कि यह स्थान किसी भौतिक पदार्थ से अनुमित है, जो हमारे संवेद का सापेक्ष नहो है। किन्तु यदि स्पर्श सम्बन्धी घटना यहाँ घटित नहीं होती तो हम इसे अपना भ्रम समझते हैं। किन्तु यह स्थिति सरल (Primitive) न होकर सम्पृक्त (Complex) है, इसमें चाक्षुष तथा स्पर्श संबधी अन्वय (Associations) सपृक्त है, अन्यथा चाक्षुष घटना अपनी यथार्थता के लिए स्पार्श घटनाओं पर निर्भर नहीं करती। अतः जब हम कहते है कि 'वह मेज़ है' उस समय हमारी मानसिक स्थिति सम्पृक्त होती है। स्पर्श सम्बन्धी घटनाओं को चाक्षुष घटनाओं से यथार्थ के अधिक निकट कहना केवल, विश्वास जन्य और सुविधापेक्षी (Arbitrary) है, अन्यथा दोनों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं हो सकता। जो भी हो, दोनों ही अवस्थाओ में सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि ऐंद्रिय घटनाओं का स्रोत बाहर है और वह एक ऐसा केन्द्र है जिससे सब प्रकार की कारण शृंखलाएं प्रसारित होती हैं और हमारी इन्द्रियों के सम्पर्क में आकर किसी रहस्यमय ढग से हमें प्रत्यक्ष होती है, अथवा स्वयं वह केन्द्र ही किसी रहस्यमय ढग से समारे सवेद का विषय हो जाता है।

यदि पदार्थ इस प्रकार का कोई स्वलक्षण अस्तित्व है भी तो भी उसे एक अविभाज्य इकाई नहीं कहा जा सकता। वह इस प्रकार के अस्तित्वों की कारण शृंखला है। अतः जब किसी काल विशेष पर ऐंद्रिय घटना घटित होती है उस समय हम कह सकते है कि काल क^{१} में देश द^{१} पर एक चाक्षुष घटना घ^{१} घटित हुई जो भौतिक घटना घ$^{१'}$ से सम्बन्ध स से संयुक्त है। यह घटना घ$^{१'}$ अन्य अनेक घटनाओं प^{न} से, जिन्हे सम्मिलित रूप से हम पदार्थ कहते है, सम्बन्ध स' से संयुक्त है। प्रथम सम्बन्ध जहाँ सवेद्यता का है, दूसरा सम्बन्ध वर्ग-सदस्यता का। संवेद्य सम्बन्ध पुनः वर्ग-सम्बन्ध को जन्म देता है:— एक ही घटना चाक्षुष, श्रौत्र और स्पार्शन इत्यादि सवेदों का विषय हो सकती है। पुनः, प्रत्येक संवेद्य घटना विभिन्न कोणों से संवेद्य है और इस प्रकार उनके कितने ही सम्बन्ध है। मान लीजिए, घटना घ$^{१'}$ का चाक्षुष प्रत्यक्ष काल क पर जितने बिन्दुओं से घटित होता है उन सब का

कैमरों द्वारा सकलन किया जाता है, तब हम कहेगे घ[1]' जो प से संबंध स' द्वारा सयुक्त है और घ[१] से सम्बन्ध स द्वारा, वह इन सम्बन्धों के साथ काल क[1] में देश द[1] पर घटित हो रहा है, जो कि मेरा मस्तिष्क है और यह देश द[1] अन्य चाक्षुष देशों द[न] से सम्बन्ध स' द्वारा संयुक्त है, जो कि वर्ग-सदस्यता का सम्बन्ध है। अतः पदार्थ काल क पर असंख्य घटनाओं और सम्बन्धो का समवाय है। हीसन्बर्ग-स्क्रॉडिंजर के क्वाटम सिद्धान्त मे परमाणु इन सम्बन्धों और घटनाओं का ही समवाय है, किन्तु उस सिद्धान्त के अनुसार घटना समवाय प[न] का अस्तित्व काल्पनिक है और सी से घ[१] को प[न] से संयुक्त करने वाला सम्बन्ध स' भी।

किन्तु यह आवश्यक नहीं कि पदार्थ को इस प्रकार प्रत्यक्ष घटनाओं का समवाय ही माना जाए, जो एक केन्द्र में सहावस्थित हैं। मान लीजिए, मै एक व्यक्ति को घटी बजाते देखता हूँ और शब्द सुनता हूँ, जिसे मैं घंटी का स्वर कहता हूँ। प्रयोग के लिए मैंने कुछ मूवी कैमरे रखे है जो चित्र भी लेते है और ध्वनि भी रिकार्ड करते है। उन सबको पीछे मै देखता और सुनता हूँ और पाता हूँ कि इन यंत्रों ने भी मेरे ही समान चाक्षुष और श्रौत्र घटनाओ का 'संवेद' किया है। उस अवस्था में यह भी संभावना की जा सकती है कि जहा कोई व्यक्ति नहीं खड़ा था अथवा कैमरा नहीं रखा था वहाँ भी मेरी प्रत्यक्ष के 'समान' ही घटनाएँ घटित हो सकती थीं यदि वहाँ कोई कैमरा अथवा मस्तिष्क होता तो। अतः हम अनुमान करते हैं कि उस केन्द्र में, जहां सब चाक्षुष और श्रौत्र घटनाएं समन्वित की जा सकती है, कुछ घटनाएँ घटित हो रही हैं जहाँ से सब ओर को कारण शृंखलाएँ प्रसारित होती हैं और हमारी इन्द्रियों से सम्पर्क होने पर चाक्षुष और श्रौत्र रूपों में परिणत हो जाती है। ये घटनाएं इस पदार्थ के इतिहास में एक सर्वथा नवीन और विचित्र अध्याय का आरंभ करती हैं, किन्तु पदार्थ का अस्तित्व इन घटनाओ पर निर्भर नहीं है, वह इनसे स्वतत्र है और उन शृंखलाओं का अजस्र स्रोत है जो इन्द्रियों से सम्पर्क होने पर पुनः लगभग उसी प्रकार की घटनाओं में घटित हो सकती हैं। यह सवेद की कारण-सम्बन्धों में व्याख्या है। किन्तु बर्कले इसका विरोध करते हुए कहता है कि कार्यों और कारणों का सामान्यतः एक ही गुण होना चाहिए। इस प्रकार, जो भी हमारे मानस-प्रत्यक्ष होता है उसे मूलतः हमारी मानसिक घटनाओं के समान ही होना चाहिए। अतः बर्कले ने तर्क किया कि क्योकि संवेद्य घटनाएँ मानसिक हैं अतः बाहर घटित होने वाली कारण घटनाओं को भी मानसिक ही होना चाहिए।

किन्तु यह तर्क दुधारू है। यदि कारण और कार्य को समान गुण ही होना चाहिए तो मानसिक कही जाने वाली घटनाओं के लिए भी उतने ही निश्चय से कहा जा सकता है कि वे भौतिक हैं और उनका मानसिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। बर्गसां ने मैटर एंड मेमोरी (matter and Memory) मे यही प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं "मैं पदार्थ को रूपों (Images) का समवाय मानता हूँ और पदार्थ के प्रत्यक्ष अथवा सवद को इन्ही रूपों में से एक विशेष रूप—शरीर के साथ सम्पर्क होना मानता हूँ।" और आगे "इधर रूपो का एक समवाय है जिसे मै बाह्य विश्व का मन द्वारा प्रत्यक्ष कहता हूँ और जिसे कि एक विशेष रूप—मेरे शरीर मे, थोड़ा-सा परिवर्तन करने पर बहुत अधिक परिवर्तित किया जा सकता है। यह रूप केन्द्राध्युषित होता है, इससे सम्पूर्ण अन्य रूप निर्धारित होते है, इसकी प्रत्येक क्रिया अथवा स्थान परिवर्तन से सम्पूर्ण क्रम ही परिवर्तित हो जाता है, बिल्कुल केलीडियोस्कोप के घुमाने से उत्पन्न परिवर्तन के समान और दूसरी ओर, वही रूप है जो कि अपने आप में स्वतन्त्र वृत्त है, यद्यपि यह एक दूसरे को प्रभावित करते है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु यह कार्य निरपवाद रूप से कारण के अनुपात में होता है। इसे ही मै भौतिक विश्व कहता हूँ। प्रश्न है, ये दो प्रक्रियाएं(System)कैसे साथ-साथ रह सकती हैं, क्यों वही रूप भौतिक विश्व में अपेक्षाकृत अपरिवर्तमान है और संवेदों के सम्पर्क मे असीम रूप से परिवर्तमान है ?" इस प्रकार उन्होंने प्रत्यक्ष रूपों और भौतिक घटनाओं को समान ही माना है और प्रत्यक्ष या संवेद्य रूप भौतिक रूपों पर निर्भर हैं। वे आकस्मिक क्रिया (Eventual action) तथा रहस्यमय स्मृति को भी बीच में लाते हैं, किन्तु यहाँ उस सम्बन्ध में कुछ कहना प्रासंगिक नहीं होगा। जहाँ तक बर्गसां के पदार्थ सम्बन्धी विचारों का प्रश्न है, हम उनसे सहमत नहीं है और साथ ही यह कह देना भी आवश्यक है कि यह समझना सहज नही है कि वे क्या कहना चाहते हैं। वे कुछ अस्पष्ट शब्दों और परिभाषाओं का प्रयोग करते है, जिन्हें संभवत. उनके अतिरिक्त कोई भी स्पष्टता: नहीं समझता। जी० ई० मूर ने भी संवेद्य रूपों को भौतिक रूपों के समान ही माना है और उनका विश्लेषण अत्यन्त स्पष्ट और तर्क सम्मत है, यद्यपि हम उनसे सहमत नही हैं, क्योकि उनका अभिमत स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयाँ है।

किन्तु जहाँ तक बर्कले का सम्बन्ध है, उनका विश्लेषण भी कम त्रुटिपूर्ण नहीं है। उनका उद्देश्य ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करना है। यदि ईश्वर और अहम् को उनके विश्लेषण से हटा दिया जाए तो वास्तव में वही पहला कदम है जहाँ से

पदार्थ का आधुनिक दर्शन आरंभ होता है। बर्कले पहला दार्शनिक था जिस ने विशुद्ध विश्लेषण प्रणाली पर ज्ञान मीमांसा के सहारे पदार्थ का सवेद से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व अस्वीकार किया था।

हमने पीछे देखा है कि हमारा पदार्थ का ज्ञान उन घटनाओं का ज्ञान है जो हमारे मस्तिष्क में घटित होती है। मेरा मेज़ का चाक्षुष प्रत्यक्ष एक विशेष देश और काल में घटित होने वाली घटना है और उसका गुण विशेष रंग, जिसकी कुछ दैशिक और कालिक स्थितियाँ है। यद्यपि इसे मै अपने शरीर से कुछ दूरी पर देखता हूँ किन्तु यह केवल अतीत सम्बन्धो के कारण ही, अन्यथा जहाँ यह घटना घटित हो रही है, और जहाँ मै इसे देखता हूँ वह देश में दो भिन्न स्थितियाँ है। मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली यह घटना निश्चय ही उस घटना से भिन्न है जिसे हम पदार्थ कहते है, क्योंकि यह घटना उस कारण शृंखला को प्रेरित करती है, जिसे हम कल्पना, स्मृति, आवेग इत्यादि कहते हैं, और यदि संवेद्य घदनाओं को भौतिक घटनाओं के समान भी कहा जाए तो भी संवेद्य घटना से प्रेरित कारण शृंखला भौतिक घटनाओं की कारण शृंखला के समान गुणवाली नहीं कही जा सकती। किन्तु वास्तव में कल्पना तथा संवेद मे कोई मौलिक अन्तर नहीं है, जैसा कि हम ने पिछले निबन्ध में माना है। कल्पना तथा संवेद में अन्तर केवल अन्वय जनित है। कल्पना जब कि कोई दैशिक सम्बन्ध नहीं रखती, सवेद के दैशिक संबन्ध होते हैं—यह उस विशेष काल पर घटित होने वाले अन्य संवेदों से सम्बन्धित की जा सकती है। संवेद भौतिक घटनाओं के भी बिल्कुल समान नहीं हो सकते, क्योंकि भौतिक घटनाएँ, यदि वह है तो, संवेदों से इस बात में भिन्न है कि जब कि भौतिक घटनाएँ अनेक सम्बन्धित सवेद्य घटनाओं की केन्द्र हैं, संवेद्य घटना के ऐसे कोई सम्बन्ध नहीं हैं। इसी प्रकार भौतिक घटनाएँ जब कि उस वर्ग की सदस्य है जिसे हम मेज़ या कुर्सी या पुस्तक कहते हैं, संवेद्य घटनाए उस वर्ग की सदस्य है जिसे हम मन कहते है।

जब मैं कहता हूँ—"मैं मेज़ देख रहा हूँ" उस समय वास्तव मे एक चाक्षुष घटना घटित होती है जहां पर मेरा मस्तिष्क है, और सम्बन्धित कारण शृंखला घटित होती है। इसी प्रकार, मेरे पास विद्यमान अन्य व्यक्तियो में भी, जिनकी आँखें उस केन्द्र की ओर है, जहाँ मेरे संवेद का अभ्युपगमित मेज़ है, मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली घटना के लगभग समान ही घटनाएं घटित होती हैं। यह मुझे उनके कथनों से ज्ञात होता है। अन्य मस्तिष्कों में घटित होने वाली घटनाएं मेरे सवेदों के बिल्कुल समान नही हो सकती, कम से कम आकारों में कुछ भिन्नता अनिवार्य ह, किन्तु यदि

मैं उन स्थानों पर जाऊँ जहाँ पहले कोई अन्य मस्तिष्क था तो मैं भी लगभग उसी प्रकार का रगीन सस्थान देख सकता हूं। (यहाँ लगभग शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया है कि एक ही दैशिक बिन्दु पर ये दो घटनाए एक ही कालिक बिन्दु पर भी नहीं हो सकतीं, कालिक बिन्दुओ मे आनुक्रमिक सम्बन्ध होगा।) अब मेरे इस स्थान परिवर्तन के साथ मुझमे जो दो सवेद घटित होते है, उनका केन्द्र एक ही रहेगा। और यदि अन्य मस्तिष्क, जिसका स्थान मैने अब लिया है, ठीक मेरे पीछे हटकर है तो उसकी आंखो की दिशा ठीक वही कोण बनाएगी जो मेरी आँखों की दिशा। इसी प्रकार, जब मै स्थान परिवर्तन करूंगा तो इस के साथ मै देखूँगा कि प्रथम बिन्दु से उस बिन्दु तक पहुँचने के अन्तर में, जहाँ पर पहले अन्य मस्तिष्क था, कुछ सवेद घटित होते है, जो प्रथम से द्वितीय बिन्दुके अन्तर को एक क्रम से भरते हें। यह श्रृंखला वृत्त और लंबाई में द्विविध है। यदि सभी द्रष्टा उ केन्द्र की ओर बढे तो एक स्थान ऐसा आएगा जहाँ पहुँचकर स्पार्शन घटन घटित होंगी और चाक्षुप घटनाएँ समाप्त हो जाएगी। उस स्थान को हम केन्द्र कहेगे, और यही वह स्थान है जहाँ पर कि अभ्युपगमित (Hypothetical) पदार्थ है। जहां तक हमरे ज्ञान का सम्बन्ध है, इस तथा कथित-पदार्थ के सम्बन्ध मे हम कुछ नही जानते, हम केवल उस घटना क्रम को जानते है जो हमारा संवेद है। अतः यह पदार्थ उन घटनाओं का नियमित क्रम मात्र है जिनमें से कुछ मेरे मस्तिष्क में घटित होती है। विभिन्न कालो और विभिन्न देशो में घटित होने वाली इन घटनाओं को कारणता तथा अन्वयों द्वारा संकलित किया जा सकता है, जो पुनः हमारे संवेदों के ही सम्बन्ध है। अतः वह केन्द्र जो इन सब घटनाओं को, जो इसके चारों ओर घटित होती हैं, अन्वयित करता है, पदार्थ है। ये घटनाएं जब कि वास्तविक है, क्योंकि सवेद्य है, स्वय यह केन्द्र केवल अभ्युपगम है जो इन विभिन्न घटनाओंके सम्बन्ध की व्यख्या को सहज बनाता है। पदार्थ की यह व्याख्या वर्ट्रंड रसल के अनुसार है। वे संवेद तथा पदार्थ के स्थानों का निर्णय इस प्रकार करते हैं—

१—वह स्थान जहँ कि विभिन्न केन्द्रों के प्रत्यक्ष एक साथ संकलित होते है और एक संस्थान का निर्माण करते है, जैसे जब मैं काल क पर तारकित आकाश की ओर देखता हूँ।

२—सभी संवेद, जिनका केन्द्र एक ही है, जैसे, जब बहुत से व्यक्ति एक साथ 'एक' तारे को देखते हैं।

इनमें प्रथम स्थान वह है जहाँ पर मानसिक घटनाएं घटित होती हैं

और द्वितीय वह जहाँ पर अभ्युपगमित पादार्थिक घटनाएं घटित होती है। रसल पदार्थ को उन घटनाओं का अन्वय मात्र मानते हैं जो हमारे मस्तिष्क मे घटित होती है। वे कहते है—"विभिन्य प्रत्यक्षों के समीकरण के लिए एक तटस्थ स्रोत की कल्पना करने के बजाय हम यह तटस्थता सम्पूर्ण वर्गों को समान प्रतिनिधित्व देकर भी प्राप्त कर सकते है। जिनके लिए यह कहा जाता है कि वे मेज देख रहे है, उनके सम्वेदों के मूल में किसी अज्ञात कारण की कल्पना करने के बजाय हम इन प्रत्यक्षों के सम्पूर्ण समवाय को ही, इनके पूरक कुछ अन्य सम्भावित संवेदों के साथ, मेज कह सकते है। अर्थात् मेज, जो कि विभिन्न दर्शकों (वास्तविक और सभाव्य) के बीच तटस्थ है, उन सवेदो का समवाय मात्र है जो स्वभावत: उस मेज के विभिन्न कोणों के सवेद है।"

किन्तु पदार्थ की इस कल्पना को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयां है—क्यों मेज एक विशेष काल और विशेष देश मे ही सभी को एक साथ दिखाई देता है, क्यों उन सब के पीठ फेर लेने पर वह नही दिखाई देता? अथवा, क्यों सबके मस्तिष्क में एक विशेष देश और एक विशेष काल मे ऐसी घटनाएं घटित होती है जिन्हें वे एक मेज के विभिन्न पहलू कहते है? इसका उत्तर रसल यह देते है कि हम संवेदों के अतिरिक्त कुछ नही जानते और सवेदों के अनिवार्य और पर्याप्त कारण हमारे मस्तिष्क में ही विद्यमान है, अत: किन्ही बाह्य घटनाओ की कल्पना केवल अभ्युपगम मात्र है। इन संवेदों को वे ठोस से ठोसतर ज्ञान (Hardest of hard data) कहते है। किन्तु इस ठोस ज्ञान तक सीमित रह कर भौतिक विश्व की कल्पना नही की जा सकती, क्योंकि उस अवस्था मे तो भौतिक विश्व केवल तेजी से उड़ते हुए एक व्यक्ति के संवेदो तक ही सीमित रहेगा। अत: वे अपने ही समान अन्य मनो के अस्तित्व को भी स्वीकार करते है और अपने अतीत सवेदो को भी। अतीत सवेदो का अस्तित्व केवल हमारा विश्वास ही है, क्योकि जो अब है ही नहीं उसके हुए होन का प्रमाण केवल हमारा विश्वास ही है। इसी प्रकार दूसरे व्यक्तियो के अस्तित्व के सम्बन्ध मे भी। उनका शरीर उतना ही परोक्ष ज्ञान (Soft data) है जितना मेज, और जहाँ तक मन का प्रश्न है वह इससे भी अधिक परोक्ष और आनुमानिक है। इसी प्रकार, संवेद, चाहे वे स्वप्न के हो, ठोस से ठोस ज्ञान है।

रसल के उक्त विवेचन में स्पष्टत: सुविधापेक्षता (Arbitrarines) से काम लिया गया है, क्योकि ज्ञान के ठोसपन के मात्रा-क्रम (Gradation) का आधार केवल जैवी विश्वास (Animal faith) ही है। किन्तु इस कल्पना के बिना रसल का पदार्थ वाष्पित हो जाता है, किन्तु हमे यह समझने

में अत्यन्त कठिनाई अनुभव होती है कि कैसे ज्ञान के इस मात्राक्रम की कल्पना को पचाया जाए और क्यों कुछ बाह्य घटनाओं को स्वीकार किया जाए और अन्य मे सन्देह किया जाए। इस प्रकार अन्य मनों पर सन्देह करके हम पदार्थ का लक्षण कुछ इस प्रकार कर सकते है--विशिष्ट संवेदों का अनुक्रम सम्बन्ध, जिनका एक ही केन्द्र है।

किन्तु इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइया है, जैसा कि स्पष्ट ही है, हम मेज को केवल वही नहीं मान सकते जो हमे वह एक विशेष काल मे दिखाई देता है, हम उसकी दैशिक सम्पूर्णता भी बनाए रखना चाहते है। इसी प्रकार, जब हम मेज नही देख रहे होते उस समय उसका तिरोभाव स्वीकार नहीं करना चाहते। हम उस समय भी उसे विद्यमान मानना चाहते है, रसल भी यह मानते है, किन्तु जब मेज किसी का भी संवेद्य नही होता उस समय उसके अस्तित्व की स्वीकृति का क्या आधार है, यह समझना कठिन है। रसल इस अस्तित्व को कारणता के आधार पर स्वीकार करते हैं। वे कहते है--"अब भूत विज्ञान ने सवेद्य विषयों (Sense data) को एक शृंखला मे सकलित करने को अनुभव के स्तर पर (Emperically) संभव कर दिया है। प्रत्येक ऐसी शृंखला 'एक वस्तु' समझी जाएगी और इस शृखला का व्यवहार ऐसा होगा जैसा अन्य वस्तु से संबन्धित शृंखला का नही होगा। कि अमुक संवेद अथवा प्रतीतियाँ एक ही वस्तु की प्रतीतियाँ है या नहीं, यदि इसे स्पष्ट रूप से समझने योग्य होना है तो संकलन का केवल एक ही ढग होना चाहिए और वह यह कि वस्तुएं भूत विज्ञान के सिद्धान्तो के अनुकूल हो।" और ये सिद्धान्त कारणता के सिद्धान्त हैं। "यहाँ अभीष्ट है कारण सिद्धान्तों की अनुकूलता। यह कथन बहुत अस्पष्ट है, किन्तु हम इसे स्पष्टता तथा विनिश्चता देने का यास करेंगे। जब मै कारण सिद्धान्तों की बात करता हूँ, मेरा अभिप्राय उन सब सिद्धान्तों से होता है जो घटनाओं को विभिन्न कालों में सम्बन्धित करते हैं अथवा सम कालिक घटनाओं को भी, यदि इनमें सम्बन्ध तार्किक रूप से द्रष्टव्य नहीं है तो।" और आगे कहते है (किन्तु) "यह सिद्ध करना अत्यन्त कठिन (असंभव) होगा कि वास्तव में ऐसी बात है ही।" (Our Knowledge of the External world) किन्तु ये कारण सिद्धान्त अधिक से अधिक एक व्यक्ति के अपने सम्वेदों के सह-सम्बन्धों (Correlations) के सम्बन्धमें निश्चित रूप से बता सकते है और अतएव यह सह-सम्बन्ध केवल आनुक्रमिक ही हो सकते है सह-कालिक नही। किन्तु केवल एक व्यक्ति के तीव्र गति से उड़ते हुए संवेद 'मेज' का निर्माण करने के लिए काफी नहीं है। इस उलझन से बचने का

एक और उपाय है . संवेद, जैसा कि हमने पीछे देखा है, संवेदन की क्रिया और सवेद-विषय में विश्लेषित नही किये जा सकते, सवेद अपने आप मे पूर्ण एक अस्तित्व है और इसका विषय वास्तव में इसका अपना आधार भूत गुण है। इसी प्रकार, सवेद मेरे या उसके संवेद नही है, यह केवल आकस्मिक सयोग है कि देश के उस विशिष्ट बिन्दु पर घटनाओं का वह समवाय है जिसे "मै" कहा जाता है, अन्यथा कोई भी मस्तिष्क अथवा कैमरा इत्यादि वहाँ हो सकता था और प्रत्येक अवस्था मे वह सवेद-विषय घटित हुआ होता। इन घटना समवायों के, जिन्हें हम मस्तिष्क अथवा आपरेटस कहते हैं, बिना भी ये संवेद घटित हो सकते अथवा थे नहीं यह विवादास्पद है, और इसे हम कुछ देर के लिए स्थगित कर सकते हे। किन्तु यदि यह संवेद, मस्तिष्क अथवा आपरेटस के साथ ही घटित होता है तो भी यह उस घटना समवाय का भाग नही है, हम इसके स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना कर सकते हैं। अब मान लीजिए इन संवेदों से अतिरिक्त अन्य कुछ भी अस्तित्व नहीं है, उस अवस्था में केवल इन संवेदों से ही सम्पूर्ण विश्व का 'निर्माण' किया जा सकता है। सह-सम्बन्धों के द्वारा इन संवेदों मे सहकालिकता और आनु-क्रमिकता के सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते है। रसल और बर्कले इसी सिद्धान्त को मान कर चलते है, किन्तु रसल और बर्कले दोनों सम्भवत: सवेदों को इस प्रकार आत्म-स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मानते, रसल इनके होने के लिए मस्तिष्क को आवश्यक मानते है और बर्कले मन को। सह-सम्बन्ध के लिए बर्कले एक सार्वभौम मन की कल्पना करते हैं जब कि रसल केवल 'अनुभव' को (Experience को) पर्याप्त मानते हैं। किन्तु यदि संवेदों के अतिरिक्त अन्य सब केवल अनुमान और कल्पना है तो अन्ततः मस्तिष्क और मन को भी (चाहे वह सार्वभौम मन ही क्यों न हो) संवेद ही होना चाहिए, और यदि वह संवेद नही हैं तो उनका अस्तित्व उतना ही काल्पनिक है जितना स्वय 'मेज' का, एक स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में। किन्तु रसल मस्तिष्क को भी संवेद ही मानते हैं, यद्यपि एक भिन्न प्रकार का, अथवा कहें, भिन्न सह-सम्बन्धों वाला संवेद। किन्तु रसल का आशय एकदम स्पष्ट नहीं है (कम से कम हमारे लिए)। जब मेज को कोई नहीं देखता अर्थात् जब मेज किसी मस्तिष्क अथवा ऑपरेटस का संवेद्य नहीं है उस समय भी उसका अस्तित्व रहता है या नहीं? रसल मानते हैं कि वह रहता है, किन्तु किस रूप में? यह स्पष्ट नहीं है। रसल संभाव्य संवेदों का अस्तित्व स्वीकार करते है किन्तु इसके लिए कम से कम एक वास्तव संवेद का होना आवश्यक है जिसके सह-सम्बन्धों के आधार पर संभाव्य संवेद अनुमित किये जा सके।

अतः जब मेज का कोई भी वास्तव संवेद[1] घटित नहीं होता उस समय सह-सम्बन्धों का प्रश्न भी उत्पन्न नहीं होता। उस अवस्था में रसल मेज का अस्तित्व किस रूप में स्वीकार करते हैं, यह हमें ज्ञात नहीं है।[2]

संवेदों को, जिन्हें हम संवेदित करते हैं, संवेद्य वस्तु—जैसे मेज़—से स्वतंत्र मानने के पक्ष में प्रमाण यह दिया जाता है कि स्वप्न में अथवा बीमारी में हम मेज़ के बिना भी मेज़ को देखते हैं। किन्तु संवेद्य रूप से भी स्वप्न और जागृति के संवेदों में सम्बन्धों की भिन्नता होती है, इस सम्बन्ध में हम पीछे देख ही आए है। इसके अतिरिक्त 'इस विशेष काल में, विशेष देश में एक विशेष केन्द्र के साथ ही इस सवेद के घटित होने' में कुछ विशेषता है जो स्वप्न-संवेदों में नहीं होती। यदि मैं उस केन्द्र से आँखे हटा लेता हूँ जो मेरे सम्वेदो का मनोवैज्ञानिक स्थान है तो मुझमे वे संवेद घटित नही होते। इसी प्रकार, यदि मै ठीक वृत्त में उसके चारो ओर घूमता हूँ और उस केन्द्र के साथ मेरी आँखों की दिशा ठीक वही कोण बनाती है तो म मेज़ को निरन्तर परिवर्तमान आकारों के साथ देखता रहूँगा। अतः यह संभावन प्रबल होती है कि हमारे से बाहर उस केद्र में कुछ घटनाएँ घटित हो रही हैं जहाँ मेरी दृष्टि का मेज़ है अथवा जिस केन्द्र के साथ विभिन्न सह-सम्बन्धित घटनाओं मे सम्बन्ध स्थापन सहज हो जाता है। सन्तयाना मेज़ को अथवा उस केन्द्र को, जो हमारे मेज़ सम्बन्धी प्रत्यक्षों का आधार हैं, वास्तविक अस्तित्व मानते है, किन्तु स्वयं संवेदों को मेज़ अथवा उसका अंग नहीं मानते। उनके अनुसार, हमारा विषय का प्रत्यक्ष विषय से भिन्न अस्तित्व रखता है किन्तु फिर भी वह विषय के गुणों और सम्बन्धों का भावन करता है। अर्थात् यद्यपि पदार्थ और उसके संवेद अस्तित्व के स्तर पर एक दूसरे से स्वतंत्र है किन्तु सार (Essence) और गुणों में वे समान होते है। हम गुणों का अपरोक्ष प्रत्यक्ष करते हैं और इस प्रकार का प्रत्येक गुण निरपेक्ष है, वह अपने घटित होने के देश-काल और सम्बन्धों से स्वतंत्र और आत्मपूर्ण हैं। अतः इसकी आवृत्ति की जा सकती है और यह सार्वभौम तत्व है। सन्तयाना सार की परिभाषा देते हुए कहते हैं "विशुद्ध प्रत्यय अथवा

---

[1]वास्तव संवेद रसल मस्तिष्क में घटित होने वाले संवेद को कहते है।

[2]रसल ने संवेदों के प्रति यह दृष्टिकोण(The Analysis of mind) तक ही रखा है। पीछें (The Analysis of matter)के बाद उन्होंने संवदों के बजाय घटनाओं को वास्तविक अस्तित्व माना है और अपने से बाहर स्वतन्त्र घटनाओं का अस्तित्व स्वीकार किया है।

विशुद्ध ऐंद्रिय सवेद का वह विषय जिसके साथ अन्य कोई भी विश्वास और अन्वय (एसोसियेशन), संलग्न नहीं है......बाह्य सम्बन्धों तथा भौतिक गुणों से रहित ।" वे आगे कहते हैं "जो विश्व हमारा संवेद्य है वह केवल इन निरपेक्ष और अमर सारों के असीम समवाय मे से निर्वाचन मात्र है, जो सार स्वतः न तो मानसिक हैं और न अस्तित्ववान ही ।" सन्तयाना इन संवेदित सारों में भावित गुणों के लिए कहता है "संभव है वे स्वयं पदार्थ के भी गुण हों ।" उसके अनुसार "क्योंकि संवेदितसार और पदार्थ में निहित सार सार्वभौम हैं अतः संवेद अपरोक्ष रूप से पदार्थ का भावन कर सकता है ।" सन्तयाना की सार की कल्पना एक सीमा तक रसल के विशिष्ट (Particular) जैसी है । रसल का विशिष्ट न तो मानसिक है न भौतिक, वह उभयविध है, और संवेदित विशिष्ट अनन्त संभाव्य विशिष्टों मे से कुछेक का आकस्मिक (Accidental) चयन मात्र हैं । किन्तु विशिष्टों का यह असंवेदित अनन्त समवाय स्वयं अनस्तित्व है । किन्तु रसल सन्तयाना के समान इन्हें सार्वभौम नहीं मानते प्रत्युत इन्हें निश्चित दैशिक-कालिक सम्बन्धों से युक्त मानते हैं । सन्तयाना की सार की इस कल्पना को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं । सर्वप्रथम, यह समझना कठिन है कि इनका पदार्थ से क्या सम्बन्ध है और भूत विज्ञान से इनका समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है । संवेदित सार मूलतः पदार्थ से भिन्न है और असंवेदित अनस्तित्व हैं, जबकि पदार्थ का अस्तित्व अक्षुण्ण रहता है । पुनः यह भी समझना संभव नहीं है कि सारों का प्रत्यय से क्या सम्बन्ध है अथवा वे संवेद्य कैसे होते हैं; क्योंकि जब मैं लाल फूल देखता हूँ उस समय मुझमे घटित होने वाला संवेदित सार उन असंख्य सारों में से एक है जो संवेदित नहीं हैं, ये असंवेदिन सार अनस्तित्व हैं और सार मात्र का पदार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है, अत यह समझ सकना कठिन है कि क्यों यह विशेष सार ही उस समय मुझमें घटित हुआ, अन्य क्यों नहीं घटित हुआ ।

सार की सार्व भौमता भी असंदिग्ध नहीं: जब मै लाल रंग का संवेदन करता हूँ उस समय इस गुण विशेष अथवा सारों की असंख्य परंपरा को एक ऐसी घटना घटित होती है जिसे सार का संवेदन कहते है और जो इन असंख्य अनस्तित्व सारों में से एक को अस्तित्व-गुण विशिष्ट कर देती है । सार के संवेदन में सन्देह नहीं किया जा सकता और यह भी नि.सन्देह है कि प्रत्यक्षीकरण की यह घटना एक निश्चित देश और काल मे घटित हुई है और इसीलिए इसकी पुनरावृत्ति भी नहीं हो सकती । लाल होने का गुण एब्स्ट्रेक्ट मे (In Abstraction) सार्व भौम कहा जा सकता है किन्तु

इस गुण की एक विशेष छाया के एक विशेष देश और काल में संवेदन की घटना के लिए यही बात नहीं कही जा सकती ।

यद्यपि हमारे उपर्युक्त विश्लेषण से ही यह स्पष्ट है कि सन्तयाना के सिद्धान्तानुसार प्रत्यक्ष को किसी भी प्रकार से पदार्थ से सम्बन्धित नही किया जा सकता किन्तु इस विश्लेषण को और भी आगे बढ़ाया जा सकता है। आँख को एक विशेष प्रकार से दबाने पर हम एक के बजाय दो चाँद देखते है और न दबाने पर एक। अब यदि सवेदित सार अनन्त सार-शृखलाओ मे से एक है और यह देश-काल निरवच्छिन्न सौर्वभौम है तो हमारे उपर्युक्त दो सवेदों मे कोई सम्बन्ध नही स्थापित किया जा सकता और यदि हम इनमे से एक को चाँद का अपरोक्ष भावन कहेंगे और दूसरे को नहीं तो इसे किसी तर्क के आधार पर नही प्रत्युत् केवल विश्वास के आधार पर ही। यह केवल सुविधापेक्षता ((Arbitrariness) होगी। इसी प्रकार मेज़ के सभी सवेदो को भी मेज़ का अप्रत्यक्ष भावन नही कहा जा सकता। मेज़ ठीक ऊपर से देखने पर जब कि एक विशेष आकार का दिखाई देता है, कुछ दूर पर ज़मीन पर खड़े हो कर सर्वथा भिन्न आकार का दिखाई देता है। ये दो भिन्न आकार एक साथ ही मेज़ के आकार नहीं हो सकते। इनमे से किसी एक को दूसरे के बजाय मेज़ का वास्तविक आकार कहना निराधार कल्पना होगी।

इसके विपरीत रसल के सवेदों के बारे में यही नही कहा जा सकता। उनकी व्याख्यानुसार प्रत्येक संवेद अन्य असंख्य संवेदों की दैशिक और कालिक सापेक्षता में अवस्थित है। जब हम एक के बजाय दो चाँद देखते हैं उस समय इस संवेद का अन्य सम्भाव्य और वास्तविक संवेदों के साथ समन्वय नहीं किया जा सकता, अत: इस संवेद को असाधारण कहा जाएगा।

ब्रॉड इस समस्या का कुछ भिन्न प्रकार से विश्लेषण करते हैं। उनके विचार में ऐंद्रिय संवेद की घटना का विश्लेषण—संवेदन क्रिया, संवेद तथा संवेद्य विषय में किया जाना चाहिए। वे कहते है, 'यह प्रमाणित करने के लिए अत्यन्त ठोस प्रमाण दिये जा सकते हैं कि संवेदित विषय अपने अस्तित्व के लिए मन पर निर्भर करते है, यद्यपि संवेद का विश्लेषण संवेदन क्रिया और संवेद्य विषय में किया जा सकता है। और इस प्रकार संवेद्य विषय को क्रिया तथा संवेद से भिन्न किया जा सकता है। किन्तु फिर भी ये दो फेक्टर एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं रह सकते। संवेदन का कोई व्यापार संवेदित विषय के बिना संभव नहीं है जिस पर कि यह व्यापारित होता है, और इसी प्रकार

कोई संवेदित विषय सभव नहीं है जब तक कि संवेदन का व्यापार नहीं हो।" संवेद्य विषय को अपने अस्तित्व के लिए मन पर वे इस लिए आश्रित मानते है 'क्योंकि 'वह एक दम व्यक्तिगत है, उसमें तथा शारीरिक अनुभव में समता है तथा उन में और मानसिक कल्पनाओं में समता है।' किन्तु फिर भी इस विषय को वे मानसिक विषय अथवा मन की अवस्था नही मानते क्योंकि "यदि संवेद्य विषय मन की अवस्था हो तो ऐंसी मानसिक अवस्थाएँ माननी होंगी जो शब्दशः लाल, गोल, गर्म और स्वरित हों। मुझे यह स्वीकार करने मे कोई कठिनाई नही दिखाई देती कि बहुत सी मानसिक घटनाएँ ऐसी (टर्म्ज) से युक्त होती हैं जिन्हे हम विषय कहते हैं, किन्तु मुझे यह स्वीकार करना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है कि मानसिक अवस्थाएं स्वयं ऐसी टर्म्ज है।"

संवेदन की क्रिया के सम्बन्ध में हम पीछे देखेगे, यहाँ ब्रॉड की अन्तिम पंक्तियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। 'जब कि सवेद्य विषय संवेद का अविभाज्य अंग है और संवेदन क्रिया का भी, और संवेदन क्रिया मानसिक अवस्था है तब संवेद्य-विषय मानसिक अवस्था नही है क्योंकि वह लाल, चौड़ा और गर्म है। दूसरे शब्दों मे, यद्यपि ललाई, चौड़ाई और गर्माई मन से स्वतंत्र नहीं हो सकती किन्तु फिर भी वह मन में नही हो सकती, और इसी प्रकार, यद्यपि विशेष मानसिक अवस्थाएं ललाई, चौड़ाई और गर्माई के बिना नही हो सकती किन्तु ये गुण इन अवस्थाओं के नहीं हैं।' हमारे विचार में यह एक अत्यन्त दूराकृष्ट कल्पना है। कल्पना में भी हम ललाई, चौड़ाई और गर्माई का भावन करते हैं। यदि कल्पना भी सम्पूर्ण रूप से मानसिक अवस्था नहीं है तो हमें नहीं मालूम कि मानसिक अवस्था वे किसे कहते है। इस के अतिरिक्त, मान लीजिए मानसिक अवस्थाओं का लम्बे, चौड़े और गर्म होना असंभाव्य है, और यह भी कि विषय इन अवस्थाओं से युक्त होते है, अथवा ठीक शब्दों में, ये अवस्थाएं विषयों की मौलिक अवस्थाएं हैं, तो ये दो अस्तित्व, चौड़ाई-ललाई रहित मानसिक अवस्था और इन से युक्त वैषयिक अवस्था कैसे अधिकरण और अधिकृत (Container and Contained) का सम्बन्ध स्थापित कर लेते है ? कैसे मानसिक अवस्था—संवेद की क्रिया, वैषयिक अवस्था से 'युक्त' हो जाती है ? इन प्रश्नों का उत्तर हम ब्रॉड से नहीं पाते। उन्होंने विश्लेषण को बहुत दूर तक खैचा है।

अब सवेद की क्रिया के सम्बन्ध में। हमने इस बारे में पहले भी विचार किया है, किन्तु यहाँ एक बार पुनः इस विषय पर इस प्रकरण में विचार

कर लेना उपयोगी होगा । ब्रॉड का क्रिया (एक्ट) को रखने का मुख्य कारण यह है कि वह संवेद में विषय को स्वतंत्र रखना चाहते हैं और इसके कारण हमने ऊपर उद्धृत किये हैं। क्रिया को वे संवेद का वह भाग कहते हैं जो विषय-रहित है। किन्तु यदि संवेद के लिए ये दोनो भाग अनिवार्य है और यदि तथाकथित एक भाग दूसरे के बिना हो ही नही सकता तो किस आधार पर वे क्रिया का प्रतिपादन करते है, हम नहीं समझ सकते । इसी प्रकार, यदि संवेद्य विषय (Sensum) संवेद का एक भाग है तो किस प्रकार वह सवेद से पृथक् है ? संवेद को पूर्ण शुद्ध रूप में लेकर उसका विषय और व्यापार में विभाजन करना असंभव है। मेज का चाक्षुष संवेद (अथवा कोई भी ऐंद्रिय संवेद) एक घटना है जो देश और काल में एक विनिश्चित सापेक्ष बिन्दु पर घटित होती है, यह एक दम मौलिक और आधार-भूत है। यह सन्तयाना के 'सार' और 'सार्वभौम' संवेद से इस अर्थ में समान है कि यह अविभाज्य है । ब्रॉड संवेद्य विषय की भी सन्तयाना से भिन्न व्याख्या करते है, वे कहते है "भौतिक विषय, जिसे कि मैं इस समय देख रहा हूँ, एक विशिष्ट गुण युक्त है', इस तर्क वाक्य का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है—एक विशेष विषय चाक्षुष घटना घ के विषय भाग का घटक है। यह यथार्थ में ही एक विशेष गुण क से संयुक्त है जिसे कि मैं निरीक्षणसे इसमें देख सकता हूँ, और इसका यह गुण द्विविध सम्बन्ध के रूप में विद्यमान है। और इसके अतिरिक्त भौतिक पदार्थ भ है जिससे कि विषय य सम्बन्ध स से सम्बन्धित है जो कि अद्वितीय है—अन्य किसी विषय के साथ जो नहीं हो सकता । यह सम्बन्ध स 'विषय की प्रतीति होने' का है। संवेद्य विषय की इस व्याख्या का लाभ यह है कि इस प्रकार एक विषय की विभिन्न प्रतीतियों में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। संवेद्य विषय को एक स्वतंत्र अस्तित्व भी रखा जा सकता है, जो स्वय भौतिक पदार्थ का भाग नहीं है, और इसे सवेद से भी स्वतंत्र रखा जा सकता है। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो इस स्वतंत्रीकरण में अनेक कठिनाइयाँ है । जब कि संवेद्य विषय भौतिक पदार्थ का भाग नहीं है और न ही यह मानसिक अवस्था है तो इसे पदार्थ की प्रतीति कहने का क्या अभिप्राय है ? क्या प्रतीति होनें पर यह मन की अवस्था नहीं होगा जिसमें कि यह प्रतीति है ? यदि इसे पदार्थ की अवस्था नहीं भी कहा जाए तो भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि प्रतीति की घटना, जो कि मन में होती है, वह पदार्थ के किसी भाग की भी होती है। तब चाहे यह घटना इस पदार्थ के इतिहास का भाग न भी हो सकें, तो भी यह पदार्थ से इस प्रकार सम्बन्धित है जिस कारण हम इसे इस

विशेष पदार्थ की प्रतीति कहते हैं। संभवतः यह समझना सहज नहीं है कि ब्रॉड संवेद्य-विषय के सम्बन्ध में क्या कहना चाहते हैं। माईण्ड एंड इट्स प्लेस इननेचर में पृष्ट २१८-२२० पर उन्होंने संवेद्य विषय को केवल संवेद का विषय भाग कहा है जो शारीरिक स्तर पर कारित (Physiologically Caused) है, और वहाँ यह समझना कठिन है कि इसका भौतिक पदार्थ से, "जो कि स्वयं इनके समान ही हो सकता है," क्या सम्बन्ध है। दूसरी ओर उन्होंने 'साइंटिफिक थाट' के अन्तिम निबंध 'कंडीशंज एंड स्टेट्स ऑफ सेंसा' में निर्वाचन सिद्धान्त को सर्वाधिक तर्क सम्मत बताया है, क्योंकि "इससे संवेद्य विषय का प्रज्ञानात्मक (Epistimological) और सत्तात्मक (Exxistential) पद बढ़ जाता है।" इस सिद्धान्तानुसार सवेद्य विषय पदार्थ के वे भाग हैं जो कि हमारे संवेद के प्रज्ञानात्मक-प्रतीत्यात्मक प्रसंग में आते है।

सिश्लेषणात्मक वैज्ञानिकतावादी, जैसा कि इन्हें कहा जाता है, तथा रसल (एनेलेसिस ऑफ माइंड तक) संवेद्य विषयों को भौतिक संसार में एक निश्चित और ठोस स्थान दिलाना चाहते है। इसका प्रमुख कारण ये है कि ये प्रत्यक्ष विषय ही वास्तव में हमें ज्ञेय हैं और इन्हीं को सामान्य जन भौतिक पदार्थ अथवा उसके पहलू मानते हैं। विश्लेषणात्मक ैज्ञानिकतावादी अथवा वैज्ञानिक अद्वैतवादी (जैसे रसल) सामान्य जन से विपरीत सवेद्य विषयों के स्वतंत्र रूप से आवश्यक कारण बाहर भौतिक प्रदेश में न मानकर मस्तिष्क में ही मानते है जब कि इनके 'पराश्रित रूप से आवश्यक कारण' बाहर भौतिक प्रदेश में मानते हैं (किन्तु रसल नहीं)। किन्तु रसल बाह्य पदार्थों और कारणों इत्यादि के सम्बन्ध में सन्देह शील हैं, वे संवेदों को ही सब कुछ मानते हैं। इसके विपरीत विश्लेषणवादी इन्हें भौतिक विषयों के समधिक समान अथवा उन्हीं के भाग मानते हैं। इनसे असहमत होने के कारण हम पीछे दे चुके है।

जैसा कि हम पीछे कह चुके है, सवेद एक घटना है और यह हमारे मस्तिष्क में घटित होती है। यह घटना एक असीम कारण-श्रृंखला की कड़ी मात्र है। इसका पूर्ण पृथक्कृत प्रत्यय असम्भव है और यह प्रत्येक घटना के लिए कहा जा सकता है, किन्तु फिर भी इसकी कुछ कल्पना की जा सकती है। मानसिक प्रत्यक्ष (Perception-recognition) एक ओर काल में हमें अन्य घटनाओं—जैसे अन्वयों—से सम्बद्ध होता मिलेगा और दूसरी ओर देश में क्रमशः धुंधला होता हुआ। अतः दोनों तरह से इसकी कल्पना केवल प्रवर्द्धमान और प्रायिक (Progressive and Approxi-

mate) ही हो सकती है, निश्चित नही। अन्य तत्वों अथवा सम्मिश्रणों को संवेद से जितना ही हम अलग करते जाएंगे संवेद उतना ही अधिक धुंधला होता जाएगा। अतः सवेद का प्रत्यय केवल सीमा (Limit) है। जैसा कि सीमा कहने से स्पष्ट है, घटना असीमल्प (Infinitessimal) नही होती और इसी प्रकार यह सम्पृक्त भी नही होती। एक सम्पृक्त घटना पुनः घटनाओं का समवाय है।

हम कल्पना करते है कि हमारे मस्तिष्क के समान ही बाहर भी घटनाएं घटित होती है। भूत विज्ञान मे ये घटनाएं केवल गाणतिक प्रकृति की है। किन्तु यह मानना सुविधा जनक है कि ये घटनाए किसी गुण से युक्त है, यद्यपि यह प्रमाणित नही किया जा सकता। जहा तक घटनाओं की गाणितिक प्रकृति का प्रश्न है, यह भी मानसिक प्रत्यय मात्र है, हम इसके तद्गत रूप को नही जान सकते। "सापेक्षता सिद्धान्त ने फोर्स, मोमेंटम, गुरुत्वाकर्षण, शक्ति इत्यादि सभी कल्पनाओं को मानसिक प्रत्यय सिद्ध कर दिया है। नवीन क्वांटम सिद्धान्त ने परमाणु को कण के बजाय लहर-चित्र के रूप मे विश्लेषित कर दिया है जो कि लहरें भौतिक देश में न होकर हमारे प्रत्ययात्मक देश में घटित होती है।" (जेम्जजींज) इसी प्रकार कारणता के सम्बन्ध मे हमने पिछले निबन्ध में देखा है कि वह केवल निगमनात्मक अनुमान है, अत. मानसिक है। किन्तु यह निगमनात्मक अनुमान हमे अपने से स्वतन्त्र घटनाओं के होने मे भी विश्वास देता है। मान लीजिए मैं एक घटना ख का प्रत्यक्ष करता हूँ, तब मै अनुमान करता हूँ कि इससे पूर्व एक घटना क घटित हो चुकी है जो कि यद्यपि मैंने नहीं देखी, किन्तु वह किसी और ने देखी होगी, और यदि नहीं देखी तो देखी जा सकती थी। इसी प्रकार, जब मै एक विशेष आकृति का रंगीन संस्थान देखता हूँ जिसे कि मैं मेज का एक पहलू कहता हूँ, तो मैं अनुमान करता हूँ कि इसके इस काल बिन्दु क पर दूसरे भी पहलू हैं जो, यदि उन बिन्दुओं पर मेरे समान ही अन्य द्रष्टा भी हों तो, उनके मस्तिष्क में भी मेरे संवेद के समान ही घटित होते हैं। मै यह भी कल्पना करता हूँ कि मेज मेरे प्रत्यक्षों से अधिक स्थायी है : यदि मैं इस कमरे से बाहर चला जाऊं तो भी यह अन्य वास्तव या सभाव्य द्रष्टाओं का चाक्षुष संवेद्य होगा। यदि मेरे साथ एक मूवी कैमरा भी सक्रिय है तो मै अन्य किसी मस्तिष्क के अस्तित्व में विश्वास किये बिना भी अनुमान कर सकता हूँ कि मेज के अन्य पहलू भी थे। यह बात मेरे कमरे से बाहर चले जाने के बाद लिए गये चित्रों के लिए भी कही जा सकती है।

इस तर्क की कुछ सीमाएं है, प्रथमतः निगमनात्मक पद्धति हमे अनिवार्य

रूप से बाह्य घटनाओं मे विश्वास नही देती । ख के घटित होने पर क के घटित हुए होने का अनुमान केवल सहज विश्वास (एनिमल फेथ) है और यह तभी होता है यदि हमने पहले भी ख' को क' से सम्बन्द्ध देखा है तो । अत: ख के होने से क के हुए होने का अनुमान केवल संवेदो तक ही सीमित है, उससे बाहर जाने का कोई साधन नहीं । इसके अतिरिक्त, इससे मुझे स्मृति पर विश्वास करना होगा, जिसकी सत्यता स्वयं सिद्ध नही है । स्मृति वह घटना है जिसके सह-सम्बन्ध (Correlations) अन्य वर्तमान घटनाओं के साथ नही देखे जा सकते और जिसके साथ यह विश्वास संलग्न है कि 'ऐसा अतीत में हुआ था ।' हमारे विचार में यह विश्वास मौलिक नहीं है, जैसा कि बर्ट्रंड रसल मानते प्रतीत होते हैं; यह केवल एसोसियेशंज़ और कोरिलेशंज़ का व्यापार है । यदि मौलिक भी हो तो ज्ञान मीमांसा की पदार्थ सम्बन्धी समीक्षा की दृष्टि से इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता । जो यहाँ प्रासंगिक है वह यह है कि स्मृतिज्ञान की सत्यता का प्रश्न एक समस्या है । संवेद जब कि हमें केवल संवेदों का ही ज्ञान देते हैं, स्मृति 'स्मृति संबधी घटना' का ही ज्ञान नही देती जो कि मुझमें अब घटित हो रही है, प्रत्युत अन्य घटनाओ-अतीत संवेदों-का ज्ञान भी देती है, जो मात्र छलना हो सकती है । अत: संवेद मे भ्रम-ज्ञान का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता और स्मृति में होता है, जिसका उत्तर सहज नहीं है । स्मृति अनेक बार भ्रामक हो सकती है (केवल विश्वासों के स्तर पर ही रहते हुए यदि देखें, तो भी) और यह कब भ्रामक नही है, यह जानना असंभव है । उपर्युक्त विश्लेषण की दूसरी सीमा है—जबकि मैं स्वयं एक घटना समवाय हूँ तो जो मैं इस क्षण हूँ वह दूसरे क्षण नहीं रहूँगा, अत: कैमरे से जो मै देखूँगा न तो वह वही होगा जो कैमरे का मौलिक संवेद था और न मैं वही हूँगा जिसने कि मेज़ का पहलू काल क पर देखा था । यदि सापेक्षता सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाए तो इन दोनों के काल का भी समन्वय नहीं हो सकता, मै यह नही कह सकता कि मैंने मेज़ का पहलू प[१] काल क पर जो देखा था वह कैमरे के संवेद प[१] का समकालीन था । किन्तु काल सम्बन्धी ये कठिनाइयाँ अधिकांशत: यहाँ उत्पन्न नहीं होतीं, यदि कैमरा मेज़ से हज़ारो मील दूर नही है तो । अत: मेरे संवेद की घटना इतिहास में एक अद्वितीय घटना है और वह किसी अन्य घटना से उपमित नहीं की जा सकती ।

इस सुलझाव के लिए हम अभी अतीत की सत्यता का स्वीकार स्थगित कर सकते है और अपने आपको वर्तमान तक सीमित कर सकते हैं । अब जब देश द[१] पर एक संवेद घटित होता है जिसका गुण म[१] है और केन्द्र

क है और यह देश $द^{1}$ मेरा मस्तिष्क है उस समय मैं अनुमान करता हूँ कि $द^{2}$........$द^{न}$ पर भी घटनाएँ घटित हो रही हैं जिनका गुण $म^{2}$......$म^{न}$ है और केन्द्र क है। हम यहाँ इन घटनाओं से एक और गुण हटा लेते है—वह है वास्तविक होने का, क्योंकि जब अन्य देश-बिन्दुओं पर मेरे समान ही अन्य मस्तिष्क नही है तो वहाँ कम से कम वैसे संवेद अथवा घटनाएं नही हो सकती जैसी मेरे मस्तिष्क में होती हैं। अतः इन्हें हम सम्भाव्य संवेद कह सकते हैं। इन संभाव्य संवेदों को हम और भी क्षीण कर सकते है और कह सकते है कि ये सवेद केवल मस्तिष्क की ही सृष्टि हैं, देश $द^{2}$......$द^{न}$ में केवल इतनी ही सम्भावना है कि जब भी इन बिन्दुओं पर मस्तिष्क होगा तो केन्द्र क के साथ सह-सम्बन्धित अन्य संवेद भी घटित होंगे जिनका गुण $म^{2}$........$म^{न}$ होगा। इस प्रकार प्रत्येक घटना अपने समान अन्य दैशिक और कालिक घटनाओं से सह-सम्बन्धित है। यद्यपि अपनी इस सम्भावना को हम पूरी तरह से चरितार्थ नहीं कर सकते किन्तु फिर भी यह विनम्र सम्भावना हम कर सकते है। ये संवेद देश और काल मे इस प्रकार घटित होते हैं कि इनका पृथक्-पृथक् संकलन भी किया जा सकता है : यदि एक संवेद इस प्रकार घटित होता है कि उसमे एक से अधिक केन्द्र हैं तो हम अनुमान कर सकते है कि देश $द^{1}$ पर एक साथ ही एकाधिक घटनाएं घटित हो रहीं है। और इसी प्रकार दो केन्द्रों के गुणों में भी अन्तर हो सकता है। यह घटनाओं का पृथक् संकलन इस प्रकार किया जा सकता है कि यदि संवेद $स^{1}$ काल क पर देश $द^{1}$ मे देखा जाता है और इसी प्रकार $स^{न}$ काल क पर देश $द^{न}$ मे और यदि $स^{1}$ और $स^{न}$ में सम्बन्ध $ब^{1}$ है तो हम कहेंगे कि $स^{1}$ और $स^{न}$ एक ही मेज़ के बारे में है। अन्य किसी घटना का सम्बन्ध $ब^{1}$ इस वर्ग से नही हो सकता। यह सम्बन्ध $ब^{1}$ अब दो प्रकार का हो सकता है। यदि $स^{1}$......$स^{न}$ का समवाय यही मेज़ है तो $ब^{1}$ का अभिप्राय होगा वर्ग सदस्यता और यदि केन्द्र क एक वास्तविक घटना समवाय है और $स^{1}$......$स^{न}$ इसकी अवस्थाएं तो $ब^{1}$ का अभिप्राय होगा प्रतीति। जहां तक दूसरे प्रकार के सम्बन्ध का प्रश्न है, वह तर्क-सम्मत नहीं जान पड़ता, क्योंकि यदि मेज़ वास्तविक भी है तो भी $स^{1}$......$स^{न}$ का सम्बन्ध सीधे मेज़ से नहीं है क्योकि उस अवस्था में भी

मेज़ मेरे मस्तिष्क से अथवा द^{१}......द^{न} से बहुत दूर है।

किन्तु मेज़ को केवल क्षणिक अस्तित्व नहीं कहा जा सकता। उसका कालिक प्रसार भी उतना ही आवश्यक है जितना दैशिक प्रसार। वैसे इन दोनों ही प्रसारों का आधार केवल सहज विश्वास है, किन्तु यह कम से कम है जो पदार्थत्व के लिए आवश्यक है, अन्यथा हम अपदार्थवादी कहे जाएंगे।

संवेदों का अथवा मेज़ का कालिक प्रसार वास्तव मे उसके दैशिक प्रसार से अधिक विनिश्चित आधारों पर है। वर्तमान संवेद का अस्तित्व हमने असन्दिग्ध माना है, इसी प्रकार इसके एक दम साथ का अतीत संवेद यद्यपि उतना ही असदिग्ध नही है, और स्मृति के सम्बन्ध में दिए गए हमारे तर्क उस पर भी लागू होते हैं, किन्तु फिर भी हम उसके अस्तित्व में विश्वास करते है और यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि 'ऐसा हुआ था।' मान लीजिए, मैं अभी खाना खाकर निवृत्त हुआ हूँ, उस अवस्था में मेरा यह विश्वास कि यह घटना घटी थी, एक दम संदेह से परे ही समझा जाना चाहिए। अब यदि अतीत की एक दम समीप की घटना सत्य सिद्ध है तो सिद्धान्ततः हम स्मृति की सारता में विश्वास कर सकते हैं। यह देखने पर, अब यह समझा जा सकता है कि यदि हम स्मृति की सत्यता को स्वीकार कर लें तो हम किस प्रकार मूवी कैमरे के साथ अपनी संवेदनाओं का समन्वय कर सकते है : जब केन्द्र क के प्रसंग से काल क^{१}......क^{न} पर देश द^{१} में सवेंद स^{१}......स^{न} घटित होते है, और यदि हम यह स्वीकार करते है कि संवेद स$^{१'}$......स$^{न'}$ काल क^{१}......क^{न} पर देश द^{२}......द^{न} पर घटित होते है तो इन सब संवेदों में सह-सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। पीछे हमने वर्ग सदस्यता के सम्बन्ध को स्वीकार किया है और इसलिए स^{१}......स^{न} का स$^{१'}$......स$^{न'}$ से काल क^{१} ....क^{न} पर सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। यहाँ हम यहभी, बिना अन्य विवाद के, स्वीकार कर लेते हैं कि यह सम्बन्ध भिन्नेन्द्रिय संवेदों में भी परस्पर स्थापित किया जा सकता है। सामान्य जीवन मे तो अभ्यासेन यह किया ही जाता है। उसी आधार पर उसी प्रणाली से यह सम्बन्ध स्थापन हम भी स्वीकार कर सकते हैं।

इस विश्लेषण से हम जिस परिणाम पर पहुँचते हैं वह यह है कि पदार्थ असंख्य वास्तव और संभव संवेदों का सह-सम्बन्धित समवाय है। संभव संवेदों

से अभिप्राय है देश-काल विशेष, जहाँ विद्यमान होने पर मस्तिष्क में वास्तव संवेद घटित होंगे। मस्तिष्क स्वय क्या है ? पुनः उत्तर होगा, संवेद अथवा संवेदों का समवाय। किस प्रकार के सवेदों का, यह हम पीछे विचार कर आए है।

किन्तु सामान्यतः हम पदार्थ को इस से कुछ अधिक ठोस अस्तित्व समझते है । उपर्युक्त विश्लेषण लगभग बर्ट्रेंड रसल की मिस्टिसिज्म एंड लॉजिक, आवर-आइडिया ऑफ दि एक्सटर्नलवर्ल्ड तथा दि एनेलेसिस ऑफ-माइड के अनुसार है। इसमें सभवतः सभाव्य सवेदों की व्याख्या हमने अपनी ओर से की है और हमारे विचार में, रसल की प्रणाली की सुठिता के लिए यही व्याख्या उपयुक्त है। स्वय रसल इन सभाव्य सवेदो के सम्बन्ध मे क्या समझते है, यह कम से कम हमारे पर प्रकाशित नहीं हुआ। इस प्रकार की व्याख्या का कारण असंदिग्ध से आगे न जाने की सावधानी है और यह सावधानी ही इस प्रणाली की वैज्ञानिकता है। अन्ततः पदार्थ की सामान्य जन की कल्पना का आधार सवेद ही है। किन्तु पदार्थ को संवेद से स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करने का आधार यह भी है कि सामान्यजन उसे इन संवेदों का कारण समझते है। स्वप्न की संवेद्य घटनाओ और जागृति की ऐसी घटनाओं के सह सम्बन्धों में अन्तर को हमने देखा था। यह अन्तर बहुत गंभीर है और हमें जागृति के संवेदों के बाह्य कारण होने मे विश्वास देता है। जब जागृति में मै मेज का चाक्षुष प्रत्यक्ष करता हूँ तब यह घटना-क्रम तब तक जारी रहता है जब तक मेरी आँखे उसी केन्द्र पर रहती है। यह घटना-क्रम असंख्य घटनाओं का समवाय है। संवेद की एक घटना को हम संवेद्य वर्तमान अथवा प्रातीत्य वर्तमान (speciouspresent) कहते हैं।[1] इसी प्रकार, यदि मैं उसी केन्द्र पर दृष्टि कर एक वृत्त में चलूं तो भी संवेद की घटनाएँ घटित होंगी जिनमे एक अनुक्रम और प्रायिक समता का सम्बन्ध होगा। ऐसा स्वप्न में नहीं होता और जागृति के ये सह-

---

[1]वर्तमान शब्द से असीमल्प काल बिन्दु का बोध होता है क्योंकि अत्यन्तल्प काल बिन्दु का भी कुछ परिमाण होगा और उसे तब तक भूत और भविष्यत् में विभाजित किया जा सकेगा जब तक कि उसका परिमाण समाप्त नहीं हो जाता। किन्तु ऐसा वर्तमान केवल अभ्युपगमित है, संवेद्य नही हो सकता। संवेद्य होने के लिए काल का कुछ परिमाण होना चाहिए, कितना, यह ह्वाइटहेडने अत्यन्त मौलिकता से अपनी पुस्तकों 'दि कासेप्ट ऑफ नेचर' तथा 'प्रिंसीपल्ज़ आफ नेचुरल नॉलेज' में अत्यन्त योग्यता से प्रतिपादित किया है।

सम्बन्ध ऐसे हैं जिनसे सहज मे ही यह विश्वास होता है कि वह केन्द्र, जहाँ पहुँचने पर स्पर्श सम्बन्धी घटनाएं भी घटित होगी, मेरे संवेदों से एक स्वतत्र अस्तित्व है। यह विश्वास तब और भी दृढ़ हो जाता है जब मै उस केन्द्र से धीरे-धीरे दृष्टि फेरता हूँ और मेरे मेज़ सम्बन्धी संवेद क्रमशः परिवर्तित होकर पुनः धुँधले होकर तिरोहित हो जाते हैं और पुनः उसी क्रम से लौटने पर उसी क्रम से सवेद भी लौटते है। इसी प्रकार, यदि मेरे और मेज़ के बीच कोई विषम सतह का शीशा है तो मेरे आँखें हिलाने पर मेज में दो प्रकार की गति दिखाई देगी जिनमें एक का सम्बन्ध मेरी आंखों की सापेक्ष स्थिति के परिवर्तन से है और दूसरी का सम्बन्ध उससे नहीं है। तब मै शीशा बीच से हटा देता हूँ और उस अवस्था में एक ही प्रकार की गति होती है। उस अवस्था में दूसरी प्रकार के सवेदों मे विचित्रता का कारण मैं शीशे को समझता हूँ और यह मानने मे मेरा विश्वास दृढ़ होता है कि शीशा कुछ स्वतंत्र अस्तित्व है---मेरी आँखों का भ्रम नही। इसी प्रकार कुछ अन्य भी सवेद है जिन्हें मै अन्य मनुष्यों के, अपने पैर-हाथ के संवेद कहता हूँ। इन सवेदों में हाथ-पैर सम्बन्धी मेरे चाक्षुष संवेदों के बाह्य केन्द्र (हाथ-पैर) मेरे एक अन्य प्रकार के सवेदनो के भी विषय है जिन्हे मैं अन्तः सवेदन (Somatic Senses) कहता हूं। ये संवेद एक दम विलक्षण है क्योंकि ये देश में अन्य बिन्दुओं से सह-सम्बन्धित नहीं किये जा सकते और न ये अन्य किसी सवेद के साथ जुड़े होते है। इसी प्रकार, इन चाक्षुष संवेदों को मैं अपनी 'इच्छानुसार' हिला डुला सकता हूँ और इस सब का मै एक अन्तः संवेद प्राप्त कर सकता हूँ। इस प्रकार इन चाक्षुष संवेदों से मै अन्य संवेदों के बजाय अधिक 'परिचित' हो सकता हूँ। किन्तु अन्तः संवेद उतने ही अधिक मेरे मस्तिष्क में घटित होते हैं जितने चाक्षुष संवेद। अब यद्यपि संवेद के होने के लिए शरीर का होना कोई अनिवार्यता नहीं है किन्तु फिर भी अपने शरीर के अस्तित्व में विश्वास मुझमें मौलिक है। जब मेरा हाथ हिलता है उस समय इसका चाक्षुष संवेद घटित होता है और साथ ही अन्तः संवेद के द्वारा भी मै इस हिलने को जानता हूँ, हाथ कट जाने पर मुझे तीव्र पीड़ा होती है और साथ ही, हाथ का उपयोग मे मैं जिन कार्यों में पहले कर सकता था उनमें अब नहीं कर सकता। जो भी हो, अपने शरीर के होने में मेरा विश्वास मौलिक है यद्यपि इसके सम्बन्ध मैं उतना ही सन्देह शील होने का कारण रखता हूँ जितना मेज़ के पृथक् अस्तित्व होने-के सम्बन्ध मे। यह मेरा ज्ञान निश्चात्मकताकी द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत हो सकता है। रसल या अन्य अधिकांश दार्शनिक शरीर के अस्तित्व को बिना किसी तर्क के ही स्वीकार कर लेते हैं

किन्तु वास्तविकता यह है कि शरीर का अस्तित्व एक दम असंदिग्ध नही है, क्योंकि जिस प्रकार स्पर्श सम्बन्धी घटनाएं केवल मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाले सवेद है उतनी ही अधिक हाथ कटने से उत्पन्न पीड़ा मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाले सवेद है। स्पर्श संवेद तथाकथित अन्तर्वाहिनी और बहिर्वाहिनी धमनियों में तथाकथत विद्युल्लहर के रूप मे व्यापारित होते हैं, किन्तु वे संवेद नही है, उनका अस्तित्व मात्र अभ्युपगमित है। इसी से हमने शरीर के ज्ञान को द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत रखा है। किन्तु प्रश्न किया जा सकता है कि यदि सवेद....क का संवेद है और क अनिवार्य रूप से कोई संवेद से स्वतंत्र तत्व न हो कर केवल संवेद का निजीगुण मात्र है, उस अवस्था में विश्वास का आधार क्या है ? अथवा क्या शरीर सम्बन्धी संवेद क संवेद नही है ? हमारे विचार में यह तर्क केवल तर्क नहीं प्रत्युत् अत्यन्त संगत तर्क हैं और एक दम उचित है। किन्तु फिर भी रसल-ब्रॉड इत्यादि ने इसे प्रथम श्रेणी के विश्वास के अन्तर्गत रखा है। हमारे इसे द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत रखने का कारण यह है कि हम बाह्य घटनाओं का अस्तित्व स्वीकार करते है। किस प्रकार, यह हम आगे देखेंगे। इसे अन्य सवेदों से प्राथमिकता देने का कारण स्पष्ट है–अन्त: संवेद (Somatic Senses) केवल शरीर कही जाने वाली घटनाओं के साथ ही सम्बद्ध हैं। प्रश्न किया जा सकता है कि जब कि संवेदों का अस्तित्व अपने से बाहर किसी अस्तित्व पर अनिवार्य रूप से निर्भर नही है तो क्यों अन्य घटनाओं के अस्तित्व में विश्वास किया जाए ? इस का उत्तर यह है कि हमारे विश्लेषण को निषेधात्मक न हो कर विनिश्चयात्मक होना चाहिए। विश्लेषण की प्र णाली प्रदत्त (Given) सत्वों का परीक्षण होनी चाहिए। मान लीजिए, मै शरीर के अस्तित्व अथवा सत्व का विचार स्थगित कर देता हूँ, अथवा इसका निषेध ही कर देता हूँ, किन्तु जो मैं इस समय लिख रहा हूँ उसका, अर्थात् इस व्यापार का, इसके साधन का और साध्य का कैसे निषेध कर सकता हूँ ? यदि मैं पत्र लिखता हूँ तो कम से कम पत्र लिखने का और उस । 'संगत' उत्तर पाने का कैसे निषेध कर सकता हूँ ? ये सब तथ्य हैं, दार्शनिक होने के नाते मैं केवल इन सब के गुणों और मूल्यों का विश्लेषण करता हुँ।

अस्तु, अपने शरीर के अस्तित्त्व के पश्चात् मैं अपने ही समान अन्य शरीरों और मनों में विश्वास कर सकता हूँ। इस विश्वास का आधार अधिकाँशत: उपमा है। यद्यपि इसमें हमें बड़े परोक्ष अनुमानों से काम लेना पड़ता है किन्तु पूर्ण एकात्म वादी हो कर हमारा जीवन असभव है। अन्त: संवेदनाओं

के द्वारा मै अनुभव करता हूँ कि जब में बोलता हूँ उस समय ओंठ कुछ विशेष प्रकार से हिलते है, जब मेरा कुछ अमुक प्रकार का भाव होता है तब मैं अमुक शब्दों का प्रयोग करता हूँ । अत: जब मै कुछ उसी प्रकार अपने चाक्षुष संवेदों में ओठ हिलते देखता हूँ और कुछ उसी प्रकार के श्रौत्र-संवेद अनुभव करता हूँ उस समय मै कुछ वैसे ही मन के होने का अनुमान करता हूँ जैसा मेरा मन है । यह परिणाम बहुत परोक्ष है किन्तु व्यावहारिक है, इस के विपरीतस्थिति तर्क शस्त्र में स्वीकार की जा सकती है किन्तु जीवन में नहीं । किन्तु एक बार अन्य मनुष्यों अथवा मनों का स्वतंत्र अस्तित्व—हमारे संवेदों से अतिरिक्त अस्तित्व—स्वीकार कर लेने पर हम मेज़, वस्त्र और घड़ी के स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करने को भी बाध्य है । क्योंकि चाक्षुष संवेद अथवा श्रौत्र संवेद में एक मेज़ और मनुष्य में कोई अन्तर नही है, इस से भी, अन्य मनों का अनुमान हमें तार्किक आधार पर अधिक आनुमानिक अथवा परोक्ष प्रतीत होता है ।

अपने हाथ अथवा पैर या अन्य अंगों को भी हम संवेद्य घटनाओं तथा अन्त: संवेदों का समवाय कह सकते है जो कि घटनाएँ हमारे मस्तिष्क मे घटित होती है । किन्तु मस्तिष्क क्या है ? क्या हम इसके अस्तित्व के सम्बन्ध में अन्त: संवेदों के समवाय से अधिक जान सकते है ? स्पष्टत: नही । तो स्वभावत: मस्तिष्क भी मात्र अन्त: सवेदनाओं का समवाय है और संभाव्य ऐंद्रिय संवेदों का भी, इस से अधिक वह कुछ नही हो सकता । किन्तु यह मस्तिष्क जब कि मेरे लिए मात्र अन्त: संवेदनाओ का समवाय है तो अन्य मस्तिष्कों के लिए मात्र ऐंद्रिय सवेदनाओं का । इस लिए जिस समय यह मस्तिष्क ऐंद्रिय संवेद्य अस्तित्व से रहित है उस समय भी उसका अस्तित्व मेरे अन्त: संवेदों के रूप मे विद्यमान रहता है । किन्तु अन्य किसी मस्तिष्क के लिए मै यही बात नहीं कह सकता । वास्तव मे, दूसरों के मस्तिष्क हैं ही, यह पुन: अत्यन्त परोक्ष अनुमान है, क्योंकि मै केवल दूसरों के ऐंद्रिय संवेदो को अपने मस्तिष्क के सम्बन्ध में सुन कर और दूसरो के मस्तिष्क को अपने ऐंद्रिय संवेदों के साथ उन का मिलान कर अपने मस्तिष्क के चाक्षुष रूप का अनुमान करता हूँ और दूसरों के अन्त: संवेदों का । इस प्रकार मै विश्व मे ऐसी घटनाओं के अस्तित्व की कल्पना पर पहुँचता हूँ जो मेरे निज के अस्तित्व से स्वतंत्र है ।

जैसाकि स्पष्ट है, हम एक चक्कर से बाहर नहीं निकल सकते, हम यह प्रमाणित नहीं कर सकते कि यह सब मात्र मेरे ही संवेद क्यों नहीं हैं ।

और ये मेरे सवेद विशुद्ध संवेद ही क्यों नही रह सकते। किन्तु इस स्थिति को पचा सकना मै असभव पाता हूँ। इसके पक्षमें एक तर्क यह भी हे कि मेरे सवेदों में जो एक सगति है वह इन सवेदों से 'बाहर' किन्ही घटनाओं के कारण है जब कि मेरे स्वप्न सम्बन्धी सवेदों में प्रत्यक्ष विसंगति इस बात का विश्वास मुझे देती है कि ये संवेद 'सगत' संवेदों से भिन्न कारणता रखते है। इस सम्बन्ध मे हम पीछे देख आए हैं। मुझे यह पचा सकना कुछ असंभव सा जान पड़ता है कि मेरे संवेदों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अन्य संवेदों का अस्तित्व तो तर्क सम्मत भी जान पड़ता है। मानलीजिए, यह विश्व केवल संवेदों का संकलन मात्र ही है। 'मै' भी संवेदों का संकलन हूँ। अन्य सवेदों के अस्तित्व मे मेरे संदेह का आधार यह है कि वे परोक्ष हैं, मेरे संवेद प्रत्यक्ष है। किन्तु यह स्थिति भी अतर्क सम्मत हैं क्योकि वे संवेद जो संकलित रूप में 'मेरा' निर्माण करते हैं सम्बन्ध स से शृखलित है, इसी प्रकार ऐसी अन्य भी असंख्य शृंखलाएं हो सकती हैं जो $स_2 \ldots . स_3 \ldots . स^न$ से शृंखलित हो, यह केवल अनुमान की बात नहीं है, प्रत्युत् विनिश्चयात्मक वितर्क है। इन शृंखलाओ में भी एक सम्बन्ध ब की कल्पना संगत है, जिसे कि हम सह-अस्तित्व का सम्बन्ध कह सकते है। सम्बन्ध यद्यपि वास्तविक अस्तित्व होता है किन्तु यह परिवर्तमान भी है—ब सम्बन्ध कभी भी (स) सम्बन्ध भी हो सकता है। अतः हम 'अपने' संवेदों से स्वतंत्र संवेदों के अस्तित्व में संदेह शील होने का कोई कारण नही देखते। हमारे कारणता सिद्धान्त के अनुसार, इस सम्बन्ध विपर्यय की व्याख्या की जा सकती है और इस प्रकार संवेदन की कारणात्मक व्याख्या दी जा सकती है। अब मानलोजिए, मेरे चाक्षुष संवेदन में 'दो तारे' दीख पड़ रहे हैं। इस संवेदन का भौतिक देश में वहा स्थान है जहाँ मेरे मस्तिष्क सम्बन्धी अन्तःसंवेदो का, किन्तु मनोवैज्ञानिक देश मे ये वहाँ है जहां मै चलकर कुछ देर मे पहुँच सकता हूँ। इस स्थिति में इन दो देश-कालो के समीकरण में कठिनाई उत्पन्न होती है। अब यदि ये 'दो तारे' मनोवैज्ञानिक देश के समान ही देश मे दो भिन्न स्थितियां रखते हैं तो इन का समन्वय मेरे संवेद के देश से नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार काल के सम्बन्ध में भी यह समस्या रहती है।

किन्तु इस कठिनाई का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि संवेदों की करण-शृखला $स२ \ldots . स^न$ जिनका स१ शृंखला से सम्बन्ध ब है जब इससे $(स)_1$ सम्बन्ध मे एक साथ आती है उस समय मै दो तारे देखता हूँ।

यह दो तारे संवेंद-श्रृंखला स१ में एक ही संवेद हैं और इन का एक ही देश और काल है। किन्तु इस समस्या का समाधान विश्लेषणात्मक वैज्ञानिकतावादी प्रणाली से संभवत: नही हो सकता जिसमें कि "वह मेज है" इस वाक्य का विश्लेषण संवेद की क्रिया, संवेद विषय (Sensa) तथा स्वलक्षण सत्ता (Ontological Existence) मे किया जाता है। यहाँ 'दो तारे' इस सवेद में संवेंदन की क्रिया जब कि एक है, संवेद विषय दो है और इसी प्रकार स्वतंत्र सत्तात्मक अस्तित्व भी, जिससे संवेद-विषय रहस्यमय ढंग से बँधे है, दो है। किन्तु जैसा कि हमने पीछे देखा है, वह अन्य दृष्टियो से भी विचित्र और असंभाव्य है ।

इन सवेदो को हम घटनाएँ कहते हैं, और इनका देश और काल मे अत्यन्त लघु विस्तार है। हमने अब अपने सवेदों से बाहर भी घटनाओं का अस्तित्व स्वीकार किया है, जिनके समूह को हम मेज, मस्तिष्क, अथवा हाथ कहते हैं। किन्तु क्या हम इन घटनाओं को 'अपने संवेदों' के समान ही संवेंद मानने का कोई निश्चित कारण रखते है ? संभवतः नहीं, किन्तु इस निषेध से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो उठती है।

भूत विज्ञान, जो कि पदार्थ का प्रयोगात्मक दर्शन है, हमें बाह्य घटनाओं के सम्बन्ध मे गणितात्मक तथा प्रयोगात्मक शब्दावली में कुछ बताता है। इस विज्ञान के अनुसार भौतिक घटनाओं की प्रकृति गणितात्मक है। इस अवधारणा के तीन लाभ हैं—प्रथमतः इससे हमारे प्रत्यक्षों का, जो कि मूलतः विषयी निष्ठ है, एक 'सर्व समन्वयात्मक' रूप निर्धारित किया जा सकता है, और दूसरे, तथा कथित विषय–निष्ठ अथवा 'स्वलक्षण' घटनाओ की प्रयोग सम्मतता का विघात नही होता। तीसरे, इससे संवेदों के वैविध्य की एक पूर्ण व्याख्या दी जा सकती है। किन्तु जैसा कि विज्ञान की इस स्थिति मे स्वीकार कर लिया गया है, गणितात्मक प्रकृति (गणितात्मक विश्व) वास्तव में हमारे प्रत्ययो का ही प्रतिबिम्ब है। और जो आधार भूत और स्वतंत्र अस्तित्व है वह अविश्लेष्य, अप्रायोगिक. और हमारी अवधारणाओं की सीमा से परे है। जैसा कि इडिंगटन कहते है—"स्ट्रक्चरल यूनिट (Structural unit) इलेक्ट्रान या प्रोटन है जो कि मौलिक अवस्था में अवस्थित है, न कि जो कि मौलिक अवस्थाओं के समवाय में निरूपित होता है। जब एक कण अन्य कणों से प्रकम्पित किया जाता है, उस समय उसकी मौलिक अवस्थाएँ नही प्रकम्पित होतीं, इसका ढांचा वही रहता है जो कि उस समय होता है जब कि वह अपने परिवेश से पूर्णतः पृथक्कृत होता है।

प्रकम्पन केवल विभिन्न मौलिक अवस्थाओं की सम्भावना (Probability) के वितरण में होता है। ये सम्भावना लहरें और कुछ नहीं हमारे संवेद ही है और आधार भूत कण (केंद्र) केवल अभ्युपगम है जो कि सम्भावना लहरों के समन्वय को सहज बना देता है। अब यदि इन कणों को स्वतंत्र अस्तित्व माना जाए तो इसमें अनेक कठिनाइयाँ है, क्योंकि हम इससे सम्बन्धित वाक्यों को कोई अर्थ नहीं दे सकते।" "यदि हम कहें कि विश्व संवेद्य और असवेद्य उभयविध है तो असवेद्य वह है जिसे हम कभी नहीं जान सकते। अतः उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में हमारे पास कोई प्रमाण नही हो सकता, और जब भी कभी हम उसे जान सकेंगे, वह हमारे सवेदनो का भाग होगा। अतः जो विश्व को उभयविध विभाजित करने का प्रयास करते है वे असंगत हैं क्योंकि हम वहाँ केवल चैतन्य गुणो के आधार पर ही यह विभाजन करते हैं। "प्रायोगिक और आनुभविक आधार पर हम संवेदो से स्वतंत्र विश्व की कल्पना नही कर सकते। भूत विज्ञान मे बहुत सी ऐसी अवधारणाएं और 'तत्व' है जो संवेदो के विषय नही है किन्तु उनकी भी संवेदों के आधार पर ही व्याख्या की जाती है—अर्थात् वे सभाव्य संवेद है। संभाव्य संवेदों की यह कल्पना सार्वभौम मन की कल्पना को प्रेरित करती है, जिसके आधार पर कि हमारे सवेदो से स्वतंत्र 'वस्तुओ' की कल्पना को संगति दी जा सके। 'मै देखूँ या न देखूँ, मेज वहाँ है', यह पदार्थ की कल्पना के लिए आधार भूत महत्व का है, किन्तु असवेद्य अस्तित्व की बात को कोई संगति नहीं दी जा सकती। अतः मेज को हम सवेदो का समवाय भी कह सकते हैं।" बर्कले समझता था कि सवेद के होने के लिए किसी अधिकरण (मन) की अनिवार्य आवश्यकता है, अतः उसने एक सार्वभौम मन की कल्पना की जो हमारे मनों को संवेद भेजता है। इडिंग्टन ने भी इस अभ्युपगय (Hypothesis) को तार्किक रूप से उपयुक्त माना है। किन्तु हमारे विचार मे, यह तार्किक रूप से ठोस होते हुए भी असंभाव्य (Unplausible) है। प्रथमतः, सार्वभौम मन की कल्पना भी आनुभविक और प्रायोगिक (Emperical) आधार नही रखती और न रख सकती है, क्योंकि वह अनिवार्य रूप के असवेद्य ही रहेगी। तार्किक आधार पर भी इस पर आपत्ति की जा सकती है: बर्कले हमारे संवेदों को सार्वभौम मन में कल्पित और उसके द्वारा हमारे मनों में प्रेरित अथवा प्रेषित मानता है। किन्तु यदि हमारे संवेदों के होने के लिए उनका किसी अन्य मन मे होना आवश्यक है तो वह मन निश्चय ही हमारे मन से भिन्न है, अन्यथा उस मन में संवेदो के होने के लिए भी उनका किसी

अन्य मन में होना आवश्यक है। किन्तु सभवतः बर्कले का अभिप्राय अनिवार्य रूप से यह नही है, उसका अभिप्राय सभवतः इतना ही है कि संवेदों के कारण और गुण सभी कुछ मानसिक है। सार्व भौम मन का अभिप्राय हो सकता है–मनों का समवाय। किन्तु स्पष्टतः सार्वभौम का इतना मात्र अर्थ भी नहीं है। उसके अनुसार 'मेंज वहाँ है, मेरे संवेदों से स्वतंत्र, किन्तु वह पुनः संवेद ही है, जो कि सार्वभौम मन में है। 'इस प्रकार सार्व भौम मन संभाव्य संवेदोंका समवाय ही है जिसे यहाँ एक ठोस और वास्तविक अस्तित्व प्राप्त है और इस प्रकार कोई संवेद संभाव्य न रह कर सभी वास्तव हैं।

सार्व भौम मन की कल्पना का कारण अभ्युपगमिक वस्तुओं की हमारे संवेदों से स्वतंत्र सत्ता का प्रतिपादन करना है। वस्तओं की एक विशेषता उनकी हमारे संवेदों से स्वतंत्रता और सर्व सामान्यता है। मेज़ को जब मै नहीं भी देखता तब भी वह रहता है (स्वतंत्रता), और जिस मेज़ को मै देखता हूँ अन्य भी देखते हैं अथवा देख सकते हैं (सर्वसामान्यता)। यह मेज़ के लिए हमें कम से कम स्वीकार करना है, चाहे कोई भी व्याख्या हम इसकी क्यों न करें। इसके बिना मेज़ का कुछ अभिप्राय नहीं हैं।

इस स्थिति की तर्क सम्मत व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है कि हम मेज़-कुर्सी इत्यादि को घटनाओं का समवाय मानें। संवेद, जैसा कि हमने पीछे देखा है, एक घटना है और इसका गुण वह है जो वह है; इस प्रसंग में चैतन्य अथवा भावन इत्यादि को कोई अर्थ नहीं दिया जा सकता। अतः संवेद भी घटनाएँ हैं और इनमें इनके सह-संबन्धों के अतिरिक्त कोई विशेषता नहीं है, जो इन्हें भौतिक घटनाओं से पृथक् कर सके। भौतिक घटनाएँ एकत्र अथवा अनेकत्र विद्यमान हैं और कारण-शृंखलाओं के रूप में व्यापारित होती हैं। जब एक कारण शृंखला (मेज) मेरी आँख में कारण शृंखलाओं को व्यापारित करती हैं तो ठीक परिस्थितियों में एक संवेद घटित होता है। मेरा यह मेज़ का संवेद ऐसी घटना है जो प्रदत्त (Given data) है, इससे पहले की घटना शृंखला केवल अनुमान है। यह कारण शृंखला वास्तव में ही मेरे संवेदों के समान है या नहीं यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह अनुमान सुविधा जनक है कि अन्य घटनाएं मेरे संवेदों से मौलिक रूप से भिन्न नहीं होंगी। 'मौलिक रूप से भिन्न नहीं' कहने का अभिप्राय यह है कि यदि मेरे विशेष संवेद का रूप क है तो आवश्यक नहीं कि शेष घटना-शृंखला का रूप भी क ही हो, संभव है यह क हो, किन्तु यह क से मौलिक रूप में कभी भिन्न नहीं हो सकता।

इस प्रकार पदार्थ घटनाओं के समवाय रूप में विश्लेष्य है और इसी प्रकार मन भी। क्वांटम सिद्धान्त के समान ही घटनाओं का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है—प्रत्यक्ष (वास्तव या सम्भाव्य) तथा स्वलक्षण, जैसे मेज़ (क्वांटम सिद्धान्त में इलेक्ट्रन-प्रोटन), जो कि सवेद की सीमा से बाहर है और इसीलिए जिसका अस्तित्व केवल कल्पना है। उसकी आवश्यकता केवल अनेक संवेदों के सह-सम्बन्ध के लिए है।

इस प्रकार सवेद्य और स्वलक्षण घटनाओं के सम्बन्ध को हम कारण सम्बन्ध कह सकते हैं। जैसा कि हमारे पिछले निबन्ध से स्पष्ट है, कारण सम्बन्धों का अभिप्राय उत्पादक और उत्पादित का सम्बन्ध नहीं है प्रत्युत् घटनाओं के दृष्ट और द्रष्टव्य अथवा उनके आधार पर अनुमानित सम्बन्धों में विश्वास से है। यह विश्वास पूर्णतः शरीर वैज्ञानिक स्तर का है, जिसे कि हम पीछे एनिमल फेथ कहते आए हैं। किन्तु पदार्थ और मन की हमारी उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार शरीर स्वयं घटनाओं का समवाय है, अतः विश्वास की व्याख्या भी इन घटनाओं के प्रसंग से ही होनी चाहिए। इस अवस्था में हम कहेंगे कि दो संवेदों के निश्चित अनुक्रम में घटित होने पर एक कारण श्रृंखला व्यापारित होती है जो कि उस कारण श्रृंखला का एक भाग बन जाती है जिसे हम समवेत रूप से शरीर कहते हैं। पुनः जब भी कभी नवीन घटना, जिसे हम पूर्व संवेद युगल की प्रथम घटना के समान कहते हैं, घटित होती है तो उससे अनुगमित कारण श्रृंखला भी उस कारण श्रृंखला के 'समान ही' होती है जो पूर्व संवेद युगल के घटित होने पर अनुगमित हुई थी। मान लीजिए पूर्व संवेद युगल अ+आ है और उससे अनुगमित कारण श्रृंखलाएँ, $र^{न}$ जो कि काल $अ^{न}$ पर घटित होती हैं। अब पुनः अ' के $क^{न'}$ पर घटित होने पर भी यदि $र^{न'}$ कारण श्रृंखला अनुधावित होती है तो कहा जाएगा अ+आ में कारण सम्बन्ध है। इस व्याख्या से संवेदों के बाह्य घटनाओं से कारित होने पर वह आपत्ति नहीं हो सकती जो ब्रॉड ने की है, क्योंकि कारित होने का अभिप्राय उत्पादित होना नहीं है।

कारण सम्बन्धों की यह व्याख्या मन और पदार्थ के भेद को समाप्त कर देती है। इसे ज्ञान मीमांसात्मक (Epistemological) व्याख्या भी कहा जा सकता है, किन्तु जैसा कि हमने देखा है, इसके अतिरिक्त और कोई व्याख्या तर्क सम्मत नहीं हो सकती। वस्तुओं की स्वलक्षण (Ontological) व्याख्या एकदम स्वतंत्र रूप से नहीं हो सकती, यह केवल आधुनिक तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान ने ही प्रमाणित नहीं कर दिया है प्रत्युत् भूत वैज्ञानिक ने भी

पाया है कि अब तक भूत विज्ञान के विषयों को स्वलक्षण मान कर वह भ्रान्त धारण मे रहा है। इस विज्ञान ने इस नवीन दर्शन को स्वीकार कर अपनी प्रगति की सम्भावनाओं को शतधा प्रवर्द्धित कर लिया है। इसका अर्थ यह नही कि आज एक निश्चित और सर्वमान्य दर्शन का विकास कर लिया गया है, किन्तु यह ठीक है कि एक निश्चित और बहुमान्य प्रणाली का विकास कर लिया गया है। इस प्रणाली के आधार पर इस दर्शन की अनेक संभव व्याख्याएं की गई है, जिनमें से कुछक की चर्चा इस निबन्ध में की गई है। इसमें से कोई भी व्याख्या अभी अन्य से अधिक संभाव्य नहीं हो सकी है, किन्तु इस प्रणाली का एक मानदण्ड यह है कि जो व्याख्या संवेद और कथित पदार्थ में सर्वाधिक तर्क सम्मत स-सम्बन्ध प्रस्तुत कर सके वह सर्वाधिक मान्य है।

REFERENCES

1. *Bergson H.* — Matter and Memory.
2. *Broad C. D.* — Mind and Its Place in Nature.
3. *Broad C. D* — Scientific Thought.
4. *Eddington A. S.* — Philosophy of Physical Science.
5. *James Jeans* — Physics and Philosophy.
6. *Russell B.* — Our knowledge of the External World.
7. — Mysticism and Logic.
8. — The Analysis of Mind.
9. — The Analysis of Matter.
10. *Santayana* — Scepticism and Animal Faith.
11. *Santayana* — Essays in Critical Realism.

अनुक्रमणिका

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ संख्या
समान्य	सामान्य	ऊपर से ६	१६३
एसी	ऐसी	नीचे से १२	१६४
अधिक	अधिक	नीचे से २	,,
ह	हैं	ऊपर से ४	१६५
चाहत	चाहते	ऊपर से १	१६६
ह	हैं	ऊपर से १३	,,
गुंजाइस	गुंजाइश	ऊपर से १४	१६८
दृष्य	दृश्य	नीचे से ६	,,
आकस्मि	आकस्मिक	ऊपर से ८	२०५
चींड़ियाँ	चिड़ियाँ	ऊपर से ६	,,
इत्यदि	इत्यादि	,,	,,
अन्तरानुभूति	अन्तरानुभूति	नीचे से १५	२०९
स्थितियों	स्थितिओं	ऊपर से १३	२१२
पौ	पौधे	अंतिम	,,
ो	तो	प्रथम	२१३
वासाओं	वासनाओं	ऊपर से १२	२१६
लाभग	लगभग	ऊपर से १०	२१७
देखेंगें	देखेंगे;	ऊपर से ७	२२२
निहित है;	निहित ह,	नीचे से १३	२२२
Parallalism	Parallelism	ब्रैकेट में	२२४
सुई	सूई	नीचे से १२	२२४
−१+घ	−२+घ	नीचे से २	२२५
अधार-प्रदेश	आधार-प्रदेश	अंतिम	२२७
ऊपर	—	नीचे से १३	२२८
सापक्ष	सापेक्ष	नीचे से ४	२२९
`	हैं	ऊपर से ६	२३०
आधान	आधीन	ऊपर से ८	,,

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
अतीतानुभूति	अतीततानुभूति	ऊपर से १०	२३६
अनाम्यास	अनाभ्यास	ऊर से ३	२४४
सहासन	सिंहासन	नीचे से ८	,,
ार	बार	नीचे से ६	,,
वरणात्मक	विवरणात्मक	नीचे से ५	२४७
काय	कार्य	ऊपर से १३	२४८
ठहरान	ठहराने	ऊपर से ६	२४९
रहा है किन्तु	रहा है, किन्तु	,, ,, ५	२५०
घन	घ_न	नीचे से १६	२५१
—कन	क_न	नीचे से १५	२५१
व्यवहारिक रूप से,	व्यावहारिक रूप से	अन्तिम	२५१
शक्ति	दबाव	ऊपर से १६	२५२
मिलाना अनुमित	मिलाना–अनुमित	ऊपर से ४	२५४
Knoweedge	Knowledge	ऊपर से ७	२५५
बदलने वाला	अनिश्चित	नीचे से १५ और १०	२५६
घ२	घ२ (सब निम्नसंकेतितकरें	५,८,९	२५६
विर्भाव	अविर्भाव	नीचे से १२	२५७
Psychologieal	Psychological	नीचे से ४	२६०
अत्यधिका	अत्यधिक	नीचे से ३	२६४
करते हैं।	करते है,	ऊपर से १३	२६५
पर्ण	पूर्ण	नीचे से २	२६५
अभ्युपगम(स्त्रीलिंग)	अभ्युपगम(पुल्लिग)	——	२६६
लाँ आॅफ़प्राँबेबिलिटी	लॉ ऑफ प्रॉबेबिलिटी	नीचे से १४	२६६
तीव्रिता से,	तीव्रता से	नीचे से १२	२६६
अनर्धारितावाद	अनिर्धारिततावाद	नीचे से ११	२६६
Indeterminism	आदि उद्धरण	पृ० २६६ के नीचे	
प्राणियों पर	प्राणियों पर,	नीचे से ४	२६८
कहते हैं काल	कहते हैं "काल..	ऊपर से ४	२६९
नियमों को जो,	नियमों को, जो	नीचे के ११	२६९
प्राणी-मनुष्य	प्राणी—मनुष्य	ऊपर से ११	२७०
नबन्धों	निबन्धों	ऊपर से २	२७३

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
त्तें	ले	ऊपर से १३	२७४
Initial	Inherent	ऊपर से ३	२७५
धटना-स्मृति	घटना-स्मृति	ऊपर से ९	२७६
प्वाईंट प्रतिपादन को	प्वाइंट को	नीचे से ६	२७६
इस प्रकार की	इस प्रकार कि	नीचे से १४	२७७
चिन्ह	चिह्न	नीचे से ९-६-५	२७७
रूप से	रूप से और	प्रथम पंक्ति	२८३
होगा,	होगा	नीचे से ३	२८३
Associative	Of associations	ऊपर से ४	२८४
डेकार्ड	डेकार्ट	ऊपर से १६	२८८
सुविधापेक्ष	सुविधापेक्षी	नीचे से ६	२८९
सार्व ौम	सार्वभौम	नीचे से १४	२९७
टम्ज	टर्म्ज़	ऊपर से ११	३०१
सिश्लेषणात्मक	विश्लेषणात्मक	ऊपर से १३	३०३
निश्चात्मक	निश्चयात्मक	नीचे से ३	३०९